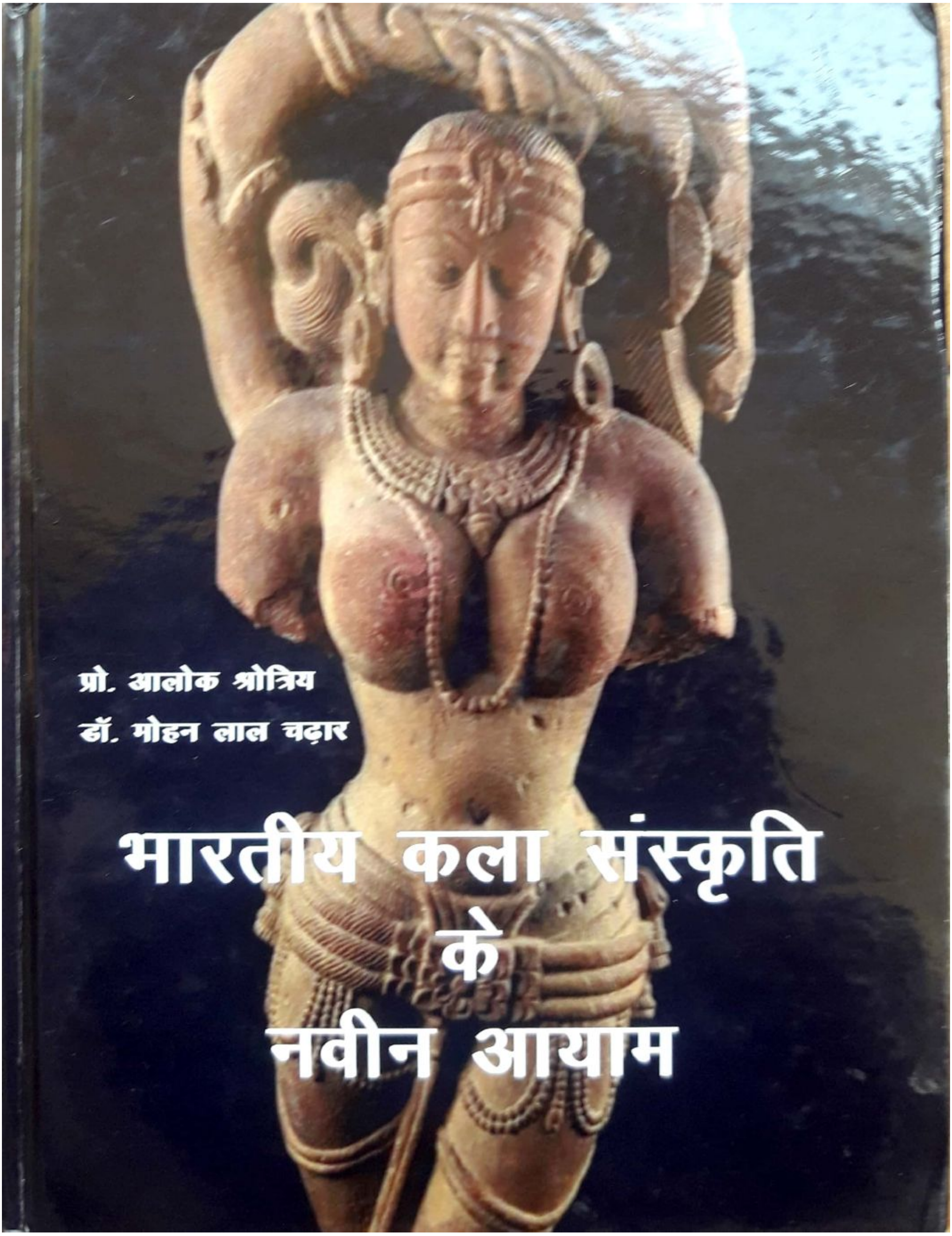

Scanned by CamScanner

भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयाम

आलोक श्रोत्रिय
मोहन लाल चढ़ार

S.K. Book Agency
New Delhi - 110002

Scanned by CamScanner

Published by
S.K. BOOK AGENCY
5A/12, Ansari Road, Daryaganj,
New Delhi 110002 (India)
Ph: 011-47520102
E-mail: skbook9@gmail.com

भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयाम

© आलोक श्रोत्रिय एवं मोहन लाल चढ़ार

₹ 2800.00

सर्वाधिकार सुरक्षित। पुस्तक का कोई भी भाग लेखक की पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनर्प्रकाशित नहीं किया जा सकता है।

प्रथम संस्करण 2018

ISBN: 978-93-8315-889-8

Printed at New Delhi, India

इस पुसत्क में प्रकाशित आलेख, लेखकों के अपने विचार हैं, इन विचारों से सम्पादकगण प्रकाशक अथवा मुद्रक का सहमत होना अनिवार्य नही है

Scanned by CamScanner

प्रस्तावना

भारतीय कला संस्कृति प्राचीन काल से विविधतापूर्ण रही है। प्राचीन काल से आज तक भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के दर्शन होते रहे है। प्राचीन काल से कला एवं संस्कृति की दृष्टि से भारत भूमि काफी समृद्धशाली रही है। यहाँ पर कला, संस्कृति व पुरातत्व के विविध नवीन सोपान देखने को मिलते है। सम्पूर्ण विश्व की प्राचीनतम कला संस्कृति, भाषा शैली, लेखन शैली के प्रमाण यहॉ से मिलते है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रागैतिहासिक एवं आद्यऐतिहासिक कला संस्कृति के विविध पुरावशेषों के माध्यम से हमें प्राचीनतम् कला एवं संस्कृति की जानकारी मिलती है। भारतीय परिदृश्य में वैदिककाल, महाजनपदकाल से लेकर मौर्यकालीन, शुंगकालीन, सातवाहनकालीन, कुषाणकालीन, शक–क्षत्रपकालीन, गुप्तकालीन, पूर्वमध्यकालीन एवं उत्तर मध्यकालीन कला संस्कृति से सम्बन्धित अनेक पुरावशेष प्राप्त हो चुके है। इससे स्पष्ट होता है कि विश्वस्तर पर प्राचीन रीति रिवाजों, परम्पराओं एवं मानवीय विकासक्रम को समझने के लिए भारत की कला संस्कृति ने एक नवीन दृष्टि प्रदान की है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से नवीन तथ्यों का समावेश होता रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति से सम्बधित नवीन आयामों की विशद चर्चा उच्चकोटि के शोध पत्रों के माध्यम से की गई है। यह ग्रन्थ भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयाम शीर्षक सें निकाला जा रहा है। इस ग्रन्थ में मध्यभारत की कला, संस्कृति तथा पुरातत्व के शोध परख आलेखों को समाहित किया गया है। इस ग्रन्थ में देश के विभिन्न पुरातत्व व संस्कृति के विद्वानों के कुल 32 शोध पत्र संकलित किये जा रहे है।

इस ग्रन्थ में प्रथम शोध आलेख चक्र विक्रम प्रकार के सिक्कों का पर्यालोचन शीर्षक से प्रों. चन्द्रशेखर गुप्ता ने लिखा है। द्वितीय शोध पत्र डॉ. सर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. नागेश दुबे द्वारा लिखित मढ़पिपरिया का षैव मूर्तिषिल्प शीर्षक से लिया गया है इस लेख के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के दमोह जिले में स्थित मढपिपरिया की गुप्तकालीन कला में शैव संस्कृति व कला पर प्रकाश डाला गया है। डॉ. कृष्णकुमार त्रिपाठी द्वारा लिखित तुम्बवन (तुमैन) की मूर्तिकला है। इसमें मध्यभारत की कला एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। प्रों. काशीनाथ तिवारी खैरागढ का आलेख महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों का संगीतिक एवं

Scanned by CamScanner

कलात्मक वैशिष्टय पर है। इस लेख में छत्तीसगढें की कला व संस्कृति के साथ ही साथ तत्कालीन संगीत पर प्रकाश डाला गया है। डॉ कन्हैया लाल अग्रवाल ने सतना जिले का ऐतिहासिक भूगोल पर लेख लिखा है। इस लेख में सतना के भौगोलिक परिदृश्य पर सूक्ष्म अध्ययन किया है। डॉ. नरेश पाठक के लेख में केन्द्रीय संग्रहालय गुजरी महल ग्वालियर का मूर्तिशिल्प पर प्रकाश डाला गया है। इसमे संग्रहालय में विद्यमान मूर्तियों की शोधपरख चर्चा की गई है। डॉ. ओ पी मिश्रा के शोध पत्र में खजुराहों एक ऐतिहासिक धरोहर से सम्बधित सांस्कृतिक तत्वों की विवेचना की गई है। डॉ. मोहन लाल चढ़ार ने अपने शोध आलेख अमरकटंक क्षेत्र की कला संस्कृति में मंदिर, स्थापत्य, कला एवं संस्कृति का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। श्रीमति डॉ. राखी कुमारी ने मिथिला की भित्ति चित्रण परम्परों पर अपना शोध पत्र दिया है। लेख में मिथिला चित्रकला की उत्पत्ति व विकास की सूक्ष्म चर्चा की गई है। डॉ. जयप्रभा शर्मा, खैरागढ़ के आलेख में सोमवंशकालीन कलाकृतियों का शिल्पशास्त्रीय विवेचन के अधार मूर्तिकला पर प्रकाश डाला है। डॉ. महेश चन्द्र राय प्रजापति ने छत्तीसगढ की कला में मृतक स्मृति स्तम्भों का विवेचन नामक अपने लेख में मृतक स्तम्भों पर विश्लेषणात्मक शोध पत्र लिखा है। डॉ. हरित कुमार मीणा ने मध्यकालीन स्थापत्य कला का स्वरुप एवं सांस्कृतिक योगदान नामक शोध लेख में मध्यकालीन कला का विश्लेषण किया है। डॉ. रमेश चन्द्र यादव ने अपने लेख भारतीय लोक संस्कृति और यक्ष–प्रतिमा विज्ञानं पर अपना महत्वपूर्ण शोध पत्र प्रस्तुत किया है। श्री प्रसन्न सहारे ने सांची स्तूप में प्रतिबिम्बित जनशिक्षा पर शोधपरख आलेख में मध्यभारत की कला परम्परा और संस्कृति पर सूक्ष्म प्रकाश डाला है। श्री लल्लेश कुमार, श्वेता सिंह ने आम्रपाली– नगरशोभनी या नगरबधु पर लेख लिखकर भारत की नारी शक्ति के विविघ पक्षों को उजागर किया है। श्री लल्लेश कुमार ने भारत में नदियाँ : अभिलेखों के संदर्भ में शोध आलेख में नदियों की सांस्कृतिक समीक्षा पर गहन विश्लेषण किया है। डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी ने अपने आलेख में बुन्देलखण्ड में सूर्य–पूजा का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। श्रीमति हेमलता मिंज ने अपने शोधपत्र में महेशपुर की कला एवं संस्कृति के माध्यम से छत्तीसगढ की कला संस्कृति पर प्रकाश डाला है। डॉ. मुकेशकुमार शाह ने कालिदास द्वारा उद्धृत मदिरा के प्रकार पर विस्तारपूर्ण सूक्ष्म व गहन शोध पत्र लिखकर मध्यभारत की संस्कृति पर प्रकाश डाला है। डॉ० गौरी शंकर महापात्र व डॉ० सौरभ कुमार, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय का जनजातीय संग्रहालय के सन्दर्भ में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। श्री अशोक सिंह कुशराम ने लखबरिया (शहडोल जिला) की प्रागैतिहासिक गुफाएँ शीर्षक से शोध लेख प्रस्तुत किया है। इस लेख में पाषाणकालीन कला संस्कृति का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। अमृता सिह ने खरबईः एक पुरातात्विक धरोहर से सम्प्रेषण कला का विकास पर अपने आलेख में विशद् व्याख्या की है।

डॉ. मुकेशकुमार शाह व डॉ. रीतेश लोटने शतपथ ब्राह्मण में स्वास्थ्य रक्षण एवं बाल–संगोपन पर अपना शोध आलेख प्रस्तुत किया है। इसमें प्राचीन स्वास्थ्य रक्षण की विश्लेणात्मक व्याख्या की गई है। डॉ. मनोज कुमार कुर्मी लिखित लेख महादेव मंदिर (पाली–जिले कोरबा) में पुर्नस्थापना और संरक्षण प्रयास का विश्लेषण किया है, इस आलेख में कोरबा जिले में स्थित महादेव मंदिर से प्राप्त पुरावशेषों के संरक्षण का विश्लेषण किया गया है। डॉ. संदीप ठाकरे ने प्राचीन भारतीय योग परम्परा और पंचकोश नामक अपने शोध आलेख में प्राचीन योग परम्परा व संस्कृति पर प्रकाश डाला है। डॉ. श्याम सुन्दर पाल

Scanned by CamScanner

ने अपने लेख ईसाई धर्म संस्कृति में योग परम्परा पर वृह्द् प्रकाश डाला गया है। डॉ. अजय जायसवाल ने अपने शोध पत्र भारतीय मुद्राओं में नदियाँ : आस्था और संदेश का प्रतीक पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। श्री हीरा सिंह गौड ने शिवलहराः एक ऐतिहासिक धरोहर शीर्षक से अनूपपुर जिले पुरातात्विक स्थल शिवलहरा पर जानकारी युक्त आलेख प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया है। डॉ. अशुतोष चौरे ने मध्यभारत के मंदिर वास्तु में वृष ब्याल पर शोध पत्र लिखकर छत्तीसगढ के क्षेत्रीय पुरातत्व पर विशद् अध्ययन लेख मे समाहित किया है। श्री यादव राकेश पारस नाथ ने चन्देरी क्षेत्र का इतिहास शीर्षक से अपने लेख चन्देरी के ताम्रपाषाणिक पुरास्थलों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ. जिनेन्द्र जैन ने जतारा (टीकमगढ़) से प्राप्त चंदेल व बुन्देलाकालीन जैन प्रतिमाओं पर अपना लेख प्रस्तुत किया है। प्रो. आलोक श्रोत्रिय ने कल्हण की राजतरंगिनी के आधार पर काश्मीर के समाज की आर्थिक व्यवस्था की शोध परक जानकारी प्रस्तुत ग्रन्थ में दी है। डॉ. मोहन लाल चढ़ार ने मानव जीवन मे संस्कारो का महत्व शीर्षक से लेख प्रस्तुत किया है। जिसमें भारत की संस्कृति परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है।

जिन विद्वानों, सज्जनों ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में अपना सहयोग दिया है। उनके प्रति मैं सदैव हृदय से आभारी रहूँगा। इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप से जन सामान्य के लिए पुस्तक के रुप में प्रस्तुत करने वाले के एस. के. बुक एजेन्सी, नई दिल्ली के संचालक श्रीमति पूनम काटला जी का में हृदय से आभारी हूँ । अन्त में मॉ नर्मदा को श्रद्धापूर्वक नमन करता हुआ यह ग्रन्थ आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ ।

आलोक श्रोत्रिय
मोहन चढ़ार

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना *v*

1. चक्र विक्रम प्रकार के सिक्कों का पर्यालोचन 1
   चन्द्रशेखर गुप्ता
2. मढ़पिपरिया का शैव मूर्तिशिल्प 6
   नागेश दुबे
3. तुम्बवन (तुमैन) की मूर्तिकला 10
   कृष्ण कुमार त्रिपाठी
4. महानदी बेसिन की जनजातियों का सांगीतिक एवं कलात्मक अनुशीलन 25
   काशीनाथ तिवारी
5. सतना जिला का ऐतिहासिक भूगोल 31
   कन्हैयालाल अग्रवाल
6. गूजरी महल संग्रहालय ग्वालियर में संग्रहित पवाया की कलाकृतियाँ 43
   नरेश कुमार पाठक

Scanned by CamScanner

7.	खजुराहों एक ऐतिहासिक धरोहर *ओम प्रकाश मिश्र*	53
8.	अमरकटंक की कलचुरीकालीन कला एवं स्थापत्य *मोहन लाल चढ़ार*	58
9.	मिथिला की भित्ति चित्रण–परम्परा" *राखी कुमारी*	83
10.	सोमवंशीय मूर्तियों का शिल्पशास्त्रीय अध्ययन *जयप्रभा शर्मा*	93
11.	"छत्तीसगढ़ की कला में मृतक स्मृति–स्तम्भों का विवेचन" *महेशचन्द्र राय प्रजापति*	101
12.	मध्यकालीन स्थापत्य कला का स्वरुप एवं सांस्कृतिक योगदान *हरित कुमार मीना*	107
13.	भारतीय लोक संस्कृति और यक्ष–प्रतिमा विज्ञान *रमेश चन्द्र यादव*	115
14.	सांची स्तूप में प्रतिबिम्बित जनशिक्षा *प्रसन्न सहारे*	120
15.	आम्रपाली– नगरशोभनी या नगरबधु *लल्लेश कुमार एवं श्वेता सिंह*	124
16.	भारत में नदियाँ: अभिलेखों के संदर्भ में *लल्लेश कुमार*	128
17.	बुन्देलखण्ड में सूर्य–पूजा *कृष्ण कुमार त्रिपाठी*	151
18.	महेषपुर की कला एवं संस्कृति *हेमलता मिंज*	159
19.	कालिदास द्वारा उद्धत मदिरा के प्रकार *मुकेश कुमार शाह*	164
20.	जनजातीय संग्रहालय और आदिवासी संस्कृति *गौरी शंकर महापात्र एवं सौरभ कुमार*	167

Scanned by CamScanner

21. लखबरिया की प्रागैतिहासिक गुफाएँ 177
अशोक सिंह कुशराम

22. खरबईः एक पुरातात्विक धरोहर से सम्प्रेषण कला का विकास 182
अमृता सिह

23. शतपथ ब्राह्मण में स्वास्थ्य रक्षण एवं बाल–संगोपन 186
मुकेश कुमार शाह एवं रीतेश लोट

24. सांस्कृतिक निधिः महादेव मन्दिर पाली 190
मनोज कुमार कुर्मी

25. प्राचीन भारतीय योग परम्परा और पंचकोश 194
संदीप ठाकरे

26. ईसाई धर्म संस्कृति में योग परम्परा 200
श्याम सुन्दर पाल

27. शिवलहराः एक ऐतिहासिक धरोहर 204
हीरा सिंह गोंड

28. कलचुरि मंदिर वास्तु में वृष व्याल
(छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ में) 210
आशुतोष चौरे

29. चन्देरी क्षेत्र का इतिहास 215
यादव राकेश पारस नाथ

30. *जतारा से प्राप्त जैन प्रतिमाएँ* 219
जिनेन्द्र जैन

31. *मानव जीवन में संस्कारों का महत्व* 224
मोहन लाल चढ़ार

32. प्राचीन काश्मीर आर्थिक जीवन,
(*कल्हण की राजतंरगनी के विशेष सन्दर्भ में*) 233
आलोक श्रोत्रिय,

लेखक परिचय 249

Scanned by CamScanner

1 चक्र विक्रम प्रकार के सिक्कों का पर्यालोचन

चन्दशेखर गुप्ता

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को जानने एवं समझने में सिक्कों का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। सिक्कों के इतिहास में गुप्त राजाओं के सिक्कों का स्थान अत्यंन्त महत्वपूर्ण है। गुप्त सिक्के सोने, चॉदी, ताम्बे तथा सीसे में ढले तथा आर्थिक कलात्मक, धार्मिक, साहित्यिक विशेषताओं से समृद्ध इतिहास के एक प्रमुख साधन के रुप में जाने जाते है। गुप्त नरेशों के सिक्कों में चक्र विक्रम प्रकार का सिक्का यद्यपि मात्र दो नग संख्या में अब तक उपलब्ध हुआ है, तथापि अंकन, संयोजन एवं विषयगत अनूठेपन के कारण बहुचर्चित रहा है। प्रस्तुत आलेख में कुछ नये स्त्रोतों तथा कल्पकता के सन्दर्भ में इस चक्र विक्रम प्रकार का पर्यालोचन प्रस्तावित है। जैसा कि कहा जा चुका है कि इस चक्र विक्रम भॉत के मात्र दो सिक्के ही अब तक मिले है।[1] इन में प्रथम तो राजस्थान के बयाना नामक स्थान से प्राप्त सुप्रसिद्ध गुप्त सिक्कों की निधि में सम्मिलित था।[2] निधि के अध्ययनकर्ता स्व. डॉ. अन्नत सदाशिव अल्तेकर ने इस सिक्के को द्वितीय चन्द्रगुप्त द्वारा प्रचलित माना था। यद्यपि सिक्के पर राजा का नाम अंकित नही मिलता है। पृष्ठभाग पर चक्र विक्रम विरुद की उपस्थिति इस पहचान का प्रमुख आधार थी। सिक्कों का विवरण अग्र प्रकार है[3]:–

धातु–सोना

आकार–गोल

व्यास– 19 मिलीमीटर

वजन–7.51 ग्राम

क्रमांक–1192 बयाना निधि भाण्ड

अग्रभागः– दो पुरुषाकृतियॉ एक दूसरे के सम्मुख खड़े रुप में अंकित है। बायी ओर पुरुष का देवत्व

Scanned by CamScanner

.VI).

Chhatra Type, 7.69gm, Private Collection 1118.

उसके बडे प्रभामण्डल से तथा वरद मुद्रा में (पुरुषाकृति से तीन चौथाई ऊचाई के) परिणाम से स्पष्ट है। प्रभामण्डल तिहरी–मणि तथा रेखा की अण्डाकार परिधियों से बना है। देव ने किरीट मुकुट, कुण्डल, ग्रैवयक, आदि आभूषण तथा उत्तरीय अधेवस्त्रादि धारण किये है। देव का दाया हाथ दूसरे पुरुष की ओर बढा हुआ और तीन बिन्दु आकार की वस्तु देते हुए अंकित है। जो दाई ओर के पुरुष द्वारा अपने दाये हाथ में ली जा रही है। देव आकृति के नीचे लटके हुए बाये हाथ में एक छोटी गदा का अंकन है। सम्मुख खड़े हुए पुरुष को भी प्रभावलय, आभूषण एवं वस्त्रों से सज्जित तथा अपना बॉया हाथ कमर से लटकती तलवार की मूठ पकड़े हुए प्रदर्शित है। अन्य गुप्त सिक्कों के विपरीत इस भाग पर राजा की पद्वी विशेषण, नामादि किसी भी लेख का न होना इस सिक्के की विशेष्ता सिद्ध होती है। इस भाग पर प्रदर्शित मनावकृतियों को देवता तथा राजा के रुप में अंकित माना गया है। देव मूर्ति स्वयं विष्णु अथवा उन के आयुध सुदर्शन चक्र से अभिन्न होने की सम्भावना व्यक्त की गई है।

पृष्ठभागः– बिन्दुमय परिधि में त्रिभंग मुद्रा में अपनी दायी ओर मुह किये खडी लक्ष्मी अंकित की गई है। इनके दाये तथा बाये हाथ क्रमशः वरद मुद्रा तथा सनाल कमलयुक्त है। वरद हस्त के ऊपर एक वलय और दो बिन्दु बने है, जिसे राजसी भाल–पट्ट माना गया है। देवी के दायी ओर शंख की रेखाकृति दिखाई देती है। देवी मुकुट, कुण्डल ग्रेवेयक आदि आभूषणों, उत्तरीय आदि वस्त्र धारण किये एक पूर्ण विकसित पद्म पर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है। दायी ओर एक सीधी पक्ति में गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में 'चक्र विक्रम' लेख अंकित है। इस चक्र विक्रम लेख के आधार पर अल्तेकर ने इस सिक्के को द्वितीय चन्द्रगुप्त द्वारा जारी किया माना गया है। इस तथ्य कि विक्रम विरुद (दूसरे कई विशेषणों के पूर्व या उत्तर पद के रुप में) अन्य गुप्त राजाओं के सिक्कों पर भी प्राप्त होते है। इस सिक्के को द्वितीय चन्द्रगुप्त से जोड़ना कुछ विद्वानों को तर्क संगत नही लगता[4], किन्तु उन्होने कोई ठोस प्रमाण की चर्चा नही की है। अतः अब तक अल्तेकर द्वारा प्रस्थापित समीकरण का ही अनुकरण किया जाता रहा है।[5]

सिक्के पर बनी देव आकृति किस देवता का प्रतिनिधित्व करती है, यह भी स्पष्ट रुप से नही कहा जा सकता है। इसे विष्णु अथवा उनके आयुध सुदर्शन नामक चक्र से सम्बन्धित किया जाता है। यह तथ्य भी सर्व विदित है कि आयुधों के गुप्त काल से न केवल नाम ही अपितु मानवाकार रुपांकन भी मिलने लगते है।, यथा विष्णु के ही शंख, चक्र, गदा, तथा धनुष तथा खड्ग के नाम क्रमशः पांचजन्य सुदर्शन, कौमुदकी शार्ग तथा नन्दक थे। देवगढ के दशावतार मंदिर की सुप्रसिद्ध शेषशायी प्रतिमा के अधोभाग

Scanned by CamScanner

पर चार आयुधों (खड्ग,शंख,चक्र,गदा) साथ ही अधिकांश तत्कालीन अधोबाहु वाली विष्णु मूर्तियों में दो आयुधों का मानवाकार स्वरुप मिलता है। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि विष्णु की बहुत कम मूर्तियॉ द्विभुजी मिलती है और इनके साहित्यिक उल्लेख भी प्राप्त होते है।[6] एरण से एक ऐसी अनुपम द्विभुजी उभरवर्ती मूर्ति मिली है जो इस सन्दर्भ महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। इस मूर्ति में खड़े रुप में द्विभुज का अंकन दोनों दिशाओं में अर्थात पीठ से पीठ सटाकर आगे पीछे खड़े रुप में किया गया है। देव का उठा हुआ दाया हाथ वरद मुद्रा में तथा बॉया हाथ कटिहस्त मुद्रा में अंकित है। इस मुर्ति के सिर पर किरीट मुकुट तथा पद्माकार प्रभामण्डल उत्कीर्ण है। कुछ विद्वानों ने इसे चक्र पुरुष अर्थात सुदर्शन के रुप में पहचाना था किन्तु डॉ. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने विष्णु के रुप में निरुपित किया है।[7] कुल मिलाकर बात वही अटक जाती है किइस सिक्के पर विष्णु या आयुध सुदर्शन चक्र का अंकन होसकता है। एरण की चर्चित उभयवर्ती मूर्ति ध्वज के रुप में विष्णु मन्दिर के सामने स्थापित ध्वज–स्तम्भ का शीर्षक भाग है, अतः इस में कोई सन्देश नही कि वह सुदर्शन चक्र का प्रतिनिधित्व करती है, स्वयं विष्णु का नही, क्योकि ध्वज स्तम्भ पर प्रत्यक्ष देव या देवी नही, उन के आयुध अथवा उन के वाहन का अंकन करने का विधान मिलता है।

सिक्के पर अंकित दोनों मनावाकृतियों में से एक जिस देवता की हैं उस की पहचान मूर्तिलक्षण शास्त्र की दृष्टि से करना सम्भव प्रतीत होता है। यू तो विभिन्न मूर्ति लक्षण शास्त्रीय ग्रन्थों देवी–देवताओं के लक्षणों का विवरण पाया गया है किन्तु चर्चित सन्दर्भ में वरद तथा गदा लिए हुए द्विभुजी मूर्ति केवल चन्द्र की होने का उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (3 अ 67–68) में नौ ग्रहों के प्रतिमा लक्षणों की चर्चा करते हुए उसे दो हाथों में गदा तथा वर मुद्रा वाला प्रतिपादित किया है। डॉ. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने विष्णुधर्मोत्तर पुराण सहित अग्निपुराण, रुपमण्डन तथा अपराजितपृछा से ज्ञात इन ग्रहों की तुलनात्मक विवेचना दी है।[8] इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि सिक्के पर वरद तथा गदाधारी देव प्रतिमा नवग्रहों में सूर्य के बाद दूसरा स्थान रखने वाले ग्रह चन्द्र की ही है।[9] दूसरी मानवाकृति, जो देव के आगे अपना हाथ बढ़ाते हुए तीन गोलोकार वस्तु प्राप्त करने के साथ ही कमर में झूलती तलवार की मूठ पर रखे राजसी ढ़ग से अंकित किया गया है, निश्चय ही स्वयं राजा का अंकन करता है, जिस ने सिक्का ढलवाया है। स्पष्टतः यह द्वितीय चन्द्रगुप्त राजा का व्यक्तिचित्र है। गुप्त राजाओं के सिक्कों पर व्यक्ति चित्र का अंकन बहुतेरे सिक्कों पर प्राप्त होता है। प्रथम चन्द्रगुप्त, रानी कुमारदेवी, समुद्रगुप्त आदि। पूर्ववर्ती तथा कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त सहित उत्तरवर्ती गुप्त नरेशों के अंकन मिलते है। इसी कड़ी में चॉदी के द्रम्म तथा कुछ ताम्बे के सिक्कों के पुरोभाग पर राजा के सिर के चित्र बनाये जाने का उल्लेख चलते चलते किया जा सकता है। ये व्यक्ति चित्र वास्तविक चेहरे–मोहरे से कितनी एकरुपता रखते थे।, इसकी कल्पना कठिन है।[10] देव मूर्ति के लक्षण चन्द्र ग्रह से मिलना और सिक्का जारी करने वाले राजा का नाम चन्द्र होना संयोगमात्र नही है। मुद्राशास्त्र के अभ्यासक जानते है कि कुछ राजाओं ने अपने नाम के देवों का अंकन अपने सिक्कों पर हेतु पुरस्सर रुप में करवाया था। पांचाल प्रदेश के राजाओं का इस दिशा में सब से बडा योगदान रहा है। इन राजाओं द्वारा जारी सिक्कों पर ज्ञात देवी–देवताओं के अलावा अन्य कई देव–देवियों, ग्रह–नक्षत्रों का मूल्यांकन भी प्राप्त हुआ है जिससे नयी जानकारियॉ जुड़ी हैं। अतः प्रतीत होता है चन्द्रगुप्त ने अपने हमनाम ग्रहदेवता चन्द्र से वरदान प्राप्त करने का प्रसंग अपने इस विशेष सिक्के पर अंकित करवाया होगा। देव दवारा दिये जा रहे और राजा दवारा ग्रहण किये जा रहे तीन वस्तुओं अथवा प्रतीकों का क्या गूढ़ है? अल्तेकर ने तो इन्हें लडडू ही माना किन्तु सी. शिवराममूर्ति ने जो

Scanned by CamScanner

भारत–विद्या के महान अध्येता थे, इनकी पहचान– प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति से प्रस्तावित की जो राजा की प्रमुख अंग होती हैं। अल्तेकर ने भी इस सुझाव का स्वागत किया पर एच.वी. त्रिवेदी ने इसे तीन लोक से अभिन्न माना। आर.जी. चन्द्र ने इन्हें देव मृत्यु और नाग लोक से प्रस्तावित किया।[11]

मूर्तिलक्षण शास्त्र के परम विद्वान डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने देवी प्रतिमाओं पर विशेष अध्ययन किया है। उन्होने हाल ही में सॉची के शिल्प मे रुपायित लक्ष्मी के रुपांकनों की विवेचना की है।[12] इस अध्ययन में साहित्यिक उल्लेखों की छौक सोने में सुहागा योग की छठा को दर्शाता है। उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण (7. 20.3) में आयी चर्चा बतायी है कि राज्याभिषेक से राजा को श्री ऐश्वर्य तथा आधिपत्य प्राप्त होते है, सिरिकालकाण्णि जातक (क्रमांक संख्या 392) में लक्ष्मी के ही श्री और भूरिपन्ना होने के उल्लेख भी मिलते है। अतः चर्चित सिक्के पर अंकित भल–पट्ट और कमल लिए हुए देवी की पहचान श्री (उन के त्रिगुणात्मक रुप सहित) से करते हुए उनके तीन प्रतीक चन्द्र देव द्वारा राजा द्वितीय चन्द्रगुप्त को दिये जानें का अंकन यहॉ अभीष्ट प्रतीत होता है। यहॉ प्रसंग राज्यारोहण अथवा नये राज्य की प्राप्ति का भी हो सकता है।

राजा को ऐसी सुन्दर और प्रसंगोचित संकल्पना सूझना यद्यपि असंभव नही है तथापि संकल्पना सूझना यद्यपि असंभव नही है तथापि कल्पना की जा सकती है कि इसे किसी विद्‌वान साहित्यकार ने सुझाया होगा। चन्द्रगुप्त स्वयं कवि था तथा साहित्य, कला आदि का गुंणग्राहक था। इसी काल में विशाखदत्त आदि साहित्यकार हुए थे। विशाखदत्त ने मौर्य नंद काल की पृष्ठभूमि पर नाटक मुद्राराक्षस की रचना की थी और वह समकालीन कथावस्तु पर आधारित नाटक भी लिखना चाहते हो। सम्भवतः उन के प्रशंसोदगार कि राजा चन्द्रगुप्त को चन्द्रदेव से मिले वरदान (त्रिगुणात्मक श्री) के कारण चक्र के प्रवर्त्तन का सौभाग्य मिलने से प्रसन्न हो राजाओं ने न केवल उक्त प्रसंग को अपने चक्रविक्रम सिक्के पर ही अंकित किया हो, अपितु अपनी जीवन कथा पर आधारित नाटक रचने की आज्ञा भी दी हो, जिसकी परिणिति देवीचन्दगुप्तम के रुप में विशाखदत्त द्‌वारा हुई हो। दुर्भाग्यवश इस नाटक की पूर्ण प्रति प्राप्त नही हुई है, किन्तु अन्य स्त्रोतों के आधार पर इसकी कथा– वस्तु तथा स्वरुप का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। चन्द्रगुप्त के जीवन की इस प्रमुख घटना से उस पर लगे लांक्षन का परिमार्जन विशाखदत्त की इस कृति द्‌वारा बहुत कुछ अंशों में अवश्य हुआ होगा।

इस संकल्पना की पुष्टि में एक आनुशगिक प्रमाण हाल ही में सामने आया है। यह एक नाम मुद्रा के रुप में है। श्री प्रशान्त कुलकर्णि ने सोने की एक सुन्दर अंगूठी प्रकाशित की है। जिस पर विशाखदत्त का नाम उल्टे क्रेम में त्तकालीन ब्राहष्मी लिपि में उकेरा हुआ है। यह अगूठी व्यक्तिगत पत्रादि दस्तावेजों पर अधिकारिक स्वरुप की पुष्टि हेतु लगायी जाती रही होगी, किन्तु स्वर्ण माध्यम और उत्कष्ठ निर्माण पद्धति के आधार पर संकेत होगी। गुप्त काल में विशाखदत्त की मौजूदगी उसकी कृति देवीचन्दगुप्तम समकालीन कथाधारित की रचना, इस नाम मुद्रिका का औचित्य आदि उपरोक्त संकल्पनाओं को आधार देते है।

अन्त में एक अन्य चक्र विक्रम प्रकार के सिक्के की चर्चा अप्रासंगिक न होगी।[13] बहुत समय तक बयाना निधि में मिला सिक्का एकमात्र चक्र विक्रम प्रकार का सिक्का था। एक अन्य प्रकार के सिक्के के मिल जाने से इसका अनुठापन भले ही न रहा हो पर ये दोनो सिक्के विरल तो आज भी है ही। ये दूसरा सिक्का यद्यपि एक अन्य ठप्पे से निर्मित है, तथापि भॉत के प्रकार दोनो पर एक से है। यह दूसरा सिक्का किसी के व्यक्तिगत संग्रह में है।

उपर्युक्त विवेचना से चक्रविक्रम प्रकार सिक्कों के अधोलिखित निष्कर्ष उजागर होते हैं:–

Scanned by CamScanner

Private Collection 0160, 7.56gm

Bayana Hoard Coin 1192, 7.51gm, 19mm.

1. सिक्कों के पुरोभाग पर चन्द्र (ग्रह देव) तथा (द्वितीय) चन्द्रगुप्त राजा का अंकन है।
2. देव द्वारा दिया जा रहा वरदान त्रिगुणात्मक तथा श्री (लक्ष्मी) का स्वरुप है।
3. पृष्ठभाग पर अंकित देवी श्री (लक्ष्मी) है।
4. ये सिक्के चन्द्रगुप्त के राजयारोहण अथवा नये राज्य की प्राप्ति के अवसर पर प्रचलित किये गये होगे।
5. छेवी चप्द्रगुप्तम नाटक के रचयिता विशाखदत्त का राजा के साथ कुछ विशेष सम्बन्ध रहा होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचिः–

1. संजीत कुमारः ट्रेजर्स ऑफ द गुप्त एम्पायर ए कॅटलॉग ऑफ द गुप्ता डायनास्टी, शिवागी ट्रस्ट प्रकाशन सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, 2017, पृ.234–235
2. अनन्त सदाशिव अल्तेकरः कॅटलॉग ऑफ द गुप्त गोल्ड कॉइन्स इन द बयाना होर्ड, भारतीय मुद्रा परिषद, वाराणसी,1954, मुबई
3. संजीव कुमारः पूर्वोक्त, पृ.234
4. उपरोक्त, पृ. 35.36
5. परमेश्वरी लाल गुप्तः द इम्पीरियल, गुप्तास, विश्वविद्यालय, प्रकाशन वाराणसी,1992, पृ. 75–93
6. नी. पु. जोशी, भारतीय मूर्तिशास्त्र, महाराष्ट्र विद्यापीठ ग्रन्थ निर्मिती मंडल, नागपुर, 1979, पृ.57
7. उपरोक्त, पृ. 56–57
8. उपरोक्त,, पृ.48
9. उपरोक्त, पृ. 293–295
10. आई के, शर्मा एवं डॉ. के. प्रसाद राव एवं डॉ. शोभना गोखले आदि ने उक्त सिक्कों का कुछ अध्ययन किया है।
11. परमेश्वरी लाल गुप्तः द इम्पीरियल, गुप्तास, विश्वविद्यालय, प्रकाशन वाराणसी,1992, पृ. 108
12. सॉची शिल्प में लक्ष्मी के अनेक रुप, छत्तीसगढ़ के विशेष सन्दर्भ में मध्यभारत की कला तथा स्थापत्य पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्टी का प्रतिवेदन, संस्कषति तथा पुरातत्व संचानालय, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर, 2013, पृ. 215–216
13. परमेश्वरी लाल गुप्त ने इसे नकली माना है।

Scanned by CamScanner

2 मढ़पिपरिया का शैव मूर्तिशिल्प

नागेश दुबे

सागर नरसिंहपुर राष्ट्रीय मार्ग क्रमांक 26 पर सागर से लगभग 79 कि.मी. दक्षिण में तीतरपानी ग्राम स्थित है। इस ग्राम से 4 कि.मी. लंबा मार्ग मढ़ पिपरिया नामक प्राचीन केन्द्र को जाता है। इस ग्राम में सर्वत्र पूर्व मध्य युगीन प्रतिमाओं और मंदिरों के स्तंभ बिखरे हुए हैं। ग्राम में लगभग मध्य में दीवान साहब के मकान के पीछे एक बड़ा टीला है। इस टीले पर 5 मध्य कालीन मंदिरों के अवशेष देखे जा सकते हैं। दीवान साहब के मकान के सामने एक कच्चे देव मंदिर के अंदर और उसके समीप प्राचीन प्रतिमाएं स्थापित हैं। ग्राम की पश्चिमी दिशा में एक छोटे नाले तथा प्राकृतिक जलस्त्रोत के समीप सिद्धेश्वर मठ निर्मित है। ग्राम की उत्तर पूर्वी दिशा में लगभग आधा कि.मी. दूर मढ़ के नाम से ज्ञात एक नष्ट प्रायः प्राचीन मंदिर स्थित है। उसके समीप पीपल वृक्ष के नीचे खेर माई नामक स्थान में कुछ प्रतिमाएं रखी हैं। ग्राम के पूर्व में लगभग 400 मीटर दूर दो मध्ययुगीन शिवलिंग स्थापित हैं। इस ग्राम में मध्यकालीन एकाधिक मठ निर्मित थे और संभवतः उन दिनों पीपल के वृक्षों का आधिक्य था इसलिए इसे मढ़ पिपरिया की संज्ञा दी गयी।

देव प्रतिमाएं

मढ़ पिपरिया में मध्य कालीन देव प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। ब्राह्मण धर्म के विभिन्न मतों के साथ–साथ जैन धर्म का प्रचार भी वहां हुआ था। वैष्णव, जैन तथा शाक्त प्रतिमाओं के साथ ही जैन तीर्थकारों की प्रतिमाएं भी मध्यकाल में प्रतिष्ठित की गयी थी। सभी जैन मंदिर भूमिसात हो गए हैं। विभिन्न धर्मावलंबियों के मध्य विद्यमान पारस्परिक सद्भाव की परिचायक सम्बन्धित देवताओं की मध्य कालीन प्रतिमाएं मढ़ पिपरिया में निर्मित की गयी थी। उपलब्ध प्रतिमाओं की मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– 1. ब्राह्मण प्रतिमाएं 2. जैन प्रतिमाएं।

ब्राह्मण प्रतिमाओं के अंतर्गत शैव, वैष्णव और शाक्त देवी देवताओं के अतिरिक्त गौण देवताओं की प्रतिमाएं भी हैं।

Scanned by CamScanner

शैव प्रतिमाएं – ब्राह्मण त्रिदेवों में शिव का अत्यंत महत्व है। प्राचीनता के दृष्टिकोण से शिव विष्णु से अधिक प्राचीन हैं शिव की प्राचीनता प्रागैतिहासिक हैं विद्वानों ने उनकी प्राचीनता की खोज सैन्धव सभ्यता से की हैं इन विद्वानों के अनुसार सैन्धव सभ्यता में प्राप्त मुहरों पर अंगधारी मानवाकार बैठे हुए देवता पशुपति शिव हैं जिनके चारों ओर शेर, हाथी आदि पशु बैठे है अगर इस मत को ठीक मान लिया जाए तो शैव धर्म सबसे प्राचीन धर्म माना जायेगा। मढ़ पिपरिया में उपलब्ध शैव प्रतिमाओं का विवरण निम्नांकित है–

अष्टभुजी शिव – झिरना के समीप स्थापित प्रतिमा में चौकी पर ललितासन मुद्रा में आसीन अष्टभुजी देव के लगभग खण्डित दाहने हाथों में क्रमशः दंड, खड्ग, पंचबाण तथा निचले बाएं हाथ में कमन्डल हैं। शेष हाथ खण्डित हैं। देवता के आसान के नीचे माला लिए हुए नृत्यरत भृंगी, दाहिनी और चंवर लिए हुए खड़ी हुई एक एक परिचारिका तथा दोनों ओर अंजनि मुद्रा में बैठे हुए परिचायक दिखाए गए हैं। जटा, मुकुट, कर्णा आभूषण, कंठदार, अंगद, वनमाला, तथा नुपूर से सुशोभित देवता के सिर के पीछे कमलाकर प्रभा मंडल हैं। सबसे ऊपर मालाधारी विद्याधर युगलों के मध्य में रखा हुआ मुकुट दिखाया गया है। **त्रिभुजी शिव की आवक्ष प्रतिमा** – मढ़ के समीप सुरक्षित एक स्तंभ पर द्विभुजी देवता को प्रदर्शित किया गया है। इस आवक्ष प्रतिमा के दाहिने हाथ में अक्ष माला और बाएं हाथ में फल हैं। जटामुकुट, प्रभामंडल, कणाभूषण, कंठहार, अंगद और कंकण से सुशोभित इस देव प्रतिमा में अलंकरण बहुत कम हैं। (11वीं शदी चंदेलकाल)

महेश मूर्ति – मढ़ के समीप उपेक्षित पड़ी महेश प्रतिमा, त्रिमुखी, अष्टभुजी, इस प्रतिमा का धड़ तथा भुजाएं खंडित हैं। जटा मुकुटधारी प्रतिमा के तीन मुख में से मध्य मुख तत्पुरुष महादेव, दाहिना मुख अघोर भैरव तथा बांया मुख उमा वामदेव का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यमुख सौम्य तथा दाहिना मुख रौद्र भाव प्रदर्शन करने वाला है। वनमाला, कर्णकुन्डल, हार, ग्रेवयेक तथा कौस्तुंभ मणि से सुशोभित यह प्रतिमा शिव के सौम्य तथा अघोर रूपों को उनकी शक्ति उमा के साथ प्रदर्शित करने वाली हैं। शिव पुराण के अनुसार महेश मूर्ति सृष्टि से सृजन, सारंक्षण तथा विध्वंस की प्रतीक है। गोपनीय राव के अनुसार सप्रभेदागम में पंचमुखी अथवा दसमुखी महेश मूर्ति का विवरण भी उपलब्ध है।

रावणानुग्रह उमा माहेश्वर – झिरना के समीप रखी यह प्रतिमा मध्य में खंडित हैं। ललितासन् मुद्रा में प्रदर्शित शिव की बांयी जंघा में पार्वती आलिंगन मुद्रा में बैठी हैं। जटा मुकुटधारी चतुर्भजी शिव का एक हाथ उमा के वक्ष पर स्थित हैं, शेष हाथ खंडित हैं। देवी के बाएं हाथ में दर्पण है और उनका दाहिना हाथ शिव के कंधे पर हैं। प्रचलित आभूषणों में मडित देव प्रतिमा के दाहिने पार्श्व में गणेश और वीर भूप तथा बाएं पार्श्व में कार्तिकेय तथा एक खंडित पुरुष आकृति हैं। सबसे नीचे त्रिमुखी रावण तलवार लिए अनुचरों सहित कैलाश उठाते हुए दर्शाया गया हैं। ऊपर मुकुट की रक्षा करते विद्याधर प्रदर्शित हैं। (कलचुरि कला 11वीं शती)।

मुखलिंग – महाभारत, रामायण, पुराणों तथा आगमों में विभिन्न प्रकार के शिवलिंगों का विवरण उपलब्ध हैं। हड़प्पा सभ्यता के केन्द्रों में भी पाषाण शिवलिंग प्राप्त हुए हैं। कुषाण काल से एक मुखी शिव लिंगों का निर्माण आरंभ हो गया था। सिद्धेश्वर मठ के समक्ष स्थापित शिवलिंग में शिव का मस्तक प्रदर्शित किया गया है जटा मुकुटधारी देवता के माथे पर तीसरा नेत्र दिखाया गया है। जटा के मध्य में अर्द्धवन्द्र

Scanned by CamScanner

हैं। यह मुखलिंग सौम्य भाव का प्रदर्शन करता हैं (चंदेल कला 10वीं शती)।

नटराज– नटराज की प्रतिमाएं भारत वर्ष में अनेक प्राप्त हुई हैं। शैवागमों में शिव के नृत्य के 108 प्रकार बतलाए गए हैं। प्रस्तुत पट्ट किसी मंदिर के गर्भगृह के द्वार ललाट में लगा था। यह सब झिरना में लगा दिया गया हैं। इस शिला पट्ट के मध्य में नटराज शिव दांये छोर पर ब्रह्म, और बाएं छोर पर विष्णु की आकृति दृष्टव्य है। चतुर्भुजी नटराज के हाथों में क्रमशः त्रिशूल, डमरू, खट्वांग और गजहस्त हैं। नीचे दाहिनी ओर वांसुरी वादक बैठा है, और बांयी और खड़ा हुआ मृदंग वादक है। देवता के दोनों ओर मालाधारी विद्याधर हैं। पट्टे के दाहिनी किनाने पर ललितासन मुद्रा में बैठे चतुर्भुजी ब्रह्मा के हाथों में क्रमशः अभय, शंख, वेछ और कमण्डल है। पट्ट के बाएं छोर पर पद्मासन पर योग मुद्रा में प्रदर्शित चतुर्भुजी विष्णु के दो हाथ एक के ऊपर एक रखे हैं, पिछले दोनों हाथों में क्रमशः कमल और अस्पष्ट आयुध हैं।

प्रस्तुत प्रतिमा में गति और भावों का अद्भुत सामंजस्य हैं (चंदेल कला 11वीं शती)।

नटराज – एक मंदिर के द्वारा ललाट पट्ट सिद्धेश्वर मठ के समक्ष पड़ा हुआ है। ललाट विम्ब में द्वादशभुजी नटराज की खण्डित प्रतिमा हैं। नटराज के सभी हाथ लगभग खण्डित हैं। द्वारा ललाट की ऊपरी शाखा में देवता के दोनों और सप्तमातृकाएं दिखायी गयी हैं। देवता के दाहिनी ओर क्रमशः कौमारी, महेषी, ब्रह्माणी और वैष्णवी तथा बायी ओर क्रमशः बाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा के साथ गणेश प्रदर्शित हैं। ऊपर से दूसरी द्वार शाखा में नवगृह और उसके नीचे की शाखा में विद्याधारी दिखाए गए हैं। पट्ट के दोनों छोड पर मिथुन युग्म हैं। (चंदेल कला 11वीं शती)।

त्रिदेवपट्ट – ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उपासना हिन्दु धर्म में त्रिदेवों के रूप में की जाती हैं। वे सज्जन, साश्वत और संहार के प्रतीक माने गए हैं। सिद्धेश्वर मठ के समीप रखे हुए एक शिलापट्ट पर त्रिदेवों का मनोहारी अंकन किया गया है। शिलापट्ट के मध्य में उमा महेश्वर को आलिंगन मुद्रा में चौकी पर बैठे हुए दिखाया गया हैं। नृत्यरत भृंगी ऋषि, नंदी और सिंह नीचे प्रदर्शित हैं। उमा–महेश्वर प्रतिमा के दोनों और उमा सहित शिव खड़े हैं। पट्ट के दाहिनी छोर पर गरूड़ासीन लक्ष्मीनारायण और बाएं छोर पर त्रिमुखी ब्रम्हा, और ब्रम्हाणी, इंस पर आरूड दिखाए गए हैं। ब्रम्हा के पैरों के समीप तीन उपासक अंजलि मुद्रा में बैठे प्रदर्शित हैं। यद्यपि यह पट्ट बहुत कुछ भग्न हो गया है, तथापि प्रतिमा विज्ञान की दर्षिट से यह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। (कल्चुरि कला 11वीं शती)

अर्धनारीश्वर – अर्धनारीश्वर की यह प्रतिमा सिद्धेश्वर मठ के सक्षम दीवाल में चुनी गयी है। चतुर्भुजी प्रतिमा का दाहिना अर्धांग शिव का और बायां अर्धांग पार्वती का प्रतिनिधित्व करता है। समभंग मुद्रा में खड़ी इस प्रतिमा के एक दाहने हाथ में त्रिशूल है और दूसरा हाथ अभय मुद्रा में है, नीचे नंदी खड़ा है सिर के दाहने अर्धांग में जटा मुकुट है। प्रतिमा के बाएं अर्धांग में सिर पर जूड़ा, बाएं वक्ष पर स्तन, तथा एक हाथ में दर्पण और दूसरे में कमण्डलु हैं। नीचे एक गण प्रदर्शित हैं। वनमाला तथा अन्य प्रचलित आभूषणों से सुसुज्जित प्रतिमा प्रकृति और पुरुष के सामंजस्य का प्रतीक हैं (चंदेलकाल 10वीं शती)

हरिहर – हरिहर की यह प्रतिमा सिद्धेश्वर मठ के गर्भगृह में स्थापित हैं। समभंग में रखी प्रतिमा के हाथों में क्रमशः वरद, त्रिशूल, कमल और कमण्डलु हैं। जटा मुकुट, कंठहार, वनमाला, उपबीत, धोती, कटिमेखला, भुजबंध, हस्तवलय इत्यादि से सुशोभित प्रतिमा के नीचे दाहिनी ओर नंदी और बांयी उपासक

Scanned by CamScanner

हैं। दाहिना अर्धांश हर (शिव) और बांया अर्धांश हरि (विष्णु) का प्रतिनिधित्व करता है। (चंदल कला)

बहुभुजी गणपति – दीवान साहब के घर के पीछे टीले में बहुभुजी गणेश की एक प्रतिमा आसन मुद्रा में रखी है। महाराज लीला आसन में बैठे देवता की सभी प्रतिमाएं खण्डित हैं। करण्डमुकुट, कंठहार, उपवीक, नाग, उदरबंध, वनमाला और नुपूर से सुशोभित सूपकर्ण देवता की सूड़ खंडित है। नीचे मूलक प्रदर्शित हैं। (चंदेल कला 10वीं शती) मढ़ पिपरिया ग्राम मध्य युग के एक प्रसिद्ध नगर त्रिपुरी से एरण, विदिशा, उज्जयिनी, जाने वाले मार्ग के समीप स्थित था। प्रसिद्ध नगरों के मध्य स्थित होने के कारण शासकों का इस ओर ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। मध्यकाल में सागर जिले के अधिकांश भाग के साथ–साथ यह ग्राम भी चंदेलों के अधीन था। चंदेलों के समय में इस ग्राम की विशेष प्रगति हुई क्योंकि चंदेलों के समय में ही यह ग्राम अपनी कला के विकास की चरम सीमा पर था। चंदेल कला का प्रभाव इस ग्राम की कला पर भी पड़ा। चंदेल शैली में यहां प्रतिमा निर्माण प्रारंभ हो गया। गुप्तकाल के अंत और प्रायः सातवीं सदी तक मूर्तियों की सत्ता और शैली भारतीय थी पर सातवीं शती से उनकी विधा प्रादेशिक हो गयी। मढ़ पिपरिया से प्राप्त प्रतिमाएं इसी विधा की एक कड़ी थी। यहां से अनेक मध्य युगीन शैव प्रतिमाएं प्राप्त हुई। प्राचीन काल में मढ़ पिपरिया में विभिन्न धर्मावलंबियों के साथ साथ निवास करने को प्रमाणित करने वाली अनेक पाषाण प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। ये प्रतिमाएं ग्राम के विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं। इनमें शैव प्रतिमाएं अधिक हैं। विभिन्न धर्मो। की शैव प्रतिमाओं के यहां से प्राप्त होने से ज्ञात होता है कि उस समय के लोगों में शैव धर्म का प्रभाव अधिक था तथा एक दूसरे के धर्म का आदर करते थे। प्राप्त प्रतिमाओं से यहां शैव धर्म की प्रधानता का पता चलता है। शैव प्रतिमाओं का आधिक्य शैव धर्म के प्रचलन को प्रदर्शित करता है। विभिन्न सम्प्रदायों में एकता को प्रदर्शित करने वाली हरिहर तथा अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। कला की दृष्टि से यह क्षेत्र सम्पन्न रहा होगा। यह इस ग्राम से प्राप्त अवशेषों तथा प्रतिमाओं से स्पष्ट होता है। चंदेल तथा कल्चुरि युगीन प्रतिमाएं बड़ी ही उत्कृष्ट है तथा उच्च कोटी की कला का अनुपम नमूना है। प्रतिमाओं को बड़े ही सुन्दर ढंग से तराश कर अलंकृत किया गया है। प्रतिमाएं शास्त्रीय आधार पर बनीं है। इनके माप आदि शास्त्रों में बताए गए विधानों पर आधारित हैं। चंदेलों के साथ साथ इस ग्राम से कल्चुरियों की भी शैव प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जो इस ग्राम पर चंदेलों तथा कल्चुरियों के अधिपत्य को सूचित करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.शर्मा राजकुमार "मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ" भोपाल 1974,

2. स्कन्दपुराण 12/9/23,

3. शतपथ ब्राह्मण 1/3/3

4. अग्निपुराण 42/20, 42/24, 43/6

5.सोमपुरा प्रभाशंकर : भारतीय शिल्पसंहिता,नई दिल्ली,1975

6. सिंह, अरविन्द कुमार : प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 1994.

7.उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, 1992.

Scanned by CamScanner

3 तुम्बवन (तुमैन) की मूर्तिकला

कृष्ण कुमार त्रिपाठी

म.प्र. के गुना जिले में अशोक नगर (वर्तमान जिला मुख्यालय) से लगभग 10 कि.मी. दक्षिण–पूर्व तुमैन ग्राम अक्षांश 24°50′ उत्तर तथा 77°75′ पूर्व में बेतवा की सहायक 'ओर' तथा 'अखैबर' नदियों के तट पर स्थित है।[1] 'ओर' का प्राचीन नाम 'उर्वशी' है और प्राचीन काल में तुमैन क्षेत्र को 'तुम्बवन' कहा जाता है। तुमैन पश्चिमी रेल्वे के बीना–कोटा लाइन पर स्थित अशोक नगर स्टेशन से कच्चे मार्ग पर पड़ता है। विदिशा तथा गुना से पक्की सड़क द्वारा अशोक नगर पहुँचा जा सकता है। वर्तमान तुमैन ग्राम प्राचीन टीलों के ऊपर बसा है, जो अपने अंतराल में इसकी अतीतकालीन सांस्कृतिक गौरव–गाथा संजोए हुए है। ये टीले लगभग 2 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं,

Scanned by CamScanner

म.प्र. के ऐतिहासिक नगरों में 'तुम्बवन' (आधुनिक तुमैन ग्राम) का विशिष्ट स्थान है। विदिशा तथा मथुरा के बीच राजमार्ग पर स्थित होने के कारण यह नगर विशेष प्रसिद्ध हुआ। तुम्बवन से एक मार्ग कौशाम्बी (वत्स जनपद की राजधानी) को जाता था। मौर्य सम्राट् अशोक के समय से यहाँ निर्माण–कार्य प्रारम्भ हुआ और ईस्वी 12 वीं शदी तक विभिन्न रूपों में जारी रहा । गुप्तकाल में तुम्बवन को पूर्वी मालवा का एक राजनीतिक केन्द्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त प्रथम के समय का एक लेख यहाँ से प्राप्त हुआ है, जिससे इसकी पुष्टि होती है। उन समय से लेकर 12वीं शती के अंत तक तुम्बवन में वैदिक–पौराणिक मत का विकास हुआ। यहाँ शिव, विष्णु, देवी आदि के मन्दिरों तथा अनेक मूर्तियों का निर्माण समय–समय पर होता रहा । तुमैन में उपलब्ध बहुसंख्यक कलाकृतियाँ इसकी ज्वलंत प्रमाण हैं। तुमैन का नाम प्राचीन साहित्य तथा उपलब्ध अभिलेखों में मिलता है।[2] जैन अनुश्रुतियों में तुम्बवन को 'वज्रस्वामी' का जन्म स्थान कहा गया है।[3] वज्रस्वामी 18वें युग प्रधान, आचार्य थे। कालक्रम के अनुसार वज्रस्वामी का जन्म महावीर निर्माण सम्बत् 504 अर्थात् विक्रम सम्वत 34 में मध्यप्रदेष के तुम्बवन नामक स्थान में हुआ था, यह स्थान अब तुमैन ग्राम के रूप में प्रसिद्ध है।[4] महाजनपद काल के पश्चात् तुमैन तथा उसके आसपास का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस समय एक बड़े बौद्ध–स्तूप का निर्माण हुआ। मौर्यकाल के बाद सातवाहन–शुंग तथा कुछ समय के लिये शक–कुषाणों का इस क्षेत्र पर पर आधिपत्य था, जिन्हें गुप्त शासकों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने नाग–शासकों को पराजय का मुख देखना पड़ा और विवेच्य क्षेत्र गुप्त साम्राज्य में अन्तर्निहित हो गया। जिसकी पुष्टि गोविन्दगुप्त के अभिलेख से होती है। एरण गुप्त शासकों की छावनी का एक केन्द्र था। कालान्तर में गुर्जर–प्रतीहारों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने पतनोन्मुख गुप्त साम्राज्य के अन्तिम शासकों को झुकना पड़ा और यह क्षेत्र गुर्जर–प्रतीहारों के आधिपत्य में आ गया । गुर्जर–प्रतीहारों के पश्चात् मालवा के परमार शासक वाक्पति मुंज ने इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। उनके पश्चात् यह क्षेत्र परमार शासकों के अधीन रहा।[5]

विगत वर्षों (1972–74)में सागर विश्वविद्यालय द्वारा तुमैन में प्रो. के.डी.वाजपेयी के निर्देशन में उत्खनन कार्य कराया गया। इस स्थल के उत्खनन से शुंग–सातवाहन काल के अतिरिक्त गुप्तकाल तथा परवर्ती कालों के प्रचुर अवशेष मिले हैं। जिससे ज्ञात होता है कि इस काल में तुमैन नगर की प्रभूत उन्नति हुई। तत्पश्चात् ईस्वी छठीं शती से लेकर गुर्जर–प्रतीहार तथा बाद में परमार शासकों के समय में भी इस क्षेत्र को राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

तुमैन उत्खनन का सामान्य दृश्य

वर्तमान तुमैन ग्राम के समीपवर्ती क्षेत्र में तीन बौद्ध–स्तूपों के अवशेष; पठार को काट कर बनाया गया राजमार्ग तथा पत्थर को काट कर बनायी गई गुफ़ा की खोज का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है। एक बड़े बौद्ध–स्तूप के उत्खनन से ज्ञात हुआ है

Scanned by CamScanner

कि इसका निर्माण मौर्यकाल में हुआ। शेष स्तूप मौर्यकाल के पश्चात् निर्मित कराये गये प्रतीत होते हैं। उत्खनन खदान संख्या 6 से शुंग–सातवाहन कालीन भवनावशेष, मृद्भाण्डों के ठीकरे, मण्डल कूप आदि प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार खदान संख्या 5 से भी उपरोक्त अवशेष प्रकाश में लाये गये। इस काल के भवनों में पकी ईटों को कूटकर बनाया गया फर्श, पकी ईटों से निर्मित नाली, मण्डल–कूप तथा एक अण्डाकार वृत्त के अन्दर हड्डियों के अवशेष, राख, चांदी का टुकड़ा आदि मिट्टी के लघु पात्र में रखे मिले है। मुद्रा–साक्ष्य के रूप में तुमैन उत्खनन से प्राप्त तांबे का एक आहत सिक्का महत्त्वपूर्ण है, जिसके ऊपर सातवाहनों के राजवंश का प्रतीक 'हाथी' तथा अन्य चिन्ह उत्कीर्ण हैं। उसके ऊपरी भाग में ब्राह्मी लिपि में 'सिरी सातस' (श्री सातकर्णि) सातवाहन शासक का नाम खुदा है। स्तरीय खोज के अनुसार इस सिक्के को ईस्वी पूर्व प्रथम शती का निरूपित किया गया है। उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर तुमैन तथा आसपास के क्षेत्र में मौर्य शासन के पश्चात् शुंग–सातवाहनों के शासन की पुष्टि होती है। उत्खनन में गुप्तकाल तथा परवर्ती कालों से संबंधित विविध भवनावशेष, कुटी ईटों से निर्मित फर्श ,चूल्हे, मृद्भाण्डों के ठीकरे, जिनमें उत्तरी काले ओपदार मृद्भाण्डों के ठीकरे विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके ऊपरी भाग में सुनहले तथा काले–नीले रंगों के सुन्दर चमकदार पॉलिश का लेप किया गया है। इनके अतिरिक्त विविध कालों से संबंधित मृद्भाण्ड महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें संग्राहक घड़े, लोटे, कटोरे, प्यालियाँ, तस्तरियाँ, हांडी, भोजन पकाने के अन्य पात्र सम्मिलित हैं। गुप्तकालीन पकी मिट्टी की मुहर की उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है। जिसमें गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में 'सिंहस्य' लिखा मिला है। गुप्तकाल में नाली व्यवस्था तथा नक्काशीदार पकी ईटें भवन निर्माण में प्रयुक्त की गयीं, जिसकी नींवें पत्थरों से भरी जाती थीं। नींव को सुदृढ़ बनाने हेतु बज़री, काली–पीली मिट्टी तथा चूने को मिश्रित करने की परम्परा थी। परवर्ती कालों में समग्र भवनों का निर्माण 'धाऊ' (चिनखारी) पत्थरों को काटकर किया गया। उत्खनन से प्राप्त अन्य महत्त्वपूर्ण पुरावशेषों में यक्ष–यक्षी तथा गणेश की लघु पाषाण–प्रतिमाएँ; धातु निर्मित दैनिक उपयोग के घरेलू उपकरण, भोजन पकाने के मिट्टी के विविध मृद्भाण्ड, अर्ध–कीमती पत्थरों के तथा पकी मिट्टी के मनके, सौन्दर्य–प्रसाधन के लिए तांबे की अंजन शलाकायें, पत्थर की कलात्मक मंजुशाएँ, हड्डी के पिन, लोहे के बाण–फलक, पकी–मिट्टी के खिलौने, गोलियॉ, पहिये, मृण्मूर्तियाँ, शंख की चूड़ियाँ आदि के अवशेष उत्खनन में मिले हैं। तुमैन उत्खनन से 589 चांदी के हिन्द–सासानी सिक्के, तांबे के एक टोंटीदार वर्तन में रखे मिले हैं। इन सिक्कों पर विविध प्रकार के प्रतीकों का अंकन हैं। कुल संग्रह में 7 सिक्कों पर चाहमान षासक अजयदेव[6] का नाम मिलता है। जिसका शासनकाल 11वीं शती का माना गया है। अन्य सिक्कों पर राजा की भद्दी आकृति तथा लक्ष्मी का अंकन है। उपरोक्त पुरावशेषों के आधार पर यहॉ के कालक्रम को पाँच सांस्कृतिक उपकालों में विभक्त किया गया है, जो क्रमशः ईस्वी पूर्व 5 वीं शती से लेकर ईस्वी 18 वीं शती तक के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं। उपरोक्त प्राचीन अवशेषों के माध्यम से हमें यहॉ के जनजीवन, सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं राजनीतिक परिस्थितियों की जानकारी मिलती हैं। परंतु विवेच्य अध्ययन तथा ज्ञान तब तक पूरा नहीं कहा जा सकता, जब तक हम यहॉ के कलात्मक वैभव की जानकारी प्राप्त न कर लें। इस क्षेत्र के सांगोपांग सांस्कषतिक अध्ययन के लिए मंदिर–वास्तु तथा मूर्तिकला के अवशेषों का विश्लेषण करना नितांत आवश्यक है।

तुमैन में गुप्तकाल के पश्चात् मध्यकाल में विविध मंदिरों, कलात्मक वास्तुखण्डों तथा बहुसंख्यक

Scanned by CamScanner

वैदिक देवी–देवताओं की कलात्मक प्रतिमाओं का निर्माण कराया गया, जिनके प्रचुर अवशेष यहाँ देखने को मिलते हैं। यहाँ जैन–मंदिरों तथा तीर्थंकरों आदि की प्रतिमाओं का निर्माण बड़े परिमाण में हुआ। मध्यकाल में अथवा इससे पूर्व जिन मंदिरों का निर्माण तुमैन में हुआ, वे आज खण्डहर के रूप में दिखायी देते हैं। मंदिरों के विविध शिल्पावशेष, अलंकृत द्वार–स्तम्भ, मंदिर द्वार–शीर्ष, कलात्मक पाषाण–फलक, आमलक तथा विविध कालों में निर्मित बहुसंख्यक कलाकृतियाँ एक दूसरे के साथ समाहित हैं। ग्रामवासियों के निजी संग्रह, विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर परिसर तथा वर्तमान धार्मिक स्थलों में कलाकृतियों का संग्रह देखने को मिलता है। उपरोक्त कलावशेषों के अवलोकन तथा अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यहां शैव, वैष्णव, शाक्त (देवी–योगिनी) तथा जैन–धर्म से सम्बन्धित मंदिरों तथा प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल, गुर्जर–प्रतीहार तथा परवर्ती शासकों के समय मे विशेष रूप से हुआ। जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की आसनस्थ विशालकाय प्रतिमा आधुनिक तुमैन ग्राम के दक्षिण पूर्व बाह्य भाग

गोर्वधनधारी कृष्ण **प्रतिमा, तुमैन**

विष्णु **प्रतिमा, तुमैन**

में विद्यमान है। कतिपय मंदिर–स्तंभ इस प्रतिमा के समीप पड़े हैं। इस स्थान के समीप में दो स्थानक जैन–तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ तथा भवनों के अवशेष उत्खनन से मिले हैं। इसी उत्खनन खदान के पास से जैन–तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ध्यानमुद्रा में अवस्थित गजाभिशिक्त आसनस्थ प्रतिमा भी मिली है। मूर्तिकला के आधार पर इसका निर्माण काल ईस्वी 650 का माना गया है। तुमैन से प्राप्त सबसे प्राचीन मूर्ति 'बलराम' की है। इसमें हल, मूसल–धारी बलराम स्थानक प्रदर्शित हैं। हल के ऊपर विशिष्ट प्रतीक रूप में लांगूल बना है। बलराम की विवेच्य प्रतिमा की वेशभूषा मथुरा की कुषाणकालीन प्रतिमाओं से साम्य रखती है। तुमैन में अब भी गुप्तकालीन मंदिर का प्रवेश–द्वार सुरक्षित है। इस द्वार की शाखाओं तथा सिरदल पर घट–पल्लव, मिथुन, अष्टमांगलिक चिन्ह आदि अंकित हैं। इस पर बनी हुई कतिपय पुरुष

Scanned by CamScanner

आकृतियाँ शको जैसी हैं।[7] परवर्ती कालों के मंदिर–द्वारों में गंगा–यमुना, कीर्तिमुख, विद्याधर, नागकन्या, लतावल्लरी तथा मंगलघट आदि के रोचक अंकन देखने को मिले हैं।

गुप्तकाल तथा परवर्ती कालों की अनेक पाषाण–कलाकृतियॉं तुमैन से प्राप्त हुई हैं, जो सौन्दर्य तथा मूर्ति–विज्ञान की दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। इतनी अधिक संख्या में विविध प्रतिमाओं की उपलब्धि से इस बात की पुष्टि होती है कि तुमैन, पूर्व मध्यकाल में एक बड़े कला–केन्द्र के रूप में विख्यात था। देश के विभिन्न भागों में बनाये जाने वाले देवालयों के लिए बहुसंख्यक मूर्तियों की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति तत्कालीन कलाकारों के विविध संगठनों द्वारा की गई। मध्यकाल में विविध धर्मों में समन्वय के प्रयास भी किये गये। विष्णु , शिव, सूर्य, देवी आदि के उपासकों की सुविधा के लिये समन्वित स्वरूप वाली कलाकृतियों का निर्माण होने लगा। सभी धर्मों के प्रति उदार भावना तथा मानव–कल्याण का विचार भारतीय मूर्तिकला में सन्निहित रहा है। मध्यप्रदेश में प्रतीहार शैली के मंदिर अनेक स्थानों में विद्यमान हैं। बटेश्वर और अमरोल के मंदिर, महुवा का शिव मंदिर, टेहरी का मंदिर, तेली का मंदिर (ग्वालियर), इंदौर, (इन्द्रपुर, गुना) का शिव मंदिर , नचना का चतुर्मुख महादेव मंदिर, मढ़खेरा (टीकमगढ़) का सूर्य–मंदिर, पठारी (विदिशा) का कूटेश्वर मंदिर , ग्यारसपुर का मालादेवी मंदिर आदि मध्यप्रदेश की वास्तुकला के उत्कृष्ट प्रतीक है।[8] मालवा के परमारवंशी नरेश यद्यपि शैव–धर्म के अनुयायी थे, परंतु उनके शासनकाल में वैष्णव–धर्म का भी अधिक प्रचार था। कन्नौज के गुर्जर नरेशों के काल में भी वैष्णव–धर्म का प्रसार रहा। ग्वालियर दुर्ग के निकट चतुर्भुज मंदिर में चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति है। इसका निर्माण गुर्जर नरेश रामदेव के काल में सन् 875 में हुआ था। ईस्वी 1083 में कच्छपघात नरेश पद्मपाल द्वारा निर्मित पद्मनाथ का मंदिर है, जिसे अब 'सासबहू' का बड़ा मंदिर कहा जाता है। ग्वालियर में ही ईस्वी 9 वीं शती का निर्मित तैलंग मंदिर ,जिसका अपभ्रंश 'तेली का मंदिर' है, वैष्णव देवालय ही हैं। मालवा के परमार नरेशों के काल में भी शैव–धर्म एवं कला की अत्यधिक उन्नति हुई। इनके काल में निर्मित शैव देवालय उदयपुर तथा भोजपुर में विद्यमान हैं।[9]

तुमैन में गुप्तकाल के पष्चात् गुर्जर–प्रतीहार तथा परवर्ती शासकों द्वारा पूर्व निर्धारित प्रतिमा लक्षणों सहित विशिष्ट कलात्मक प्रतिमाओं का निर्माण कराया गया, जिनमें गुप्तकालीन कला की विशेषताओं का अनुकरण बहुलता से किया गया। इस प्रकार की कला का स्वरूप हमें ग्वालियर, तुमैन, बरूआ सागर, मढ़खेरा, तथा कतिपय अन्य स्थलों की कलाकृतियों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। ईस्वी छठी षती से 12वीं शती तक उत्तरी मालवा के विदिशा–ग्वालियर क्षेत्र के अन्तर्गत विविध कला–केन्द्रों, तुमैन, सुहानियॉं, पढ़ावली, इन्द्रपुर, टेहरी, ग्यारसपुर, तथा बड़ोह–पठारी एवं कतिपय अन्य कलाकेन्द्रों में समन्वयात्मक स्वरूप परिलक्षित है। इस काल की शिल्पकला में अप्रतिम सौन्दर्य, शारीरिक सौष्ठव, शिल्प–संरचना तथा विकसित मूर्तिकला के लक्षणों का समावेश दिखायी देता है। तुमैन में उपलब्ध प्रतिमाओं, कलावशेषों का समग्र रूप से विवेचन करना इस लघु लेख में सम्भव नहीं है, तथापि कतिपय महत्त्वपूर्ण एवं कलात्मक प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण देना युक्ति–संगत है। अध्ययन की दृष्टि से यहाँ की कला–राशि को निम्न भागों में विभक्त कर उन पर प्रकाश डालने का यत्किंचित प्रयास किया गया है।

चतुर्मुख शिवलिंग :– लिंगाकार पाषाण–खण्ड के ऊपरी भाग में चतुर्मुख शिव प्रदर्शित हैं, जिसके

Scanned by CamScanner

तीन ओर

नटराज शिव (नटेश) :– नृत्य– मुद्रा में शिव की यह प्रतिमा छह भुजी है। मुख–मुद्रा में सौम्य भाव अंकित है। दायें ऊपर के हाथ में त्रिशूल ,मध्य का हाथ खण्डित है। नीचे के हाथ में डमरू है। बायीं ओर मध्य का हाथ नृत्य–मुद्रा में है तथा शेष हाथ खण्डित हैं। शिरोभाग के ऊपर अलंकृत केश, सज्जायुक्त जटाजूट, कर्णकुण्डल, गले में द्विलड़ी माला, बाजुओं में सर्पाभरण, कटिभाग में मेखला तथा अधोवस्त्र का कलात्मक समन्वय है। देव का दायाँ पैर ऊपर उठा हुआ खण्डित तथा बायाँ पैर नष्त्य मुद्रा में थोड़ा ऊपर उठा है। नीचे दायें भाग में शिव का वाहन नन्दी बैठा प्रदर्शित है। समय, लगभग ई. द्वितीय शती है। उपरोक्त दोनों प्रतिमाएँ राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित हैं।

शिव :– (सं.सं. 72.45 स्थानक शिव की लघु प्रतिमा के शिरोभाग में मुक्ता गुंफित जटाजूट, कर्णकुण्डल, ग्रीवासूत्र, गैवेयक, यज्ञोपवीत, मुण्डमाल आदि दृष्टव्य हैं। मस्तक (ललाट) पर 'त्रिनेत्र' का अंकन है। इस प्रतिमा के हाथ

दण्डधारी शिव :– ऊपर दायें हाथ में त्रिशूल ,निचला अस्पष्ट, बायें दोनों हाथ खण्डित हैं। सिर के ऊपर अलंकृत जटामुकुट, वृत्ताकार सज्जित प्रभामण्डल, उपवीत, मेखला, सर्पाभरण आदि का रोचक समन्वय है। समय, ई. 10वीं शती माना गया है।

सहस्त्रमुख शिवलिंग :– लिंगाकार पाषाण–फलक पर सहस्त्र मुख–लिंग प्रदर्शित हैं। समय, ईस्वी

त्रिमुखी शिव प्रतिमा, तुमैन

शिवगण प्रतिमा, तुमैन

सर्वेतोभद्र शिव प्रतिमा, तुमैन

लगभग 9वीं शती है। इसके अतिरिक्त कई अन्य शिवलिंग तुमैन के विविध स्थलों में संग्रहीत हैं।

गजासुर संहारक शिव :– (सं.सं.72.10) विवेच्य प्रतिमा के सभी हाथ तथा कटि से नीचे का भाग खण्डित है। मुख–मुद्रा से रौद्ररूप की अभिव्यक्ति होती है। शिरोभाग पर मणियों से गुंफित पाँच लड़ियों का जटामुकुट, त्रिनेत्र, चक्राकार तथा पुष्प–पत्र कर्णकुण्डल, उभय स्कन्धों तक लटकती जटायें, ग्रीवासूत्र,

Scanned by CamScanner

ग्रैवेयक, हाथों में सर्पाभरण, कण्ठ से उदर तक लटकती मुण्डमाल, उदर बंध आदि अलंकरणों का सुरुचिपूर्ण अंकन हैं। सामने की ओर गजमुख (असुर) दिखाया गया है। गज कर्ण तथा सूँड़ का कलात्मक प्रदर्षन है। समय, लगभग ई. 10वीं शती है। गजासुर–संहारक शिव की एक अन्य प्रतिमा यहाँ देखने को मिली है। जिसमें शिव को गजासुर का बध करते हुए संहारक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।

लकुलीश की सिरविहीन प्रतिमा :– (सं.सं. 72.25) इस प्रतिमा के हाथ खण्डित हैं। इसे सुविकसित प्रफुल्ल कमल पुष्प के ऊपर उत्कटासन में बैठे हुए दिखाया गया है। दोनों स्कन्धों के मध्य से जटायें नीचे लटकती परिलक्षित हैं। गले में दो लड़ियों की माला है। उभय चरणों के मध्य योग पट्ट तथा ऊर्ध्वाकार लिंग दृष्टव्य है। आसन के नीचे कमल पत्तों तथा पंखुड़ियों का कलात्मक समन्वय है। नीचे दोनों पार्श्वों में उपासक दिखाये गये हैं। समय, लगभग ई. 8 वीं शती है।

उमा–महेश्वर :– ललितासन में बैठे हुए उमा –महेश्वर की प्रतिमा में दोनों देव सुरुचिपूर्ण यथोचित वस्त्राभरणों से सुसज्जित हैं। शिव का दायां पैर वाहन नन्दी की पीठ पर अवस्थित है। दूसरी ओर उमा का वाहन सिंह दृष्टव्य है। नीचे गणेश तथा पूजक है। समय, ई. 10वीं शती लगभग है।

उमा–महेश्वर :– (सं.सं. 72.17) एक अन्य उमा–महेश्वर प्रतिमा का चरण चौकी से नीचे का भाग अवशिष्ट है। चौकी के नीचे बैठे हुए नन्दी (खण्डित) को स्थूलकाय दिखाया गया है। उसके चारों पैर अन्दर की ओर मुड़े हैं। समीप ही गणेश की स्थानक लघु प्रतिमा तथा नंदी के ठीक पीछे मयूर पर आसीन कार्तिकेय दृष्टव्य हैं। इस प्रतिमा में मयूर

नृत्य गणेश :– नृत्य–मुद्रा में लंबोदर गणेष की सिर विहीन प्रतिमा मिली हैं। इसके हाथ खण्डित हैं। गले में चौड़ी पट्टी का ग्रैवेयक,उपवीत, वक्षबंध, मेखला तथा पैरों में नूपुर आदि हैं। समीप ही सिर पर घट रखे एक मानवाकृति आसनस्थ है। समय, लगभग ई. 7 वीं षती है। तुमैन में नृत्य–गणेश की स्थानक मुद्रा में कई अन्य प्रतिमाएँ देखने को मिली हैं। एक प्रतिमा में एकदंत गणेश मोदक पात्र आदि लिये दृष्टव्य हैं। ये प्रतिमाएँ ई. 10–11 वीं शती की प्रतीत होती हैं।

विश्वरूप विष्णु :– (72.8) विष्णु की आवक्ष प्रतिमा (खण्डित) के सिरेभाग के ऊपर बाह्य परिकर के मध्य योगनारायण, दशावतार तथा अन्य विविध देवताओं को वाहनों पर आरूढ़ तथा स्थानक देव प्रतिमाओं का सुरुचिपूर्ण अंकन है। विवेच्य प्रतिमा विष्णु के विराट् स्वरूप को प्रदर्शित करती है। प्रमुख देव के हाथों में चक्र, रक्षा–ढाल आदि आयुध अवशिष्ट हैं। शेष हाथ तथा मुख खण्डित हैं। समय, ई. 8 वीं शती हैं। (संप्रति यह प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय ,नई दिल्ली में है)।

योग–नारायाण :– पुष्पित कमलासन पर ध्यान में मग्न आसनस्थ चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा के ऊपर के दोनों हाथों में अस्पष्ट आयुध, कमल तथा चक्र हैं। नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में तथा बायें हाथ (खण्डित) में अक्षमाल है। कानों में कुण्डल, कण्ठ से घुटनों के मध्य लटकती हुई वनमाला आसन पर अवस्थित है। समय, लगभग 10वीं षती है।

दशावतार :– (आर 409) विष्णु प्रतिमा के ऊपरी परिकर में दशावतार, जिसमें कच्छप, मत्स्य, वराह, नृसिंह आदि का अंकन है। इसी प्रकार एक अन्य पाषाण फलक (विष्णु प्रतिमा के बाहरी परिकर) में मत्स्यावतार, वराह, गवाक्ष–पुरुष, विद्याधर युगल तथा अन्य सुरुचिपूर्ण कलात्मक अंकन है।

नृ–वराह :– (72.55) नृ–वराह की चतुर्भुजी लघु प्रतिमा आलीढ्य मुद्रा में है। दाहिने ऊपर के हाथ

Scanned by CamScanner

दशावतार शिलाफलक, तुमैन

दशावतार शिलाफलक, तुमैन

में गदा, नीचे का भाग कटि भाग पर अवस्थित, बायी ओर के ऊपर का हाथ (खण्डित) में चक्र तथा नीचे का हाथ खण्डित है। समय, ई.11 वीं शती है।

चतुर्भुज विष्णु :– स्थानक विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा की मुख–मुद्रा में सौम्य भाव अंकित है। सिर पर किरीट मुकुट, कर्ण कुण्डल, वनमाला तथा विविध वस्त्रालंकरणों से युक्त दिखाया गया है। ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः गदा तथा चक्र है। नीचे का दाहिना हाथ वरद् मुद्रा में तथा बायें हाथ में शंख अस्पष्ट हैं। नीचे दोनों पार्श्वों में परिचारक तथा परिचारिका दृश्टव्य हैं। विवेच्य प्रतिमा का समग्र अलंकरण प्रभावोत्पादक है। ऊपरी भाग के दोनों पार्श्वों में आसनस्थ दो लघु–प्रतिमाएँ दृष्टव्य हैं। समय, ई.लगभग 10वीं शती है। विष्णु की एक अन्य स्थानक प्रतिमा के शिरोभाग के पीछे अण्डाकार सादा प्रभा–मण्डल है। अन्य अलंकरण उपरोक्त प्रकार का है। समय, लगभग ईस्वी 11वीं शती है।

गरुड़ासीन विष्णु :– विवेच्य प्रतिमा चतुर्भुजी है। ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः शंख तथा चक्र है। नीचे का दायां हाथ वरद् मुद्रा में तथा बायाँ हाथ खण्डित है। नीचे वाहन गरुड़ का मानवाकार अंकन है। विवेच्य प्रतिमा यथोचित वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित है। समय, ई. 10वीं शती है।

बलराम :– तुमैन से प्राप्त बलराम की विवेच्य प्रतिमा विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस स्थल से प्राप्त यह सबसे प्राचीन मूर्ति है। इसमें हल–मूसलधारी बलराम को स्थानक प्रदर्शित किया है। बाह्य पाश्वों में सर्पाकार अंकन है। बलराम की विवेच्य प्रतिमा की वेशभूषा मथुरा की कुषाण कालीन प्रतिमाओं से साम्य रखती है। समय, ई.पू. प्रथम शती है। बलराम की एक अन्य प्रतिमा तुमैन ग्राम के पश्चिम में नदी तट पर एक ऊँचे चबूतरे के मध्य स्थापित है। हल मूसलधारी बलराम की विवेच्य प्रतिमा स्थानक है। निर्माणकला के आधार पर इसे ई. प्रथम शती के लगभग का माना

त्रिदेव :– एक पाषाण फलक पर स्थानक मुद्रा में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को एक साथ दिखाया गया है। नीचे सम्बन्धित देवों के वाहन दृष्टव्य हैं। समय, 11वीं शती ई. है।

Scanned by CamScanner

देवी प्रतिमाएँ

सप्तमातृका :– (आर. 366) एक शिलापट्ट पर सप्तमातृकाओं का सुरुचिपूर्ण अंकन है। सम्बन्धित मातृकाओं के वाहन नीचे दृष्टव्य है। समय ई. चौथी शती लगभग है।

पार्वती :– चतुर्भुजी देवी पार्वती की स्थानक प्रतिमा है। ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः शिव–लिंग तथा गणेश दृष्टव्य हैं। पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। जटा–मुकुट, कर्ण–कुण्डल, त्रिवली, केयूर, कंकण नूपुर आदि आभूषणों का सुरुचिपूर्ण अंकन है। नीचे दोनों पार्श्वों में क्रमशः नन्दी तथा देवी का वाहन सिंह तथा परिचारिकाएँ हैं। देवी के नीचे के दोनों हाथ परिचारिकाओं के ऊपर अवस्थित हैं। समय, लगभग ई. 10वीं शती है। पार्वती की एक अन्य आवक्ष प्रतिमा विशेष महत्त्वपूर्ण एवं कलात्मक है। सिर पर जटायुक्त अलंकृत केश–विन्यास, सौम्य मुख–मुद्रा तथा केश राशि दोनों स्कन्धों के ऊपर लटकी दृष्टव्य है। ग्रीवासूत्र, स्तनसूत्र आदि आभूषण कलात्मक ढंग से दिखलाये गये हैं। देवी के हाथ खण्डित हैं। समय, लगभग ई. 9वीं शती है।

पर्वती प्रतिमा, तुमैन

सप्तमातृकाएँ, तुमैन

माहेश्वरी :– प्रस्तर खण्ड के एक भाग में ललितासन में बैठी हुई, चतुर्भुजी देवी प्रतिमा, जिसमें सिरोभाग के ऊपर ऊर्ध्वाकार जटामुकुट, सौम्य मुख–मुद्रा, कर्ण कुण्डल ग्रैवेयक, स्तनहार, कंकण, केयूर, नुपूर, कटिमेखला, उरुद्दाम आदि का रोचक अंकन है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल–कलिका, नीचे दाये हाथ में बीजपूरक तथा बायें हाथ में घट है। आसन–चौकी के नीचे सिंह मुखाकृति दृष्टव्य है। देवी का दाहिना पैर कमल–पुष्प पर अवस्थित है। फलक के ऊपरी भाग में एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण है। समय, ईस्वी 10वीं–11वीं शती लगभग है।

कौमारी :– कार्तिकेय की शक्ति कौमारी की एक द्विभुजी प्रतिमा उल्लेखनीय है। देवी के शिरोभाग के पीछे सादा प्रभामण्डल है। घिसावट के कारण मुखमुद्रा अस्पष्ट, अपितु सौम्यभाव परिलक्षित है। सिर पर जटा–मुकुट, गोलाकार बड़े कर्ण कुण्डल, एकावली तथा उन्नत उरोजों का प्रदर्शन हैं। दाहिने हाथ में अस्पष्ट आयुध तथा बायाँ हाथ पैर के घुटने पर अवस्थित है, जिससे वाहन मयूर के मुख को पकड़े हैं। पैरों में नूपुर तथा कड़े अंकित हैं। देवी के वाहन मयूर का स्पष्ट अंकन है। समय ई. छठी शती है।

Scanned by CamScanner

गंगा–यमुना :– मंदिर द्वारा–स्तम्भों पर अंकित सरिता देवी गंगा तथा यमुना की अनेक प्रतिमाएँ हाथों में मंगलघट लिये सम्बन्धित वाहनों, मकर तथा कच्छप पर आरूढ़ दिखाई गई हैं। इनके साथ छत्रवाहिका का कलात्मक अंकन देखने को मिलता है। इस क्षेत्र में गंगा–युमना की द्विभंग–मुद्रा में कई अन्य प्रतिमाएँ देखने को मिली हैं, जो गुप्तकाल तथा परवर्ती कालों से सम्बन्धित हैं।

योगिनी :– योगिनियों की दो प्रतिमाओं के अधोभाग मिले हैं। एक प्रतिमा के बायें हाथ में कटार है तथा नीचे दाहिनी ओर वाहन (पशु) दृष्टव्य है। समय, ई. 11वीं शती लगभग है।

चामुण्डा :– (कंकाली) हाथों में कटार, प्रज्ज्वलित अग्निपात्र, कटा हुआ नरमुण्ड आदि लिये चामुण्डा देवी की प्रतिमा महत्त्वपूर्ण है। उनकी मुखमुद्रा से भयावह (क्रूर) स्वरूप का बोध होता है। सिर के ऊपर केश–सज्जा के साथ नरमुण्ड गुम्फित है। शिरोभाग के पीछे कमल पंखुड़ियों से आवृत्त अलंकृत प्रभामण्डल है। कण्ठ से घुटनों तक लटकती हुई नरमुण्डों की माला तथा दोनों पैर नृत्यमुद्रा में ऊपर उठे हुए हैं। शारीरिक संरचना को अस्थिपंजर आरेखन द्वारा उकेर कर अंकित किया गया है। समय, लगभग ई. 11वीं शती है।

महिषासुर मर्दिनी :– (72,24) विवेच्य प्रतिमा का अधोभाग अवशिष्ट है। देवी का दाहिना पैर महिष (राक्षस) की पीठ पर अवस्थित है तथा बायां पैर नीचे चौकी पर समभंग स्थित है। महिष के पीछे के भाग में देवी का वाहन सिंह मुख से प्रहार करते हुए दिखाया गया है। कटा हुआ महिष का सिर नीचे मध्य भाग में पड़ा है। महिष की पीठ पर देवी त्रिशूल से प्रहार कर रही हैं।देवी का अवशिष्ट अधोभाग अलंकृत है। महिष का अगला पैर (बांया) देवी के बायें पैर से दबा है। महिषासुर वध कथानक को कला के माध यम से रूपायित करने का यह सफल प्रयास है।समय, ई.10वीं षती लगभग है।

इन्द्र–इन्द्राणी :– स्थानक मुद्रा में द्विभंग इन्द्र तथा इन्द्राणी को विविध वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित दिखाया गया है। नीचे दायें भाग में वाहन हाथी (गज) का अंकन है। समय ई. 10वीं शती है।

मयूरासीन कौमारी

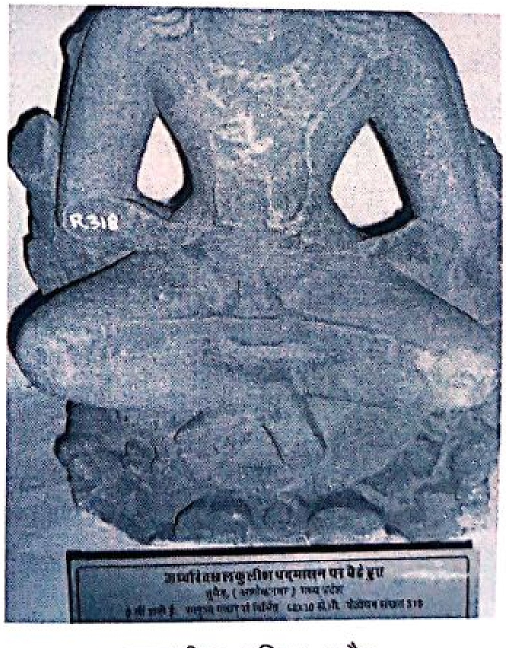

लकुलीश प्रतिमा तुमैन

Scanned by CamScanner

बुद्ध प्रतिमा,तुमैन

बुद्ध प्रतिमा,तुमैन

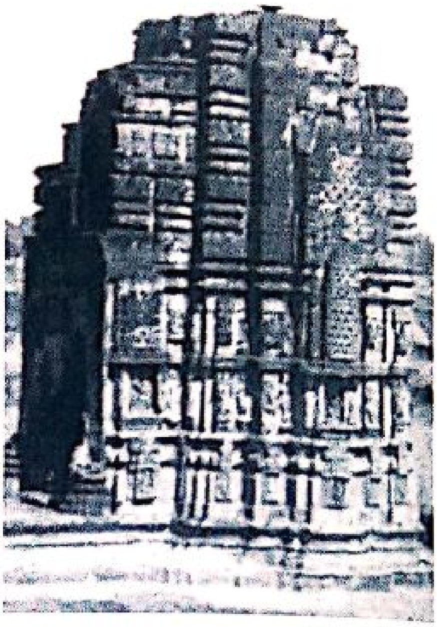

प्रतिहारकालीन मंदिर तुमैन

सूर्य :– दोनों हाथों में कमल पुष्प लिये हुये सूर्य की स्थानक प्रतिमा है। शिरोभाग के पीछे सादा (खण्डित) प्रभामण्डल है। गले से नीचे तक लटकती पुष्प–माला तथा अन्य अलंकरण कलात्मक है, समय, ईस्वी 11 वीं शती लगभग है।

सर्वतोभद्र :– एक पाषाण फलक पर तीन ओर देव–प्रतिमाएँ तथा चौथी ओर देवी–प्रतिमा है, जो स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। समय, ई. 8वीं शती का आरम्भ है।

नाग–प्रतिमा :– स्थानक द्विभुजी नाग प्रतिमा के शिरोभाग के ऊपर पंचफणयुक्त सर्प छत्र है। विवेच्य प्रतिमा को मुकुट, कुण्डल, एकावली, केयूर, हस्तवलय आदि आभूशणों से सुसज्जित दिखाया गया है। मुखमुद्रा में सौम्य भाव परिलक्षित है। उसके दाहिने हाथ में प्याला है, जो वक्ष के ऊपर अवस्थित है तथा बायाँ हाथ खण्डित है। दोनों बाह्य पार्श्वों में सर्पाकार अंकन है। समय ई. 10वीं शती है

नाग–नागी :– (72.18) एक पाषाण फलक पर स्थानक मुद्रा में नाग–नागी युगल का रोचक अंकन है। दोनों यथोचित वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित दिखाये गये हैं। नागराज का दाहिना हाथ खण्डित तथा बायें हाथ में सुरापात्र है। नागी का दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ है जिसमें सनाल कमल है तथा बायें हाथ से उत्तरीय संभाले हैं। समय, लगभग ई. 10वीं शती है।

Scanned by CamScanner

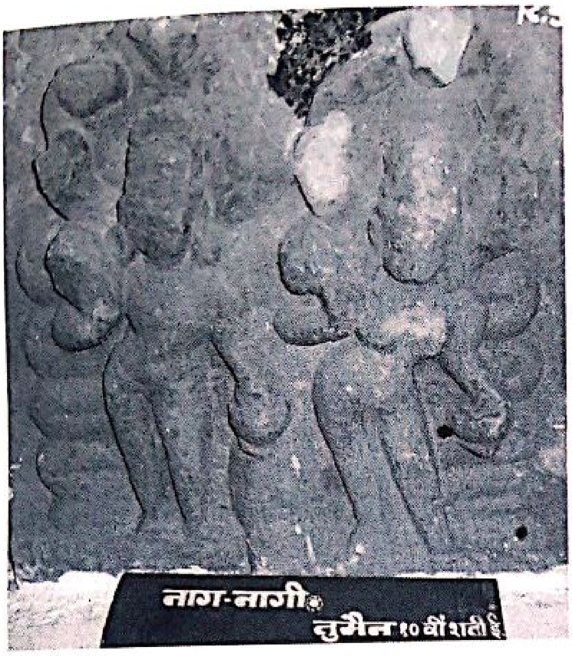

नाग–नागी प्रतिमा तुमैन

नग–नागी प्रतिमा तुमैननाग–नागी प्रतिमा तुमैन

कुबेर :– अलंकृत सज्जा–पट्टिका के मध्य भाग में प्रफुल्ल कमल पुष्प के ऊपर ललितासन में आसीन धन देवता कुबेर की विवेच्य प्रतिमा कलात्मक है। उनकी मुखमुद्रा में शांत भाव अंकित है। अलंकृत केशविन्यास, कर्ण–कुण्डल, गले में एकावली है। उनके दाहिने हाथ में प्याला तथा बायें हाथ में धन की थैली है। सज्जा–पट्टिका के बाह्य मध्य भाग में सुविकसित कमल पुष्पों का अंकन है। समय, ई. छठीं शती लगभग है। उपरोक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त तुमैन ग्राम में रेवन्त, सकटोद्धार दृश्य, द्वादशादित्य, दिक्पाल, नवग्रह, नागी, मातृका, मिथुन–युगल, विद्याधर, सुरसुन्दरियाँ, परिचारिकायें, शैवोपासक, आचार्य, भारवाहक, गजशार्दूल तथा अन्य देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ एवं कलावशेष संग्रहीत हैं, जो मूर्तिकला की दृष्टि से अनुपम कृतियाँ कही जा सकती है। वैदिक देवी–देवताओं की विविध प्रतिमाओं के अतिरिक्त तुमैन में वास्तु–कलावशेषों का बाहुल्य है, जिससे इस कथन की पुष्टि होती है कि यहाँ विविध कालों में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। इन कलावशेषों में कतिपय महत्त्वपूर्ण हैं, जो निम्न प्रकार है –

1. मंदिर में प्रयुक्त गवाक्ष, जिसके मध्य भाग में गवाक्ष पुरुष (मैडालियन), पुष्प–पत्तियों का अलंकरण तथा क्रास बने हैं।
2. एक कलात्मक स्तम्भ के मध्य भाग में पद्मासन में आसीन लक्ष्मी का अंकन है। विवेच्य प्रतिमा का अभिषेक करते हुए, घट लिये दो गजों का अंकन है। इसी फलक में पूजक–युगल, नृत्यांगनायें, वादकगण, नागकन्या, कीर्तिमुख आदि का कलात्मक समन्वय है।
3. मंगलघट, कीर्तिमुख, लतावल्लरी, शिखर आदि के अंकनों सहित कलात्मक स्तम्भों के विविध अवशेष हैं।
4. पाषाण–सज्जा पट्टिका, जिसके मध्य भाग में दो मयूरों का अंकन है। एक मयूर को मुख से मुक्ता विसर्जित करते हुये तथा दूसरे को चुगते हुए अधोमुख दिखाया गया है। दोनों बाह्य पार्श्वों में

Scanned by CamScanner

चैत्याकार अंकन है।

5. मंदिर द्वार–स्तम्भ का नीचे का भाग, जिसमें आकर्षक भाव–भंगिमाओं सहित द्विभंग मुद्रा में गंगा की प्रतिमा है, जिसके दायें पार्श्व में परिचारिका दृष्टव्य है। नीचे वाहन 'मकर', कल्पवल्ली, नागकन्या आदि विविध दृश्यों का कलात्मक अंकन है। इसी प्रकार अन्य पाषाण फलकों पर यमुना का समान अंकन है। उन्हें कच्छप पर आरूढ़ दिखाया गया है। फलक के ऊपरी भाग में मंगलघट, कल्पवल्ली, कीर्तिमुख, नागकन्या आदि का अंकन है। कतिपय अन्य द्वार–स्तम्भों पर मिथुन युगल, मंगलघट, पुष्प–पत्रावली, कीर्तिमुख तथा मयूर पंख के समान लतावल्लरी का अंकन देखने को मिलता है। इस प्रकार के कलात्मक वास्तु–खण्डों का उपयोग मंदिर–सज्जा में किया गया है। ये सभी अवशेष गुप्तकाल से लेकर ई. 12वीं शती तक के हैं।

जैन तीर्थंकर प्रतिमाएँ :–

तुमैन ग्राम के आसपास के क्षेत्र से जैन तीर्थंकरों की कई कलात्मक प्रतिमाएँ आसनस्थ, स्थानक तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में देखने को मिली हैं। कतिपय तीर्थंकर प्रतिमाओं का विवरण इस प्रकार है।

पार्श्वनाथ : पद्मासन में बैठे हुये ध्यानस्थ जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के सिर पर कुंचित केश हैं। सिरोभाग के पीछे सप्तफणयुक्त छत्र दृष्टव्य है। सौम्यमुख मुद्रा, लम्बवत् कर्ण तथा वक्षः स्थल के मध्य में 'श्रीवत्स' का अंकन है। मध्य भाग के दोनों पार्श्वो में सनाल कमल–पुष्प सूंढ़ से दबाये गजों का अंकन है। देव के उभय–चरणों के मध्य में 'पद्म' उत्कीर्ण है। ऊपरी भाग के दायें ओर का गज खण्डित तथा बायें भाग में गज का स्पष्ट अंकन है। विवेच्य प्रतिमा का शारीरिक सौष्ठव तथा समग्र कलात्मक अंकन प्रभावोत्पादक है। चरण चौकी के मध्य भाग में 'चक्र' प्रदर्शित है। नीचे दोनों पाश्वों में सिंह आकृतियाँ हैं। समय, ई. 650 लगभग है।

जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ : पार्श्वनाथ प्रतिमा का ऊपरी भाग अवशिष्ट है। सिरोभाग के ऊपर दस पंक्तियों वाला मणिवृत्त युक्त कुंचित केश, लंबवत्कर्ण तथा सिर के ऊपर सर्प छत्र है। छत्र के ऊपर दुंदुभिक का अंकन है। दोनों पार्श्वो में हाथों में माला लिये विद्याधर युगल, अन्य कलात्मक अलंकरण तथा गजों का अंकन है। मध्य भाग के दोनों पाश्वों में परिचारिकाओं सहित ध्यानस्थ अन्य तीर्थंकर दृष्टव्य हैं।

जैन तीर्थंकर : कायोत्सर्ग मुद्रा, 6 पक्तियों से गुंफित केश, सौम्य मुख–मुद्रा, लंबवत्कर्ण पीछे अण्डाकार सादा प्रभामण्डल, ऊपर त्रिछत्र, दुंदुभिक, गजाभिषेक, विद्याधर युगल, श्रीवत्स चिन्ह हैं। प्रतिमा के दोनों हाथ खण्डित हैं। दोनों पार्श्वों में स्थानक एवं ध्यानस्थ अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ, बाह्य परिकर में दृष्टव्य हैं, जिसे 'चौबीसी जैन तीर्थंकर पट्ट' कहा गया है। मध्य के दोनों पार्श्वो में सौधर्मेन्द्र तथा धरणीं

Scanned by CamScanner

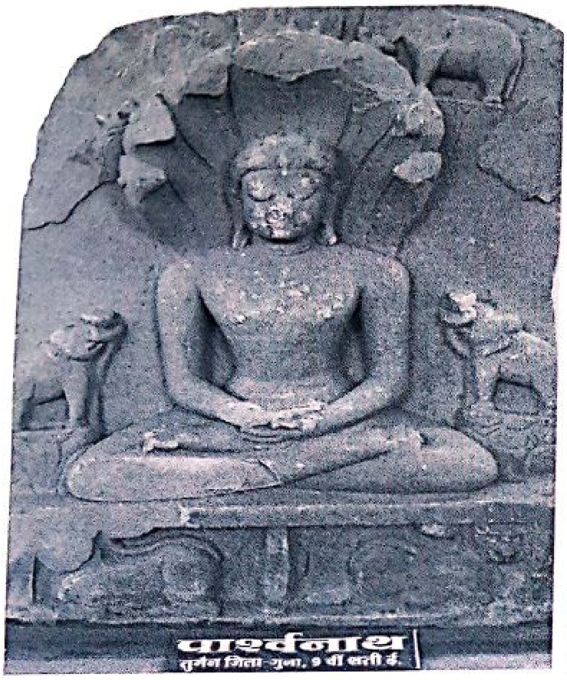

पार्श्वनाथ प्रतिमा, तुमैन

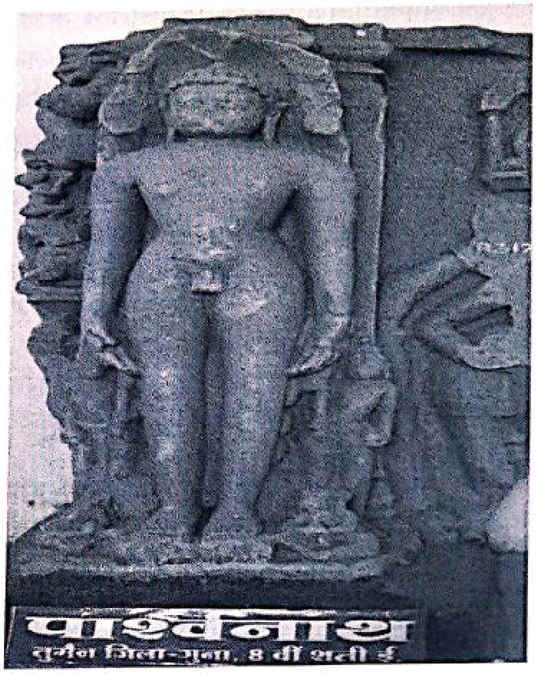

पार्श्वनाथ प्रतिमा, तुमैन

र परिचारक रूप में चंवरी लिये हुए स्थानक दृष्टव्य हैं। मुख्य प्रतिमा का उभय चरणों से नीचे का भाग खण्डित हैं। समय ई. 10वीं षती लगभग है।

जैन–तीर्थकर की आसन पीठिका : (72:81) जिसके मध्य में चक्र तथा दोनों पार्श्वो में बैठे हुये हरिण। उभय बाह्य पार्श्वों में एक–एक सिंह आकृतियाँ हैं। आसन चौकी के ऊपर तथा नीचे का भाग कमल पंखुड़ियों तथा लताबल्लरी से अंकित है। समय, ई. 12वीं शती है।

जैन–तीर्थकर महावीर : महावीर स्वामी जैन–धर्म के 24वें तीर्थकर हैं। महावीर की एक आसनस्थ प्रतिमा तुमैन में देखने को मिली है, जो विषालकाय है। प्रतिमा के शिरोभाग के ऊपर कुंचित केश, लम्बवत् कर्ण, श्रीवत्स चिन्ह आदि का अंकन है। चरण चौकी से नीचे का भाग खडित है। 'बैठादेव' स्थानीय नाम से अभिहित विवेच्य प्रतिमा के आसपास जैन मन्दिर के अवशेष पड़े हैं। समय, ई.10वीं शती लगभग है।

उपरोक्त समग्र विवरण से ज्ञात होता है कि तुमैन नगर तथा उसके समीपवर्ती विविध स्थलों के प्राचीन स्मारकों, मंदिरों, शिल्पावशेषों तथा संग्रहीत विविध कलाकृतियों की कलागत विशेषताओं, लक्षणों सहित सांगोपांग अध्ययन तथा विवेचन नितान्त आवश्यक है। तुमैन ग्राम के विविध स्थलों में गुप्तकाल तथा परवर्ती कालों से सम्बन्धित शैव, वैष्णव, शाक्त तथा जैन–धर्मों से सम्बन्धित पाषाण कलाकृतियों तथा मंदिर अवशेषों का प्रचुर संग्रह है, जिन पर तत्कालीन कलाकारों ने प्राकृत तथा मानव जगत की सौन्दर्य राषि का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है। कतिपय पाषाण–स्तम्भों पर लता–पुश्प तथा श्रृंगार एवं सौन्दर्य का सजीव कलात्मक अंकन मिलता है। उपरोक्त कलावशेष धार्मिक इतिहास के साथ–साथ क्षेत्रीय लाक्षणिक विशेषताओं तथा ललित कला के बहुविध अंकनों सहित धार्मिक तथा लौकिक तत्त्वों से अभिभूत है।

Scanned by CamScanner

जिनका समन्वयात्मक विकास मध्यकालीन कला के उन्नयन में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के शिल्प–विधान में गुप्त, प्रतिहार तथा परवर्ती कला–शैलियों का सुविकसित स्वरूप देखने को मिलता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विवेच्य क्षेत्र अपने वैभवकाल में निःसन्देह सांस्कृतिक परम्परा एवं राजनीतिक गतिविधियों का उल्लेखनीय केन्द्र रहा है।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, हरिहर निवास (सम्पादक) : ग्वालियर–दर्शन, ग्वालियर
2. वाजपेयी, कृष्णदत्त :ऐतिहासिक नगर तुमैन (1972–74), प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय ,पृ. 1–4
3. वाजपेयी, कृष्णदत्त : म.प्र. का प्राचीन नगर तुमैन, म.प्र. संदेश, 15 जून, 1974 ,पृ 11–14
4. नाहटा, अगरचन्द : म.प्र. के महान जैनाचार्य वज्रस्वामी, म.प्र संदेश 1 एवं 8 फरवरी, 1975,पृ. 11–12
5. पाण्डेय, एस.के. : द परमार आर्ट एण्ड तुमैन, आर्ट ऑफ परमाराज आफ़ मालवा (सम्पादक : प्रो. आर.के. शर्मा) आगम प्रकाशन, दिल्ली, 1978
6. द्विवेदी, हरिहर निवास (सम्पादक) : ग्वालियर–दर्शन, ग्वालियर
7. सुल्लेरे, सुशील कुमारः मध्यप्रदेश के प्रतिहार कालीन मन्दिर, म.प्र. संदेश, 7 एवं 14 सितम्बर, 1974, पृष्ठ 11 से 13
8. नामदेव, शिवकुमार : मध्यप्रदेश में धार्मिक आन्दोलनों का इतिहास, म.प्र. संदेश, 10 मई, 1975, पृ. 10 से 13
9. द्विवेदी, हरिहर निवास (प्रधान सम्पादक): ग्वालियर दर्शन, जीवाजी वि.वि. ग्वालियर, (शोध–संस्थान), 1980

Scanned by CamScanner

4 महानदी बेसिन की जनजातियों का सांगीतिक एवं कलात्मक अनुशीलन

काशीनाथ तिवारी

प्राचीन कालीन कला संस्कृति का प्रभाव आज भी हमें छत्तीसगढ की जनजातियों में स्पष्ट देखने को मिलता है। महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों का सांगीतिक एवं कलात्मक वैशिष्ट्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि जनजातीय–संस्कृति में प्राचीन कला एवं संगीत का स्वरुप आज के दौर में भी संरक्षित है,। भारतीय आख्यानों में, शिव को ब्रह्माण्ड का प्रथम नर्तक माना जाता है। जनजातीय संस्कृति में, शिवपार्वती अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य आदिम देवता पूजित है, जिस नर्तक, सृष्टि सर्जक एवं पालक के रूप में माना जाता है, चाहे गोंड़ों का बड़ादेव हो या बैगाओं का नांगा बैगा एवं नांगी बैगिन हों।[1] जनजातियों मं शिव जैसे देवता को नृत्य के देवता के रूप में आदिम युग से प्रतिष्ठा प्राप्त है। जनजातियों के प्रमुख देवताओं का वास, वृक्षों में होता है। जनजातीय–सामूहिक नृत्य, आज भी वृक्षों के आस–पास आयोजित होता है। जनजातीय–लोक संगीत एवं लोक कला जुड़ाव, मुख्यतया उनके पर्व–त्योंहारों एवं अनुष्ठानों से है। महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों के सांगीतिक एवं कलात्मक वैशिष्ट्य के माध्यम से, उनकी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की उत्कष्टता परिलक्षित होती है।[2]

लोक संगीत (नृत्य, गीत एवं वाद्य) के अन्तर्गत, महानदी बेसिन की लगभग सभी जनजातियाँ, वर्ष के प्रारम्भ से लेकर लम्बे समय–फसल कट जाने तक, करमा नृत्य करती हैं एवं करमा गीत गाती हैं। यद्यपित कि यह नष्त्य एवं गीत, गोंड़ जनजातियों का जातीय–लोक नृत्य एवं गीत है। सैला नृत्य एवं गीत, जिसे टुण्टा अथवा डण्डा नृत्य एवं गीत भी कहा जाता है, कार्तिक मास से लेकर फाल्गुन मास तक, गोंड़, उराँव, बिंझवार, भारिया, धनवार, खैरवार, अगरिया इत्यादि जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। यह लोक संगीत प्राचीन काल से पीढी दर पीढी गतिमान दिखाई देता है।[3]

रीना (रींझा) नृत्य एवं गीत में, मात्र महिलाएँ भाग लेती हैं। यह नृत्य एवं गीत, गोंड़, बैगा, भैना एवं धनवार जनजातियों द्वारा किया एवं गया जाता है। यह वीरों को उत्साहित करने वाला प्रेकर नृत्य एवं गीत, शीत ऋतु मे सैला नृत्य एवं गीत के समानान्तर चलता रहता है। इससे जनजातियों में एक–दूसरे का उत्साह वर्द्धन करने की भावना का पता चलता है, आक्रामक समस्याओं से जनजातीय पुरुषों को जूझने हेतु प्रोत्साहित करने की जनजातीय महिलाओं की प्रवृत्ति का पता चलता है। यह गीत प्राचीन काल से परम्परागत जला आ रहा है।यह लोक संगीत प्राचीन काल से पीढी दर पीढी गतिमान दिखाई देता है।[4]

Scanned by CamScanner

भड़ौनी (भड़म) नृत्य एवं गीत वैवाहिक अवसर पर, जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। इसमें पुरुष वर्ग भी इनका साथ देता है। यह गारी से जुड़ा हुआ नृत्य एवं गीत है। इस नष्त्य एवं गीत का चलन, गोंड़, बैगा, भैना, भारिया, धरवार, अगरिया एवं भुंजिया इत्यादि जनजातियों में है। जनजातियों के वैवाहिक अवसर पर, वर–पक्ष के घर से प्रारम्भ होकर वधू–पक्ष के घर तक पहुँचकर आयोजित होने वाले इस नृत्य एवं गीत के माध्यम से, ज्ञात होता है कि जनजातियों में वैवाहिक संस्कार के समय, उनके सगे–सम्बन्धियों के मध्य मीठे शब्दों के हँसी–मजाक करने एवं गाली देने इत्यादि का भी चलन है।[5]

विदरी पूजा (पूजा अथवा साल वृक्ष पूजा) नृत्य एवं गीत, एक अनुष्ठानिक नष्त्य एवं गीत है। यह मुख्यतया गोंड़, उराँव, हलबा, भैना, धनवार एवं भुंजिया इत्यादि जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। यह नृत्य एवं गीत, धार्मिमक भावना से ओत–प्रोत है। सुवा (तोता) नृत्य एवं गीत, महिलाओं का नृत्य एवं गीत है। यह जनजातियों की धार्मिक–सामाजिक भावनाओं एवं विश्वासों पर आधारित है। यह गोंड़, कँवर, हलबा, बिंझवार, बैगा, भारिया, धनवार, मँझवार, कमार, अगरिया एवं भुंजिया इत्यादि जनजातियों द्वारा दीपावली के अवसर पर किया एवं गाया जाता है। इसका चलन मात्र महानदी बेसिन की जनजातियों में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ की अन्य जातियों में भी है।[6]

बार नृत्य, कँवर जनजाति का एक पारंपरिक नृत्य है। यह प्रति तीसरे वर्ष, लगातार 12 दिनों अथवा 288 घंटे तक चलता रहता है। इसमें अंतिम दिन, बाँस से बनाई गयी गाड़ी में शराब पिलाये गये बैलों को फाँदा जाता है और गाड़ी में बैगा को बैठाकर गाड़ी दौड़ाई जाती है। इस प्रथा से जनजाति–कँवर की संस्कृति में, पशु को भी शराब पिलाये जाने के चलन की जानकारी प्राप्त होती है।

छेर–छेरा (छेरता) नृत्य एवं गीत, कँवर, हलबा, धनवार, कोरवा इत्यादि जनजातियों के बच्चों का नृत्य एवं गीत है। इसमें एकता, बन्धुत्व, औदार्य, त्याग तथा समाजवादी भावना का सन्निवेश है। इससे जनजातीय–सांस्कृतिक एकता परिलक्षित होती है। इस तथ्य एवं गीत के साथ, बच्चे पौष माह की पूर्णिमा के लिए घर–घर जाते हैं और अनाज माँगत हैं। इस खुशी में, बड़–बूढ़े सभी सम्मिलित होते हैं।यह लोक संगीत प्राचीन काल से पीढी दर पीढी गतिमान दिखाई देता है।[7]

सोहराई पर्व (माघे–परब) नृत्य एवं गीत कँवर, मुण्डा, सौंता एवं विरहोर जनजातियों द्वारा शीतकालीन फसल–धान की कटाई के पश्चात् किया एवं गाया जाता है। खाद्यान्न की उपलब्धता पर प्रफुल्लित, जनजातीय मन–मयूर, आह्लादित होकर नाच उठता है। यह जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का परिचायक है। सरहुल (बरु/वाहा/वापरोन/जादुर) नृत्य एवं गीत, उराँव, खरिया, नगेसिया, खैरवार, सौंता, विरहोर इत्यादि जनजातियों द्वारा बसन्तु ऋतु (साल/सरहुल वक्ष में पुष्प प्रस्फुटित होने पर) में किया एवं गाया जाता है। यह महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत है।[8]

जातरा (जत्रा/धनकुल/जगार) नृत्य एवं गीत, उराँव, हलबा, कमार, खोंड एवं मुण्डा इत्यादि जनजातियों , वर्षा प्रारम्भ होने के पूर्व तथा वर्षा समाप्त होने के पश्चात् किया और गाया जाता है। महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियाँ, इस नृत्य एवं गीत के माध्यम से देवी–देवताओं को प्रसन्न करती हैं, ताकि उनका जीवन सुख–समृद्धि से पूर्ण हो सके। इससे महानदी बेसिन की जनजातियों में, देवी–देवताओं के प्रति अपार श्रद्धा एवं विश्वास की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा का परिचय प्राप्त होता है।[9]

फाग (होली/फागु) नृत्य एवं गीत, महानदी बेसिन की उराँव, हलबा, खरिया कोरवा, नगेसिया,

Scanned by CamScanner

मँझवार, खैरवार, अगरिया, मुण्डा, भुंजिया, सौंता तथा विरहोर इत्यादि जनजातियों द्वारा फाल्गुन मास में किया एवं गाया जाता है। यह नृत्य एवं गीत महानदी बेसिन का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष का लोकप्रिय नृत्य एवं गीत है। इसके माध्यम से परस्पर मेल–जोल बढ़ता है, पारस्परिक कटुता दूर होती है। यह जनजातीय–सांस्कृतिक परम्परा का एक अभिन्न अंग है। गौरा पूजा नृत्य एवं गीत, महानदी बेसिन की गोंड़, कँवर, हलबा, बिंझवार, धनवार, कोरवा, नगेसिया एवं भुंजिया जनजाति की महिलाओं द्वारा दीपावली के अवसर पर किया और गाया जाता है। इसके माध्यम से ईसर (महादेव) को प्रसन्न किया जाता है।[10]

दषहरा (दशराहा/दसई) नृत्य एवं गीत, मुख्यतया बैगा, भैना, खेंड एवं सौंता जनजातियों द्वारा क्वार माह की पंचमी से दीपावी तक किया एवं गाया जाता है। एक गाँव का पुरुष नृत्य–दल, दूसरे गाँव में जाकर नृत्य करता है एवं गीत गाता है। दूसरे गाँव का पुरुष–दल, किसी अन्य गाँव में जाकर नृत्य करता है एवं गीत गाता है। पुरुष नृत्य–दल, स्वयं के गाँव में न नष्त्य करता है और न ही गीत गाता है। गाँव का महिला नृत्य–दल, दूसरे गाँव से आये पुरुष नृत्य–दल के साथ मिलकर नृत्य करता है एवं गीत गाता है। इस परम्परा से जनजातीय–अविवाहित स्त्री–पुरुषों को, परस्पर मेल–मिलाप बढ़ाने का अवसर सुलभ होता है, एक–दूसरे को पसन्द करने का मौका प्राप्त होता है, ताकि आपस में रजामन्दी होने पर विवाह सम्पन्न कराया जा सके। इस प्रकार इस आयोजन के माध्यम से, अविवाहित स्त्री–पुरुषों को अपने मन पसन्द का जीवन–साथी चुनने का अवसर प्राप्त होता है, एक गाँव के लोगों को दूसरे गाँव के लोगों के साथ मेल–मिलाप बढ़ता है, सम्बन्ध स्थापित होता है।[11]

विलमा (विरहा) नृत्य एवं गीत, विवाह से सम्बन्धित है। यह बारात की बिदाई पर, बैगा, भैना, अगरिया इत्यादि जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। इस नृत्य एवं गीत के माध्यम से, जनजातीय विरह–भावना की सांस्कृतिक परम्परा दृष्टिगोचर होती है।

झरपट (छेड़छाड़) नृत्य एवं गीत, मुख्यतया महानदी बेसिन की बैगा एवं भैना जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। इसमें महिला एवं पुरुष, आमने–सामने अलग–अलग पंक्तिबद्ध होकर, सवाल–जवाब करते हुए एक–दूसरे को निरुत्तर करने की कोशिश करते हैं।[12] इस नृत्य एवं गीत से, जनजातीय महिला–पुरुष की आपसी छेड़–छाड़, हँसी–मजाक की स्वाभाविक सांस्कृतिक–परम्परा परिलक्षित होती है।

डोमकच (नृत्य एवं गीत, वैवाहित अवसर पर उराँव, कोरवा एवं नगेसिया जनजातियों द्वारा किया एवं गाया जाता है। सभी उम्र के स्त्री–पुरुष, प्रकृति, समाज, परिवार, खेती–बाड़ी एवं परम्पराओं इत्यादि से सम्बन्धित विषयों पर आधारित, डोमकच गीतों के साथ डोमकच नृत्य करते हैं। इसके माध्यम से, जनजातीय सांस्कृतिक परम्पराओं की जानकारी प्राप्त होती है। हरेली (सवनाही) गीत, महानदी बेसिन की लगभग समस्त जनजातियों का एक प्रमुख गीत है, किन्तु यह गीत मुख्यतया गोंड़, कँवर, धनवार, कोरवा, मँझवार इत्यादित जनजातियों द्वारा श्रावण मास की अमावस्य के दिन गाया जाता है। चारों ओर श्रावण मास की नैसर्गिक हरियाली देखकर जनजातीय–मन, आनन्द विभोर हो उठता है और जनजातीय–कंठ से गीत क बोल निकल पड़ते हैं।[13]

ददरिया गीत का प्रचलन महानदी बेसिन की प्रायः समस्त जनजातियों में हैं, किन्तु यह गीत मुख्यतया गोंड़, हलबा, बिंझवार, बैगा, भैना, मँझवार, कमार एवं अगरिया इत्यादि जनजातियों द्वारा वर्ष पर्यन्त

Scanned by CamScanner

श्रमपरक कार्यों–गिट्टी फोड़ते, यात्रा करते, खेल–खलिहान में कार्य करते, वनों मे पर्वत के ऊपर वनोपज एकत्र करते अवसरों, उत्सवों, पर्वों इत्यादि पर गाया जाता है। महिला–पुरुष अलग–अलग पंक्तिबद्ध होकर सवाल–जवाब के रूप में ददरिया गीत गाते हैं। यह लोक संगीत प्राचीन काल से पीढी दर पीढी गतिमान दिखाई देता है।[14]

जनजातीय–नष्त्य एवं गीत में, प्रयुक्त होने वाले लोकवाद्य सरल एवं कम कीमत के होते हैं। ये वाद्य, प्रायः ग्रामीण अंचल के कारीगरों अथवा स्वय कलाकारों के हाथें से निर्मित कर लिये जाते हैं। इनके बनाने का खर्च अत्यन्त कम आता है, किनतु स्वयं का श्रम अवश्य लगाना पड़ता है।[15] अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत आने वाले–माँदर, सिंगबाजा, नगाड़े एवं टिमकी इत्यादि वाद्य आते हैं। घनवाद्यों (ताल–वाद्य) के अन्तर्गत मजीरा, खरताल, चुटकी, टिसकी, झाँझ वाद्य, अवनद्ध वाद्यों की ध्वनि में ताल देने के लिये बजाये जाते हैं। स्वरवाद्यों के अन्तर्गत बाँसुरी एवं अलगोझा इत्यादि वाद्य आते हैं। तन्तु–वाद्यों (तारवाद्य) के अन्तर्गत जमूरा, चिकारा एवं किंदरी इत्यादि वाद्य आते हैं।

लोक कला के अन्तर्गत, प्रत्येक जनजाति का कोई न कोई मूल चित्र एवं शिल्प होता है, जिस पर उस जनजाति की कला परम्परा सुदृढ़ होती है। जनजातीय–लोक कला, मुख्यतया परम्परा से प्राप्त होती है। इसमें उनके स्वप्न एवं स्मृति के ताने–बाने बुने होते हैं। महानदी बेसिन की लगभग सभी जनजातियों में, गोदनाकला का पारम्परिक चलन है। शरीर के विभिन्न अंगों पर, अलग–अलग प्रकार के गोदने गुदवाने की परम्परा हे, जिन्हें उन्हीं अंगों पर गुदवाना अनिवार्य होता है। जनजातीय–महिलाएँ, अपने हाथों, बाहों, पैरों, ठोढ़ी, गाल, छाती, मस्तक इत्यादि पर विविध रूपाकारों में गोदना गुदवाती हैं। ये आकृतियाँ अत्यधिक सुगढ़, अर्थपूर्ण, आकर्षक एवं सुन्दर होती है। गोदना गुदवाने के पीछे भावना रहीत है कि गोदना स्त्री का सच्चा आभूषण है, यह मरते समय भी उनके साथ जाता है, देवता इससे प्रसन्न होते हैं, इससे शरीर सुन्दर एवं स्वस्थ रहता है। गोदना लिखवाना एवं धारण करना, दोनां इनकी जीवन्त–लोक चित्रकला का परिचायक है।[16]

सवनाही चित्रकला, जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का एक अभिन्न अंग है। श्रावण मास की हरियाली अमावस्या को जनजातीय महिलाएँ, हाथ में गोबर लेकर चार अंगुलियों के सहारे, अपने घर की चारों दीवारों को मोटी घेर देखी है, प्रमुख द्वार के दोंनो ओर की रेखा पर कुछ पशुओं एवं मानव की आकृतिया बनाती हैं। जनजातीय–सांस्कृतिक परम्परा में, गोबर–चित्रकारी का भी चलन है। दीपावली के समय धान की कोठी पर अनेक प्रकार के चित्रांकन किये जाते हैं, अन्न–लक्ष्मी की पूजा की जाती है। जनजातियों में मान्यता है कि इस प्रकार की गोबर–चित्रकारी से, परिवार में धन–धान्य की समृद्धि आती है।यह प्राचीनकालीन कृषि व पशुपालन की परम्परा को दृश्टिगोचर करता है।

नोहडोरा (उद्रेखण कला) के अन्तर्गत जनजातीय महिलाएँ, नया घर बनाते समय मिट्टी से, गीली दीवारों पर उभरे हुए रूपाकारों में पेड़–पौधे, फल–पत्ते, पशु–पक्षी, बेल–बूटे, मिथकीय कथा चित्र, देवी–देवताओं की मूर्तियाँ इत्यादि बनाती है। ये उभरे हुए रूपाकार, कई वर्षों तक दीवारों पर बने रहते हैं। इस उद्रेखण कला के माध्यम से, जनजातीय महिलाओं की कलात्मक–प्रतिभा का बोध होता है। घर सिंगार कला (गृह–सज्जा) में, जनजातीय महिलाएँ अत्यन्त निपुण होती हैं। ये मुख्यद्वार के आस–पास लिपी–पुती दीवाल पर गेरू, काजल और पीली मिट्टी से, ज्यामितिक रूपाकारों (पैटर्न) को हाथ से बनाती है, जिसमें रूपाकारों का सन्तुलन एवं रंगों का संयोजन अत्यन्त समन्वयपूर्ण होता है। इन्हें देखकर, जनजातीय महिलाओं की कला–दक्षता का परिचय प्राप्त होता है।

Scanned by CamScanner

वैवाहिक–चित्रकला के क्षेत्र में भी, जनजाती महिला–पुरुष दक्ष होते हैं। ये विवाह इत्यादि अवसरों पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी के रंगों से, द्वार सज्जा के साथ–साथ मुख्य द्वार के दोनों ओर की दीवालों पर, देवी–देवताओं, विवाह–प्रसंगों तथा पशु–पक्षियों का अलंकृत चित्रांकन करते हैं। जनजातीय–सांस्कृतिक परम्परा में चौक–कला का भी चलन है। जनजातियों के विभिन्न शुभ अवसरों, पर्व–त्योहरों इत्यादि पर गोबर की लिपाई के ऊपर, भीगे चावल के घोल अथवा चावल के सूखे आटे से चौक पूरने (माण्डने) की परम्परा है। इसका सज्जात्मक रूपअ तयन्त आकर्षक होता है। इससे जनजातियों की प्राचीन कला का परिचय प्राप्त होता है।[17]

ऐसी जनजातियाँ जिनका परिवार अत्यन्त सम्पन्न होता है, उनके दरवाजे अत्यन्त सज्जात्मक होते हैं। उन पर चिड़िया, चाँद, सूरज, हाथी, घोड़ा, घुड़सवार, मनुष्य, खजूर वृक्ष इत्यादि की आकृतियाँ उकेरी हुई होती हैं। इससे जनजातीय–संस्कृति में कला–प्रियता का परिचय प्राप्त होता है। जनजातियों द्वारा स्वयं के माध्यम से तैयार की गयी विभिन्न प्रकार की दैनन्दिन उपयोगी सामग्रियाँ यथा– रस्सी, मचिया, सुतली, कृषि–उपकरण, धनुष–बाण, फन्दे, खजूर के पत्तों की बनी चटाई, बाँस के बने स्टूल–टोकनी –डलिया–झाँपियाँ, कंघी, लकड़ी की बनी पेटी (बक्सा)–आलमारी, धान रखने की कोठी, चूहा पकड़ने का जाल–पिंजड़ा, दूल्हा–दुल्हन के मौढ़, वैवाहिक मांडव, पत्तों से निर्मित रेनकोट–दोना–पत्तल, बाँस–लकड़ी के जेवरात, खिलौने, संगीत–वाद्य, मछली पकड़ने का चोझा–कुमनी–दुल्ला इत्यादि, इनकी पारम्परिक कलात्मकता एवं रचना–धर्मिता की धोतक है। महानदी बेसिन की दो प्रमुख जनजातियों– खैरवार एवं अगरिया में दो विशिष्ट प्रकार की कलात्मकता पायी जाती है। खैरवार जनजाति के लोग, कत्था बनाने की कला एवं अगरिया जनजाति के लोग, लौह–शिल्प बनाने की कला में निष्णात् हैं। विश्व में कत्था बनाने का श्रेय, खैरवार जनजाति को प्राप्त है।

महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों के सांगीतिक एवं कलात्मक वैशिष्ट्य के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन काल से जनजातीय समाज में संगीत एवं कला का महत्वपूर्ण स्थान है। जनजातीय–लोकसंगीत की स्वाभाविकता को संरक्षण प्रदान किया जाना परमावश्यक है। लोक–कलाकारों को प्रोत्साहन प्रदान करते हुए, जनजातीय लोकसंगीत को महत्व प्रदान किया जाय। लोक–कलाकारों की कलाओं के सम्बर्धन हेतु शासन द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाय। समय–समय पर जनजातीय लोकसंगीत को आयोजन आधुनिक समाज के समक्ष कराया जाय, ताकि प्राचीन कालीन जनजातीय–लेकसंगीत के प्रति आधुनिक समाज् के लोगों में रुझान बढ़ सके। यह सर्वविदित है। कि विकास माध्यम अर्थ होता है। अतएव यह परमावश्यक होगा कि लोक संगीत कलाकारों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाया जाये, ताकि वे इस प्राचीन कला के सम्वर्धन में सतत प्रयत्नशील रह सकें। जनजातीय–लोक कला–कृतयों का बाजार सुव्यवस्थित किया जाये, ताकि उनकी कलाकृतियों का उन्हें उचित मूल्य प्राप्त हो सके और वे इस दिशा में अधिक प्रगति कर सकें।

संदर्भ ग्रथ :

1. मोहम्मदए शरीफ एवं खरे, आशा : मध्यप्रदेश का लोक संगीत, म.प्र.हि. ग्रंथ अका, भोपाल, 1991.
2. नायडू, हनुमंत : छत्तीसगढ़ लोकगीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, 1987.

Scanned by CamScanner

3. अखिलेश, एस.: कँवर जनजाति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जन–जीवन चौमासा, वर्ष–14, अंक–45, नवंबर 97, सम्पादक– कपिल तिवारी, आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल (म.प्र.)
4. सिंह, ब्रज भूषण 'आदर्श': छत्तीसगड़ की लोक–संस्कृति : जहाँ कोई त्यौहार दबे पाँव नहीं आता, म.प्र. संदेश, वर्ष–88, अंक–5, 6 मई–जून, 1993.
5. तिवारी, शिवकुमार : मध्यप्रदेश के आदिवासी, म.प्र.हि. ग्रंथ अकादमी, 1984.
6. दुबे, राजेन्द्र कुमार, छत्तीसगढ़ के लोग–नृत्य, छ.ग. की विभूतियाँ एवं लौकिक प्रसून, छ.ग. सांस्कृतिक मण्डल, भोपाल
7. निरगुणे, बसंतः आदिवर्त, छ.ग. की प्रमुख जनजातियाँ महावीर पब्लिशर्स, इन्दौर, 2004.
8. पाण्डेय, मुकुटधर, छत्तीसगढ़ की लोक–संस्कृति, म.प्र. संदेश, वर्ष–70, अंक–49, 9 नवंबर 1974, भोपाल
9. वर्मा, शकुन्तलाः छत्तीसगढ़ लोक–जीवन और लोक–साहित्य का अध्ययन, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971.
10. सिंह, वीरेन्द्रः छत्तीसगढ़ विस्तृत अध्ययन, अरिहन्त पब्लिकेशन, मेरठ, 2008.
11. 'मधुर,' शिवकुमारः मध्यप्रदेश की लोक रंग शैलियाँ, म.प्र. संदेश, वर्ष–9, अंक–8, नवंबर 10, 1983, भोपाल(म.प्र.)
12. पटेल, जी.पी.: जनजाति विंझवार, म.प्र. संदेश 25 अप्रैल 1990, भोपाल, खैरवार जनजाति म.प्र. संदेश, 25 मई 1990
13. त्रिपाठी, संजय, व त्रिपाठी श्रीमती चंदन : छत्तीसगढ़ वष्हद संदर्भ, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2002
14. पटेल, जी.पी.: बैगाचक के बैगा, म.प्र. संदेश 25 अप्रैल–10, 1990, भोपाल
15. निरगुणे, बंसन्तः पाताल कोट के भारिया, मोनोग्राफ, म.प्र. आदिवासी कला परिषद, भोपाल, बैगा मोनोग्राफ, 15 मार्च 1986.
16. गर्ग, लक्ष्मी नारायणः भारत के लोक–नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र., 1967.
17. वर्मा, आर.सी.: भारतीय जन–जातियों के विकास का ऐतिहासिक विवेचन, सरस्वती प्रकाशन गुड़गाँव रोड, महरौली, नई दिल्ली, 1993.
18. काशीनाथ, तिवारी :महानदी बेसिन की प्रमुख जनजातियों का सांस्कषतिक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध पीएच–डी.) वि.वि. खैरागढ़ 2009.

Scanned by CamScanner

5 सतना जिला का ऐतिहासिक भूगोल

कन्हैयालाल अग्रवाल

सतना जिला के उत्तर में उत्तरप्रदेश का बाँदा जिला, पूर्व में रीवा जिला, दक्षिण में जबलपुर और शहडोल जिला था पश्चिम में पन्ना जिला स्थित है। यह उत्तर से दक्षिण 135 किलोमीटर लम्बा अरैर पूर्व से पश्चिम 83 किलोमीटर चौड़ा है। जिला का क्षेत्रफल 7493 वर्ग किलोमीटर है। सतना जिला में 5 तहसीलें हैं। इनके नाम– रघुराजनगर, नागौद, अमरपाटन, मैहर तथा रामपुर बाघेलान हैं। सतना के नामकरण से सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। शिवानन्द[1] का कथन है कि सतना के नामकरण सतना नदी के नाम पर हुआ है। पन्न–पहाड़ीखेरा मार्ग के अठारहवें किलोमीटर पर सारंगपुर ग्राम है। यहाँ से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है। इस आश्रम के चतुर्दिक कुछ पुराने मंदिर जीर्णावस्था में विद्यमान हैं। आश्रम में अनेक सुन्दर जलस्त्रोत हैं, जिनमें दो नदियों का उद्‌गम होता है। पहली नदी बागैं (पौराणिक बालुवाहिनी) उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले की ओर बहकर यमुना नदी में मिल जाती है। दूसरी नदी सतना जिले की ओर प्रवाहित होती है। सुतीक्ष्ण आश्रम से दक्षिण की ओर देवेन्द्रनगर (पड़रिया) तक 14 किलोमीटर की दूरी यह नदी एक पतली जलधारा के रूप में तय करती है। यहाँ तक इस नदी को गजहा, चाँदा, चोरमनिया, मुटवा, बड़वारा, बसई और सिरदा आदि के नामों से पुकारते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस ग्राम से यह नदी गुजरती है उसी का नाम धारण कर लेती है। देवेन्द्रनगर के पश्चिम लगभग 3 किलोमीटर पर बड़ागाँव के समीप इस नदी पर एक बाँध बना है। यहीं से इस नदी का नाम सतना हो जाता है। सतना नगर तक यह नदी कलपा, मड़ई, कतकोन, उमरहट, सोहावल, जिगनहट, तिघरा, और बड़खेरा होती हुई बेलहटा के समीप टौंस नदी (प्राचीन तमसा) में मिल जाती है। सतना नदी की कुल लम्बाई 56 किलोमीटर है।

सतना नगर के नामकरण से सम्बन्धित शिवानन्द के मत पर चिन्तामणि मिश्र[2] ने गम्भीर आपत्ति पकट की है। उनका कथन है कि–

(1) कोई भी नदी अपने उद्‌गमस्थल से किसी विशाल नदी अथवा समुद्रसंगम तक एक ही नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करती है। किन्तु देवेन्द्रनगर से पहले सतना नदी के अनेक नाम हैं।

(2) यह तथ्य उल्लेखनीय है कि 1863 ई. तक वर्तमान सतना नगर के स्थान पर जंगल था। उत्तर

Scanned by CamScanner

की ओर वरदाडीह की गढ़ी और घास–पूस के कुछ झोपड़े थे। 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम के समय रीवा राज्य में पहले पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल औसवर्न ने बघेलखण्ड एजेन्सी की ओर से अंग्रज वायसराय को कलकत्ता भेजे जाने वाले दैनिक खरीतों में कहीं भी सतना का नाम नहीं आया। उस समय बघेलखण्ड एजेन्सी में मैहर, नागौद और पन्न रियासतें भी सम्मिलित थीं। इन खरीतों में ठाकुर रणमतसिंह, कोठी के तत्कालीन राजपरिवार का कष्पालपुर में शरण लेना और वरदाडीह का नाम दो बार आष है, किन्तु सतना का उल्लेख कहीं नहीं हुआ।

चिन्तामणि मिश्र की प्रथम आपत्ति स्पष्ट नहीं है। संभवतः उनका आशय है कि सुतीक्ष्ण आश्रम से देवेन्द्रनगर के बाँध तक इस नदी का नाम सतना नहीं है, अतः यह कोई अन्य नदी है। यह तथ्य कि देवेन्द्रनगर बाँध से आगे और सतना जिले के सम्पूर्ण प्रवाह में इसे सतना नदी कहा गया है, तब श्री मिश्र को इसमें क्या आपत्ति है। यह निर्विवाद सत्य है कि सतना नगर से सतना नदी अधिक प्राचीन है। अतः इस तथ्य की पूरी संभावना हो सकती है कि सतना नदी के नाम पर ही इस नगर का नामकरण हुआ है।

द्वितीय आपत्ति में कहा गया है कि बघेलखण्ड एजेन्सी के पहले पोलिटिकल एजेण्ट आसबर्न द्वारा वायसराय को भेजे गये दैनिक खरीतों में इस क्षेत्र के अनेक स्थानों का उल्लेख है, किन्तु सतना का उल्लेख एक बार भी नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि एजेन्सी के क्षेत्र में घटित प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना की सूचना वायसराय या सम्बन्धित अधिकारी तक पहुँचाना आसबर्न का दायित्व था, क्योंकि सतना राजनीतिक गतिधियों का केन्द्र नहीं था और न ही कोई प्रशासनिक इकाई था, अतः उसका उल्लेख न होना सर्वथा स्वाभाविक है। अगर हम कहे कि आसबर्न के दैनिक खरीतों में भरहुत, नचना, भूमरा और खजुराहो का उल्लेख नही है तब क्या यह मान लिया जाय कि उसके पोलिटिकल एजेण्टी के समय (1857–62 ई.) तक इन स्थानों का कोई अस्तित्व नहीं था। यह श्री मिश्र का यह तर्क भी बेबुनियाद है।

श्री मिश्र ने सतना के नामकरण से सम्बन्धित दो अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है। प्रथम अनुश्रति के अनुसार बड़गाँव स्थित सतना नदी के बाँध के एक भाग में सूरजदीन मल्लाह ने सिंघाड़ा लगाया था, जिसकी देखभाल उसकी पुत्री सतनियाँ करती थी। किसी कारण बाँध की एक दीवार ढहने लगी। अतः अपने छोटे भाइ को सहायता के लिए गाँव भेजकर वह स्वयं अपनी डोंगी लेकर कटाव स्थल की ओर गई। किन्त जलप्रवाह न रोक पाने के कारण उसने कटाव स्थाल पर अपना शरीर लगा दिया। सहायता मिलने के पहले ही सतनिया का बेहोश शरीर बह गया। कालान्तर में सतनिया का मृत शरीर कल्या ग्राम के समीप प्राप्त हुआ। तभी से बाँध के आगे प्रवाहित होने वाली जलधारा का नाम सतनिया हो गया। कुछ समय बाद यही सतनिया नाम सतना हो गया।

यद्यपि उपर्युक्त अनुश्रति रोचक है, किन्तु ऐतिहासिक कसौटी पर खरी नहीं उतरती। देवेन्द्रनगर के समीप बड़वारा में सतना नदी पर बना बाँध स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निर्मित हुआ है। कैप्टन लुअर्ड[3] के अनुसार सतना में 1872 ई. में पोलिटिकल एजेन्सी स्थापित हो गई थी और सतना नाम प्रचलित हो गया था। 1896 ई. में रघुराजनगर तहसील बनी। तभी से यहाँ के सतना और रघुराजनगर दोनों नाम एक साथ प्रचलित हैं। अतः सतनिया आख्यान निराधार है।

श्री मिश्र ने सतना नामकरण के लिए अल्फ्रेड थियेटर, चरखारी की प्रसिद्ध कलानेत्री दिलदार बेगम की एक भेंट (1960) का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि दिलदार बेगम के चाचा रेल कम्पनी के सर्वेक्षण

Scanned by CamScanner

कार्यालय में कार्य करते थे। रेल लाइन का सर्वेक्षण करते हुए अंग्रेज सर्वेक्षक के साथ वे भी सतना आये। उस समय यहाँ कुछ घास–फूस की झोपड़िया देखकर अधिकारी ने अफीमची चाचा से गाँव का नाम पूँछा। तब उन्होंने सामने पेड़ पर लटकते हुए कपड़े को देखकर समझा कि उनका अधिकारी इसकी जानकारी चाहता है। अतः चाचा ने कह दिया "सुतन्न है हजूर"। चाचा के कहने पर अधिकारी ने इस स्थान का नाम 'सुतन्ना' लिख लिया। यही सुतन्न कालान्तर में सतना हो गया। श्री मिश्र स्वयं इस कथन के सम्बनध में आश्वस्त नहीं है। वे कहते हैं कि "हो सकता है कि दिलदार ने मुझसे मजाक किया हो।" अगर हम इसे मजाक न भी मानें, तब भी इस कथन में निम्नांकित गंभीर त्रुटियाँ हैं–

(1) यह उल्लेखनीय है कि किसी अपरिचित स्थान की जानकारी अपने सहयोगी से नहीं अपितु स्थानीय जनों से प्राप्त की जाती है। अतः अंग्रेज अधिकारी का अपने साथ आये अफीमची चाचा से जो स्वयं इस स्थन से अपरिचित थे, ग्राम का नाम पूछना समझ में न आने वाली बात है।

(2) श्री मिश्र ने अंग्रेजी की काय्रप्रणाली का उल्लेख किया है। अतः यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि अंग्रेजी के सभी कार्य और योजनाएँ पूर्व नियोजित और सुविचारित होती थीं। योजना बनाते समय वे स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए वहीं की भाषा का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। अतः अफीमची चाचा ने 'सुतन्न' कहा और अधिकारी ने उसे बिना सोचे समझे स्वीकार कर लिया, बिल्कुल अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

अब हम शिवानन्द[4] के मत पर विचार करेंगे। उनका कथन है कि सतना नदी सुतीक्ष्ण आश्रम से निकलती है। इसीलिए इस नदी का नाम सुतीक्ष्णा हुआ, जो समयानुसार सतना में परिवर्तित हो गया। यह तथ्य विश्वसनीय प्रतीत होता है किन्तु सुतीक्ष्ण आश्रम दो है। पहला आश्रम सतना जिला में बिरसिंगपुर से 12 किलोमीटर की दूरी पर है और दूसरा आश्रम पन्ना पहाड़ीखेरा मार्ग के सारंगपुर के समीप स्थित है। अतः सबसे पहले यह निश्चय हो जाना आवश्यक है कि श्रीराम ने किस सुतीक्ष्ण आश्रम को पवित्र किया था।

रामायण[5] से ज्ञात होता है कि शरभंग आश्रम के पश्चात् श्रीराम सुतीक्ष्ण आश्रम गये थे और वहाँ तक का पहुँच मार्ग शरभंग मुनि ने इस प्रकार बताया था– "श्रीराम इस वन में थोड़ी ही दूरी पर महातेजस्वी धर्मात्मा सुतीक्ष्ण मुनि नियमपूर्वक निवास करते हैं। आप उनके पास चले जाइये। आप पुष्पमयी नौका को बहाने वाली इस मन्दाकिनी नदी के स्रोत के विपरीत दिशा में इसी के किनारे–किनारे चलने पर वहाँ पहुँच जायेंगे।" शरभंग आश्रम के समीप की मन्दाकिनी नदी अद्यावधि विद्यमान है और इसके प्रवाह की विपरीत दिशा में शरभंग आश्रम से मात्र 9 किलोमीटर की दूरी पर सुतीक्ष्ण आश्रम स्थित है। रामायण में वर्णित दूरी से यह दूरी पूर्णतया मेल खाती है। अतः सतना जिला का सुतीक्ष्ण आश्रम ही वह आश्रम है जहाँ श्रीराम पधारे थे। इस आश्रम के समीप से एक जलधारा प्रवाहित होती है, जिसे स्थानीय जन सुतीक्ष्ण कहते हैं। किन्तु यह एक बहुत छोटी नदी है। सतना नदी से इसका काई सम्बन्ध नहीं है। अतः सतना नदी के नाम पर नगर का नामकरण प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता[6]।

अप्रैल 1944 ई. में बनारस के भेलूपुर क्षेत्र में मार्ग निर्माण करते समय सूरवंशी शासक हरिराज के तीन ताम्रपत्र प्राप्त हुए थे।[7] इस ताम्रलेख को हरिराज का बनारस ताम्रपत्र कहा जाता है। विवेच्य ताम्रपत्र लखनऊ के राजकीय संग्रहलाय में प्रदर्शित है। यह ताम्रपत्र शान्तनपुर के शिविर से जारी किया गया था।[8] पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व महानिदेशक, रावबहादुर के.एन. दीक्षित ने शान्तनपुर का अभिज्ञान सतना से

Scanned by CamScanner

किया है। उनका कथन है कि सूरवंश पाँचवी–छठवीं शती इ. के परिव्राजकों का परवर्ती है। अतः छठवीं शती ई. में इस स्थान का नाम शान्तनपुर था। तेरह सौ वर्षों पहले यहाँ एक नगर था जो समय के अन्तराल से नष्ट हो गया। कालान्तर में यहाँ कुछ घास–फूस के झोपड़े ही अपने विगत वैभव की कथा सुनाने को शेष रह गये।[9] यही शान्तनपुर आज का सतना है।

भू–रचना

जिला में कैमूर, विंझ तथा पन्ना पहाड़ मुख्य हैं। ये पश्चिम से पूर्व की ओर फैले हुए हैं। पहाड़ों के समीप का दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग किसी सीमा तक पठारी हैं। इस पठारी भाग के अन्तर्गत परसमनियाँ का पठार उल्लेखनीय है। इसे भाण्डेर पठार भी कहते हैं।

जिला उत्तर–पूर्व तथा दक्षिण में मैदानी और निचले भाग हैं। यहीं के मध्यवर्ती भाग से अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं। इनमें टौंस, सोन और वैसुनी के मैदान मुख्य हैं। टौंस जिला की सबसे लम्बी नदी है।

जलवायु –

विवेच्य क्षेत्र कर्क रेखा के समीप स्थित है और अरब सागर अथवा बंगाल की खाड़ी के प्रत्यक्ष प्रभाव से दूर है। क्षेत्र की भू–रचना चट्टानी है। अतः यहाँ का प्रतिदिन का तापमान परिवर्तित होता रहता है। ग्रीष्म ऋतु में आकाश स्वच्छ रहता है। सूर्योदय जल्दी होता है और दोपहर तक गर्म हवा अथवा 'लू' चलने लगती है। कभी–कभी तापमान 47^0 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है। मई माह में दिन का तापमान 41^0 और रात्रि का 26^0 डिग्री सेल्सियस रहता है। इस ऋतु में हवाएँ पश्चिम से पूर्व की ओर चलती हैं। जून माह के मध्य से वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ की औसत वर्षा लगभग 110 से.मी. है। जिला के उत्तरी भाग में वर्षा कम तथा दक्षिणी भाग में वर्षा अधिक होती है। वर्षा के बाद शीत ऋतु का आगमन होता है। इस समय अल्प वर्षा होती है, जिसे मघावट कहते हैं। यह वर्षा उन्हारी की फसल के लिए उपयोगी रहती है। जनवारी माह में 24^0 सेल्सियस और रात्रि में 9^0 सेल्सियस तक गिर जाता है।

वनस्पति और वन्यपशु –

विवेच्य क्षेत्र प्राचीनकाल में विन्ध्याटवी कहलाता था। सर्वप्रथम सम्राट अशोक के 13वें शिलाप्रज्ञापन[10] में आटविक प्रदेश का उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति[11] में आटविक राज्यों का सविस्तार उल्लेख है। वर्ष 199 के महाराज संक्षोभ के बैतूल ताम्रपत्र[12] और वर्ष 209 के महाराज संक्षोभ के स्वेत ताम्रपत्र[13] में परिव्राजक महाराज हस्ती को उभाल के साथ अठारह आटविक राज्यों का शासक बताया गया है। कालान्तर में हर्ष का राजकवि वाण[14] भी हर्षचरित और कादम्बरी में विन्ध्याटवी का मनोरम वर्णन करता है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि सतना जिला सघन वनों से आच्छादित था, जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ सुशोभित थीं। रामायण[15] से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में आम, जामुन, आसन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भवय, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मरी (मधुपर्णिका), अखिट (नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आँवला, कदम्ब, बेंत, धन्वन (इन्द्र जौ), बीजक और अनार के वृक्ष बहुल मात्रा में होते थे। वाण[16] ने समस्त विन्ध्यभूमि को बेंतों से युक्त बताया है। विन्ध्याटवी सप्तपर्ण भूषित, वेत्रलता दुष्प्रवेशा (बेंत की बेलों के कारण दुर्गम) और शाल संकुल (शालयुक्त) है। इस अटवी में लवंगपल्लव विछे रहते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ पर वकुल, केतकी, चन्दन, कदम्ब, तमाल, पूग, नारियल आदि के वृक्ष प्रचुर मात्रा में थे। ये सभी जातियाँ सदापर्णी (सदाबहार) वृक्षों की है।

Scanned by CamScanner

सदापर्णी वक्षों के अतिरिक्त पलाश, असन, कुसुम, आमलक, हारीति, श्रीद्रुम या बिल्व, कक्कोल, शमी, कुटुज, कोविदार और शाल्मली आदि पतझर वाले सूखे वनों की जातियों का भी उल्लेख किया गया है। वाण शाल्मली को वनदेवता का प्रासाद और दण्डकारण्य का अधिपति भी कहता है। फलदार वक्षों में बाण ने दाडिम, द्राक्षा, कदली, जम्बुवन, आमलक, पूग और नारियल इत्यादि के नाम गिनाये हैं। लताओं में ताम्बूलीलता, मालती और सल्नकी जातियों का वर्णन है। घास की जातियों में मूंज, कुश, दर्भ, भद्रभुस्ता इत्यादि का उल्लेख है। धान्यों में शालिधान्य प्रमुख हैं[17]।

उपरिवर्णित वनस्पतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। बाण द्वारा उल्लिखित बेंत आज लगभग पूर्णतया समाप्त हो गया है और उसका स्थान वेण (बाँस) ने ले लिया है। सतना जिला में शेर, कुरंग, चितकबेर मृग, खरगोश, वारहसिंग, जंगली कुत्ते, चीता, लकड़बग्घा, भेड़िया, लोमड़ी, सियार, बड़े लंगूर तथा विविध प्रकार के वान बहुतायत से पाये जाते हैं। इनमें से कुछ वन्यपशु अब इस क्षेत्र में दुर्लभ हो गये हैं। रामायण[18] से विदित होते हैं कि चित्रकूट क्षेत्र में हंस, सारस[19], चातक, मोर[20], हाथी[21], रीछ, चितकबरे मृग,[22] व्याघ्र, चीता[23], चक्रवाक[24], सिंह, वानर[25], और भैंसें[26] पाये जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[27] में करूष (बघेलखण्ड) जनपद में हाथी पाये जाने का उल्लेख है। आइन–ए–अकबरी[28] से ज्ञात होता है कि सूबा इलाहाबाद के भहगहोरा (बाँदा जिले की कर्वी तहसील का गहोरा) में हाथी पाये जाते हैं और ये हाथी अन्य स्थानों से प्राप्त हाथियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। ये हाथी बघेलखण्ड क्षेत्र में अठारवीं शती ई. तक पाये जाते थे। बाण ने विन्ध्याटवी के पशु पक्षियों का मनोरम वर्णन किया है। पशुओं के अन्तर्गत उसने कपि, गण्डक अथवा खंग (गैण्डा), वनवाराह, वनमहिष, ऋक्ष या भल्लूक (भालू), करि (गज), केशरी–शार्दूल अथवा सिंह, शिवा एवं व्याघ्र आदि वर्णन किया गया है। अमरसिंह[29] ने मृगों की बारह प्रकार की जातियों– कृष्णसार, रूरुक, न्यंक, अंकु, शम्बर, रौहिष, गोकर्ण, वृषत, ऐण, ऋष्य, रोहित और चमर – बतायीं है। बाण ने इनमें से एण, रंकु, शंबर एवं पृषत प्रकार के मृगों का विन्ध्याटवी में विद्यमान होने का उल्लेख किया है। पक्षियों में लौशिक (उल्लू), मयूर, शिखण्डी, शुक्र, सारिका, कोकिल, पाण्डुकपोत, पारावत, हंस, चक्रवाक, काक, कुरर इत्यादि का वर्णन है।

बाण ने जंगली भैंसे का वर्णन 'सदा सनिनहित मष्त्यु भीषण महिष' लिखकर किया है। उसने वन वाराहों अर्थात जंगली सुअरों द्वारा स्थान–स्थान पर उखड़ी हुई भूमि का उल्लेख 'वाराह दष्ट्रा समुत्खात धरणिमण्डला' और रीछों के पीछे चलने वाले हिरणों का निर्देश 'सतत मक्षसार्थानुगता' के रूप में किया है। रीछों के पीछे–पीछे मषों के चलने का कारण रीछों की वक्षों पर चढ़ने की क्षमता है। रीछ वक्ष पर चढ़कर फल–फूल, पत्तियों भूमि पर गिराते हैं, जो क्षुधा शानत करने के लिएहरिणों को सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाती हैं। कलचुरि संवत 724 का चन्द्रेह अभिलेख[30] शेर वानर और हिरणों का उल्लेख करता है। इसी प्रकार मलयसिंह के रीता अभिलेख[31] से ज्ञात होता है कि इस शासक द्वारा निर्मित सरोवरों में चक्रवाक और सफरी मछलियाँ पाई जाती थीं।

उत्तर रामचरित में दण्डकारण्य में नीवार उत्पन्न होने का उल्लेख है[32]। यह एक प्रकार का जंगली चावल है। विन्ध्याटवी की वनोपज का वर्णन करते हुए बाण लिखता है कि चतुर गष्हणियों ने सेमर की रुई, नलशांलि, कमल की जड़ (कमल ककड़ी, शालूक) खण्डशर्करा, कमल के बीच (मखाने) बाँस, तण्डुल और तमाल के बीज एकत्र कर लिए थे। चटाइयों पर गम्भीरी के ढ़ेर (जड़, पत्ती, फल आदि) सूख रहे थे। खिरनी (राजादान) और मैनफल (मदनफल) सुखाकर रखे गये थे। महुए का आसव और मद्य भी

Scanned by CamScanner

चुआकर प्रायः हर घर में मौजूद था। प्रत्ये घर में कुसुम्भ, कुम्भ, और गण्डकुसूल भी थे। अटवी परिवारों के घरों में खाँस (राजभाषा), खीरा (त्रपुश), ककड़ी, कोंहड़ा और लौकी की बेलें विद्यमान थी[33]। इसी प्रकार धाय (घातकी) के ताजा लाल फूलों की बोरियाँ, रुई, अलसी, सन के मुट्ठों, शहद, मोम, मोरपंख, खस (लाभन्जक), कत्थे की लकड़ी, कूट (एक प्रकार पौधा जिसकी जड़ सुगन्धि और औषधि के काम आती है।) और लोध्र के भार सिर पर ले जाते हुए ग्रामवासियों को चित्रित किया गया है[34]। इसके अतिरिक्त एरण्ड, बचा, बंगक (बैंगन), तुलसी, शरणकन्द, सोंठिजन (शिंगु) गंठिवन (ग्रंथि पर्णी), गरबेरुआ (गरेधुक और भरुआधान (गुर्मत) के गुल्म घरों के साथ लगी हुई बोरियों में भरे हुए थे[35]।

साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त आभिलेखिक स्रोतों से भी यहाँ की वनस्पति पर मनोरंजक प्रकाश पड़ता है। चन्द्रेह अभिलेख[36]से ज्ञात होता है कि प्रबोधशिव नामक शैवाचार्य शाक, शालूक और अन्य फलों तथा आमलक, प्रियाल और मूल (जड़ों) पर जीवन व्यतीत करता था। उपर्युक्त अभिलेख में वर्णित शाक शब्द विभिन्न प्रकार की तरकारियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रो. राखानदास बनर्जी और डॉ. वासुदेव विवलु मिराशी के शालूक का अनुवाद कमल की जड़ किया है। बुन्देलखण्ड में इसे मुरार अथवा भसीड़ा कहते हैं। आमलक अविला है। प्रियाल का अर्थ संदिग्ध है। मूलक का अर्थ मिराशी और बनर्जी ने जड़े किया है,किन्तु मूलक का मूली अर्थ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। विजयसिंह का रीवा अभिलेख जल में उत्पन्न होने वाले तीन अन्य शैवाल, कलहार और वारिपर्णि वनस्पतियों का उल्लेख करता है। शैवाल एक प्रकार की काई है। कलहार श्वेत कमल है। किन्तु वारिपर्णि का तात्पर्य जल में फैली लता है। संभवतः यह सिंघाड़ा की लता थी।

पर्वतमालाएँ –

सतना जिला की मुख्य शेलमाला विन्ध्य है, जिसके विभिन्न मार्गों को प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक भूगोल में अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया गया है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

कैमूर : यह विन्ध्यपर्वत श्रृंखला पूर्वी भाग है, जो जबलपुर जिला के कटंगी स्थान से प्रारम्भ होकर पूर्वोत्तर की ओर कोई 500 किलोमीटर तक फैला हुआ है। यह शैलमाला जबलपुर के उत्तर और मैहर के दक्षिण पूर्व से एक मोड़ लेती है और सोन तथा टौंस नदियों की घाटियों को अलग करती है। तत्पश्चात् यह मिर्जापुर जिला में प्रवेश कर बिहार के शाहबाद जिला तक चली जाती है। इसकी अधिकतम् चौड़ाई 80 किलोमीटर है। मैहर के समीपवर्ती स्थन से इसका उत्तर–पूर्व का करीब 225 किलामीटर का विसतार सोन घाटी की उत्तरी दीवार बनाता है। रीवा के गोविन्दगढ़ स्थान से इसकी एक शाखा उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ जाती है। यहाँ पर उसकी ऊँचाई 2,000 फीट से कुछ अधिक है। किन्तु अनेक शिखर 2,000 फीट से भी अधिक ऊँचे हैं यथा गिद्धैला 2334, भिटारी 2310, कटरा 2267, पोपरा 2223, मौहास 2021 और रेमास 1931 फीट। गिद्धैला पहाड़ रामनगर से 8 किलोमीटर उत्तर में है। कहा जाता है कि यह पुराणों का गृद्धकूट। आज भी यह एक पवित्र स्थान माना जाता है। मोहास पहाड़ जिला मुख्यालय से लगभग 48 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। इसे झीझनगढ़ भी कहा जाता है। स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार चन्देल राजा परमाल (परमर्दिदेव) का सामन्त मालि यही का निवासी था। इन पर्वत श्रृखलाओं के मध्य से आवागमन के लिए अनेक प्राकृतिक घाट हैं। इनमें से विवेच्य क्षेत्र में मुरसरी घाट पड़ता है। यहाँ की पहाड़ियों पर अद्यावधि प्रागितिहासिक मानवों के अवेशष उपलब्ध हैं। खनिज पदार्थों की दृष्टि से विन्ध

य की यह सर्वाधिक समृद्ध श्रृखला है[37]। मैहर, भट्रा, मड़ई, बछरा, मुकुन्दपुर आदि पुरातात्विक स्थल इसकी तलहरी में बसे हैं।

उच्चकल्प : उच्चकल्प राजवंश के अभिलेखों[38]में इसका उल्लेख मिलता है। आधुनिक उचेहरा की समीवर्ती पहाड़ियों प्राचीन उच्चकल्प का प्रतिनिधित्व करती है। संभवतः इसका अभिप्राय परसमनियाँ पठार से है। उचेहरा से यह 20 मिलोमीटर पश्चिम में स्थित है। यहाँ पर दुरेहा से भी पहुँचा जा सकता है। इस पठार पर देवगना, महाराजपुर, कुटराही, भूमरा, कारीमाटी, रामपुर, कुदरननाथ हरदुआ, के बालबच्चे, शेरा, सुरदहा, पिपरिया आदि प्राचीन स्थल विद्यमान हैं। महाराज हस्ती और सर्वनाथ का भूमरा स्तम्भलेख[39] इसी पठार में प्राप्त हुआ है।

पीतशैल : पीतपर्वत का प्रथम उल्लेख कलचुरि शासक लक्ष्मीकर्ण के रीवा प्रस्तर अभिलेख (वर्ष 812)[40] में मिलता है। उक्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि पीतपर्वत की तलहटी में वपुल्ल ने त्रिलोचन की सेनाओं को पराजिक कर कादम्बरी ग्राम में शिव मंदिर का निर्माण कराया था। इस पर्वत के अन्य दो सन्दर्भ अजयगढ़ अभिलेखों से प्राप्त होते हैं। इनमें से एक अभिलेख[41] कीर्तिवर्मा चन्देल को पीतशैल विषय का अधिपति बताता है, और दूसरा[42] पीतशैल को कीर्तिवर्मा का निवास। डॉ. मिराशी[43] का मत है कि उक्त पीतशैल बुन्देलखण्ड में स्थित था। किन्तु वे इसका समुचित अभिज्ञान नहीं कर सके। डॉ. सन्तलाल[44] कटारे इसकी पहचान ओरछा राज्य गजेटियर में उल्लिखित पेत पहाड़ी से करते हैं, जो दिगौड़ा (टीकमगढ़ निवासी मार्ग पर स्थित) ग्राम से 7 किलोमीटर दक्षिण–पूर्व में स्थित है। पीतशैल विषय का शाब्दिक अर्थ पीले पहाड़ों वाला जिला है। इसका अभिज्ञान सतना जिला में स्थित जैतवारा क्षेत्र की शरभंग पहाड़ियों से करना उचित है। आज भी यहाँ की पहाड़ियों से पीली मिट्टी निकलती है।

चित्रकूट : रामायण[45] के अनुसार प्रयाग से चित्रकूट 10 कोस की दूरी पर था। महाभारत[46] में इसे मन्दाकिनी तीर्थ पर स्थित बताया गया है। वनवास की अवधि में श्रीराम पर्वत हिमवन्त से अधिक दूरी पर न था। हिमवन्त के समीप स्थित यह चित्रकूट बुन्देलखण ने यहाँ पर कुछ वर्ष व्यतीत किये थे[47]। अपादान[48] के अनुासर चित्रकूट पर्वत हिमवंत से अधिक दूरी पर न था। हिमवन्त के समीप स्थित यह चित्रकूट बुन्देलखण्ड के चित्रकूट से भिन्न प्रतीत होता है। कालिदास[49] चित्रकूट के दरीमुखों का नदी की दर्शन से मुखरित होना और मेघों का उस गिरिशिखर पर बैठकर पुंगव की भाँति व प्रकीड़ा करना लिखा है। वराहमिहिर[50] इसे दक्षिण दिशा में स्थित बताते हैं। झाँसी–मानिकपुर रेलपथ के शिवरामपुर स्टेशन से चित्रकूट की दूरी 6 किलोमीटर चित्रकूटधाम (कर्वी) से इसकी दूरी लगभग 10 किलोमीटर है।

नरो पहाड़ : नरो पहाड़ सतना–रीवा मार्ग के माधवगढ़ ग्राम से 5 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। पहाड़ के ऊपर एक प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष हैं। यहाँ पर विक्रमादित्य परिहार की राजधानी थी। वीरभानूदय काव्य में इस नगर का संस्थापक विक्रमादित्य को बताया गया है[51]। इस स्थान को नरोपुरी[52] भी कहा जाता है। यह नाम अब तक प्रचलित है।

नदिया –

सतना जिला के जलप्रवाह तंत्र में छोटी–बड़ी अनेक नदियाँ सम्मिलित हैं, जो इस क्षेत्र की ध ारातलीय बनावट के अनुरूप प्रवाहित होती रही हैं। इसके साथ ही यहाँ ऐसी नदियाँ भी हैं जिन्होंने अपने क्षेत्र के प्राकृतिक रूप को विकसित करने में यथेष्ट भूमिका निभाई है। इस जिले की प्रायः सभी नदियाँ

Scanned by CamScanner

दक्षिण से उत्तर की ओर बहकर यमुना अथवा गंगा में मिल जाती हैं। क्षेत्र के अनेक सांस्कृतिक केन्द्र इन सरिताओं के तट पर पल्लवित और पुष्पित हुए हैं। बड़ी नदियों की अनेक सहायिकाएँ हैं। इन नदियों का विवरण निम्नांकित है–

तमसा : तमसा इस जिले की मुख्य नदी है। रामायण में गंगा के निकट बहने वाली तमसा नदी का उल्लेख है, जिसमें वाल्मीकि स्थान किया करते थे[53]। इसका जल निर्मल और कीचरहित था। वनवास को प्रस्थान करते समय चित्रकूट जाने के लिए श्रीराम–लक्ष्मणादि ने तीव्र गति से प्रवाहित होने वाली भंवरों से युक्त तमसा को पार किया था[54]। महाभारत[55] में इसका उल्लेख हुआ है। पुराणों[56] में इसका नाम दर्शाणा (धसान) और चित्रकूट नदियों के बाद आया है। कालिदास[57] ने इस नदी का तीव बार उल्लेख किया है। मेगस्थनीज[58] ने प्रिनस (Prinas) और केनस नामक दो नदियों का उल्लेख किया है, जो गंगा में गिरती थीं। मैक्किण्डल[59] प्रिनस को तमसा (आधुनिक टौंस) और पुराणों की पर्णाशा मानते हैं। पुराणों में तमसा का नाम अलग से मिलता है। अतः पर्णाषा और तमसा को एक माने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। पुराणों की तमसा निश्चय ही टोंस है[60]। महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र[61] में भी इस नदी का उल्लेख हुआ है। इसके तंट पर आश्रमक ग्राम स्थित था। भरहुत का प्रसिद्ध नगर भी इसी के तटा पर है।

यह नदी मैहर तहसील के झुकेही स्थान में कैमूर पर्वत श्रेष्खला की 2000 फुट की ऊँचाई पर स्थित तमसा कुण्ड से निकलती है। अपने उद्गम स्थान से आगे बढ़ने पर यह नदी सतना जिले की मैहर तथा रीवा जिले की सिरमौर और त्यौंथर तहसीलों से बहती हुई इलाहाबाद जिला में सिरसा के समीप गंगा नदी में मिल जाती है।

कर्दमिला : वर्ष 191 वर्ष के महाराज सर्वनाथ के सोहावल ताम्रपत्र[62] में कर्दमिला नदी का उल्लेख है। परसमनियाँ पठार पर कुदरननाथ के समीप एक प्रपात है। यही प्रपात कर्दमिला का उद्गम स्थान है। प्राचीनकाल में यहाँ कर्दमननाथ का एक मंदिर था, जिसके नाम पर इसका नामकरण कर्दमिला हुआ। इस स्थान को अब कुदरननाथ और नदी को कमरो कहते हैं।

पिप्पलश्रोणी : पुराणों[63] में पिप्पलश्रोणी का नाम तमसा के बाद आया है। पार्जिटर[64] डॉ. सरकार[65], प्रो. अली और अवधबिहारी लाल अवस्थी[66] इसकी पहचान चित्रकूट क्षेत्र में बहने वाल पैसुनी नदी से करते हैं। यमुना की सहायक यह नदी पाथरकछार से निकलती है और लगभग 26 किलोमीटर तक बाँदा जिला की सीमा बनाती है। चित्रकूट के राघवप्रयाग नामक स्थान पर यह नदी मन्दाकिनी में मिल जाती है। संगम स्थल के बाद मन्दाकिनीकृक् को पयस्विनी (आधुनिक पैसुनी) कहने लगते हैं।

चित्रकूटा : पुराणों[67] में चित्रकूटा नामक एक नदी का उल्लेख हुआ है। पार्जिटर[68], डॉ. विमलचरण लाहा[69] पाण्डुरंग वामन काणे[70], डॉ. दिनेशचन्द्र सरकार[71] और प्रो. एस.एम. अली[72] इसे बुन्देलखण्ड में चित्रकूट के समीप बहने वाली एक नदी मानते हैं। नन्दलाल[73] डे. के अनुसार यह पयस्विनी (आधुनिक पैसुनी) नदी है। यह अभिज्ञान समीचीन प्रतीत होता है।

मन्दाकिनी : रामायण[74] में इस नदी को चित्रकूट पर्वत के उत्तर में बताया गया है। श्रीराम से बिदा लेकर भरत चित्रकूट की परिक्रमा करते हुए रमणीय मन्दाकिनी नदी को पार कर पूर्व दिशा की ओर गये थे[75]। महाभारत के वन[76] और अनुशासन[77] पर्वों में इसका उल्लेख हुआ है। पुराणों[78] में इसका उल्लेख दर्शाण और चित्रकूटा के साथ हुआ है। अंगत्तरनिकाय[79] में भी इस नदी का नाम मिलता है। कालिदास

Scanned by CamScanner

ने मन्दाकिनी का उल्लेख रघुवंश[60] कुमारसंभव[61], विक्रमोव्रशीय[62], मालविकांग्निमित्र[63] और मेघदूत[64] आदि ग्रन्थों में किया है। इनमें से रघुवंश की मन्दाकिनी निस्सन्देह बुन्देलखण्ड में चित्रकूट से होकर प्रवाहित होने वाली मन्दाकिनी है। महाकवि[65] के अनुसार यह नदी चित्रकूट होकर बहती थी। रामायण, महाभारत, पुराणों और बौद्धग्रंथ अंगुत्तरनिकाय की मन्दाकिनी चित्रकूट की पूर्वोक्ति मन्दाकिन है[66]।

बालुवाहिनी : पुराणों[67] में बालुवाहिनी का नाम मंजुला (अथवा जम्बुला) के बाद आया है। पार्जिटर[68] इसकी पहचान नहीं कर सके। डॉ. सरकार ने भी इस नदी का नाम बिना अभिज्ञान किये छोड़ दिया है। डे.[69] प्रो. अली[90] और डॉ. अवस्थी[91] ने इसकी पहचान बाघैन नदी से की है। इस नदी का उद्‌गम पन्न जिले की कौहारी पहाड़ियों से हुआ है। बाँदा जिला के विलास ग्राम के समीप यह यमुना नदी में मिल जाती है। कालिंजर का अजेय दुर्ग इसके किनारे स्थित है।

मालिनी : मालिनी नामवाली अनेक नदियाँ थीं। पहली मालिनी आधुनि मालन है, जो उत्तरप्रदेश के विजनौर जिले में 'तप्ती' थी। रामयण[92] में एक दूसी मालिनी नदी का उल्लेख मिलता है। यह नदी चित्रकूट जाने के मार्ग पर पड़ती थी। महाभारत[93] में मालिनी नदी के तट पर कण्व ऋषि का आश्रम बताया गया है। इस मालिनी को हिमालय के रमणीक शिखर पर प्रवाहित होन वाली नदी कहा गया है। अभिज्ञान शाकुन्तलम[94] से भी ज्ञात होता है कि मालिनी नदी के तट पर कण्व ऋषि की पर्णकुटी स्थित थी। डॉ. भगतवशरण उपाध्याय[95] का मत है कि शतपथ ब्राम्हण[96] में मालिनी को नदपति कहा गया है। रामायण[97] में एक अन्य स्थल पर चित्रकूट में माल्यवती के बहने का निर्देश किया गया है। डे[98] इसे मन्दाकिन मानते हैं। मालिनी और माल्यवती एक ही नदी के अथवा एक नदी की दो धाराएँ अथवा सर्वथा अलग–अलग दो नदियाँ यह निश्चयपूर्वक नदी कहा जा सकता।

मन्दाकिनी : यह मन्दाकिनी चित्रकूट की मन्दाकिनी से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक शरभंग आश्रम के बाहर एक जलकुण्ड है। इस जलकुण्ड के समीप से एक नदी प्रवाहित है। रामायण[99] में इस नदी को मन्दाकिनी कहा गया है। आज भी आश्रमवासी तथा स्थानीयजन इसे मन्दाकिनी के नाम से सम्बोधित करते हैं। उनका कथन है कि यह नदी चित्रकूट की मन्दाकिनी में मिल जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. सतना नगर, (तृतीय संस्करण), पृष्ठ 5–6.
2. सन फेयर, अप्रैल, 1992, पृष्ठ 31.
3. रीवा राज्य दप्रण, पृष्ठ 428–29.
4. सतना नगर, पृष्ठ 5–6.
5. सुतीक्ष्णमीगच्छ त्वं शुचौ देशे तपस्विनम्।
   इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज
   नदीं पुष्पोडुपहां तवस्तत्र गमिष्यासि।।
6. अगर शिवानन्द का यह मत कि सुतीक्ष्ण आश्रम से किलने के कारण नदी सुतीक्ष्णा कहलाई और इसी सुतीक्ष्ण के नाम पर नगर का नामकरण सतना हुआ, कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इसका मुख्य कारण यह है कि सुतीक्ष्ण आश्रम से देवेन्द्रनगर के बाँध तक नदी का नाम सतना नहीं है। अतः नदी के नाम पर नगर का नामकरण प्रमाणिक सिद्ध नहीं होता।
7. ज.यू.वी.हि.सो., खण्ड 18, पृष्ठ 167–173.

Scanned by CamScanner

8. 'स्वस्ति शान्तनपुराद नेक समर शत विजयिशूरवंशललामा' वही, वण्ड 18, पृष्ठ 171, पं. 1–2.
9. नगरों का उत्थान और पतन एक अनवरत प्रक्रिया है। सतना का समीपवर्ती ग्राम भरहुत कभी एक महानगर था, और कौशाम्बी से पैठन (औरंगाबाद) का महामार्ग यहाँ से गुजरता था। आज के भरहुत ग्राम को देखकर तो यह प्रतीत ही नहीं होता कि कभी इसमें भी वैभवशाली दिन देखे थे।
10. कार्पस, खण्ड 1, पृष्ठ 22,
11. वही, खण्ड 3, पृष्ठ 7,
12. एवि.इण्डि., खण्ड 8, पृष्ठ 287.
13. कार्पस, खण्ड 3, पृष्ठ 114.
14. कादम्बरी, पृष्ठ 55.
15. 2.94. 9–10.
16. विन्ध्यवनभूमिखि वेत्रलतावती, कादम्बरी, पृष्ठ 22.
17. कादम्बरी (चोखम्भा), पष्ठ 410–11, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 193.
18.
19. 2.54.31.
20. 2.55.9.
21. 2.55.10, 2.92.1.
22. 2.92.2
23. 2.94.7.
24. 2.95.11.
25. 2.95.18.
26. 2.96.8.
27. 2.2.
28. ब्लाकमैन, पृष्ठ 129–30.
29. कृष्णसाररुरुन्यंकुरंकुशम्बर रौहिषाः।
गोकर्णवष्तैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः।।अमरकोश, 2.5.10कृ
30. कार्पस, खण्उ 4, क्र. 44, पृं. 20–21.
31. वही, क्र. 67, पं. 34 और 39.
32. 1.25.4.1.
33. हर्षचरित (निर्णयसागर), पृष्ठ 230, हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 188.
34. हर्षचरित (चौखम्भा), पृष्ठ 402–3.
35. वही, पृष्ठ 410–12.
36. कार्पस, खण्ड 4, क्र. 44, पं 11, 'प्रियालफलमूलकामलक शाकशालूक'.
37. मेमायर्स ऑफ ज्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग 2, 7, 21, 31 और 62.
38. कापर्स, खण्ड 3, पृष्ठ 117–39.
39. वही, खण्ड 3, पृष्ठ 110–12.
40. वही, खण्ड 4, पृष्ठ 282,
41. एपि. इण्डि., खण्ड 1, पृष्ठ 333.
42. ए.रि.आ.स.ई., 1935,–36, पृष्ठ 92.
43. कार्पस, खण्ड 4, पृष्ठ 280.
44. एपि. इण्डि., खण्ड 30, पृष्ठ 89.
45. 2.48.25, दे. 2.48.35–36, 2.86.10; 2.105.3; 6.123.51.

Scanned by CamScanner

46. 2.85.58.
47. आरण्यककाण्ड, 266.67.
48. यथाववाचीमथ संयुतोऽसौ
    पुिव्रजोच्छेदनलब्धवर्णः।
    प्रापत्तदल्पेतरदर्धगाढ़
    शीविक्रमादित्यपुरं च खड्.गी।। 2.40.
49. ततो गहोरामिव देशायुक्तां
    जितां पुरं चैत्यनरोडमिधानाम्।
    स भासयामास वनि (णि) क्पथेन
    मनोरमां सर्वापदार्थभाजाम्। 2.49.
50. 1.2.4
51. 2.41.27.
52. 6.10.30.
53. सरकार, ज्योग्राफी, पृष्ठ 47–48, 'तमसा पिप्लश्रोणी करमोदा पिशाचिका।' दे पार्जिटर, मार्कण्डेयपुराण, पृष्ठ 296.
54. रघुवंश, 9.20.72, 14.76.
55. मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृष्ठ 135,
56. वही, पृष्ठ 135, टिप्पणी
57. सरकार, ज्योग्राफी, पृष्ठ 45, अग्रवाल, कार्मण्डेयपुराण, पुष्ठ 147, अली, ज्योंग्राफी ऑफ दि पुराणज, पृष्ठ 116, स्टडीज इन दि स्कन्दपुराण, पृष्ठ 159.
58. कार्पस, खण्ड 3, पृष्ठ 127, 'तमसानद्या'.
59. एपि.इण्डि., चाण्ड 19, पृष्ठ 130,
60. सरकार, ज्योग्राफी, पष्ठ 47, 'तमसा पिप्लश्रोणी करमोदा विशाचिका।'
61. मार्कण्डेयपुराण, पृष्ठ 297.
62. ज्योग्राफी, पृष्ठ 47.
63. ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणज, पृष्ठ 118.
64. स्टडीज इन दि स्कन्दपुरण, पृ. 158.
65. सरकार, ज्योग्राफी, पृष्ठ 47.
66. मार्कण्डेयपुराण, पृष्ठ 296, ज.रा.ए.सो. 1894, पृष्ठ 239.
67. रिवर्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 48; दि ज्योग्राफिकल ऐसेन, पृ. 110; दे. पुराण, खण्ड 12, अंक 1, पृ. 36.
68. लिस्ट ऑफ तीर्थाज, पृष्ठ 744.
69. ज्योग्राफी, पृष्ठ 47.
70. ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणज, पृष्ठ 118.
71. डिक्शनरी, पृष्ठ 50.
72. उत्तर पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी।12.86.11.
73. मन्दाकिनी नदी रम्यां प्राड्.मुखास्ते ययुस्तदा।
    प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम्। 112.105.3.
74. 5.82.58 (गीताप्रेस)
75. चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनी जले। 13.26.27.
76. सरकार, ज्योग्राफी, पृष्ठ 47, 'मन्दाकिनी दर्शाणा च चित्रकूट तथैव च।'
77. जिल्द 4, पृष्ठ 101.

Scanned by CamScanner

78. 13.48.
79. 1.29; 2.44; 3.65.
80. मन्दाकिनी तीरे, अंक 4, पृष्ठ 68.
81. काणे का संस्करण, अंक 1.
82. उत्तरमेघ, 4.
83. मन्दाकिनी भाति, नगोपकण्ठे, रघुवंश, 19.48.
84. पार्जिटर, मार्कण्डेयपुराण, पष्ठ 296, उपाध्याय, कालिदास का भारत, खण्ड 1, पृष्ठ 39–40, लाहा, ज्योग्राफिकल एमपेक्ट्र ऑफ कालिदासाज वर्क्स, पृष्ठ 38, कनिंघम, आसरि, खण्ड 21, पृष्ठ 11, लिस्ट ऑफ तीर्थाज, पृष्ठ 779, उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ 137, सरकार ज्योग्राफी, पृष्ठ 47, डे, डिक्शनरी, पृष्ठ 124, अली, ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणज, पृष्ठ 118.
85. सरकार, ज्यॉग्राफी, पृष्ठ 47–48 'चित्रोत्पला विपाशा च मंजुला बालुवाहिनी।'
86. मार्कण्डेयपुराण, पृष्ठ 298.
87. ज्योग्राफी, पृष्ठ 48.
88. .डिक्शनरी, पृष्ठ 21.
89. ज्यॉग्राफी ऑफ दि पुरावज, पृष्ठ 119.
90. स्टडीज इन स्कन्दपुराण, पृष्ठ 159.
91. 2.50.6, देखिए टिप्पणी 1189.
92. 1.64.18 कृ
93. जनयामास स मुनिर्मेनकार्या शकुन्तलाम्।
    प्रस्ते हिमवतो रम्ये मालिनीममितो नदीम्।। 1.66.8.
94. 3.4, दे विष्णुस्मषति, 85.30, पादटिप्पणी' कण्वाश्रमों मालिनीतीरे'.
95. कालिदास का भारत, खण्ड 1, पृष्ठ 39, चकलदार, दि ज्योंग्राफी ऑफ कालिदास, पष्ठ 28, लिस्ट ऑफ तीर्थाज, पष्ठ 778, कनिंघम, ऐंश्यंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 349–50.
96. 13.5.4.13, से.बु.ई., खण्ड 44, पृष्ठ 399.
97. सुरम्यमासद्य तु चित्रकूटं
    नदी च तां माल्यवतीं सुतीर्धाम्। 2.50.22.
98. डिक्शनरी, पृष्ठ 122.
99. इसी मन्दाकिनी राम प्रतिस्रोतामनुव्रज 3.5.57

Scanned by CamScanner

6 गूजरी महल संग्रहालय ग्वालियर में संग्रहित पवाया की कलाकृतियाँ

नरेश कुमार पाठक

पवाया मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले में स्थित है। ग्वालियर से 64 किलोमीटर पर डबरा नामकर नगर से डबरा–भितरवार मार्गपर 14 किलोमीटर चलने पर लगभग 7 किलोमीटर की यात्रा का कच्चा मार्ग प्राचीन नगरी पवाया को गया है। इसका ऐतिहासिक नाम 'पद्मावती' है। पद्मावती का नाम पवाया कब हो गया इसका कोई उल्लेखनीय साक्ष्य नहीं मिलता है। पद्मावती के संबंध में प्राचीनतम नामोल्लेख हमें विष्णु पुराण के एक प्रसंग से ज्ञात होता है कि मध्यप्रदेश में पद्मावती भी एक नगरी थी। ईसा की प्रथम चार–पाँच शताब्दियों तक यह नगर हिन्दू संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। ऐतिहासिक अवशेषों के साथ एम. बी. गर्दे ने जन–पर–परम्परा का भी साक्ष्य प्रस्तुत किया है, जो विचारणीय है। पवाया के निवासी अपने नगर को प्राचीन पद्मावती के रूप में पहचानते हैं। एक जनश्रुति में दो राजाआओं का उल्लेख आता है। एक धुन्दपाल को पद्मावती का चक्रवती सम्राट कहा जाता है। पवाया के निकटवर्ती क्षत्र से प्राप्त पुरातत्व अवशेष इस बात को सिद्ध कर सकते हैं कि यह कोई प्राचीन ऐतिहासिक नगरी होना चाहिए। महाकवि भवभति के नाटक मामती माधव में तो इस नगर को अत्यन्त समृद्ध और उन्नत बताया गया है। सातवीं शताब्दी के वाणभट्ट के हर्ष चरित्र 11वीं शती के परमार राजा भोज कृत सरस्वती कंठभरण, खजुराहों से प्राप्त कोकल्य के खजुराहों अभिलेख में पवाया का वर्णन मिलता है। पद्मावती नागवंशीय शासकों की राजधानी रही यहाँ के नागवंशी शासक वृषनाग, रविनाग एवं भवनाग आदि राजाओं का उल्लेख मिलता है। यहाँ से प्राप्त विष्णु मंदिर किला धूमेश्वर महादेव मंदिर आदि उल्लेखनीय स्मारक है। पवाया से प्राप्त नागवंशीय शासकों के सिक्के मृण्ममूर्ति अभिलेखित ईंट एवं पाषाण कलाकृतियाँ केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालिया में सुरक्षित हैं, प्रस्तुत लेख में पवाया से प्राप्त महत्पवूर्ण पाषाण कलाकृतियों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

मणिभद्र यक्ष– मणिभद्र यक्ष की यह प्रतिमा विशालकाय होते हुए भी कला के क्षेत्र में अनुपम कृति है। यह मूर्ति पवाया के निकट किले के मुख्य द्वार के समी ही एक खेत में पड़ी मिली थी, बताया जाता है कि इसे किसान के हल ने पलट दिया था।[1] डॉ. हरिहरन निवास द्विवेदी ने लिखा है कि इस प्रतिमा का ठोड़ी के ऊपर मुंह टूट गया है जो उपलब्ध नहीं हुआ है, फिर भी ठोड़ी के नीचे मुटाई के कारण दुलेट

Scanned by CamScanner

स्पष्ट दिखाई देती है। बड़े पेट के नीचे घुटने तब आने वाली धोती कुछ बेडौल ढंग से बँधी है। सामने की पट्टी और पीछे की काँछ पंज्जों तक लटकती है। पैर भद्दे हैं। (सं.क्र.21) इस मूर्ति में सुकुमार सौन्दर्य चाहे न हो परन्तु विलासिता और प्रभावोत्पादन की शक्ति है तथा यह निम्न–मध्यम वर्ग की पूजा की मूर्ति ज्ञात होती है।[2] बांयी भुजा में एक थैली है। ऐसा प्रतीत होता है कियह उसकी निधि है। दायीं भुजा कुहनी से टूटी है जो सम्भवतः अभ्य मुद्रा में रही होगी। यख ने लम्बी धोती पहनी है। एक काठला गले में है, जिसका पिछला किनारा दो सुन्दर मोटे–मोटे धागों में बँधा है।[3] यज्ञोपवीत धारण किये हैं। दायीं भुजा में भुजबन्द पहने हैं और बांई काई में कंगन जैसा कोई आभूषण है। पादपीठ पर लेख उत्कीर्ण है, अभिलेख में एवं नौ इंच चौड़ाई में लिखा है। इसका ऊपरी भाग कुछ खण्डित है। परिणामस्वरूप ऊपर की पंकित में अक्षरों के ऊपर लगने वाली मात्राएँ या तो मिट गयी है या कुछ धूमिल और अस्पष्ट हो गयी हैं। इसी कारण प्रथम पँक्ति के अक्षरों को सही–सही पढ़ लेने में कुछ कठिनाई उपस्थित हो गयी है। यह अभिलेख कुल मिलाकर 6 पँक्तियों में हैं। यह गद्य में लिखा गया है। इस अभिलेख की सबसे बड़ी विशेषत यह है कि इसमें इस बात का उल्लेख भी किया गया है कि यह लेख शिव नन्दी राजा के शासन के चौथे वर्ष में एक समिति के सभासदों ने देवता की तुष्टि हेतु ग्रीष्म के द्वितीय पक्ष की द्वादशी को इस प्रतिमा की स्थाना की थी, इसकी स्थापना किसी धनवान व्यक्ति ने नहीं की अपितु इसके लिये अनेक व्यक्तियों ने दान दिया था। यही कारण है कि अभिलेख के अन्त में इष्ट देव से उन व्यक्तियों के कल्याण के लिए अर्चना की गयी है। जिन्होंने इसके लिये दान दिया था। इतना ही नहीं इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कलयाण की कामना के साथ–साथ उन दानवीरों की यशगाथा भी गायी गयी है, जिन्होंन इसके लिये दान दिया है। इसमें इन धन दाताओं के नामों का भी उल्लेख है। इस अभिलेख का वाचन नीचे दिया जा रहा है। एम.बी. गर्दे ने कुछ अस्पष्ट अथवा मिटे हुएअक्षरों की रचना अनुमान से की है, जानकारी के लिये उन रूपों को कोष्ठक के अन्तर्गत रखा गया है। इसका पाठ पंक्तियों के अनुसार दिया जा रहा है–

प्रथम पंक्ति – (रा) ज्ञाः श्व (मि) शिव (न) न्दिस्य सेव (त्स) रे चतुर्थ ग्रीष्म पक्षे द्वितीय 2 दिवसे।

द्वितीय पंक्ति – द्व (ा) द (शे) 102 यतस्य (।) गोष्ठम मणिभद्र भक्तागर्भ सुखित भगवतो।

तष्तीय पंक्ति – माण (ि) भद्रस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापयति गोष्ठयाम भगवा आयु बालम् वाचम कल्य (ा) शाम्यु.।

चतुर्थ पंक्ति – दयम व प्रीतो दिसतु (व) ब्राह्मणस्य गोतमस्यं क (भा) रस्य ब्राह्मणस्य रूहदासस्य शिव (त्र) दाये पंक्ति में गौतमस्य शब्द पंक्ति से ऊपर लिखा गया है।

पंचम पंक्ति – शमभूतं (ि) स्यज (ा) वस्य खम (जबल) स्य शिव (ने) भिस (य) शिवम् (द्र) स्य (कु) मकस्य धनदे।

छठी पंक्ति – वस्य दा।[4]

नागकाल का यह एकमात्र अभिलेख है। इसकी लिपि को देखकर विद्वान इस अभिलेख को ईस्वी की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी का मानते हैं। इस अभिलेख में शिव नंदी को उसके राज्यारोहण के चाथे पर्ष में स्वामी लिखा है। स्वामी प्राचीन अर्थों में स्वतंत्र राजा के लिये लिखा जाता था अतएव शिव नदी को उसके राज्य में चौथे वर्ष के बाद कनिष्क ने हराया होगा। सन 79 से 175 ई. के आसपास नागों को अज्ञातवास करना पड़ा वे मध्यप्रदेश के पुरिका आदि को चले गये।[5] इस मूर्ति को एक गोष्ठिक के सदस्यों ने संस्थापित किया था। स्पष्टतः यक्ष मणिभद्र ही है, जिसके आधार पर परखम यक्ष मणिभद्र की ही मूर्ति

Scanned by CamScanner

लगती है। ऐसी मान्यता है कि पवित्र मणि (भद्रमणि) कुबेर के निकट सहयोगी और कोषाध्यक्ष यह मणिभद्र के पास थी। धन चिरायु होने की कामना से ही यक्ष पूजा का प्रचलन आरम्भ हुआ था। यह यक्ष मणिभद्र को एम.बी. गर्दे[6] व एस.के. दीक्षित[7] ने कुषाण कालीन तीसरी शताब्दी का काल संयुक्त माना है। परन्तु पवाया से तीसरी शताब्दी शती के कुषाण कालीन कला के कुछ भी चिन्ह नहीं मिले हैं, किन्तु हरिहर निवास द्विवेदी ने ईशा पूर्व प्रथम शती माना है।[8] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे भारत की 18 प्रमुख यक्ष परूा प्रतिमाओं में रखा है। इसके संबंध में लिखा है कि इस मूर्ति को लेख मणिभद्र कहा गया है जो मणिभद्र के भक्तों के भक्तों की गोष्ठी द्वारा स्थापित की गई थी। इस प्रतिमा में बेस–नगर कुबेर यक्ष पतिमा के समान हाथ में थैली है जो कुबेर के सहायक मणिभद्र की कुछ बाद की प्रतिमा है।[9] डॉ. कान्ति प्रसाद बौटियाल ने उपरोक्त तथा कथित विचारों के आधार पर लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि बेस नगर की यक्षी की मूर्तियों की पद्धति मौर्य काल में ही आरंभ हुई, किन्तु शुभकाल में यक्ष धर्म सम्प्रदाय को महत्ता मिलते ही सारे उत्तरी भारत में और मुख्यतः विदिशा, मथुर, पवाया इत्यादि स्थानों में यक्ष की अनेकानेक मूर्तियाँ बनने लगीं तथा भरहुत एवं साँची के प्रसिद्ध स्तूपों में भी कला ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया। पवाया की मणिभद्र यक्ष मर्ति बेसनगर की मूर्तियों से कुछ बाद की ही सकती है। किन्तु किसी भी दशा कुषाण कालीन नहीं। स्पष्टतः यह ईसा पूर्व प्रथत शताब्दी के द्वितीय चरण की हो सकती है।[10] 170 × 70 × 30 से.मी. आकार की प्रतिमा बलुआ पत्थर पर निर्मित है।

घंटाधारी यक्ष – इस प्रतिमा में मूर्ति का सिर सांड का सा है (सं.क्र. 44) किन्तु धड़ मानवाकार है।[11] यह मूर्ति चारों ओर कोर कर बनायी गयी है। डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि मानवाकार नन्दी की मूर्ति पवाया में शिव मंदिर होने का स्पष्ट प्रमाण है। इस प्रतिमा का मुखनन्दी का है तथा शेष मानवाकार है। यह मूर्तिकारों द्वारा काटकर गढ़ी गयी प्रतिमा है।[12] गुप्तकालीन इस प्रतिमा के गले में घंटी है। भुजबन्ध, कंगन और उदरबंद पहले सामने खड़े नन्दी की यह प्रतिमा ऐसी लगती है कि बड़े ध्यान से दखने को आतुर है। प्रतिमा की दाहिनी भुजा टूट चुकी है। बांयी भुजा को नीचे लटकाये तर्जनी मुद्रा में है।[13] नन्दी की तर्जनी मुद्रा का विष्णु धर्मोत्तर पुरा में उल्लेख है। वहीं कहा गया है कि नन्दी अपनी दो भुजाओं में से एक सिर पर और दूसरी तर्जनी मुद्रा में रखती है। नन्दी का रूप ऐसा बनाया जाता है जैस वह दूर से आज मुनष्य को देखता है।[14] मत्स्य पुराण के अनुसार नन्दी को स्थापना इस प्रकार करना चाहिए जैसे यह लगे कि वह शिव को देखने में लवलीन है।[15] द्विवेदी इस नन्दी प्रतिमा को निश्चित ही नाग कालीन मानते हैं। वायु पुराण में नागों को वृष अर्थात शिव का सांड अथवा नंदी कहा है। नागों के सिक्कों पर भी वृष को स्थान मिला है। अतएव इस मूर्ति को देखकर यही कल्पना होती है कि अपने ईष्ट देव शिव के सामने यह नागराज के वृषत्व के प्रतीक रूप से खड़ी की गई थी। इस मध्यम आकार की मूर्ति का गढ़न और अलंकरण अत्यन्त सुन्दर है।[16] लगभग 5वीं शती ईस्वी की 45 × 30 × 25 से.मी. आकार की प्रतिमा बलुआ पत्थर पर निर्मित है।

सूर्य शिखर – यह सूर्य शिखर[17] पवाया नामक गाँव के निकट एक खेत में पड़ा मिला था।[18] दो मुखी सूर्य स्तम्भ पर पीठ से पीठ लगे हुये दो पुरुष आकृतियों का आलेखन है।[19] (सं.क्र. 21) स्थानक प्रतिमा का घुअने से नीचे का भाग खण्डित है। एक तरफ की प्रतिमा की दायी भुजा अभय मुद्रा में एवं बायीं भुजा कटि पर है। सिर पर किरीट मुकुट, कानों में चक्र कुण्डल गले में एकावली हार भुजाओं में कंगन तथा कटि सूत्र धारण किये हैं। दूसरी ओर की मुकुट, कुण्डल, मणियुक्त हार, बलय एवं मेखला से सुशोभित

Scanned by CamScanner

है। दोनों प्रतिमाओं के मध्य प्रभा मण्डल अच्छादित है। जिसके केन्द्र से रश्मियाँ निकलती हुई दिखाई गई है, यह प्रतिमा लगभग चौथी शताब्दी की है, जो बहुत ही विवादात्मक है। इस स्तम्भ को एम.बी. गर्दे ने सूर्य की मूर्ति माना है और एस.के. दीक्षित ने उपेन्द्र की मूर्ति मानते हैं।[20] नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी इसे विष्णु मानते हैं। डॉ. कान्ति प्रसाद नौटियाल ने लिखा है कि ऐसे कुछ स्तम्भ एरण एवं सौन्दनी से प्राप्त हुये हैं। प्रतिमा शास्त्र में कहीं भी सूर्य के ऐसे प्रदर्शन के विषय में कोई शास्त्रोक्त वर्णन नहीं मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शिखर का भाग था और सम्भवतः यह कोई देवमूर्ति न होकर राजसी शक्ति का परिचायक पुरुषाकृतियाँ हैं जो कि एक स्तम्भ का शिखर भाग रही होगी।[21] डॉ. श्री भगवान सिंह ने लिखा है कि इस प्रतिमा के संबंध में ज्यादा विचार सूर्य की प्रतिमा मानने वालों के ही हैं और इसका तर्क यह है कि यह प्रतिमा प्रभामण्डल युक्त है और रश्मियाँ प्रस्फुरित हो रही हैं, जो सूर्य की ही द्योतक हैं। सूर्य प्रसन्नचित शान्त रूप में खड़े हैं।[22] 100 × 55 × 10 से.मी. आकार की प्रतिमा बलुआ पत्थर पर निर्मित है।

ताड़ स्तम्भ शिखर – पवाया से ताड़ स्तम्भ शिखर से संबंधित चार कला कषतियाँ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। प्रथम ताड़ स्तम्भ शिखर[23] पार्वती नन्दी के उत्तरीय तट से कुछ दूरी पर अर्थात पवाया गाँव से लगभग एक मील उत्तर पश्चिम में एक बड़े से टीले पर खेत में पड़ा मिला था। इस लम्बाकार स्तम्भ को ऐसा बनाया गया है कि ऊपरी सिरे की ओर एक बन्द कली तथा पंक्तियों के मध्य जो खाली स्थान है उसमें फलों के गुच्छे हैं इनमें से ऊपर की कली तथा ऊपर के पात उन्नतों मुख है। नीचे के दोनों पत्ते नतोन्मुख हैं। यह स्तम्भ शीर्ष बहुत कुद टूट फूट गया है, जो अंश अवशेष रह गया है।[24] उसका आकार 170 × 10 × 90 से.मी. (सं.क्र. 71) इस ताड़ शिखर के एक छोर पर पशु दिग्दर्शित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बैल है, जिसका मुख टूटा है। सम्भवतः यह शिखर पवाया के नागवंश के प्रथम चरण से अनुवंधित है। इन शिखरों के विषय में अनेक मत विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किये हैं। हरिहर निवास द्विवेदी[25] के मतानुसार ताड़ नागों का राज्य चिन्ह था, जो कि उनकी मुद्राओं पर अंकित हैं। उनके मतानुासर यह ताड़ स्तम्भ शिख या तो शिव मन्दिर के सामने बनाये गये होंगे या इन ताड़ ध्वज नागों के आवासों में इनकी स्थापना की गई होगी। ये ताड़ स्तम्भ शिख विदिशा के ताड़ शिखरों की अपेक्षा सरल हैं और बाद के काल के हैं। जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी भी द्विवेदी के मत से सहमत होते हुए इस ताड़ स्तम्भ को विदिशा के स्तम्भ से भिन्न बताते हुए उससे परवर्ती काल का माना है।[26] डॉ. कान्त प्रसाद नौटियाल ने लिखा है कि एच.व्ही. त्रिवेदी[27] की पुस्तक कटलॉग ऑफ दी कोइंस ऑ दी नागा किंग्स आज पद्मावती में कहीं भी ताड़ वृक्ष को नाग मुद्राओं का राज्य चिन्ह नहीं माना गया है। उसके विपरी मयूर, बैल, कमल इत्यादि चिन्हों का उल्लेख होता है, किन्तु इसी पुस्तक के प्ले नं. 5 में मुद्रा नं. 21 में स्पष्ट ही एक पेड़ दृष्टिगोचर होता है जिसे त्रिवेदी ने अधिक महत्व नहीं दिया है। यह पेड़ या तो ताड़ वृक्ष ही हो सकता है या फिर कल्पवृक्ष। एक अन्य मुद्रा के विषय में भी त्रिवेदी ने लिखा है कि इस पर एक वृक्ष अंकित है। कुछ भी हो मुद्राओं के चिन्ह पेड़ इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।[28] 85 × 75 × 75 से.मी. आकार का दूसरा ताड़ शिखर (सं.क्र. 4521) से संबंधित कलाकृति में केवल चार ताड़ पत्तों को अंकित किया गया है।[29] तीसरी 40 × 40 ×40 से.मी. आकार का ताड़ शिखर के भाग में नौफल[30] एवं (सं.क्र. 451) एक खण्डित पत्ती का आलेखन है।[31] चौथे मध्य में रेखाओं का अंकन किया गया है।[32] बहुला पत्थर पर निर्मित सभी ताड़ स्तम्भ शिखर से संबंधित कलाकृतियाँ तीसरी शती ईस्वी की प्रतीत होती हैं।

Scanned by CamScanner

सिरदल – पवाया क मंदिर के सिरदल में कुल मिलाकर पाँच दृश्यों का अंकन जिसमें सम्मुख की ओर तीन दृश्य अंकन हैं[33] एवं पीछे दो दृश्य अंकित हैं।[34] प्रथम दृश्य में नष्त्य एवं संगीत–वादन का एक अद्भुत संगम प्रस्तुत है। इसमें कुल मिलाकर नौ स्त्रियाँ एक गोल घेरे के रूप में विभिन्न प्रकार के बाद्य यंत्र लिये गद्दियों पर बैठी हुई हैं। इसमें दाहिनी तीन स्त्रियाँ खण्डित हैं। सभी स्त्रियों की भुजाओं में भिन्न–भिन्न वाद्य यंत्र बाँसुरी, सितारा, मंजीरा, मष्दंग, तबला और वीणा आदि लिये हैं। डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने वाद्य यंत्रों के संबंध में लिखा है कि वाद्यों में दो वाद्य तारों के हैं जिनमें दाहिनी ओर का वाद्य समुद्र गुप्त की मुद्रा पर अंकित वीणा के समान है और दूसरा वालोलिन की बनावट का है। उसके बाद एक स्त्री सम्भवतः चमरी अथवा पंखा लिये है। फिर एक स्त्री मंजीरा बजा रही है। पुनः एक स्त्री बिना किसी वाद्य के बैठी है। इसके बाद मृदंग वादिनी है। बीच में एक विशिष्ट प्रकार का दीपक जल रहा है।[35]इन्ही स्त्रियों के मध्य में एक नृत्य बाला खड़ी नृत्य कर रही है, जाकि त्रिभंग मुद्रा में है। इसके दोनों भुजा एवं पैर नृत्यरत हैं। सिर पर जूड़ा, कानों में झमरदार कर्णा भरण कुण्डल, भुजाओं में कुहनी तक चूड़ियाँ एवं पैरों में सादा चूड़ेदार पायजेब धारण किये है ऊपर वस्त्र बाएँ स्कंध के नीचे कस कर बाँधा गया है जो कि नीचे की ओर लटक रही है।[36] कमर के नीचे अत्यन्त चुस्त धोती (या पाजामा) पहने हैं, जिस पर दोनों ओर किंकणियों की झालरें लटक रही हैं। नृत्यवाला ने इसी वस्त्र को अपना कुंचुकी (चोली) बनाया है और इसी से अपना आँचल कस कर लपेटा है। इसे लपेटे गये वस्त्र से नष्त्य यौवनवाला को पयोधर स्पष्ट झलक रहे हैं जो कि उनकी शोभा एवं सुन्दरता को द्विगणित कर रहे हैं। इस भाव को दिखाने में कलाकार ने पूर्ण सावधानी एवं कलात्मक विशेषताओं को विशेष ध्यान रखा गया। अंकन में कहीं भी अश्लीलता एवं अनावश्यक अंग प्रत्यंगों का प्रदर्शन लेशमात्र भी नहीं है। झुकी हुई गर्दन एक ओर मुड़ी हुई एवं दूसरी फैली हुई भुजा मुड़ी हुई कमर, नष्त्य में उठा पैर उसके नष्त्य में चारचाँद लगा रहा है। अन्य स्त्रियों ने भिन्न–भिन्न प्रकार के केश जूड़े बनाए हैं। डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि गुप्तकाल के कलाकार ने कभी दो स्त्रियों का केश–विन्यास एक सा नहीं दिखाया है। डॉ. मोहनलाल शर्मा के अनुसार इस दृश्य को पौराणिक अख्यानों का अंकन धार्मिक भावना से ओतप्रोत होकर किया गया है।[37]दूसरे दृश्य के अंकन में बलि के यज्ञ का प्रदर्शन है। इसमें सबसे बीच मध्य में यज्ञ वेदिका बनाई गयी है जिसके समीप ही तीन पुरोहित पीछे एक स्त्री ऊँचे पादपीठ पर बैठी हैं। यह कुण्ड के समीप ही बलि देने हेतु बकरा खड़ा है। इससे पता लगता है कि यज्ञ अभी पूर्ण नहीं हुआ है अपितु चल रहा है। बकरे के पीछे ही दान करने का अंकन है जिसमें बलि राजा वामन (विष्णु) को गंगा जल से संकल्प करते प्रदशित किया है। वामन (विष्णु) अपने हाथ में जीन पग धरती का दान स्वीकार कर रहे हैं। बनि राजा के पीछे ही उनके गुरू शुक्राचार्य (दैत्यगुरु) खड़े हैं जो कि अपनी एक भुजा ऊपर की ओर उठाकर बलिं को ऐसा करने के लिये मना कर रहे हैं। वामन के पार्श्व में ही एक अन्य व्यक्ति खड़ा दर्शाया गया है, इसी के अंकन में ऊपर दो अन्य दृश्य हैं, जो कि राज प्रसाद का अंकन है। इसमें ऊपरी एवं निचली पंक्तियों में चार–चार स्त्रियाँ बैठी हैं, इन दोनों पंक्तियों के सामने एक दरवाजा है, जिसमें एक स्त्री बड़े ही अनूठे एवं स्वाभाविक ढंग से दरवाजे को थोड़ा सा खोलकर उत्सुक नेत्रों से नीचे की ओर झाँक रही है जो कि बड़ा ही स्वाभाविक है। इसी प्रकार अन्य स्त्रियाँ भी अपने विभिन्न भावों के साथ बड़े ही उत्सुक नेत्रों से यज्ञ का दृश्य देख रही हैं यह अंकन बड़ी मार्मिक सरस एवं सुन्दर तथा कलापूर्ण है। इसके अलाव सबसे ऊपर दाहिनी तरफ सूर्य अश्व युक्त रथ पर आसीन उदित होते दिखाये गये हैं।[38] कुछ विद्वानों ने इसे हिरणों

Scanned by CamScanner

पर सवार चन्द्र गष्ह देवता का अंकन मानते हैं। डॉ. श्री भगवान सिंह ने लिखा है कि जीसरे दृश्य के अंकन में त्रिविक्रम (विष्णु) जो बहुत ही क्षतिग्रस्त है, अपने पैर फैलाकर तीनों लोकों को नाप रहे हैं, इसमें देवता का मुख एवं दाहिनी चार भुजा शेष रही है, अन्य भाग खण्डित हो चुका है। दाहिनी भुजाओं में कटार, चक्र एवं खड्ग धारण किये हैं। एक भुजा उसके वक्ष पर टिकी है। ऊपर की बायी भुजा में माला है।[39] शेष बायीं भुजा खण्डित है। देवता के पीछे पार्श्वचरी खड़ी है, इनमें सामने वाली स्त्री की भुजा में छत्र एवं पीछे स्त्री की भुजा में पुष्प है। सिरदल के पीछे के चित्रण में पहला समुद्र–मंथन का दृश्य है जो कि काफी खण्डित हो गया है। इसमें बाईं ओर का दृश्य शेष है, जिसमें देवता मंथन कर रहे हैं, उनके पीछे कुछ अन्य देवता बैठे हैं। समीप बैठ एक देवता की भुजा में घट है। ऊपरी पंक्ति में भी देवताओं का प्रदर्शन है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं मानवरूप में गरुण अपने पंख फैलाये बैठे हैं। चित्रण काफी भद्दे हो चुके हैं। अन्य चित्रण में षडानन (कार्तिकेय स्वामी) खड़े हैं। षष्टभुजी द्वादस भुजी कार्तिकेय सम्भवतः उत्तर भारत की कार्तिकेय की सबसे प्राचीनतम् प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व करती है।[40] प्रतिमा की बायीं ओर तीन मुख एवं 6 मुजा खण्डित है। मत्स्य पुराण में द्वादश भुजी कार्तिकेय का विवरण मिलता है।[41] कार्तिकेय के सिर पर सर्पो का घटाटोप है। यह लक्षण उत्तर भारत की किसी भी प्रतिमका का शास्त्र में वर्णित नहीं है। प्रतिमा में सम्भवतः छान्दोग्य उपनिषद में उल्लेखित कार्तिकेय के मूल सनत्कुमार को ही दर्शाया गया है।[42] पार्श्वचरों में ऊपर नीचे कुल तीन पार्श्वचरें खडे हैं। 205 × 70 × 70 से.मी. आकार की सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित यह सिरदल लगभग 5वीं शती ईस्वी का प्रतीत होता है।

महिषमर्दिनी :– दुर्गा का महिषमर्दिनी स्वरूप विशेष लोकप्रिय हुआ है। ये महिषासुर वध करती हुई अंकित की गयी हैं। पवाया से प्राप्त शक्तिस्वरूपा देवी महिषमर्दिनी की 7×8×1 से.मी. आकार की लघुकाय (सं.क्र. 654) प्रतिमा का नीचे का भाग प्राप्त है।[43] जिसमें देवी का एक पैर तथा महिषासुर राक्षस का आलेखन है। पीछे सिंह का एक पन्जा अंकित है। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा लगभग 4वीं शती. ईस्वी की है।

नारायण –विणु प्रतिमा[44] के संबंध में डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी कामत है कि यह मूर्ति पवाया के विष्णु मंदिर में स्थापित थी। संभवतः यह गुप्तकाल से कुद पूर्व की है, क्योंकि यह उदयगिरि की विष्णु प्रतिमाओं की अपेक्षा अधिक सरल है।[45] द्विवेदी के मत से सहमत होते हुए डॉ. मोहन लाल शर्मा ने लिखा है कि विष्णु की इस मूर्ति के विषय में सहज की अनुमान लगाया जा सकता है कि खुदाई में जो विष्णु मंदिर मिला है यह मूर्ति उसी मंदिर की होगी।[46] पूर्व में इसे विष्णु लिखा गया था। (सं.क्र. 46) परन्तु यह मूर्ति के चतुर्विशान्ति स्वरूप में नारायण स्वरूप की प्रतिमा है। यह मूर्ति संग्रहालय की महत्वपूर्ण उपलब्धि ा है। दुर्भाग्य से मुख और पैर भाग खंडित हैं। डॉ. श्री भगवान सिंह ने लिखा है कि इस काल की प्रतिमाओं पर कुषाण कालीन परम्परागत मान्यताओं की छाया स्पष्ट झलकती है। हालाकि इस प्रतिमा में कुछ क्षेत्रीय नवीनता के दर्शन भी किये जा सकते हैं। प्रतिमा चतुर्भुजी है। प्रतिमा की बाँयी निचली भुजा में शंख एवं ऊपरी भुजा में चक्र है, चक्र के चारों ओर उंगलियों दृष्टव्य हैं। दाहिनी ऊपर की भुजा में गदा स्थित है। नीचे की भुजा अभय मुद्रा में है। हथेली खुली है। यह ठीक वैसी ही है, जैसी कि बुद्ध प्रतिमा में रहीत है। इस भुजा की छोटी उंगली में एक अंगूठी है। इस प्रतिमा के निर्माण काल तीसरी शती से चौथी शती के प्रारंभ में रखा जा सकता है।[47] विष्णु गले में कण्ठाहार, कानों में चक्र कुण्डल, भुजाओं में वलय, कटि

Scanned by CamScanner

में मेखला के रूप में फैटा बंध हुआ है और एक अंगोछा पहने हुए हैं, जो कंधे से लेकर दोनों जाँघों पर होकर जाता हैं देव आकर्षक वेजन्ती माला धारण किये हैं।[48] बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा का आकार 40 × 24 × 10 से.मी. है। प्रतिमा की दायी नीचे की भुजा की छोटी उंगी की अंगूठी एवं बायीं ऊपरी भुजा में चक्र को चारों उंगलियों से पकड़े जाने का अंकन कलात्मकता से परिपूर्ण है। इस प्रकार का दिग्दर्शन गुप्तकाल की उत्कृष्ट कला का परिचायक है। यह प्रतिमा पवाया में विष्णु उपासना को ताक सिद्ध करती ही है, साथ ही यह तत्कालीन मूर्तिकला का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है।

चक्र – पवाया से प्राप्त सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित भगवान विष्णु का आयुध चक्र है। (सं.क्र. 651) इसके साथ में विष्णु की भुजा आंशिकरूप से सुरक्षित है।[49] जिसमें चक्र धारण किये हैं। लगभग चौथी शती ईस्वी का चक्र का आकार का आकार 11 × 8 × 5 से.मी. है।

नागराज – नागराज[50] की यह प्रतिमा बहुत खण्डित हो चुकी है। यहाँ तक कि (सं.क्र.45) इसके हाथ, पैर और मुख भग्न है। सर्प जो मूर्ति के सिर पर फण पहराये हुये हैं, विखंडित प्रायः हो चुका है, अनुमान लगाया जा सकता है कि इस मूर्ति के कानों में कुण्डल होंगे जिसके चिन्ह बायें कान में अभी तक अंकित हैं। उसके गले में हार का भी निशान बना हुआ है। कमर में भली–भाँति कसा हुआ कटिवस्त्र सुशोभित है। भव्य साज–सज्जा और केश भूषा से ज्ञात होता है कि यह मूर्ति नागराज की होनी चाहिये।[51] डॉ. मोहनलाल शर्मा ने इस प्रतिमा को कला की दृष्टि से विष्णु प्रतिमा से श्रेष्ठ बताया है।[52] बलुआ पत्थर पर निर्मित 110 × 60 × 32 सें.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 5वीं शती ईश्वी की प्रतीत होती है। डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला में उल्लेख किया है कि शिव नन्दी को कनिष्ठ ने जीत लिया थ और बहुत समय तक पद्मावती पर कुषाणों का अधिकार रहा है। कुषाण कला तथ इस स्थान प्राप्त कुछ मूर्तियों में समानता है, यह बहुत संभव है, उदाहरण के लिये मथुरा संग्रहालय में स्थित छारगाँव से प्राप्त नाग की मूर्ति की तुलना पवाया की नागराज की मूर्ति से करते हुये लिखा है कि दुर्भाग्य से पवाया की यह नागराज की मूर्ति बहुत टूटी हुई है। फिर भी खड़े होने कीरीति कमर पर बंधे हुए वस्त्र की गाठ लगान की रीति तथा सिर के ऊपर जाने वाले अहिछत्र में बहुत अधिका समानता है, मथुरा की इस मूर्ति पर हुविष्क के राज्य काल के चालीसवें वर्ष के उल्लेख युक्त अभिलेख हैं, वह ईस्वी सन् प्रथम सदी की बनी हुई हैं।[53] द्विवेदी ने दूसरी ओर त्रिपुरी (विदिशा पद्मावती, बाघ) में इस छत्र युक्त नागराज की मूर्ति को नाग कालीन माना है।[54] उपरोक्त दोनों मतों में से इस मूर्ति को नागकालीन मानना उपयुक्त होगा क्योंकि नागों की मुद्राओं में नागछत्र चिन्ह बहुत पाया जाता है। पीरसेन नाग के सिक्कों पर नाग की आकृति मिलती है। नागों ने सर्प को अपने राजकीय चिन्हों में सम्मिलित किया। इसी क्रम में इस प्रतिमा का निर्माण कर नाग राजाओं ने मूर्तिकला में भी नागछत्र को स्थान दिया।[55]

नारी प्रतिमा – पवाया की स्त्री मूर्ति से संबंधित दो कलाकृति प्राप्त हुई हैं। प्रथम 19 × 10 × 5 सें.मी. आकार की स्त्री मूर्ति का कमर से नीचे का भाग[56] बायीं भुजा टूटी हुई। (सं.क्र. 650) सिर पर आकर्षक केश विन्यास, कानों में कुण्डल, गले में एकावली हार, भुजाओं में बलय एवं भुजाओं में कुछ अस्पष्ट वस्तु लिये हैं। प्रसन्नता का भाव स्पष्ट है। दूसरी 6 × 5 × 2 से.मी. आकार की मूर्ति का बाया भाग[57] जिसमें एक स्तन (उरोज) शेष है। गले में हार एवं भुजा में केयूर धारण किये हैं। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मिद दोनों प्रतिमा चौथी शती ईस्वी की प्रतीत होती हैं।

प्रतिमा सिर – पवाया से प्राप्त प्रतिमा सिर से संबंधित सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित पाँच

Scanned by CamScanner

कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं। प्रथम 8 × 6 × 3 सें.मी. आकार का प्रतिमा सिर[58] (सं.क्र. 648) जो जूड़ेदार अलकृत केश, लम्बकर्ण चाप से अलकष्त है। दूसरी 12 × 9 × 3 से.मी. आकार का किसी प्रतिमा का सिर है।[59] (सं.क्र. 649) जिसमें आकर्षक केश एवं कुण्डलों का आलेखन है। दायी एक भुजा आंशिक रूप से सुरक्षित है। तीसरा 5 × 4 सें.मी. आकार की प्रतिमा का चेहरा मात्र है।[60] (सं.क्र. 665)। जिसमें बाया कान एवं केश आंशिक रूप से सुरक्षित है। चौ 5 × 3 सें.मी. आकार की मूर्ति का चेहरा मात्र शेष है।[61] (सं.क्र. 666) जिसमें लम्बी नाक का आलेखन मनोहारी है। पाँचवी 9 ×6 × 5 सें.मी. आकार की प्रतिमा का सिर है।[62] (सं.क्र. 669) दायें कान में कुण्डल पहने हुए है। सिर पर लाईनदार केशराशि का आलेखन है। मुखमुद्रा प्रसन्नता को प्रदेशित कर रही है। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा चौथी शती ईस्वी की है।

विविध शिल्प खण्ड – पवाया से सफेद बुलुआ पत्थर पर निर्मित चौथी शती ईस्वी के 6 शिल्प खण्ड प्राप्त हुये हैं। प्रथम 9 × 9 × 3 से.मी. आकार का शिल्प खण्ड[63] (सं.क्र. 652) पर कई प्रकार के अलंकरण उकेरे गये हैं, जिनमें अर्हपुष्प आदि उल्लेखनीय हैं। दूसरे 12 × 11 × 3 से.मी. आकार के शिल्प खण्ड[64] (सं.क्र. 653) विविध प्रकार के अलंकरण हैं। तीसरे 5 × 10 × 10 से.मी. आकार के शिल्प खण्ड (सं.क्र. 655) सम्भवतः किसी बर्तन का ढक्कन है, जिसके ऊपर पुष्प के आकार के ज्यामितीय अलंकरण पर यंत्र बना भाग अंकित किया गया है। चौथे 13 × 9 × 4 एवं 6 × 8 × 4 से.मी. आकार के दो टुकड़ों के शिल्प खण्ड हैं। (सं.क्र. 657) विविध अलंकरण किये गये हैं। पाँचवे 8 × 4 × 2 से.मी. आकार के शिल्प खण्ड[65] (सं.क्र. 664) में पाषाण खण्ड पर यंत्र बना भाग अंकित किया गया है। जिसमें कुछ अक्षर स्पष्ट है, जैसे 180 है। छठे 50 × 50 × 10 से.मी. आकार के शिल्प खण्ड[66] (सं.क्र. 481) पर पुष्प एवं बिच्छू की आकृति बनी हुई हैं। उपरोक्त प्रतिमाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रथम शती ईस्वी से नाग एवं गुप्तकाल तक पवाया में शिल्प कला एवं मूर्तिकला का विकास पूर्णरूप से हुआ है। पवाया के शिल्प वैभव के विस्तृत अध्ययन की आज भी आवश्यकता है, जिससे नागकालीन मूर्तिकला पर नवीन प्रकाश पड़ेगा।

संदर्भ ग्रन्थः–

1. शर्मा मोहन लाल "पद्मावती" भोपाल 1971 पृष्ठ 42 फलक 1–2.
2. द्विवेदी हरिहर निवास "ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला" विक्रम स्मषति ग्रन्थ ग्वालियर 2009 पष्ठ 691, फलक 33 क्रमांक 2–3.
3. ठाकुर एस.आर. "कैटगॉग आफ स्कल्पचर्स आर्केलॉजीकल म्यूजियम ग्वालियर" एम.बी. पष्ठ 3 क्रमांक 14.
4. बाजपेयी अंतिमा "मध्यप्रदेश के नागवंशी सिक्के" दिल्ली 1981, पृ. 47.
5. द्विवेदी हरिहर निवास, "ग्वालियर राज्य के अभिलेख" ग्वालियर 1947, पृ. 16.
6. गर्दे एम.बी. "पद्मावती" ग्वालियर 1952, पष्ठ 21 एवं गर्दे एम.बी. "ए गाईड टू दी आर्केलॉजिकल म्यूजियम एट ग्वालियर" 1928, पृष्ठ 28, फलक X.
7. दीक्षित एस.के. "ए गाईड टू सेन्ट्रल आर्केलॉजिकल म्यूजिमय ग्वालियर, ग्वालियर 1962, पृष्ठ 24.
8. द्विवेदी हरिहर निवास त्रिपुरी (विदिशा पद्मावती और बाघ) ग्वालियर 1954, पृष्ठ 51.
9. अग्रवाल वासुदेव शरण "भारतीय कला" वाराणसी द्वितीय संस्करण 1977, पृष्ठ 122–123 एवं 126 चित्र 89–90.
10. नौटियाल कान्ति प्रसाद "मध्यप्रदेश में मूर्तिकला का विकास (मौर्यकाल से गुप्तकाल तक ऐतिहासिक विवेचन) ग्वालियर मेला हीरक जयन्ती स्मषति उपयान 1967–68.
11. ठाकुर एस.आर. पूर्वोक्त पृष्ठ 6, क्रमांक 7.

Scanned by CamScanner

12. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त पृष्ठ 45–46.
13. सिंह श्री भगवान "गुप्त कालीन हिन्द देव प्रतिमाएँ" भाग 2, दिल्ली 1982, पृष्ठ 44, चित्र 54.
14. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 73 : 17.
15. मत्स्य पुराण 195 : 18.
16. द्विवेदी हरिहर निवास "ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला" पूर्वोक्त पष्ठ 688, फलक 31, चित्र 5–6.
17. एनुअल रिपोर्ट ऑफ दी आर्केलॉजिकल डिपार्टमेन्ट ग्वालियर स्टेट संवत् 1984, वर्ष 1927–28, फलक VI और चक्रवर्ती कल्याण कुमार "ग्वालियर फोर्ट" नई दिल्ली 1984, पृष्ठ 64.
18. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त पृष्ठ 55–56, फलक 6.
19. द्विवेदी हरिहर निवास त्रिपुरी पूर्वोक्त पृष्ठ 61 एवं द्विवेदी हरिहर निवास "ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला" पृष्ठ 707, फलक 43, चित्र 1–2.
20. दीक्षित एस.के. पूर्वोक्त पृष्ठ 15 फलक 1.
21. नौटियाल कान्ति प्रासद पूर्वोक्त
22. सिंह श्री भगवान "गुप्त कालीन देव प्रतिमाएँ" प्रथम भाग पूर्वोक्त पृष्ठ 106, चित्र 82.
23. एनुअल एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ दी आर्केलॉजिकल डिपार्टमेन्ट ग्वालियर स्टेट संवत् 1990 वर्ष 1933–34 ग्वालियर 1938 फलक XI गर्दे एम.बी. गाईड टू दी आर्केलॉजिकल म्यूजियम एट ग्वालियर फल IB.
24. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त, पृष्ठ 55 फलक 4.
25. द्विवेदी हरिहर निवास "ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला" पूर्वोक्त पृष्ठ607 फलक 31, चित्र 4.
26. चतुर्वेदी जगदीश चन्द्र "मध्यप्रदेश के कला मण्डप" ग्वालियर 1982, पृष्ठ 21.
27. द्विवेदी हरिहर निवास त्रिपुरी पूर्वोक्त पृष्ठ57.
28. त्रिवेदी एच.व्ही. "कैटलॉग ऑफ दी कोईन्स ऑफ दी नागा किंग्स ऑफ पद्मावती" ग्वालियर 1952, पृष्ठ 25.
29. नौटियाल कान्ति प्रसाद पूर्वोक्त
30. शर्मा राजकुमार "मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ" भोपाल 1974, पृष्ठ 480 क्रमांक 446.
31. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 480, क्रमांक 446.
32. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 485, क्रमांक 595.
33. दीक्षित एस.के. पूर्वोक्त पृष्ठ 27–28, फलक 11.
34. ठाकुर एस.आर. पूर्वोक्त पृष्ठ 5, क्रमांक 1
35. द्विवेदी हरिहर निवास, 'त्रिपुरी' पूर्वोक्त पृष्ठ 60–61.
36. द्विवेदी हरिहर निवास, 'ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला' पूर्वोक्त पृष्ठ 705–6, फलक 22 से 30.
37. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त, पृष्ठ 48–49 फलक 22 से 30.
38. इण्डियन आर्केलॉज ए रिव्यू 1958–59, पृष्ठ17, वि. 75वीं.
39. सिंह श्री भगवान, 'गुप्त कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएँ' प्रथम खण्ड पूर्वोक्त पृष्ठ72.
40. गुप्ता कृष्णा 'स्कन्द कार्तिकेय की दुर्लभ प्रतिमाएँ' एक विवेचन ग्वलियर क्षेत्र के सन्दर्भ में अन्वेषिका ग्वालियर 1983, पृष्ठ40.
41. मत्स्य पुराण 260, 46–51.
42. VII, 6 छान्दोग्य उपनिषद में तप एवं विद्वता से परिपूर्ण कार्तिकेय को वैदिक ऋषि सनत्कुमार से संयुक्त बताया है.
43. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 456.
44. वही
45. द्विवेदी हरिहर निवास, 'ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला' पूर्वोक्त पृष्ठ 696, फलक 34 चित्र क्रमांक 5.
46. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त पृष्ठ 50.

Scanned by CamScanner

47. सिंह श्री भगवान 'गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमाएँ' प्रथम खण्ड पूर्वोक्त पृष्ठ, 35.
48. ठाकुर एस.आर. पूर्वोक्त पृष्ठ 6 क्रमांक 9.
49. शर्मा राजकुमार पूर्वोक्त पृष्ठ 485, क्रमांक 642.
50. एनुअल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ दी आर्केलॉजिकल डिपार्टमेंट ग्वालियर स्टेट फार विक्रम संवत 1996 ईयर 1939–40 पृष्ठ 37.
51. ठाकुर एस.आर. पूर्वोक्त पृष्ठ 5 क्रमांक 8.
52. शर्मा मोहन लाल पूर्वोक्त पृष्ठ 51 चित्र क्रमाक 12–13.
53. द्विवेदी हरिहर निवास, 'ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला' पूर्वोक्त पृष्ठ 690, फलक 32 चित्र क्रमांक 4–5.
54. द्विवेदी हरिहर निवास, 'त्रिपुरी' पूर्वोक्त पृष्ठ 57.
55. द्विवेदी हरिहर निवास, 'ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला' पूर्वोक्त पृष्ठ 688
56. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 485, क्रमांक 641.
57. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 656.
58. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 485, क्रमांक 639.
59. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 485, क्रमांक 639.
60. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 654.
61. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 655.
62. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 658.
63. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 643.
64. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 644.
65. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 486, क्रमांक 653.
66. शर्मा राजकुमार पूर्वाक्त पृष्ठ 481, क्रमांक 476.

Scanned by CamScanner

7 खजुराहों एक ऐतिहासिक धरोहर

ओमप्रकाश मिश्र

मध्यप्रदेश के जिला छतरपुर में स्थित खजुराहो अपने मंदिरों के लिये सुविख्यात है। नवीं और बारहवीं शती के बीच निर्मित ये मंदिर नागर शैली के बड़ उज्जवल स्वरूप हैं। मंदिर समूह एवं उत्कीर्ण मूर्ति सम्पदा के कारण ये भारत के समान रूप एवं अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय है। खजुराहो आज एक गाँव है जो खजुराहों– सागर अथवा निनौरा – ताल नामक झील के दक्षिण–पूर्वी कोने में बसा है, किन्तु किसी समय यह एक विशाल एवं भव्य नगर था। उस भव्य नगर की गौरव–गाथा, आज भी उन भग्नावशेषों से पढ़ी जा सकती है जो खजुराहों के समीपवर्ती आठ वर्गमील के क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं। प्रतिहार साम्राज्य के पतनोपरांत मध्य भारत में परमार, चन्देल, कलचुरि, कच्छपघात आदि राजवंशों का उदय हुआ। इनमें बुन्देलखण्ड का चंदेल वंश सबसे महत्वपूर्ण था। अभिलेखीय साक्ष्य से पता चलता है कि इस वंश का सर्वप्रथम राजा नन्नुक था और उसने इस क्षेत्र पर 825 से 840 ई. तक राज्य किया। उसके विरुद्ध नृपति अथवा महीपति इस बात का द्योतन करते हैं कि संभवतः वह गुर्जर प्रतिहारों का सामन्त मात्र था। नन्नुक का उत्तराधिकारी वाक्पति था जिसके दो पुत्र थे– जय शक्ति एवं विजय शक्ति। जयशक्ति जिसे जैज्जाक अथवा जेजा भी कहा गया है अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसी के नाम से चन्देलों द्वारा शासित प्रदेश का नाम जैजाकभुक्ति पड़ा। जयशक्ति के बाद विजय शक्ति ने सत्ता अपने हाथ में ली। खजुराहो से प्राप्त एक अभिलेख में कहा गया है कि उसने अपनी विजय योजना में सुदूर दक्षिण तक आक्रमण किया था। अभिलेख के उल्लेख से डॉ. मजुमदार का मत है कि उसने समकालीन पाल सम्राट देवपाल के सहयोगी के रूप में दक्षिण विजय की थी। हर्ष ने अपने शासन काल में चन्देल प्रतिष्ठा की अभूतपूर्व वृद्धि की जिसके मरणोपरातं यशोवर्मन सिंहसन पर बैठा। खजुराहो से प्राप्त एक अभिलेख जो 954 ई. का है उनके अनुार उसने गौंड, खप, कोसल, चेदि, कुरु, मिथिला, मालवा, काश्मीर तथा गुर्जरों पर विजय की। इस अभिलेख के अनुसार उसने एक भव्य विष्णु मंदिर का निर्माण कराया जो खजुराहो का वर्तमान लक्ष्मण मंदिर है। इस मंदिर में प्रतिष्ठित बैकुण्ठनाथ की प्रतिमा को यशोवर्मन ने हेरम्बपाल के पुत्र ह्यपति देवपाल से प्रापत किया। यशोवर्मन के बाद उसका पुत्र धंग राजगद्दी पर बैठा। खजुराहो में उसके राज्य काल के वि.सं. 1011 तथा 1059 के अभिलेख मिले हैं। विजेता के रूप में धंग महान था, किन्तु कला और

Scanned by CamScanner

स्थापत्य के संरक्षक के रूप में वह और भी महान था। उसके राज्यकाल में खजुराहे के दो श्रेष्ठतम मंदिरों– पार्श्वनाथ और विश्वनाथ का निर्माण हुआ। खजुराहो के जगदंबी तथा चित्रकुप्त मंदिर धंग के पुत्र गैंड के समय में बने। इसका शासल काल शांति पूर्ण था। कुछ विद्वानों का विचार है कि खजुराहे का कंदरिया महादेव मंदिर गंड के पुत्र विद्याधर के शासनकाल में निर्मित हुआ होगा। पूर्व मध्यकालीन भारत वास्तुकला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति का युग था जिसमें खजुराहो एक प्रमुख कलातीर्थ के रूप में विकसित हुआ जहाँ मंदिर वास्तु एवं मूर्तिकला एक अद्भुत सम्मिश्रण के रूप में अस्तित्व में आए। खजुराहो का सम्पूर्ण कला जगत विशेष प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है। समस्त वास्तु, प्रतिमाएं तथा अलंकरण विशेष प्रतीकात्मक अर्थ समाहित किये हुए हैं।

जनश्रुति के अनुसार खजुराहे में 45 मंदिर थे, किन्तु अब केवल 25 मंदिर विभिन्न दशाओं में विद्यमान है, जो खजुराहे के आसपास फैले है। सुविधा की दृष्टि से उन्हे साधारणतः तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी। पश्चिमी समूह में सबसे अधिक मंदिर है जिनमें प्रमुख है– कन्दरिया महादेव, लक्ष्मण, विश्वनाथ, देवी जगदम्बी और चित्रगुप्त। ये विशाल मंदिर है। चौंसठ–योगिनी, लालगुआं–महादेव, मातंगेश्वर, नन्दी, पार्वती, बराह तथा महादेव। इनमें अधिकांश बहुत छोटे हैं, किन्तु छोटे–छोटे होते हुए भी कुछ तो स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समूह के सब मंदिर हिन्दू धर्म के हैं– वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर सम्प्रदाय से संबंधित। पूर्वी समूह के मंदिरों को धर्म की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं– (1) हिन्दू मंदिर और (2) जैन मंदिर। प्रथम वर्ग में ब्रह्मा, वामन तथा जवारी और द्वितीय वर्ग में घंटाई, आदिनाथा तथा पार्श्वनाथ आते हैं। दक्षिणी समूह में मात्र दो महत्वपूर्ण मंदिर है जिनमें एक है दूलादेव और दूसरा चतुर्भुज अथवा जतकारी। दोनों हिन्दू धर्म से संबंधित है। इनके अतिरिक्त कुछ मंदिरों के भग्नावशेष भी उपलब्ध है।

शिव सागर झील के दक्षिण–पश्चिम में कणाश्म चट्टान पर स्थित शाक्त सम्प्रदाय से संबंधित यह मंदिर योजना और निर्माण शैली में असामान्य है। छत विहीन आयताकार यह मंदिर एक ऊँची जगती पर बना हुआ है। इस मंदिर का विन्यास दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की दिशा में है। $102\frac{1}{2} \times 59\frac{1}{2}$ फीट के क्षेत्रफल पर विस्तृत उसका प्रांगण चारों ओर 67 कोठरियों से परिवृत्त था जिसमें अब मात्र 45 बची हुई हैं। दक्षिण पश्चिम की दीवार के मध्य वाली कोठरी अन्य कोठरियों से बड़ी है और इसके पास एक संकीर्ण द्वार है जिसमें होकर मंदिर के चारों ओर बने हुए संकीर्ण मार्ग में प्रवेश किया जाता है। कोठरियाँ नितांत सादी हैं और प्रत्येक में एक छोटा प्रवेश द्वार है। बिना अलंकरण के होते हुए भी इन छोटे मंदिरों (कोठरियों) में खजुराहो शैली के कुछ मूलभूत तत्व जैसे ऊँची जगती और दो बांधों में विभक्त जंघा, विद्यमान है। कंनिघम का विचार था कि बीच में काली या शिव का मंदिर रहा होगा किनतु इसके प्रमाण नहीं मिल सके। यहाँ से केवल महिषासुर मर्दिनी, ब्रह्माणी एवं इन्द्राणी की प्रतिमा प्राप्त हुई है। महिषासुर मर्दिनी के पाद पीठ पर हिंगलाज लेख उत्कीर्ण है। स्थापत्य, शिल्प तथा मूर्तियों में अंकित लिपि के आधार पर इसे नवीं शती ई. के अंत का मान सकते हैं।

कन्दरिया महादेव मंदिर :–

यह खजुराहो का विशालतम मंदिर है। मध्य भारतीय स्थापत्य कला का यह भव्यतम स्मारक की सर्वोत्कृष्ट वास्तु कृतियों में अपना विशिष्ट स्थान रखता हे। इसकी लम्बाई 102 फुट 3 इंच, चौड़ाई 66

Scanned by CamScanner

फुट 10 इंच और ऊँचाई 101 फुट 9 इंच है इसमें खजुराहो मंदिर के पूर्ण विकसित अंगों – अर्ध मण्डप, मण्डप, महामण्डप, अंतराल, गर्भगष्ह, प्रदक्षिणा पथ का समन्वय समस्त वास्तु के एकीकरण में चारू रूप दिखाई देता है। खजुराहे में कन्दरिया ही एकमात्र मंदिर है जिसकी जगती में दोनों पाश्वों में और पीछे की ओर भद्र है। इस मंदिर का अधिष्ठान भी अन्य मंदिरों के अधिष्ठानों से ऊँचा है, जिसमें गज, अश्व, योद्ध–आखेटक, नट, विविध वाद्य यंत्रों से युक्त संगीतज्ञ, नर्तक, नर्तकियाँ, भक्त, मिथुन आदि नाना प्रकार के दष्श्य उत्कीर्ण है। अधिष्ठान के कलश और कुम्भ में छोटी–छोओी रधिकाएँ हैं जिनमें युग्म प्रतिमाएँ हैं। जंघा में तीन मूर्ति पंक्तियाँ हैं, जिनमें अन्य सभी मदिरों से अधिक मूर्तियों की बड़ी मनोहर छटा देखने को मिलती है। इनमें देव–देवियाँ, मिथनु, अप्सराएँ, सुर–सुन्दरियाँ, शार्दूला, नाग–नागिन आदि हैं। इस मंदिर की मूर्तियाँ विशेषतः विविध रूपों में उकेरी अप्सराएँ, अपनी आकर्षक भाव भंगिमाओं के कारण विशेष दर्शनीय है। बारीकी से तराश कर गढ़े गये उनक अंग बड़े मनोहर हैं और उनकी मुख मुद्राएँ आन्तरिक तीव्र मनोवृत्तियों और उद्वेलित भावों की परिचायक हैं। ये खजुराहो–शिल्प की अत्यनत मनोरम कृति है। इस मंदिर के महामण्डप से प्रापत अभिलेख के आधार पर इसकी तिथि 1025–50 ई. निर्धारित की जा सकती है।

लक्ष्मण मंदिर :–

रेतीले पत्थर के बने सुन्दर और पूर्ण विकसित खजुराहो मंदिरों में यह प्राचीनतम् है। यह वैष्णव मंदिर है जो पंचायतन शैली के सांधार प्रासाद में बना हुआ है। मंदिर की लम्बाई 98 फीट तथा चौड़ाई 45 फीट 3 इंच है। मंदिर की जगती के चारों कोनों पर चार गौण मंदिर बने हैं। द्वार शाखाओं पर विष्णु के विभिन अवतारों, पत्रलताओं आदि के चित्र हैं। गर्भगृह में 4 फुट 1 इंच ऊँची विष्णु के वैकुष्ठ रूप की मूर्ति अलंकृत तोरण के मध्य स्थित है। मंदिर के महामण्डप और अन्तराल के स्तम्भ शीर्ष कीशाल भंजिकाएँ तथा प्रवेश द्वार का अलंकृत मकर तोरण खजुराहो–कला की अद्भुत कृतियाँ हैं। जिनमें देवी–देवताओं, शार्दूल और अप्सराओं की मन भावनी प्रतिमाएँ हैं। इस मंदिर की जगती की रूप पट्टिका सर्वाधिक सुरक्षित अवस्था में हैं, जिसमं अंकित नाना प्रकार के दृश्य देखते ही बनते हैं, आखेट और युद्ध के दृश्य, हाथी घोड़ों की समारोह यात्राएँ, विविध आयुधों से सुसज्जित सैनिकों की रण यात्राएँ, अनेक पारिवारिक दृश्य तथा मिथुन चित्रण आदि दर्शनीय है। उत्कीर्ण मूर्ति–सम्पदा की दृष्टि से यह मंदिर खजुराहो की विलक्षण वास्तु–शैली का बड़ा उज्जवल स्वरूप है। माँ–शिशु, पत्र लिखती युवती, दर्पण में मुंह देखती सुन्दरी, जो राष्ट्रीय संग्रहालय कलकत्ता में प्रदर्शित है इसी मंदिर की है। इसकी कुछ मूर्तियाँ तो मध्यकालीन कला में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

विश्वनाथ मंदिर :–

विश्वनाथ मंदिर लम्बाई में 89 फीट और चौड़ाई में 45 फिट 10 इंच है। यह शिव के निमित्त बना था, जिनकी प्रतिमा गर्भगृह–द्वार के ललाट विम्ब में प्रदशित है। यह पंचायतन शैली का सांधार प्रासाद है। विकसित खजुराहो शैली के सर्वोत्तम मंदिरों में विश्वनाथ एक है। वास्तुकला की दृष्टि से यह लक्ष्मण और कन्दरिया के बीच की कड़ी है। इसका तल छन्द कन्दरिया के बहुत सामान है। जंघा पर समान आकार की तीन समानान्तर मूर्ति पंक्तियों का प्रदर्शन इन दो मंदिरों की एक विशिष्टता है। दोनों की प्रधान अधिष्ठान रधिकाओं में समान क्रम से गणेश और वीरभद्र के साथ नृत्य करती सप्तमातृकाओं की मूर्तियाँ

Scanned by CamScanner

है। दोनों मंदिरों के शिखर भी निर्माण शैली की दृष्टि से समरूप दीवार पर लगे दो शिला। लेखों में बड़ा लख इसी मंदिर का है। इसमें धंग के द्वारा विक्रम सं. 1059 (1002 ई) में शम्भ मरकतेश्वर के मंदिर के निर्माण और उसमें मरकत तथा पाषाण निर्मित दो लिंगों की स्थापना का उल्लेख है।

जगदम्बी और चित्रगुप्त मंदिरः

जगदम्बी मंदिर 73 फीट 3 इंच लम्बा और 42 फुट 1 इंच चौड़ा है और चित्रगुप्त 74 फीट 3 इंच लम्बा और 51 फीट 9 इंच चौड़ा है। दोनों योजना, निर्माण शैली तथा अलंकरण की दृष्टि से समरूप है। जिस प्रकार दोनों एक दूसरे से सटे हुए निर्मित हैं उसी प्रकार दोनों निर्माण काल की दृष्टि से भी एक दूसरे के बहुत निकट हैं। दोनों निराधार प्रासाद है और उनमें गर्भगृह, अंतराल, महामण्डल तथा अर्धमण्डप है। चित्रगुप्त मंदिर में समारोह यात्रा का अंकन है। जगदम्बी मंदिर में अष्टवसुओं के चित्रण का अभाव है। चित्रगुप्त के भीतर महामण्डप के चारों ओर द्वार पालों के छः युगल हैं किन्तु जगदम्बी में मात्र तीन युगल हैं। इन दोनों मंदिरों की मूर्तियाँ बहुत कुछ विश्वनाथ की मूर्तियों के सदृश्य है किन्तु वे उतनी पतली और सुकुमार नहीं जितनी कन्दरिया की मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार शैली की दृष्टि से जगदम्बी–चित्रगुप्त, विश्वनाथ और कन्दरिया के बीच आना चाहिए इसलिए उनकी निर्माण तिथि 1000 – 1025 ई. मानी जा सकती है।

पार्श्वनाथ मंदिर :अभिलेख, वास्तु तथा शिल्प संबंधी साक्ष्यों के आधार पर पार्श्वनाथ मंदिर लक्ष्मण मंदिर के ठीक बाद बना प्रतीत होता है। श्री कृष्णदेव ने इन दोनों मंदिरों के अनेकश शिल्प एवं वास्तु संबंध ाो पर प्रकाश डाला कर उनके कालक्रम सानिध्य को स्पष्ट किया है। इस पमंदिर में उरश्रृंगों की दो कर्णश्रृगों की तीन पंक्तियाँ देखने को मिलती है। उर्ध्व पंक्ति में विषधरों का चित्रण परवर्ती खजुराहो मंदिरों की एक विशिष्टता है जिसका श्री गणेश इसी मंदिर से हुआ है। इस मंदिर की जंघा में उत्कीर्ण अप्सराएँ अथवा सुर सुन्दरियाँ मूर्ति कला के उत्कृष्ठ उदाहरण है और है शिल्पीकरण के अलौकिक लालित्य की परिचायक। शिशु को दुलराती, पत्र लिखती नन्ही मानव आकर्षति द्वारा पैर से कांटा निकलवाती, श्रृंगार–प्रसाधन करती आदि अप्सराएँ विशेष दर्शनीय है। जैन धर्म से सम्बद्ध होने के कारण इस मंदिर में जैन देवी–देवताओं की मूर्तियाँ तो उत्कीण हैं ही किन्तु हिन्दू देव–प्रतिमाओं का अभाव नहीं है। लक्ष्मण मंदिर के समान इनमें भी वैष्णव चित्रण की प्रचुरता है। शंख पुरुष, परशुराम, बलराम, रेवती राम–सीता, हनुमान कृष्णलीला आदि चित्रण विशेष दर्शनीय हैं। वैष्णव, मूर्तियों के साथ–साथ शिव, कामरति, दिगपाल, नवग्रह आदि भी चित्रित हैं।

अन्य मंदिर :–

उपरोक्त प्रमुख मंदिरों के अतिरिक्त खजुराहो में ब्रह्मा और लालगुंआ महादेव मंदिर, मातगेश्वर मंदिर, वराह मंदिर, नंदी वामन मंदिर, आदिनाथ मंदिर, चतुर्भुज मंदिर, दूलादेव मंदिर एवं घंटई मंदिर प्रमुख है। इनमें खजुराहों की चन्देल कला शैली का स्पष्ट अंकन दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त महादेव मंदिर, पार्वती मंदिर, चोप्राताल प्रमुख हैं।

Scanned by CamScanner

पुरातत्व संग्रहालय :–

खजुराहों में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीन एक अच्छा संग्रहालय है जिसमें स्थानीय प्रतिमाओं का संग्रह है। इनमें गणेश, पार्वती, सदाशिव, वराह, हरिहर, षटभुज गणपति, सिंह वाहिनी गजलक्ष्मी, सप्तमातृका पट्ट, मौनव्रती विष्णु, शेषशायी विष्णु, उमा–महेश्वर आदि प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं।

मूर्तिकला :–

खजुराहों मंदिर समूह वास्तुशिल्प के आधार पर ही प्रसिद्ध नहीं है बल्कि मूर्तिकला के आधार पर भी यह काफी प्रसिद्धि प्राप्त है। इनमें पाँच वर्गों की मूर्तिया विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में गर्भगृहों में पूजार्थ मूर्तियाँ जो प्रायः चारों ओर से उकेर कर बनाई गई है। ये सामान्यतः समभंग में प्रदर्शित है। परिवार, पार्श्व और आवरण देवताओं की मूर्तियाँ द्वितीय वर्ग के अंतर्गत आती हैं, जो रथिकाओं में स्थित अथवा मंदिर की जंघाओं में उत्कीर्ण हैं। ये अंशतः अथवा चारों ओर से उकेर कर बनाई गई हैं। ये देवी–देवतासामान्यतः त्रिभंग में खड़े हैं। तृतीय वर्ग में अप्सराएँ अथवा सुर–सुन्दरियाँ आती हैं, जो खजुराहों की सर्वोत्तम मूर्तियाँ हैं। मंदिरों के विभिन्ना भागों में कोर कर अथवा अंशतः कोर बनाई गई सब सुर–सुन्दरियाँ सर्वोत्कृष्ट वस्त्राभूषणों से अलंकृत, मनोहारी कांति से युक्त तथा अत्यंत सुन्दर हैं, इन चिर–परिचित मानव क्रियाकलाओं के पीछे एक गहन मर्म छिपा है। यह चित्रणक सांकेतिक रूप से आत्मा में सौंदर्य के संविलय की मोह जनक शक्ति का बोध कराता है। चतुर्थ वर्ग में युद्ध, आखेट, परिवार के दृश्य, गुरू शिष्य, र्कारत श्रमिक, संगीत और नृत्य में तल्लीन नर–नारियाँ, मिथुन युगल, मिथनु समूह आदि हैं। अंतिम पाँचवे वर्ग में व्यक्ति, वराल, विराल आदि आते हैं जो कल्पित पशु हैं वस्तुतः खजुराहों की कला समकालीन कलाओं में सर्वश्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार से खजुराहो मंदिर वास्तुकला के विभिन्न अंगों का निर्माण केवल सौन्दर्य की दृष्टि से नहीं किया गया है बल्कि उनके मूल में विशेष प्रयोजन एवं उद्‌देश्य अंतर्निहित रहे हैं। इन्हीं उद्‌देश्यों की पूर्ति से मंदिर वास्तु में पूर्णता आती है और इसीलिए यह मंदिर आध्यात्मिक शांति और आनंद प्रदान कर पाते हैं।

सन्दर्भः–

1. महेशचंद्र जोशी, युगयुगीन भारतीय कला, पृ. 188
2. नारदीय वास्तुविधान, अध्याय 8 तथा 10
3. द्विजेन्द्रनाथ षुक्ल, समरांगण सूत्रधार, भाग–3, प्रासाद निवेश, पृ. 24
4. जनार्दन मिश्र, भारतीय प्रतीक विद्या, पृ. 70, 71
5. गरूड़पुराण 28/3
6. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, प्रासाद निवेश पृ. 30
7. महेशचंद्र जोशी, युगयुगीन भारतीय कला, पृ. 193
8. हरिवंशपुराण , सर्ग 31
9. स्कन्दपुराण 12/9/23, द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल पृ. 80
10. शतपथ ब्राह्मण. 1/3/3 तथा 12
11. अग्निपुराण 42/20, 42/24, 43/6

Scanned by CamScanner

8 अमरकटंक की कलचुरीकालीन कला एवं स्थापत्य

मोहन लाल चढ़ार

अमरकटंक 22⁰, 66',67''उत्तरी अक्षांश से 81⁰, 75',00'' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। अमरकंटक मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले की पुष्पराजगढ तहसील में स्थित है। अमरकटंक का नाम रामायण, महाभारत, स्कन्दपुराण में **ऋक्षवान** पर्वत के नाम से उल्लेख है।[1] इसी कारण स्कन्दपुराण में नर्मदा को ''ऋक्षपादप्रसूता'' कहा गया है। रामायण काल में ऋक्ष पर्वत पर सम्भवतः ऋक्षराज जामवंत रहते थे। डॉ. सांकलियां के अनुसार यह ऋक्ष प्रजाति के थें।[2] इसी कारण इस पर्वत का नाम ऋक्ष या ऋक्षवान पर्वत पडा होगा। कालीदासकृत रघुवशम्, मेघदूतम में अमरकटंक का नाम **आम्रकूट** मिलता है।[3] इसे **सर्वोदयतीर्थ** भी कहा जाता है। अमरकटंक को साहित्य में **मैकल** भी कहा गया है।[4] प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य, लौकिक साहित्य एवं पुरातात्विक स्त्रोंतों सें अमरकंटक से सम्बन्धित अनेक जानकारी मिलती है। रामायण, महाभारत, बिष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, पद्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश पुराण, स्कन्द पुराण, शिवपुराण, ब्राम्हाण्ड पुराण, अग्निपुराण, मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, शतपथ बाम्हण, विष्णु संहिता, पुतजली का महाभाष्य, कालीदास के रघुवशम्, मेघदूतम, मालविकाग्निमित्रम् एवं अमरकोश से अमरकटंक की प्राचीनता सिद्ध होती है।[5] सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद श्री बैगलर ने सन् 1873 में शहडोल जिले का पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण किया था। उनके प्रतिवेदन में अमरकटक क्षेत्र में शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त ध र्म की चर्चा की गई है। कनिघंम महोदय *एवं* प्रों. एच.डी. सांकलिया महोदय ने भी अमरकटंक क्षेत्र का अनौपचारिक सर्वेक्षण किया था। उन्होने लंका को अमरकटंक के आसपास स्थित बताया था। डी. डेरा और पीटरसन ने नर्मदा नदी का सर्वेक्षण कार्य कर अनेक प्रागैतिहासिक पुरावशेष खोजे थे।[6]

अमरकंटक की कला एवं स्थापत्य कलचुरीकालीन है। अमरकटंक से प्राप्त प्राचीनतम् मंदिर व मूर्तियॉ कलचुरि शासकों द्वारा निर्मित है। जो उत्तर भारत के प्रतिहार शासकों के बाद में इस भूभाग पर शासक हुए थे। यह चंदेल शासकों के समकालीन थे। अमरकंटक पर्वत एवं नर्मदा नदी दोनों का संबंध शिव से होने के कारण अमरकंटक का महत्व प्राचीन काल से भारतीय समाज व संस्कृति में अधिक रहा है। स्कंद पुराण के रेवाखण्ड में नर्मदा की उत्पत्ति की विस्तृत चर्चा है। नर्मदा नदी के धार्मिक महत्व को दृष्टिगत करते हुए इनके तटों पर विभिन्न स्थानों पर समय–समय मंदिरों का निर्माण हुआ जो आज भी पवित्र

Scanned by CamScanner

पुरास्थल के रूप में विद्यमान है। कलचुरि राजवंश के त्रिपुरी शाखा के अधिकांश शासक शैव मतावलम्बी थे, अमरकंटक का शिव से संबंध होने के कारण इन शासकों का यहां से झुकाव स्वाभाविक था। अतः इनके द्वारा अमरकंटक में मंदिरों का निर्माण कराया गया। कलचुरि वंश के पतन के उपरांत इस क्षेत्र पर रीवा क्षेत्र के बघेल एवं 15–16वीं शती ईस्वी में मण्डला क्षेत्र के गौंड शासकों का आधिपत्य रहा। इन शासकों द्वारा अमरकंटक में मंदिरों का निर्माण कराकर शिव एवं नर्मदा को अपनी श्रद्धा अर्पित की गयी। 18वीं–19वीं शती में मराठा शासकों का वर्चस्व बढ़ने पर इनके द्वारा भी अमरकटंक में विभिन्न मंदिरों का निर्माण कराया गया। होल्कर वंश की शासिका देवी अहिल्या परम महेश्वर शिव की आराधक थी। इन्होने भी अमरकंटक में मंदिरों का निर्माण कर यहां की स्थापत्य कला को प्रोत्साहित किया जो अमरकंटक के प्रति श्रद्धा के रूप में आज भी विद्यमान है। इन मंदिरों को निर्माण काल के आधार पर इन्हें दो कालों में बांटा जा सकता है। कलचुरिकालीन एवं परवर्ती काल में निर्मित मंदिर जिनका विवरण इस प्रकार है। अमरकंटक का महत्व यद्यपि गुप्तकाल तक स्थापित हो चुका है, जिसकी पुष्टि कालीदास के साहित्य में आम्रकूट के उल्लेख से होती है, अभी हाल में अमरकटंक से लगभग 60 किलोमीटर दूर शिवलहरा से गुप्तकालीन अभिलेख व गम्भीरवाटोला से उत्खनन में गुप्तकालीन पुरावशेष मिले है।[1] ऐसा प्रतीत होता है, कि 8वीं शती के उत्तरार्द्ध में शंकराचार्य द्वारा यहां पर शैव केन्द्र स्थापित करने के उपरान्त कालचुरि शासकों द्वारा यहां निर्मित मंदिरों में मच्छेन्द्रनाथ मंदिर, केशव नारायण मंदिर, पातालेश्वर मंदिर एवं एक अन्य त्रिआयन कर्ण मंदिर उल्लेखनीय है,[2] इनका विवरण निम्न प्रकार है:–

कलचुरीकालीन प्राचीन मंदिर परिसर अमरकटंक

Scanned by CamScanner

मच्छेन्द्रनाथ मंदिरः– यह मंदिर कर्ण मंदिर के समीप स्थित है, इस मंदिर की योजना में आयताकार मण्डप एवं वर्गाकार गर्भगष्ह है। मंदिर पंचरथ योजना में निर्मित है। इस मंदिर के अधिष्ठान में समतल बन्धन के ऊपर कुमुद बन्धन है, तदुपरान्त पुनः सामान्य बन्धनों की श्रंख्खला है। इन बन्धनों की योजना गर्भगष्ह एवं मण्डप की दीवारों में भी है। गर्भगष्ह के अधिष्ठान में चार अन्य बन्धनों का समावेश किया गया है, जिनमें से सबसे ऊपर बन्धन का समावेश किया किया गया है, जिनमें से सबसे ऊपरी बन्धन, लता कर्ण अलंकरण से अलंकृत है। जंघा की दीवार एक पटिटका से दो भागों में विभाजित है। ऊपरी भाग निचले की तुलना में कम चौड़ा है। भद्ररथों में कुडश स्तम्भों से घिरे हुए दो देव कुलिकाएं रिक्त है। ऐसा प्रतीत होता है, कि देव कुलिकाओं से प्रतिमाओं को कालान्तर में हटा लिया गया है। कर्ण मंदिर के अनुरथों में लता कर्म से अच्छादित त्रिमुख कीर्तिमुख का शिल्पांकन है। एक अन्य भद्ररथ में उरूश्रंग का लघु रूप दिखाया गया है। कलचुरी मंदिरों में सुन्दर लताओं की कलाकषतियों का अंकन किया गया है। अन्तराल की बाह्य दीवार में भी दो देव कोष्ठ है, जिनमें रत्नपुष्प का शिल्पांकन है। जंघा की दीवार के ऊपर चार उभारदार बन्धनों की श्रंष्खला है। भद्ररथ को नीचे से आमलसार तक बढ़ाया गया हैं, जबकि अन्य रथों को आमलसार के नीचे तक ही बढ़ाया गया है। मंदिरों में भद्ररथ की तुलना में कर्णरथ छोटे है। ये रथ 10 भूमियों में विभक्त है। मंदिरों के शिखर आकार प्रकार में उड़ीसा के मंदिरों से साम्य रखते है। शिखर के ऊपर आमलसार, आमलसारिका तदुपरान्त कलश एवं बीजपूरक शिखर को पूर्णतः प्रदान करते है। शिखर के उत्तरी व दक्षिणी भाग में बाहर की ओर देवकोष्ठ बनाये गये है, जिसमें चन्द्रशिला अलंकरण है। ये देवकोष्ठ कुडश स्तम्भों सहित दोहरे रत्नपुष्प अलंकरणों से आच्छादित है। मण्डप की दीवार में प्रयुक्त स्तम्भ अधिष्ठान के ऊपर लताकर्म से अलंकृत है तथा पटिटाएं हीरक एवं लताकर्म अलंकरणों से अलंकष्त है। धरणियां भी लताकर्म पटिटका से अलंकष्त है। मण्डप का प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। मण्डप की छत फांसना शैली में निर्मित रही होगी जो अब नष्ट प्राय है। शिखर में पूर्व की ओर बढ़ाया गया देवकोष्ठ कर्णेश्वर मंदिर के समान है। उदाहरणार्थ यहां पर पांच देव कोष्ठ को एक पटिटका हैं, जिनमें रत्नपुष्प अलंकरण है। मध्य के देवकोष्ठ में दो पुष्प जबकि अन्य कोष्ठकों में मात्र एक पुष्प का शिल्पांकन है। तदुपरांत सात पटिटकाओं के ऊपर चन्द्रशिला अंलकरण है। शुकनासा में गजसिंह की आकषति शिल्पांकित है। यहां बैठे हुए गज के ऊपर सिंह को दिखाया गया है। जिसका गज तुण्ड ऊपर की ओर उठा हुआ है। जिसे सिंह द्वारा अपने पंजे से आघात करता शिल्पांकित किया गया हे। यह शिल्पांकन उड़ीसा कला शैली का प्रभाव अमरकटंक की कलचुरिकालीन कला पर दर्शाता है। मंदिर का प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। द्वार शाखाएँ सादी है, परंतु छोटी है। द्वार शाखाओं में लताकर्म के साथ–साथ रूप स्तम्भ शाखा का भी शिल्पांकन किया गया है। उदुम्बर लताकर्म से अलंकृत है। उत्तरंग में इन शाखाओं की लघु आकृतियां शिल्पांकित हैं, जबकि राधिका में लताकर्म का शिल्पांकन है। आयताकार मण्डप के आन्तरिक भाग में चार गोलाकार स्तम्भ है, इन स्तम्भों की लम्बाई 2.10 मीटर है। मण्डप में 1. 55 मीटर की ऊंचाई पर कक्षासन निर्मित है। इन आसनों की चौड़ाई 65 से.मी. है तथा इन पर 1.10 मीटर के लघु स्तम्भ है, जो वितान को समर्थन दे रहे है। ये लघु स्तम्भ प्रत्येक दिशा में चार–चार है, इस प्रकार मण्डप में लघु स्तम्भों सहित कुल 12 स्तम्भ है, जिन पर मण्डप की धरणियां आधारित है। मण्डप का वितान नौ वर्गाकार भागों में धरणियों द्वारा विभाजित है। जिनमें से मध्य का वितान विकसित कमल से अलंकष्त है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार का माप 1.40 X 70 मीटर है। द्वार शाखाएं रेखा कर्म के अलंकरण के अतिरिक्त

Scanned by CamScanner

सादी है। ललाट विम्ब पर नष्त्य गणेष का शिल्पांकन है। वर्गाकार गर्भगष्ह का माप 2.90 मीटर है। गर्भगष्ह की दीवार में चारों कोनों पर कडश स्तम्भ है, जो गर्भगष्ह के धरणियों को मजबूती प्रदान करते है। गर्भगष्ह के मध्य में अर्ध्य पटट पर शिवलिंग प्रतिष्ठित है।[8]

कर्ण मंदिरः— त्रिआयतन शैली में यह मंदिर एक ऊंची जगती पर निर्मित है तथा तीनों गर्भगृह एक ही मण्डप में जुड़े हुए है। महामण्डप वर्गाकार है। इसकी प्रत्येक भाग का माप 5.75 मीटर है। मण्डप में पूर्व भाग में मूल मंदिर पश्चिमाभिमुखी है, जबकि उत्तरी व दक्षिणी ओर दो अन्य मंदिर है। प्रत्येक मंदिर में आयताकार अन्तराल एवं वर्गाकार गर्भगृह है। ये तीनों गर्भगृह सप्तरथ योजना में निर्मित है। माना जाता है कि, इस मंदिर का निर्माण कलचुरि शासक लक्ष्मीकर्ण या कर्ण द्वारा करवाया गया था। मूल मंदिर कर्णेस्ता मंदिर समूह में निर्मित यह मंदिर पश्चिमाभिमुखी है। सप्तरथ योजना में निर्मित इस मंदिर के अधिष्ठान में सामान्य बन्धन के ऊपर मुकुद बन्धन तदुपरान्त पुनः एक बन्धन है। जिसके ऊपर खुर बन्धन एवं पुनः कुमुद तथा एक अन्य बन्धनों की श्रृंखला है। मंदिर के जंघा की दीवार दो बन्धनों से क्षैतिज रूप से तीन भागों में विभाजित है, जिसमें ऊपरी भाग, नीचले भाग से अपेक्षाकृत छोटा है। अंतराल की दीवार में देव कोष्ठक गर्भगृह की दीवार सात रथों में विभाजित है। भद्र रथ में तीन देव कोष्ठ निर्मित है। इस प्रकार अंतराल एवं गर्भगृह की दीवार में निर्मित देवकोष्ठ रिक्त है। मध्य के रथ चैत्य अलंकरणों से अलंकृत है। गर्भगृह के प्रत्येक रथ को ऊपर तक बढ़ाया गया है, जिसमें से भद्र रथ की ऊँचाई आमलसार तक बढ़ाया गया है, तदुपरांत आमलसारिका स्थापित की गई है। शिखर 17 भूमियों में विभाजित है। इन भूमियों की गणना कर्णरथ के शिखर में स्थापित है। कलश के आधार पर निर्धारित की गई है। इन सभी रथों में लताकर्म का अलंकरण है।गर्भगृह के प्रवेश द्वार के ललाट विम्ब के ऊपर ऊर्ध्वाकार पटिटका में दो क्षैतिज बन्धन है, जिसके ऊपर पांच देव कोष्ठ निर्मित है, ये सभी देव कोष्ठ वर्तमान में रिक्त है। इस पटिटका के ऊपर शुक्रनासिका है। इसकी ऊँचाई अधिष्ठान से तीन मीटर है। आमलाकार के ऊपर चन्द्रिका तदुपरांत आमल सारिका एवं पुनः चन्द्रिका तथा कलश विद्यमान है। मंदिर का विनिर्गम मकराकृति प्रकार की उत्तारी दिशा में है, जिससे होकर अर्ध्यजल बाहर निकलता है। मंदिर के प्रवेश द्वार का माप 1.96 X 0.97 मीटर है। इसके दोनो ओर कुडश स्तम्भ है, जो काष्ठकों को समर्थन दे रहे है। तदुपरांत तीन विस्तृत पटट है। ये पटिटकाएं, लताकर्म, मालाकर्म एवं रत्नपुष्प अलंकरण से अलंकृत है। कुडश स्तम्भों में भी लताकर्म अलंकरण है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार पंच शाखा प्रकार का है, जिसका निचला भाग सादा है। तदुपरांत पंच शाखाओं में विभाजित है। ये शाखाएं क्रमशः अन्दर की ओर से पत्र शाखा, रूप स्तम्भ, खल्व शाखा एवं सिंह शाखा है। रूप शाखा में रेखा कर्म का भी अलंकरण है। इसी प्रकार उदुम्बर भी लताकर्म अलंकरण से अलंकृत है। उत्तरंग में पत्र शाखा, त्रिशाखा, मालाधर, छज्जी, फालना, रधिका, कण्ठ और उद्गम आदि का प्रावधान है, जिसमें पत्र शाखा सबसे निचली पटटी है। मालाधर, पटिटका, लताकर्म और फासना रेखाकर्म से अलंकृत है, जबकि उद्गम में रत्नपुष्प एवं ललाट विम्ब पर विकसित पुष्प है। उत्तरंग की शेष शाखाएं सादी है। अंतराल का माप 2.12 X 1.10 मीटर है। यह दक्षिणी गर्भगृह से अपेक्षाकृत बड़ा है एवं दोनों कोनो पर स्तम्भ निर्मित है। इन कुडश स्तम्भों का माप 5.5 मीटर है। मंदिर के आयताकार गर्भगृह का माल 2.75 X 2.65 मीटर हे। इसके प्रत्येक कोनो पर कुडश स्तम्भ है। गर्भगृह में अर्धपटट विद्यमान है तथा निर्गम उत्तर की ओर है। गर्भगृह का वितान नीचे चौकोर तद्परान्त अष्टकोणीय है, जिसके मध्य से विकसित कमल का शिल्पांकन है। इस प्रकार उत्तरी गर्भगृह का प्रवेश

Scanned by CamScanner

द्वार अधिष्ठान और अंतराल सुरक्षित है। कर्ण मंदिर के लगभग 200 फीट उत्तर की ओर स्थित एक मंदिर के भग्नावशेष है।[9]

केशव नारायण मंदिर :– यह मंदिर भी मच्छेन्द्र नाथ के सपीप ही स्थित है। ऊँची जगती पर निर्मित इस मंदिर में कालान्तर में पश्चिमी ओर एक अन्य देवालय भी निर्मित किए गए। इस प्रकार निर्मित वर्गाकार महामण्डप में दोनों गर्भगृह खुलते है। दोनों देवालयों में वर्गाकार गर्भगष्ह एवं आयताकार अंतराल है। दोनों ही देवालय पंचरथ योजना में निर्मित है तथा दोनों का प्रवेश द्वारा मण्डप में है। दक्षिणी देवालय उत्तराभिमुखी एवं पश्चिमी देवालय पूर्वाभिमुखी है। दक्षिणी मंदिर के अधिष्ठान में तीन बन्धनों की एक श्रृखला है, जिसमें मध्य का बन्धन कुमुद बन्धन एवं दो अन्य सामान्य बन्धन है, तदुपरान्त पुनः चार बन्धनों के द्वारा अधिष्ठान को ऊँचा उठाया गया है। इन बन्धनों में दो बन्धन घट एवं कुमुद अलंकरण युक्त है तदुपरान्त पतले बन्धन पटिटका के ऊपर पुनः कुमुद बन्धन है। जंघा की दीवार मच्छेन्द्रनाथ मंदिर की जंघा की तरह एक पटिटका द्वारा दो भागों में विभाजित है। जंघा की दीवार में मध्य के रथ में दो देव कोष्ठ कुडश स्तम्भ सहित है। जिनमें रत्नपुष्प का शिल्पांकन है। अंतराल की दीवार मे भी जंघा दीवार की तरह देव कोष्ठ है। ये सभी देव कोष्ठ चैत्योदगम अलंकरण से अलंकृत है। जंघा के ऊपर मंचिका में चार बन्धन है। तदुपरांत मंदिर का भाग निर्मित है। शिखर में भद्ररथ को आमलसार तक तथा अन्य रथों को ग्रीवा तक बढ़ाया गया है। इस प्रकार कर्णरथ देखने में वामनाकृत (ढ़ेगना) लगते है। कर्णरथ को 12 भूमियों में विभक्त किया गया है। यद्यपि शिखर का जीर्णोद्धार किया गया है यथापि मूल आमलसार एवं चन्द्रिका सहित शिखर सुरक्षित है। यह मंदिर वास्तु एवं शिल्प संयोजन में मच्छेन्द्र नाथ मंदिर से साम्य रखता है। इस समूह का दूसरा देवालय पूर्वाभिमुखी है, मंदिर का मण्डप वर्गाकार कक्षासनो सहित सुरक्षित है। कक्षासनों पर आधारित स्तम्भ मण्डप के वितान को संभाते हुए है। इस प्रकार पातालेश्वर मंदिर के समान स्तम्भ एवं स्तम्भिकाएं मण्डप को समर्थन दे रही है। मण्डप का प्रवेश द्वार पूर्व की ओर कुडश स्तम्भों सहित लघु द्वार युक्त है। जिसमें 5 या 6 सौपानों से होकर मण्डप में पहुंचा जा सकता है। गर्भगष्ह एवं मण्डप के प्रवेश द्वार के ललाट विम्ब पर गणेश का शिल्पांकन है। मंदिर का अधिष्ठान भाग मलबे में दबा हुआ है तथा मंदिर का जीर्णोद्धार कार्य किया गया है। मण्डप की छत फासना शैली में निर्मित है। जिस पर आमलसार, आमलसारिका, चन्द्रिका एवं कलश सुरक्षित है। इस मंदिर में लगभग 5 फिट ऊची लाल बलुआ पत्थर से निर्मित विष्णु की प्रतिमा स्थापित है।[5] पूर्वीमुखी मंदिर एक प्रतिमा रखी है। किन्तु इसकी पहचान करना कठिन है।[10]

पातालेश्वर मंदिर :–यह मंदिर मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के समीप ही स्थित है। निर्माण योजना में यह मंदिर मच्छेन्द्रनाथ मंदिर से साम्य रखता है, इसके भू–विन्यास में वर्गाकार गर्भगृह एवं आयताकार मण्डप है, मंदिर का प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है। मंदिर के अधिष्ठान में सामान्य बन्धनों की श्रंखला है। तदुपरान्त चार गहरे बन्धन, सामान्य बन्धन एवं कुमुद बन्धन है। जंघा की दीवार एवं पटिटका द्वारा दो भागों में विभाजित हैं। जंघा की यह संयोजना अंतराल की दीवार में भी है, परंतु अलंकरण के संयोजना में मंदिर मच्छेन्द्रनाथ मंदिर से भिन्न है। मध्य रथ में नीचले भाग अपेक्षाकृत बड़ा देव कोष्ठ कुडश स्तम्भों के मध्य बनाया गया है, जिसमें रत्नपुष्प का अलंकरण है, जबकि अन्य रथों के देव कोष्ठों के ऊपर छज्जा बढ़ायी गई हे। अंतराल की दीवार को भी इसी प्रकार देव कोष्ठ युक्त बनाकर अलंकृत किया गया है। जंघा की ऊपरी दीवार के ऊपरी भाग में मात्र चन्द्रशाला अलंकरण युक्त पटिटका को बढ़ाया गया है।

Scanned by CamScanner

ये सभी पटिटकाएं स्तम्भि अलंकरण से अलंकष्त है। जंघा के ऊपर मध्य रथ में चैत्यत्योग्म अलंकरण है। अलंकरण की यह व्यवस्था जंघा के तीनों दीवार में दी गई है। शिखर भाग में भद्ररथ को बढ़ाया गया है। आमलसार तक बढ़ाया गया है। जबकि कर्णरथ को आमलसार तक न ले जाकर ग्रीववा तक ही ले जाया गया है, जिसके कारण यह बौना (ठिगना) लगता है, इस प्रकार कर्णरथ लघु आमलक द्वारा ग्यारह भूमियों में विभक्त किया गया है। शिखर का स्कंध रथों से घिरा हुआ है, जिसके कारण आमलसार का आकार छोटा नजर आता है। इस प्रकार शिखर का बोनापन इन मंदिरों पर उड़ीसा के मंदिरों के कला के शिल्पगत प्रभाव को दर्शाता है। आमलसार के ऊपर चन्द्रिका दृष्टव्य है, परन्तु कलश विद्यमान नहीं है। शिखर के सभी रथ लता कर्म से अलंकृत है, जबकि अन्य रथों का जीर्णोद्वार किया गया है। अंतराल की छत पर शुकनायिका में देव कोष्ठ निर्मित है। यह देव कोष्ठ दोनों तरफ से कुडश स्तम्भों से आवष्त है। इसमें रत्न पुष्प का शिल्पांकन है। तदुपरांत शुक्रनासिका का प्रस्तर है। शुक्रनासिका का अलंकरण मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के शुकनासिका के समान है, परन्तु इसमें गजसिंह की आकृति नहीं है। मण्डप के कुडश के अलंकरण की योजना मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के अलंकरण से साम्य रखती है। मण्डप की छत सुरक्षित है। वितान में तीनों तरफ छज्जी बढ़ायी गयी है। जिनमें दो क्षैतिज पटिटकाएं है। इन दोनों पटिटकाओं के ऊपर पुनः एक पटिटका है, जो जालकर्म अलंकरण से अलंकष्त है, तदुपरांत मण्डप का फॉसना शैली में शिखर प्रारम्भ होता है। जिसके ऊपर गोलाकार गला, आमलसार, चन्द्रिका, आमलसारिका तदुपरांत पुनः चन्द्रिका स्थापित है। आमलसारिका चन्द्रिका के ऊपर कलश एवं बीजपूरक सुरक्षित है। मण्डप का प्रवेश द्वार पश्चिम की तरफ तथा मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के द्वार की तरफ निर्मित है। मंदिर का मण्डप भी मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के मण्डप के समान है, सम परन्तु आकार–प्रकार में विस्तृत है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार के समक्ष एक मुख मण्डप बना है जो कालान्तर में निर्मित किया गया होगा। मण्डप में प्रयुक्त स्तम्भ भी मच्छेन्द्रनाथ मंदिर के स्तम्भों के समान है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार बड़ा परन्तु जीर्णोद्धारित है। इसका माप 1.58 x 0.50 मीटर है। इस मंदिर की विशेषता यह है, कि इसका गर्भगृह यहां स्थित मंदिर की शैली से पृथक है। गर्भगृह मण्डप के फर्श से 1.40 मीटर नीचा है, जिसके कारण इसके निर्माण शैली पर भूमिज शैली के मंदिर से प्रमाणित होने का अनुमान होता है। वर्गाकार गर्भगृह का माप 2.45 X 2.45 मीटर है। गर्भगृह के कोनों पर कुडश स्तम्भ स्थापित है, जो गर्भगृह के धरणियों को मजबूती प्रदान करते है। गर्भगृह के मध्य में अध र्यपटट स्थापित है तथा विनिर्गम उत्तर की ओर है। गर्भगृह का वितान मध्य में पुष्प अलंकरण से अलंकृत है।[11]

जोहिला मंदिरः– अमरकटंक में कलचुरी मंदिर परिसर में ही एक जोहिला मंदिर बना है। यह उत्तरमुखी है। मंदिर में प्रतिमा नही है। यह मंदिर केशवनरायण व मछेन्द्रनााथ मंदिर के सामने बना हुआ है। निर्माण योजना में यह मंदिर मच्छेन्द्रनाथ मंदिर से साम्य रखता है, इसके भू–विन्यास में वर्गाकार गर्भगष्ह एवं आयताकार मण्डप है, मंदिर का प्रवेश द्वार उत्तर की ओर है। मंदिर के अधिष्ठान में सामान्य बन्धनों की श्रृष्खला है। तदुपरान्त चार गहरे बन्धन, सामान्य बन्धन एवं कुमुद बन्धन है। जंघा की दीवार एवं पटिटका द्वारा दो भागों में विभाजित हैं। जंघा की यह संयोजना अंतराल की दीवार में भी है, परंतु अलंकरण के संयोजना में मंदिर मच्छेन्द्रनाथ मंदिर से भिन्न है। मंदिर में रत्नपुष्प का अलंकरण है। अंतराल की दीवार को भी इसी प्रकार देव कोष्ठ युक्त बनाकर अलंकृत किया गया है। जंघा की ऊपरी दीवार के ऊपरी भाग में मात्र चन्द्रशाला अलंकरण युक्त पटिटका को बढ़ाया गया है। ये सभी पटिटकाएं स्तम्भि

Scanned by CamScanner

अलंकरण से अलंकृत है। जंघा के ऊपर मध्य रथ में चैत्यत्योग्म अलंकरण है। शिखर पर आमलसार का बना है। आमलसार के ऊपर चन्द्रिका दष्टव्य है, सुन्दर कलश विद्यमान है। शिखर के सभी रथ लता कर्म से वानस्पतिक अलंकृत है।[12]

अन्य मंदिर :– अमरकटंक में कलचुरी मंदिर परिसर में अन्य पॉच मंदिर बने है। इनमें एक जोहिला मंदिर के पीछे बना है। इसकी ऊचाई लगभग 15 फिट है। यह कलचुरी कसल का ही है। इसके गर्भग्रह में कोई प्रतिमा नही है। यह सम्भवतः शिव मंदिर था। इसके ललाट बिम्ब पर गणेश बने थे किन्तु वह अब अस्पष्ट है। मंदिर का प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है। मंदिर के अधिष्ठान में सामान्य बन्धनों की श्रंखला है। तदुपरान्त चार गहरे बन्धन, सामान्य बन्धन एवं कुमुद बन्धन है। जंघा की दीवार मंदिर में रत्नपुष का अलंकरण है। षिखर पर आमलसार का बना है। आमलसार के ऊपर चन्द्रिका दृष्टव्य है, किन्तु कलश नही है। अन्य चार मंदिर लगभग 17 वी 18 वी शती ईस्वी के है। इनमें एक विष्णु मंदिर है। जो केवनारायण मंदिर के पीछे बना है। बाकी तीन मंदिर मछेन्द्रनाथ मंदिर के समक्ष बने है। इनमें एक हनुमान मंदिर है बाकी शिवमंदिर है। शिव मंदिरों में शिवलिंग स्थापित है। यह मंदिर परिसर केन्द्रीय पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत सुरक्षित है।[13]

नर्मदा मंदिर :–नर्मदा कुण्ड के समीप वर्तमान नर्मदा मंदिर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण कलचुरी राजाओं ने करवाया था। जे. डी. बेगलर के सर्वेक्षण के समय यह मंदिर टूटा हुआ था। इसका जीर्णोद्धार कार्य लगभग 1800 ईस्वी के अन्तिम चरण में हुआ था। इस मंदिर का जीर्णोद्धार रीवा के महाराज ने करवाया था। इस प्रमुख मंदिर के गर्भग्रह में कलचुरीकालीन देवी नर्मदा की प्रतिमा रखी है। इसका काल लगभग 1000 ईस्वी है। चतुर्भुजी नर्मदा पूर्ण विकसित कमल पुष्प पर खडी है। वह अपने ऊपरी दाये हाथ में कमण्डलु तथा निचले बाये हाथ में सनाल पद्म धारण किये है। उनके पैरो के समीप दोनो ओर आसन पर दाढी वाले ऋषि ध्यान मुद्रा में बैठे है। कमल के नीचे एक दाडी वाला योगी दोनों हाथ जोडे हुए पद्मासन मुद्रा में बैठा है। इसके दोनों ओर एक एक चवरधारिणी परिचारिका घुटने टेके बैठे हुए प्रदर्शित है। मॉ नर्मदा जी के सिर के समीप दोनों ओर मालाधारी विद्याधर युगल प्रदर्शित है। यह मंदिर व इसमें स्थापित नर्मदा प्रतिमा नर्मदा पूजा के प्रसार प्रचार का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। नर्मदा पूजा के व्यापक प्रसार के कारण ही इस क्षेत्र में नर्मदा की मूर्ति का उदभव हुआ। इस मंदिर में सुबह दोपहर व शाम को मॉ नर्मदा जी की आरती व शकराचार्यकृत नर्मदाष्टक का पाठ होता है। नर्मदा मंदिर के समक्ष अमरकंठ बाबा अर्थात भगवान शिव पार्वती का मंदिर स्थित है। इन दोनों मंदिरो के दरवाजे कलात्मक ढंग से रजत धातु के बने है। अमरकटंक के अतिरिक्त जबलपुर त्रिपुरी स्मारक के समीप से 11 वी शती ईस्वी की नर्मदा प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसके अलावा चौसठ योगनी मंदिर में, बरमानघाट जिला नरसिंहपुर, राजराजेश्वरी मंदिर मण्डला व बाबाघाट मण्डला से मॉ नर्मदा की पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतिमाऍ मिली है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कलचुरी काल के पश्चात भी नर्मदा देवी की स्वतन्त्र अनेक प्रतिमाऍ डाहल मण्डल में गौड राजाओं के शासन काल में भी निर्मित हुई। गौडकाल की नर्मदा प्रतिमाऍ नर्मदा देवी को समर्पित मंदिरों में स्थापित है। कुछ प्रतिमाऍ शिव मंदिरों में मिली है। इन प्रतिमाओं में द्विभुजी या चर्तुभुजी नर्मदा देवी हाथ में कमलपुष्प लिये बनी है। कभी कभी वह हाथ में रुद्राक्षमाला एवं कमण्डलु लिए प्रदर्शित है। नर्मदा को उनके वाहन मगर पर खड़े हुए या बैठे हुए दिखलाया गया है। त्रिपुरी के कलचुरी राजाओं के समय अमरकटंक व डाहल मण्डल में शैव मत, वैष्णव मत के साथ साथ नर्मदा देवी की पूजा प्रचलित थी।[14]

Scanned by CamScanner

गणेश प्रतिमा :– अमरकटंक में नर्मदा मंदिर के दरवाजे के समीप एक सुन्दर कला में उत्कीर्ण चतुर्भुजी आसन मै बैठे हुए गणेश की प्रतिमा विद्यमान हैं यह गणेश की मूर्ति में सिदुर लगा होने से इसका काल कम ज्ञात करना कठिन है किन्तु यह लगभग 12 वी शती ईस्वी की है। गणेश के दाहिने निचले हाथ में खड्ग है। ऊपरी हाथ गजहस्त है, बाँयीं ओर का निचला हाथ कट्यावलंबित है, तथा दूसरे हाथ में मोदक है। लम्बोदर, सूर्पकर्ण, वक्रतुण्ड गणपति सिर पर मुकुट, हाथों में कंगन और यज्ञोपवीत धारण किए हैं। उन्हें आसन मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। सूंड के पास से बाँयीं ओर का भाग, दोनों पैर व मुकुट का कुछ हिस्सा स्पष्ट नही है। नृत्त गणेश का स्थूलकाय शरीर आसन मुद्रा में दर्शनीय है। अमरकटंक में रीवा महाराज के द्वारा बनवाये गये विशाल मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के सिर दल पर उत्कीर्ण आकृतियों में एक आकृति गणेश की बनी है। सिरदल पर गणेश आकृति उत्कीर्ण होने का आशय यही निकलता है कि गणेश के दर्शन शुभ मानकर सिर दल पर अंकित किया गया। गणेश की आकृति का अंकन अधिक स्पष्टता के साथ हुआ है। एक दो अन्य गणेश प्रतिमाएँ नर्मदा कुण्ड परिसर में रखी है। जो सम्भवतः कलचुरी काल की है।[15]

अमरकंटक से प्राप्त गणेश प्रतिमाएँ

द्विभुजी नृत्त गणेश प्रतिमा :– अमरकटंक में भृगु कमण्डल से लगभग एक किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में परशु विनायक गणेश की प्रतिमा एक चटटान पर उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा द्विभुजी नृत्त गणेश की एक मूर्ति परवर्ती कलचुरी काल में निर्मित है। इस मूर्ति के एक हाथ मे परशु लिए है। दूसरे हाथ में मोदक है। मोदक को सूड से खाते हुए दिखाया गया है। लगभग बारहवी सदी ई. में निर्मित यह द्विभुजी नृत्य गणेश की यह पाषाण प्रतिमा सुन्दर कलचुरी कालीन कला में निर्मित है। नृत्यमुद्रा में निर्मित इस प्रतिमा में गणेश का पूर्ण रुप से सुरक्षित है। प्रतिमा में गजमस्तक व गजकर्ण स्पष्ट है। अग्र दक्षिण हाथ में मोदक पात्र था।[16]

सिद्धि विनायक गणेश प्रतिमा :– अमरकटंक में भृगु कमण्डल से लगभग एक किलोमीटर दूर उत्तर दिशा की ओर एक चटटान पर द्विभुजी सिद्धि विनायक को उत्कीर्ण किया गया है। यह प्रतिमा आसन मुद्रा में हैं। आसन मै बैठे हुए गणेश की द्विभुजी प्रतिमा में सिदुर लगा होने से इसका काल कम ज्ञात करना कठिन है किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह लगभग 12 वी शती ईस्वी की होगी है। ऊपरी हाथ गजहस्त है, बाँयीं ओर का निचला हाथ कट्यावलंबित है, तथा दूसरे हाथ में मोदक है। लम्बोदर, सूर्पकर्ण, ,एक

Scanned by CamScanner

दन्त वक्रतुण्ड गणपति सिर पर मुकुट, हाथों में कंगन और यज्ञोपवीत धारण किए हैं। उन्हें आसन मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। सूंड़ के पास से बाँयीं ओर का भाग, दोनों पैर व मुकुट का कुछ हिस्सा स्पष्ट नही है। आसन गणेश का स्थूलकाय शरीर आसन मुद्रा में दर्शनीय है। अमरकटंक पर्वत के चारो ओर गणेश प्रतिमाएँ बनी है। स्थानीय लोगो के अनुसार मैकल पर्वत पर वास करने वाले भगवान शिव व पर्वती व नर्मदा मॉ के रक्षक के रुप में पर गणेश प्रतिमाओं का निर्माण किया गया है कि गणेश के दर्शन शुभ मानकर सम्पूर्ण ऋक्ष पर्वत पर गणेश प्रतिमाओं को बनया गया है। गणेश की प्रतिमाओं में का कलाकार ने सुन्दर अंकन अधिक स्पष्टता के साथ किया है।[12] अमरकटंक में परशु विनायक, सिद्धि विनायक, बुद्धी विनायक व दुर्वाधा विनायक की प्रतिमाएँ स्थापित है।[17]

नर्मदा प्रतिमाः– अमरकंटक कुण्ड के प्रमुख मंदिर के गर्भग्रह में कलचुरीकालीन देवी नर्मदा की प्रतिमा रखी है। इसका काल लगभग 1000 ईस्वी की है। चतुर्भुजी नर्मदा पूर्ण विकसित कमल पुष्प पर खडी है। वह अपने हाथों में से ऊपरी दाये हाथ में कमण्डलु तथा निचले बाये हाथ में सनाल पद्म धारण किये है। उनके पैरो के समीप दोनों ओर आसन पर दाढी वाले ऋषि ध्यान मुद्रा में बैठे है। कमल के नीचे एक दाडी वाला योगी दोनों हाथ जोडे हुए पद्मासन मुद्रा में बैठा है। इसके दोनों ओर एक एक चवर धारिणी परिचारिका घुटने टेके बैठे हुए प्रदर्शित है। मॉ नर्मदा जी के सिर के समीप दोनों ओर मालाधारी विद्याधर युगल प्रदर्शित है।[13] नर्मदा पूजा के व्यापक प्रसार के कारण ही इस क्षेत्र में नर्मदा की मूर्ति का उद्भव हुआ। जबलपुर, मण्डला, त्रिपुरी,व कुकर्रामठ से नर्मदा की कलचुरीकालन व परवर्ती काल की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। कला में सर्वप्रथम ग्रगा यमुना का अंकन कूर्म व मकर वाहन के साथ गुप्तकाल में किया गया था। पूर्वमध्यकाल में पवित्रता और श्रेष्ठता में नर्मदा को गंगा के समान मुर्तिकला में दिखाया गया। गंगा की भॉति नर्मदा का वाहन भी मकर माना गया है। नदी देवी होने के कारण अपनी दैवी एवं आलौकिक शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए मकर को उनका वाहन बनाया गया था, क्योकि मकर जलजीवों में सर्वाधिक पराक्रमी जीव है। स्वामी वरुण का वाहन भी मकर है। लोक मान्यता के अनुसार देवी नर्मदा का वाहन भी मकर हैं। देवी उसी पर आसीन रहती है। नर्मदा प्रतिमा के निर्माण में देवी गौरी प्रतिमा के प्रतिमा लक्षण काफी कुछ मिलते है। गौरी व नर्मदा की प्रतिमाओं में काफी समानता मिलती है। गौरी व पार्वती शिव की पत्नि है। तो नर्मदा जी शिव की पुत्री है। गौरी व नर्मदा की प्रतिमाओं में भी जटा मुकुट मिलता है। गौरी व नर्मदा के दोनों हाथो में कमल रहता है। कुछ प्रतिमाओं में गौरी व नर्मदा प्रतिमाओं में त्रिशूल भी मिलता है। नर्मदा की प्रतिमा में गंगा की भॉति पूर्णघट एवं कमल आयुध बना रहता है। नर्मदा प्रतिमाओं में रुद्राक्षमाला आयुघ के रुप में लिये रहती है। नर्मदा की प्रतिमाएँ आसन व स्थानक दोनो अवस्थाओं में बनाई गई है। मार्कण्डेय ऋषि को देवी नर्मदा अभयदान देते हुए निर्मित की गई है।[18]

उमा–महेश्वर प्रतिमा :– यह प्रतिमा नर्मदा मंदिर के बाहर हनुमान प्रतिमा के समीप रखी है। प्रो. आर.के. शर्मा ने इसे 12 शती ई. की कलचुरी कालीन प्रतिमा माना है।[19] प्रतिमा में दायी ओर चर्तुभुजी शिव को ललितासन मुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। उनके बायी ओर देवी उमा कों बैठे दिखाया गया है। शिव के एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे हाथ में सम्भवतः अक्षमाला रही होगी जो टूट चुकी है। तीसरा हाथ अभयमुद्रा में तथा चौथा हाथ उमा को आलिंगन करते हुए प्रदर्शित है। शिव जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकृत है। उमा के एक हाथ को शिव के स्कन्ध पर रखे हुए दूसरे हाथ में कुछ पात्र लिये शिव की जंघा पर बैठ दिखाया गया है। उमा के बाजू में सिंह व्याल का अंकन है। प्रतिमा में देवी उमा एवं

Scanned by CamScanner

शिव के सिर के समीप हाथ में माला लिये दो विधाधरों की आकृति बनाई गयी है। शिव को अपने वाहन नंदी व देवी उमा को उनके वाहन सिंह पर बैठे दिखाया गया है। नंदी को उमा–महेश्वर की ओर देखते हुए शिल्पांकित किया गया है। प्रतिमा में नीचे दो भक्त गणों को हाथ जोडे बनाया गया है। श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि शिव भगवती पार्वती के साथ कैलास पर्वत पर विराजमान रहते है। ऋषीगण एवं सिद्वजन उनकी सेवा किया करतें है। सम्भवतः शिल्पी ने इसी कथानक को प्रतिमा के रुप में शिल्पांकन करने की चेष्टा की है। प्रतिमा की ऊँचाई एवं चौड़ाई लगभग चार फुट है।[20]

उमा–महेष्वर् प्रतिमा :– यह प्रतिमा नर्मदा मंदिर के बाहर हनुमान प्रतिमा के समीप रखी है। प्रो. आर.के. शर्मा जी ने इसे 12 शती ई. की कलचुरी कालीन प्रतिमा माना है। प्रतिमा में दायी ओर चर्तुभुजी शिव को ललितासन मुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। उनके बायी ओर देवी उमा कों बैठे दिखाया गया है। शिव के एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे हाथ में सम्भवतः शिवलिंग को दिखाया गया है। तीसरा हाथ अभयमुद्रा में तथा चौथा हाथ उमा को आलिंगन करते हुए प्रदर्शित है। शिव जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकृत है। उमा के एक हाथ को शिव के स्कन्ध पर रखे हुए दूसरे हाथ में कुछ पात्र लिये शिव की जंघा पर बैठ दिखाया गया है। उमा के बाजू में सिंह व्याल का अंकन अस्पष्ट है। प्रतिमा में देवी उमा एवं शिव के सिर के समीप हाथ में माला लिये दो विधाधरों की आकृति बनाई गयी ह जो अस्पष्ट है। शिव को अपने वाहन नंदी व देवी उमा को उनके वाहन सिंह पर बैठे दिखाया गया है। प्रतिमा का क्षरण हो जाने कारण प्रतिमा में वाहन अस्पष्ट है। नंदी को उमा–महेश्वर की ओर देखते हुए शिल्पांकित किया गया है। प्रतिमा की ऊँचाई एवं चौड़ाई लगभग तीन फुट है।[21]

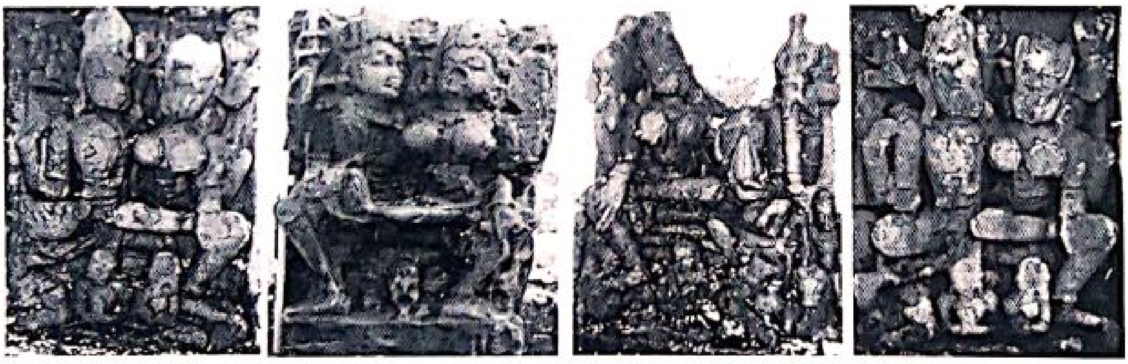

कलचुरीकालीन उमा–महेष्वर प्रतिमाएं, अमरकटंक

उमा–महेष्वर् प्रतिमा :– यह प्रतिमा नर्मदा मंदिर के बाहर लक्ष्मीनारायण मंदिर के समीप रखी है। प्रो. आर.के. शर्मा जी ने इसे 12 शती ई. की कलचुरी कालीन प्रतिमा माना है। प्रतिमा में दायी ओर चर्तुभुजी शिव को ललितासन मुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। उनके बायी ओर देवी उमा कों बैठे दिखाया गया है। शिव के एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे हाथ में सम्भवतः नरियल युक्त कलश को दिखाया गया है। तीसरा हाथ अभयमुद्रा में तथा चौथा हाथ उमा को आलिंगन करते हुए प्रदर्शित है। शिव जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकृत है। उमा के एक हाथ को शिव के स्कन्ध पर रखे हुए दूसरे हाथ को ध्यान मुद्रा में लिये शिव की जंघा पर बैठ दिखाया गया है। उमा के बाजू में सिंह व्याल का अंकन अस्पष्ट है। प्रतिमा में देवी उमा एवं शिव के सिर के समीप हाथ में माला लिये दो विधाधरों की आकृति

Scanned by CamScanner

बनाई गयी है। शिव को अपने वाहन नंदी व देवी उमा को उनके वाहन सिंह पर बैठे दिखाया गया है। नंदी को उमा–महेश्वर के दायी ओर सुन्दर रुप में शिल्पांकित किया गया है। प्रतिमा की ऊँचाई एवं चौड़ाई लगभग 4 फुट है। प्रतिमा में नीचे एक भक्त को हाथ जोडे बैठे दिखया गया है। प्रतिमा मे उपर ब्रह्मा की प्रतिमा को बनाया गया है। शिव के बाजू में एक सेवक खडा हुआ है।[22]

कार्तिकेय प्रतिमाः– अमरकटंक मंदिर में नर्मदा मंदिर के बाजू में भगवान शिव व पार्वती के पुत्र कार्तिकेय का मंन्दिर बना हैं। कार्तिकेय को उनके वाहन मयूर के साथ स्थानक अवस्था में बनाया गया है। दाया हाथ वरद मुद्रा में है। वाया हाथ कमर पर रखा हुआ है। रुपमंण्डन व अग्निपुराण में कर्तिकेय की प्रतिमा निर्माण की जानकारी मिलती है।

शिवलिंगः– भारत में शिवलिंग की पूजा आराधना प्राचीन का से की जाती रही है। नर्मदा के तट पर मिलने वाले अण्डाकार प्रत्येक़ पत्थर को सिद्ध शिवलिंग माना जाता है। अमरकटंक में सैकडों शिवलिंग देखने को मिलते हैं। नर्मदा मंदिर में प्राचीन लगभग 21 शिवलिंग है। एक मंदिर में ग्यारह शिवलिंग है। चार शिवलिंग अन्य मंदिरों में है। कुछ नर्मदा कुण्ड के आस पास रखे है। महाकाव्यों रामायण व महाभारत में शिवलिंग को सषष्टि की उत्पत्ति का मूल साधन माना है। वाल्मीकी रामायण के उत्तरकाण्ड के रावण नर्मदा अवगाह में वर्णन है कि रावण ने नर्मदा के तट पर शिव के स्वर्णिम, जाम्बुनदमयम लिंग की पूजा अर्चना की थी। महाभारत में लिंगोपसना का विस्तार से वर्णन मिलता है। नर्मदा तटीय शिवलिंगों की महत्ता तो प्रागैतिहासिक है। लेकिन कला की दृष्टि से अमरकटंक क्षेत्र के शिवलिंग पूर्वमध्यकालीन है। रेवा नदी के प्रत्येक कण में शिव के वास होने का कथानक स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में मिलता है। पुराणों में वर्णित शिवलिंगों का उदभव और उसका महत्व परिलक्षित होता है। शिवलिंग प्राकृतिक शिवलिंग, त्रैराशिक शिवलिंग, मुखलिंग, अष्टोत्तरशिवलिंग, व सहस्त्र शिवलिंग बनाये जाते है। अमरकटंक में प्राकृतिक शिवलिंग व त्रैराशिक शिवलिंग मिलते है। त्रैराशिक शिवलिंग उन्हें कहा जाता है जिनमें एक निश्चित मापदण्ड, 7x8x9 के तहत तीन भाग मे निर्मित होते है। यथा भाग पीठ, वृत्ताकार, भद्रपीठ अष्टकोणीय तथा ब्रह्मपीठ चौकोर बनाया जाता है। भोगपीठ पर ब्रह्मसूत्र रेखाओं का अंकन होता है। अमरकटंक क्षेत्र में अधिकत्तर शिवलिंग पूर्वमध्यकाल के है।[23]

स्वंयभू शिवलिंगः– नर्मदा के प्रत्येक कंकण मे शिव के वास की परम्परा प्राकृतिक शिवलिंगों में समाहित है। इसलिए नर्मदा के स्वयं प्रकट शिवलिंगों का रुद्राभिषेक होता है। प्राकृतिक शिवलिंगों की अवधारणा स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में है। इन्हें स्वंयभू शिवलिंग भी कहा जाता है।[24] अमरकटंक क्षेत्र में अनेक स्वंयभू शिवलिंग है। जो प्राकृतिक रुप से बने हैं। इनमें सक वंशेश्वर महादेव मन्दिर में स्थापित शिवलिंग स्वंभू है। इनके समीप कलचुरी कालीन नंदी प्रतिमा रखी हुई है। ज्वालेश्वर महादेव शिवलिंग स्वंयभू है। ज्वालेश्वर महादेव के समीप पेण्डा जाने वले मार्ग पर एक स्वयंभू शिवलिंग है। इन्हे लोधेश्वर महादेव के नाम से जाना जाता है। एक स्वयं भू शिवलिंग ज्वालेश्वर मंदिर से पश्चिम दिशा में लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अमरकटंक मंदिर परिसर में एक स्वयंभू शिवलिंग वंशेश्वर महादेव है।

नंदी प्रतिमाएँः– अमरकटंक में नर्मदा मंदिर परिसर व कलचुरी मंदिर परिसर में लगभग 11 नदी प्रतिमाएँ रखी है। यह प्रतिमाएँ कलचुरीकालीन कला में निर्मित में निर्मित है। नंदी का विधिवत श्रृगार किया गया है। गले में घण्टी बधी है। नदी के कर्ण व पैरो को जागृत बैठी हुई अवस्था में कलाकार ने निर्मित किया है।[25]

Scanned by CamScanner

वैष्णव प्रतिमाऍं:– उत्तरवैदिक युग में विष्णु की श्रेष्ठता का विवरण सूत्र साहित्य, उपनिषद, और ब्राह्मण साहित्य में उल्लखित है। शतपथ ब्राह्मण तथा मैत्रायिकी उपनिषद में विष्णु के सर्वोच्च देवपद पर स्थापित होने का विवरण मिलता है। इसी कालावधि में अवतारवाद के प्रचलन के साथ विष्णु के महत्व में और अधिक वृद्धि हुई। संपूर्ण वैष्णव धर्म भगवत धर्म के नाम से उद्‌भूत हुआ है। महाभारत के शांतिपर्व के नारायणीयोपाख्यान में नारायणी धर्म के नाम से भागवत धर्म का वर्णन किया गया है। नारायण, विष्णु का ही एक अन्य नाम है। महाकाव्यकाल तक विष्णु प्रतिष्ठित हो चुके थे। मुद्रासाक्ष्य से भी दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में विष्णु पूजा के संकेत मिलते हैं। कुषाणकाल से विष्णु मूर्तियाँ बनने लगीं। यह सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। गुप्तकाल में विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा बहुत लोकप्रिय थी।[26]

विष्णु प्रतिमा:– अमरकटंक में नर्मदा मंदिर से प्राप्त विष्णु प्रतिमा स्थानक अवस्था में है। इस पुरास्थल पर प्राप्त विष्णु प्रतिमा कलचुरीकालीन है। इस प्रतिमा की ऊँचाई 3 फुट 8 इंच है। मूर्ति का मुख आंशिक रूप से खंडित है। इस प्रतिमा में विष्णु को समभंग–मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उपर के दोनो हाथों में क्रमशः शंख व चक्र है। शेष दो हाथ लगभग खंडित है। प्रतिमा के दाहिनी और गदा बने होने का अवशेष है। निचले हाथों में पकड़े हुए अस्त्र टूट चुके हैं, किन्तु उनके हत्थे अभी भी विद्यमान हैं जिनसे उनके अयुधों की पहचान हो सकी है। एक तरफ गदादेवी बनी हुई है। प्रतिमा की भुजाओं के भुजबंध व हाथों में कड़े दिखलाये गये हैं। विष्णु की इस प्रतिमा की किरीट मुकुट का उत्कृष्ट रूप से अंकन हुआ है। इस पर सिंह मुख बना है। भगवान कण्ठहार धारण किए हुए हैं। पवित्र वैजयंती माला उनके गले में सुषोभित है। कानों में कर्णकुण्डल, अग्रवाम हस्त की कनिष्ठा अंगुली अलंकृत छल्ला (मुद्रिका), अंगद, कंकण, कटिमेखला, धोती और पादवलय से सुशोभित देवता के मस्तक के पीछे विशाल प्रभामण्डल है। कण्ठहार के मध्य में दीर्घ वनमाला और मुकुट का अलंकरण दर्शनीय है। प्रतिमा पर देवत्य के भाव लाये जाते थे। विष्णु प्रतिमा के नेत्र योगियों की भाँति अर्धोन्मीलित हैं। भगवान विष्णु जो धोती धरण किए हैं, सामने से उसका ग्रथिबंधन (गाँठ) सुस्पष्टता से दिखलायी पड़ता है। पृष्ठभाग में भी धोती चुन्नटें उत्कीर्ण की गई हैं। पृष्ठभाग में ही ग्रवेयक बंधन को सुन्दर तरीके से बाँधा गया है। पैरा की गाँठों के नीचे एक रेखांकन के माध्यम से धोती का अंकन है। मेखला के नीचे बंधे कटिपट्ट के दोनों छोर बाँयी जंघा की ओर लटकते हुए अंकित है। वैजयंतीमाला धारण किये हुए यह मूर्ति तेज बल व पराक्रम को प्रदर्शित करती है तथा भव्य रूप का दर्शन कराती है यह प्रतिमा एक ही विशाल पाषाण खण्ड को काटकर बनायी गयी हैं। शंख, चक्र, गदा लिए हुए स्थानक मुद्रा में निर्मित किये गये हैं। प्रतिमा की बनावट के आधार पर इसका

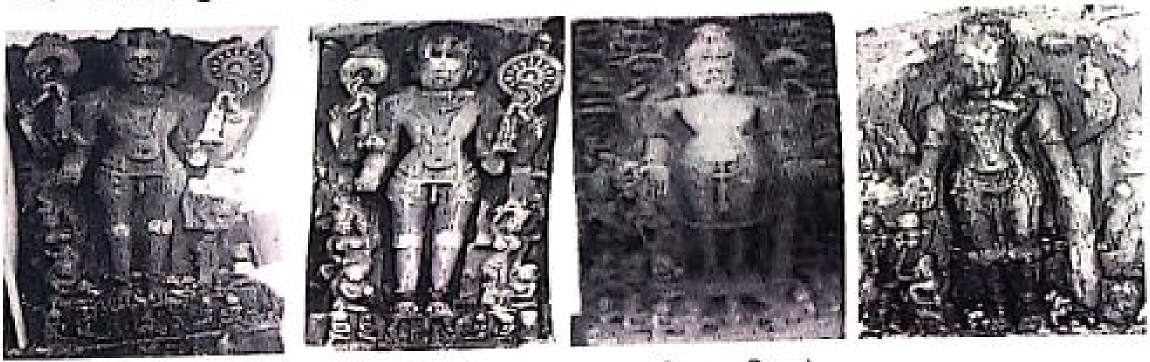

अमरकंटंक से प्राप्त स्थानक विष्णु प्रतिमाएं

Scanned by CamScanner

निर्माणकाल लगभग 1100 ईस्वी के मध्य माना जा सकता है। विष्णुधर्मेत्तर पुराण मे विष्णु प्रतिमा के निर्माण की विधि मिलती है।[27] प्रतिमा के पैरो के नीचे भक्तगण हाथ जोडे हुए उत्कीण किये गये है।

विष्णु प्रतिमाः— अमरकटंक में कलचुरी मंदिरों में से एक केशव नारायण का मंदिर है। इस मंदिर में एक काफी सुन्दर प्रतिमा रखी है। यह अमरकंटंक की दूसरी बडी प्रतिमा स्थानक अवस्था में है। यह विष्णु प्रतिमा कलचुरीकालीन है। प्रतिमा की ऊँचाई लगभग 3 फुट 7 इंच है। मूर्ति का मुख आंशिक रूप से खंडित है। इस प्रतिमा में विष्णु को समभंग—मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। ऊपर के दोनो हाथों में कमशः शंख व चक है। शेष दो हाथों में से एक में गदा व दूसरा हाथ वरद मुद्रा में है। प्रतिमा के दाहिनी और गदा को सुन्दर आकृति में बनाया गया है। निचले हाथों में पकड़े हुए अस्त्र टूट चुके हैं, किन्तु उनके हत्थे अभी भी विद्यमान हैं जिनसे ही अस्त्रों की पहचान हो सकी है। एक तरफ गदादेवी बनी हुई है। प्रतिमा की भुजाओं के भुजबंध व हाथों में कड़े दिखलाये गये हैं। विष्णु की इस प्रतिमा की किरीट मुकुट का उत्कृष्ट रूप से अंकन हुआ है। इस पर सिंह मुख बना है। भगवान कण्ठहार धारण किए हुए हैं। पवित्र वैजयंती माला उनके गले में सुषोभित है। कानों में कर्णकुण्डल, अग्रवाम हस्त की कनिष्ठा अंगुली अलंकृत छल्ला (मुद्रिका), अंगद, कंकण, कटिमेखला, धोती और पादवलय से सुषोभित देवता के मस्तक के पीछे विषाल प्रभामण्डल है। कण्ठहार के मध्य में दीर्घ वनमाला और मुकुट का अलंकरण दर्षनीय है। विश्णु, प्रतिमा के नेत्र योगियों की भाँति अर्धोन्मीलित हैं। भगवान विष्णु जो धोती धरण किए हैं, सामने से उसका ग्रथिबंधन (गाँठ) सुस्पष्टता से दिखलायी पड़ता है। पृष्ठभाग में भी धोती चुन्नटें उत्कीर्ण की गईं हैं। पैरो की गाँठों के नीचे एक रेखांकन के माध्यम से धोती का अंकन है। मेखला के नीचे बंधे कटिपट्ट के दोनों छोर बाँयी जंघा की ओर लटकते हुए अंकित है। विष्णु को शंख, चक्र, गदा लिए हुए स्थानक मुद्रा में निर्मित किये गये हैं। प्रतिमा की बनावट के आधार पर इसका निर्माणकाल लगभग 1100 ईस्वी के मध्य माना जा सकता है। विष्णु प्रतिमा परिकर में विष्णु के दशावतार कमशः 1. मत्स्य 2. कूर्म 3.वराह 4.नरसिंह 5.वामन 6. परशुराम 7. राम 8. कृष्ण 9. बुद्ध 10. कल्कि को शिलाफलक पर बनाया गया है। प्रतिमा के ऊपर मालाधारी विधाधर बने है। प्रतिमा के पैरो के नीचे भक्तगण हाथ जोडे हुए उत्कीण किये गये है।[28]

विष्णु प्रतिमाः— अमरकटंक में नर्मदा कुण्ड के मंदिरों में से एक मंदिर में स्थानक विष्णु की काफी सुन्दर प्रतिमा रखी है। यह अमरकंटंक की तीसरी कलचुरीकालीन विष्णु की बडी प्रतिमा स्थानक अवस्था में बनी है। प्रतिमा की ऊँचाई लगभग 3 फुट 9 इंच है। मूर्ति का मुख आंषिक रूप से खंडित है। इस प्रतिमा में विष्णु को समभंग—मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उपर के दोनो हाथों में कमशः शंख व चक है। शंख वाला हाथ खण्डित हो चुका है। शेष दो हाथों में से एक में गदा व दूसरा हाथ वरद मुद्रा में है। प्रतिमा के दाहिनी और गदा को सुन्दर आकृति में बनाया गया है। प्रतिमा की भुजाओं के भुजबंध व हाथों में कड़े व कानो में कुण्डल दिखलाये गये हैं। विष्णु की इस प्रतिमा की किरीट मुकुट का उत्कृष्ट रूप से अंकन हुआ है। भगवान कण्ठहार धारण किए हुए हैं। पवित्र वैजयंती माला उनके गले में सुशोभित है। कानों में कर्णकुण्डल, अग्रवाम हस्त की कनिष्ठा अंगुली अलंकृत छल्ला (मुद्रिका), अंगद, कंकण, कटिमेखला, धोती धारण किये है। कण्ठहार के मध्य में दीर्घ वनमाला और मुकुट का अलंकरण दर्शनीय है। कलचुरीकालीन देवप्रतिमाओं की भावभिव्यंजना पर अधिक ध्यान दिया जाता था। प्रतिमा पर देवत्य के भाव लाये जाते थे। विष्णु, प्रतिमा के नेत्र योगियों की भाँति अर्धोन्मीलित हैं। भगवान विष्णु जो धोती धरण किए हैं, सामने से उसका ग्रथिबंधन (गाँठ) सुस्पष्टता से दिखलायी पड़ता है। मेखला के नीचे बंधे कटिपट्ट

Scanned by CamScanner

के दोनों छोर बाँयी जंघा की ओर लटकते हुए अंकित है। प्रतिमा की बनावट के आधार पर इसका निर्माणकाल लगभग 1200 ईस्वी के मध्य माना जा सकता है।[29] विष्णु प्रतिमा परिकर में विष्णु के दशावतार क्रमशः 1. मत्स्य 2. कूर्म 3.वराह 4.नरसिंह 5.वामन 6. परशुराम 7. राम 8. कृष्ण 9. बुद्ध 10. कल्कि को शिलाफलक पर बनाया गया है। प्रतिमा में ऊपर कुर्म व मत्स्य अवतार तथा नीचे वामन व रामवतार का सुन्दर अंकन किया गया है। प्रतिमा के ऊपर मालाधारी विधाधर बने है। प्रतिमा के पैरो के नीचे भक्तगण हाथ जोडे हुए उत्कीर्ण किये गये है।

विष्णु प्रतिमाः— अमरकटंक में नर्मदा मंदिर परिसर में एक छोटे से मंदिर में तीसरी विष्णु प्रतिमा स्थानक अवस्था में निर्मित रखी है। कला के आधर पर यह विश्णु प्रतिमा परवर्ती कलचुरीकाल की है। प्रतिमा की ऊँचाई 3 फुट 3 इंच है। मूर्ति का मुख आंशिक रूप से खंडित है। इस प्रतिमा में विष्णु को समभंग—मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। विष्णु के चारो हाथों में क्रमशः शंख, पद्म,गदा व चक्र है। प्रतिमा के दाहिनी और गदा व बायी ओर चक्र के बने होने के अवषेश है। प्रतिमा की भुजाओं के भुजबंध व हाथों में कड़े दिखलाये गये हैं। पवित्र वैजयंती माला उनके गले में सुशोभित है। कानों में कर्णकुण्डल, अग्रवाम हस्त की कनिष्ठा अंगुली अलंकृत छल्ला (मुद्रिका), अंगद, कंकण, कटिमेखला, धोती पहने है। कण्ठहार के मध्य में दीर्घ वनमाला और मुकुट का अलंकरण दर्शनीय है। मेखला के नीचे बंधे कटिपट्ट के दोनों छोर बाँयी जंघा की ओर लटकते हुए अंकित है। शंख, चक्र, गदा लिए हुए स्थानक मुद्रा में निर्मित किये गये हैं। प्रतिमा की बनावट के आधार पर इसका निर्माणकाल लगभग 1300 ईस्वी के मध्य माना जा सकता है।[30] प्रतिमा के पैरो के नीचे भक्तगण हाथ जोडे हुए उत्कीर्ण किये गये है। प्रतिमा के परिकर में कुछ मानव आकृतियों का अंकन है, जो अब अस्पष्ट हैं।

विष्णु प्रतिमाः— यह प्रतिमा कलचुरीकालीन मंदिर परिसर में एक नवीन मंदिर बद्रीनाथ मंदिर में रखी

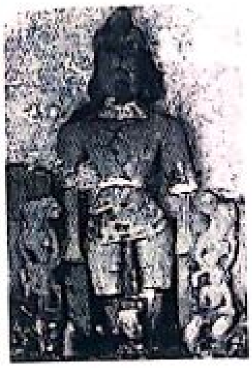

अमरकटंक से प्राप्त स्थानक विष्णु व सूर्य प्रतिमा

है। इस मंदिर में यह स्थानक विष्णु की प्रतिमा लगभग 6 फिट ऊँचाई की है। इस प्रतिमा में पैरो के समीप करबद्ध अवस्था में भक्तगणों को बनाया गया है। सिर के समीप मालाधारी गन्धर्व बने है। प्रतिमा के समीप विष्णु के द्वार रक्षक जय विजय बनाये गये है। झये हाथ में शख लिये तथा बाये हाथ में चक्र लिये है। नीचे के दाये हाथ में गदा व एक हाथ वरद मुद्रा में बनाया गया है। प्रतिमा में ऊपर परिकर में त्रिदेव बनाये गये है। यह प्रतिमा कला के आधार पर काले पत्थर पर निर्मित कलचुरीकालीन है। इस मंदिर के दरवाजों

Scanned by CamScanner

के स्तम्भों पर गंगा यमुना व त्रिदेवों का अंकन है। कला के आधार पर यह प्रतिमा लगभग 11 वी शती ईस्वी की प्रतीत होती है। हाथों में गदा, चक्र, शंख स्पष्ट रुप से दिखाये गये है। इस मंदिर की स्थानीय लोग बद्रीनाथ भगवान की प्रतिमा मानते है।[31]

गरुणासीन लक्ष्मीनारायण प्रतिमा : अमरकंटक पुरास्थल से एक गरुणासीन सुन्दर व कलात्मक लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा नर्मदा मंदिर परिसर में एक मंदिर में स्थापित है। आकृति में लक्ष्मी को भगवानं विशु के बायी ओर बैठे दिखाया गया हैं। विष्णु की चार भुजाएँ हैं। दोनों दाहिने हाथों में क्रमशः चक्र और गदा है। बाँयें हाथों में शंख तथा कमल है। विष्णु के लल्मीनारायण रूप का वर्णन अनेक ग्रंथों में हुआ है। इन रूपों में भुजाओं की ही भिन्नता है। कहीं पर वे दो भुजा वाले, कहीं चार भुजा वाले, तथा कहीं आठ भुजा वाले कहे गए हैं। अग्नि पुराण, शिल्परत्न में लक्ष्मीनारायण की चतुर्भुजी प्रतिमा के निर्देश दिये गये हैं। महाभारत, अग्नि पुराण, शिल्परत्न तथा भागवत पुराण में गरुड़ पर आसीन चतुर्भुजी विष्णु को दर्शाने के निर्देश दिये गये हैं।[32] शिल्पसार में गरुड़सीन चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा का उल्लेख किया गया है। एक अन्य चतुर्भुजी लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा नर्मदा मंदिर परिसर में मिली है। इसमें भगवान विष्णु को देवी लक्ष्मी के दायी ओर बैठे दिखाया गया है। प्रतिमा में नीचे एक नर नारी करवद्ध अवस्था में बैठे है। हाथों के आयुध खण्डित हो चुके है। यह प्रतिमा कलचुरी काल की है।

सूर्य प्रतिमा : सूर्योपासना का प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य ऋग्वेद के रूप में उपलब्ध है। इसमें उन्हें पापनाशक, विश को दूर करने वाला, शारीरिक व्याधियों को हरने वाला बतलाया गया है। वेदों में सूर्य को विश्व की आत्मा बतलाया गया है। ब्रम्हा, विष्णु, इन्द्र तथा अग्नि से सूर्य की एकात्मकता बताते हुए महाभारत में उन्हें देवेश्वर कहा गया हैं इसमें उन्हें, पीतवर्ण, विशालबहू, कवच, कुण्डल तथा आभूषण धारी बतलाया गया है। गुप्तकाल में सूर्य प्रतिमाओं का भारतीयकरण हुआ। गुप्तयुग में निर्मित सूर्य को दण्ड, पिंगल, अरूण तथा सूर्य पत्नियों के साथ निर्मित किया गया था। वृहत्संहिता, मत्स्य पुराण, विष्णु धर्मोत्तर, अग्नि पुराण, श्रीमद्भागवत, भविष्य पुराण, तथा शिल्परत्न में सूर्य प्रतिमा लक्षण बतलायें हैं। अमरकंटक में कलचुरीकाल में निर्मित सूर्यप्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा द्विभुजी है। दोनो भुजाएँ खण्डित हैं, तथापि दाहिनी भुजा में धारण किया गया सनाल कमल दृष्टव्य है। सूर्यदेव को स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। इस खण्डित प्रतिमा में सूर्य रथ में जुते चार अश्व ही दृष्टव्य हैं, किन्तु अनुमानित होता है कि रथ में मूलतः सात अश्व जुते हुए थे। सूर्य प्रतिमा का मुखमण्डल भग्नावस्था में है, तथापि किरीट मुकुट और कर्णकुण्डल स्पष्ट रूप से दर्शित होता हैं वनमाला और कटिमेखलाधारी देवता के दाँये पार्श्व में खड़ी एक नारी आकृति और ऊपर मालाधारी गंधर्व है। सूर्यदेव की इस प्रतिमा के दाँयें पार्श्व की आकृति खण्डित हो चुकी है। इस सूर्य प्रतिमा के निर्माण में मूर्ति निर्माण के निर्देशों का पालन किया गया है। तथा शिल्प परम्परा का निर्वाह किया गया है। भगवान सूर्य को जूते पहने दिखाया गया है। पैरों के समीप सारथी अरुण खडा है। प्राचीन काल में मान्यता थी कि सूर्य चलते है इसलिए उन्हे जूते पहने बनाया जाता है।[33]

सिंह आकृति : भारतीय कला में सिंह का अंकन अशोक के स्तंभ शीर्ष में देखने में आता है। अमरकंटक में कलचुरी मंदिरो पर सिहों का अंकन हुआ है। सिंह को दुर्गा के वाहन के रूप स्वीकार किया गया है। सिंह का अंकन शुभ माना जाता है। कलचुरी मंदिर के शिखर पर भी सिंह आकृति उत्कीर्ण है। सिंह को कलचुरी नरेश अपना राजचिह्न मानते थे। अमरकटंक कलचुरी मंदिर परिसर में मंदिरों के ऊपर

Scanned by CamScanner

सिंह आकृति को बनाया गया है। इस आकृति में सिंह को गज की सूड पकडे गज के ऊपर बैठे दिखया गया है। इससे ज्ञात होता है कि कलचुरियों ने गज सेना से युक्त दक्षिण कोशल के राजा को पराजित किया था। बहगढ नाला के स्तंभों के निम्न भाग की ऊपरी पट्टी में पीठ से पीठ सटाए सिंहों की आकृ तियाँ सुन्दर व कलात्मक रुप में बनी है।

अमरकटंक क्षेत्र के स्थापत्य में गजांकन : मंदिर स्थापत्य में हाथी का अंकन लोकप्रिय रहा। बहगढ नाला कलचुरीकालीन मंदिर की द्वारशाखा के नीचे दोनां छोरों पर पद्मवन में विचरते हुए हाथी का मनोहारी अंकन है। हाथी के समीप एक वृषभ का अंकन है। इसी मंदिर के एक षिलाखण्ड में पर उत्कीर्ण इन्द्राणी की आकृति के साथ में स्थानक गज का अंकन हैं। धनपुर की कला में अनेक जगह गज का अंकन मिलता है। अमरकटंक कलचुरी मंदिर परिसर में एक स्तम्भ पर हाथी का अंकन है। नर्मदा मंदिर में एक शिलाफलक पर गज का अंकन है।

गजारोही व अश्वारोही : अमरकंटक नर्मदा मंदिर परिसर में एक गजारोही की कलचुरीकालीन सुन्दर प्रतिमा है। गज पर सवार सैनिक का सिर टूट गया है। इसके नीचे से लोग निकलते है। यह गज नर्मदा मंदिर में आस्था केन्द्र है। लोग इसमें से निकल कर अपने को सुखी महसूस करते है।[34] नर्मदा मंदिर परिसर में एक अश्वारोही की कलचुरीकालीन सुन्दर प्रतिमा है। यह प्रतिमा गजारोही के समीप स्थित है। अश्व पर सवार सैनिक का सिर टूट गया है। यह लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित है। इसकी लम्बाई लगभग 4 फिट है। ऊँचाई लगभग 3 फिट है।

पशु पक्षी:— अमरकटंक की कलचुरीकालीन कला में पशु—पक्षियों की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। अमरकंटक की कलचुरी कालीन कला में पशु पक्षियों का अंकन मिलता है। मत्स्य, कुर्म, अश्व, गज, वृषभ, मयूर, सिंह का विशेष रुप से अकंन किया गया है।

योगी प्रतिमाऍ:—अमरकंटक मंदिर में कलचुरीकालीन कला में निर्मित दो युगल योगी प्रतिमाऍ प्राप्त हुई है। दो पृथक देवी व योगी प्रतिमा भी यहॉ पर रखी है। यह प्रतिमाऍ लगभग एक फिट छः इंच की ऊँचाई की बनी है। युगल प्रतिमाओं में एक नारी साधक एक पुरुष साधक बने है। एक प्रतिमा में पुरुष साधक की प्रतिमा बडी बनी है। स्त्री साधक की प्रतिमा छोटी बनी है। दूसरी प्रतिमा में नारी साधक की प्रतिमा बडी बनी है। पुरुष साधक की प्रतिमा छोटी बनी है। ये दोनो पति पत्नि रहे होगे। यह दोनों ने योग साधना करके सिद्धि प्राप्त की होगी। एक प्रतिमा में पत्नि पति का अनुकरण करती दिखाई देती है। यह दोनों बडे तपस्वी रहें होगे। सम्भवतः इनका आश्रम अमरकटंक में ही होगा। दोनों प्रतिमाओं में सिद्ध महार्षि व महिषी दिखाई देते है क्योकि इन प्रतिमाओं में मालाधारी विधाधर प्रतिमा के ऊपर बने है। नारी प्रतिमा में उनकी सेविकाऍ हाथ जोडे खडी है। अमरकटंक नर्मदा मंदिर में एक देवी कलचुरी कालीन प्रतिमा हाथ जोडे बनाई गई है। देवी के सिर के समीप विधाधर माला लिए हुए दिखाए गये हैं। बाजू में एक सेविका खडी है। एक अन्य मंदिर में एक देवी व देवता की कलचुरी कालीन प्रतिमा रखी है। इनको स्थानीय लोग अन्नपूर्णा देवी के रुप में पूजते है। इस प्रतिमा की कला के आधार पर यह कलचुरी काल की प्रतीत होती है। इस प्रतिमा के अतिरिक्त नर्मदा मंदिर परिसर में देवी पार्वती, उमा, लक्ष्मी की प्रतिमाऍ रखी हुए है।

नाग प्रतिमाएँ :— मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त मुद्राओं पर भी नागों को अंकन प्राप्त हुआ है। नाग का भारतीय धर्म और कला से घनिष्ट संबंध रहा है। अथर्ववेद में यक्षों, गंधर्व—अप्सराओं के साथ नागों का

Scanned by CamScanner

अमरकटंक नर्मदा मंदिर परिसर में स्थापित योगी व देवी प्रतिमाएँ

उल्लेख मिलता है, इन्हें देवजन कहा गया है। यजुर्वेद में नागपूजा का प्रसंग है। भगवदगीता, महाभारत तथा पुराणों में नागों का उल्लेख हुआ है। बुद्ध तथा जैन तीर्थंकरों के साथ नागों का घनिष्ट संपर्क साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित है। शुंगकाल में मानव रूप में नाग प्रतिमाएँ निर्मित कीं जाने लगी। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार नागों को मानवी रूप में अंकन करते समय इनकी प्रतिमा देवों के समान निर्मित की जानी चाहिए। सिर पर फण शोभित रहता है। साथ ही साथ मानव शरीर पर अलंकरण भी शोभित रहते हैं। ब्राह्मण साहित्य में देव ओर दलित रूपों में नागों का उल्लेख किया गया है। नाग प्रतिमाएँ अमरकटंक में तो मिली ही है। सम्पूर्ण नर्मदा तट पर मिलती है। नर्मदा व नागों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिव के गले से पसीने के रुप में निकलकर नर्मदा जी बही एवं नाग महादेव के आभूषण है एवं नर्मदा जी शिव से उत्पन्न है इस कारण लोग नाग व नर्मदा नदी को भाई बहन मानते है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि हे नर्मदा नदी सात प्रमुख नदियो में श्रेष्ठ है। पापों को हरने वाली है। विचित्र है, गंधर्व, यक्ष तथा नागों से सेवित है। अमरकटंक नर्मदा मंदिर में एक सुन्दर नाग मूर्ति रखी है। **सरिद्वारे पापहरे विचित्रते गंधर्वयक्षोरग संवितांगे। स्कन्दपुराण रेवाखण्ड,** विष्णुपुराण में नर्मदा स्तुती का एक मन्त्र है जो इस प्रकार है। नर्मदायै नमो प्रातः नर्मदाय नमो निशी। नमस्तो नर्मदे तुभ्यं त्राहिमाम विसर्पतेः।। विष्णुपुराण

युगल प्रतिमाः अमरकटंक में कलचुरी मंदिर परिसर में तथा बहगढ़नाले के कलचुरीकालीन मंदिर में अनेक युगल प्रतिमाएँ शिलाफलकों पर बनी मिली है। युगल आकृतियॉ धनुष वाण लिए, वाद्ययन्त्र लिए बनाई गई है। इन शिलाफलकों में नारी पुरुषों के युगल जोडों को नृत्य संगीत के साथ एवं वाद्य यंत्रों के सहित प्रदर्शित किया गया। बहगढ नालें में शिलापट्टों पर मिथुन युगल आकृतियां प्रदर्शित हैं। युगल आकृतियों को मंदिरों के प्रवेश द्वारों, स्तंभों के आधारों आदि पर स्थापित करने का विधान था। ये युगल मूर्तियाँ यथार्थ में सृष्टि के विकासक्रम का प्रतीक हैं, ये अनुराग तथा समर्पण के भावों के व्यक्त करती हैं। ध्वस्त मंदिर के द्वारशखा पर भी मिथुन युग्म हैं। शिलाफलकों पर ठोलक, बासुरी वीणावादक, मजीरावादक तथा हाथों में अन्य वाद्य यन्त्रों को भी दिखाया गया हैं। इन दृश्यों से तत्कालीन कलायें, नृत्य तथा संगीत की स्थित का ज्ञान होता है। वाद्य यन्त्रों का सामान्य परिचय तो मिलता ही है, तत्कालीन निवासियों के आनंद तथा समृद्ध जीवन की झलक भी मिलती है। यह आकृतियॉ कलात्मकता व चारुतत्व से परिपूर्ण प्रदर्शित है। प्रतिमाओ पर अधोवस्त्रों का सुन्दर अंकन हैं।

वैदिक साहित्य में अप्सराओं का वर्णन हुआ है। रामायण के अनुसार उत्सवों में अप्सराएँ गन्धर्वो के साथ नृत्य करंतीं थीं तथा सभी कार्यो में देवों की सहायता करती पाई जाती थीं। महाभारत में इन्द्र की

Scanned by CamScanner

सेविकाएँ, देवारण्य विहारिणी, देव पुत्रियाँ कहीं गई हैं। ये विविध आभूशण तथा भव्य मालाएँ पहनतीं हैं।[37] अप्सराएँ अपने सुन्दर रूप तथा नष्त्य से तपस्वियों की साधना भंग करतीं थीं तथा इन्द्र की रक्षा करतीं थीं। पुराणों में सहजन्या, विश्वासी उर्वशी, तिरोत्तमा आदि अप्सराओं का उल्लेख मिलता है। कलचुरीकालीन शिल्पकला में अनेक सुंदर स्त्री प्रतिमाओं का निर्माण हुआ है, परन्तु उनका नामांकन करना कठिन है। अप्सराएँ, देवांगना, देवकन्या, सुरसुन्दरी, नृत्यांगना आदि भिन्न–भिन्न नामों से पहिचानी जातीं हैं। बहगढ नाले से प्राप्त कलचुरीकालीन अप्सराओं की प्रतिमाएॅ बडे ही मनमोहक ढंग से उत्कीर्ण की गई है। यह आकृतियॉ बहुत कलात्मक व चारूतत्व से परिपूर्ण है। अंग–प्रत्यंग को सुघड़ता से उत्कीर्ण किया गया है। अधोवस्त्र स्खलित होते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। अप्सरा के कोमल अर्द्धनग्न शरीर की इंद्रियाग्राहिता, अत्यंत सीमित रेखीयता के अनुशासन से नियंत्रित की गयी है। यह अप्सरा त्रिभंग मुद्रा में उत्कीर्ण है। यह क्षीण कटि, गहरी नाभि, नितम्ब व उन्नत स्तनों से झुकी हुई कामिनी तुष्टा की सौन्दर्यतत्व से परिपूर्ण मूर्ति है।

हनुमान प्रतिमाएं:– हनुमान पवनपुत्र और वानरों में श्रेष्ठ वानर कहे गए हैं। रामकथा में वे राम के परम भक्त कहे गये हैं।[55]राम के प्रत्येक सुख–दुख में वे साथ–साथ रहे। रामकथा के पूर्व हनुमान की उपासना यक्ष के रूप में प्रचलित थी। उनके द्वारा सम्पन्न अविश्वसनीय कार्य तथा मनचाहा रूप धारण कर लेने की उनकी क्षमता, उन्हें यक्ष प्रदर्शित करती है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि हनुमान के अतुलित बल को देखकर राक्षसगण उन्हें यक्ष समझने लगे थे। ब्रह्म पुराण में हनुमान को पवन पुत्र तथा शिव महापुराण में शिवपुत्र कहा गया हैं। हनुमान की दो प्रकार की मूर्तियाँ होतीं हैं एक नर मुख की और दूसरी वानर मुख की। वानर रूप के हनुमान, राम के दूत महाबलवान होते हुए भी सौम्य रूप वाले हैं। अमरकटंक से पॉच हनुमान की प्रतिमाएॅ प्राप्त, हुई है।

बहगढ़ नाले से प्राप्त कलचुरीकालीन पुरावशेष :– अमरकटंक के समीप लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर राजेन्द्रग्राम के समीप बहगढनाले से कल्चुरीकालीन मंदिर के पुरावशेष प्राप्त हुए है। यह पुरास्थल अनूपपुर–अमरकटंक मार्ग राजेद्रग्राम से लगभग 5 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर के गर्भग्रह में मुख्य देवता की प्रतिमा नही है। यह भगवान शिव को समर्पित मंदिर था। गांव के लोगों ने एक शिवलिंग इसमें रख दिया है। इस मंदिर की द्वार शाखा में ऊपर ललाट पर नवग्रहों के साथ साथ शिव,विष्णु एवं ब्रह्मा का अंकन है। इसके अतिरिक्त भारत की पवित्र नदियों मकर वाहिनी गंगा एवं कूर्म वाहिनी यमुना का कलात्मक अंकन शिल्पकार ने किया है। द्वारशाखा पर ही लताओं गज व अश्व इत्यादि का सुन्दर अंकन किया गया है। मंदिर की वाह्य दीवारों पर अनेक शिलाफलक लगे है। उनमें मुख्यता से वीणाधारी शिव, विष्णु, ब्रह्मा,, चमुण्डा, स्थानक गणेश, नृत्यरत गणेश, इत्यादि का भव्यता से अंकन किया गया है।[56] इस मंदिर मे लगे शिलाफलकों का विस्तार से वर्णन अग्र प्रकार है।

गणेष्ा प्रतिमा:–बहगढ़ नाला एक निरन्तर बहने वाला झरना है। इसी झरने के समीप एक विशाल गणेश प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा की लम्बाई लगभग 7 फिट है। यह सम्भवतः कलचुरी काल की ही है। इस पर स्थानीय लोगो ने सिदूर लगा दिया है। गणेश प्रतिमा को चतुर्भुजी रुप में मूषक पर बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। गरुण पुराण में उन्हें महाशक्ति तथा सदाशिव कहा गया है। शिवपुराण मे उन्हें पार्वती पुत्र कहा गया है।[35] गणपति की स्थानक एवं आसन प्रतिमाएं मिलती है। साहित्य में द्विभुजी से लेकर षोडसभुजी गणेश प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है। दाये भाग के एक हाथ में परशु एवं दूसरा

Scanned by CamScanner

हाथ वरद मुद्रा में है। बाये तरफ के एक हाथ में मोदक एवं बाँयीं ओर का निचला हाथ कट्यावलंबित है।

नृत्यरत गणेश प्रतिमाः– स्थानक गणेश की प्रतिमा युक्त सुन्दर शिलाफलक शिव मंदिर की पूर्वी दीवार में लगा हुआ। इस शिलाफलक में गणेश को द्विभुजी रुप में बनाया गया है। एक हाथ में परशु एवं दूसरे हाथ को वरद मुद्रा में शिल्पांकन किया गया है। गणेश शिवगणों के अधिपति थे इसलिए उन्हें गणपति कहा गया। इस प्रतिमा में गणेश का एकदन्त स्पष्ट रुप में प्रदर्शित किया गया है। लम्बोदर, सूर्पकर्ण, वक्रतुण्ड गणपति सिर पर मुकुट, हाथों में कंगन और यज्ञोपवीत धारण किए हैं। उन्हें नष्य मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। नृत्त गणेष का स्थूलकाय शरीर नृत्यमुद्रा में दर्शनीय है। गणेश पाँच मुख्य ब्राम्हण सम्प्रदायों में परिगणित गाणपत्य सम्प्रदाय के इष्ट देवता है। गाणपत्य सम्प्रदाय के इष्टदेवता गणपति का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्वशिरस उपनिषद में विनायक के नाम से हुआ है। महाभारत, मानव गृहयसूत्र, बोधायन गृहयसूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति इत्यादि में विघ्नेश्वर तथा विघ्न–विनाशक के रूप में विनायक का उल्लेख मिलता है। गणेश पुराण में गणेश को महाब्रम्हा, महाविष्णु, महाशक्ति तथा सदाशिव कहा गया है। वृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर, मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, आगमों, रूपमण्डन तथा अपराजितपृच्छा में गणेश प्रतिमा लक्षणों का उल्लेख किया गया है। गणेश प्रतिमाओं की विभिन्न विशेषतायें तथा इनके विभिन्न रूपों का विस्तृत विवरण टी.ए. गोपीनाथ राव ने अपने ग्रन्थ 'एलिमेन्ट्स ऑफ आइकोनोग्राफी' में दिया है। गणपति की स्थानक और आसन प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है। भारत से बाहर कम्बोडिया, हिन्द–चीन, जावा, नेपाल और जापान में गणपति उपासना प्रचलित थी।[36]

वीणाधारी शिव प्रतिमाः– बहगढनाला मंदिर की पश्चिमी दीवार पर वीणाधारी शिव को हाथों में वीणा लिए प्रदर्शित किया गया है। शिव को संगीत कला में श्रेष्ठ माना जाता है। प्रतिमा चतुर्भुजी रुप में बनायी गई है। प्रतिमा जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकृत है। शिव के दायी ओर के एक हाथ में त्रिशूल एवं बाये हाथ में अक्षमाला को दिखाया गया है। प्रतिमा के नीचे शिव के वाहन नंदी का अंकन है। यह प्रतिमा कला में दुलर्भ है। छत्तीसगढ में इस प्रकार की तीन प्रतिमाएं मिली है।[37]

नृत्यरत शिव प्रतिमाः– मंदिर की पूर्वी दीवार में नृत्यरत शिव की द्विभुजी प्रतिमा को बनाया गया है। इस प्रतिमा में शिव के दाये वाले एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे वाये हाथ से दाये पैर को पकड़े दिखाया गया है। शिव जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकष्त है। शिव के वाहन नंदी को दाये पैर के नीचे उत्कीर्ण किया गया है।विष्व के अनेक देशों में ऋग्वैदिक काल के पहले से शिव की उपासना प्रचलित रहने के प्रमाण मिलें हैं। सदैव ध्यान में लीन समाधिस्थ रहने के कारण योगेश्वर शिव स्थौण या लिंग रूप में प्रतिष्ठित हुए। हड़प्पा काल में शिव उपासना के ठोस प्रमाण एकाधिक मुहरों पर अंकित श्रृंग मुकुट ध ाारण किये हुए त्रिमुखी देवता तथा मृण्मुद्रा में उत्कीर्ण त्रिशूलकार स्तंभ के बगल में वृशभ के साथ खड़ी आकृति के रूप में प्राप्त हुए हैं। वैदिक काल में शिव का रूद्र रूप अधिक प्रचलित था। संहार कर्म द्वारा जगत को रूलाने के कारण वे रूद्र कहलाये। सामान्य देवता की तरह पूजित रूद्र की संज्ञा से विभूषित शिव की पहचान ऋग्वेद में अग्नि तथा इन्द्र से की गई है। यजुर्वेद, अथर्ववेद में भी उनका संहारक व रक्षक रूप वर्णित है। ब्राम्हण साहित्य में भी पशुपति, परम–शक्तिशाली रूद्र की उच्च स्थिति का वर्णन मिलता है। सूत्रकाल में औषधि के देवता व विघ्न विनाशक के रूप में शिव प्रतिष्ठित हुए। शिव की प्रतिमा उपासना का सर्वप्रथम विवरण बौधायन गृहयसूत्र में मिलता है। महाकाव्यों में सर्वोच्च देवता के रूप में

Scanned by CamScanner

शिव पूजित हैं। पुराण काल तक परमशक्तिशाली परब्रम्ह के रूप में शिव पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुके थे। कुशाण काल में प्रतीक और मानव दोनों ही रूपों में शिव की प्रस्तर मूर्तियाँ निर्मित होनें लगीं थीं।[38]

नृत्यरत शिव प्रतिमाः– मंदिर की पश्चिमी दीवार में नृत्यरत शिव की शडभुजी प्रतिमा को बनाया गया है। इस प्रतिमा में शिव के दाये वाले एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे हाथ में खड्ग तीसरा हाथ नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है। बाये तरफ के एक हाथ में पिनाक नामक धनुष एवं दूसरे हाथ में मुण्ड लिए है। तीसरा हाथ नृत्य अवस्था में बनाया गया है। शिव का एक नाम पिनाकी भी है। शिव जटामुकुट, कण्ठहार, पादवलय आदि से अंलकृत है। शिव के वाहन नंदी को दाये पैर के नीचे उत्कीर्ण किया गया है। यह दृश्य तान्डव नृत्य को प्रदर्शित करता है। शिव को तांन्डव नृत्य करने के कारण नृत्यशास्त्र का जनक भी कहा माना जाता है।[39]

ब्रह्मा प्रतिमाः–इस मंदिर के बाह् पूर्वी दीवार पर एक शिलाफलक पर द्विभुजी ब्रह्मा का अंकन है। ब्रह्मा को एक हाथ में वेद एवं दूसरे हाथ का आयुध अस्पष्ट है। तीन मुख दिखलाये गये है। उन्हे

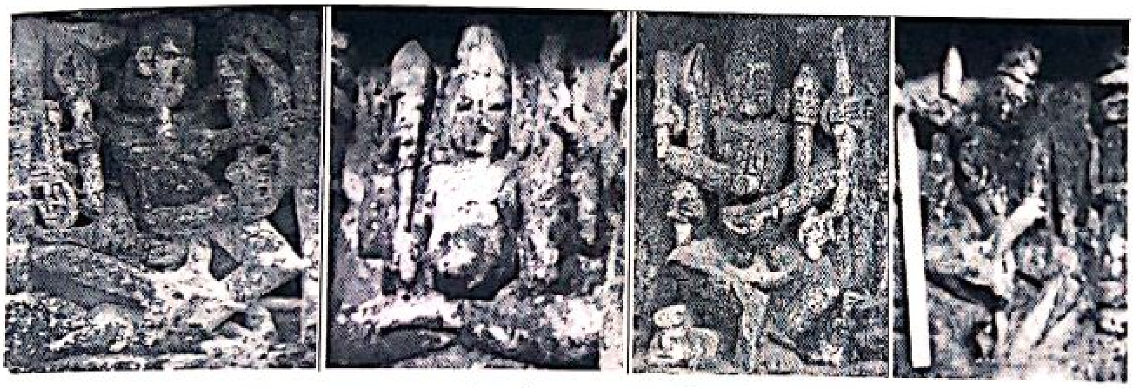

बहगढनाला, अमरकटंक से प्राप्त कलचुरीकालीन कलावशेष

कमलासान मुद्रा में बैठे दिखाया है। हिन्दू त्रिदेव के अंतर्गत ब्रम्हा का सर्वप्रथम स्थान है। उन्हें सृष्टि का निर्माता माना गया है। वैदिक साहित्य में इन्हें विष्वकर्मन, ब्रम्हणस्पति, हिरण्यगर्म, ब्रम्हा तथा प्रजापति आदि संज्ञाओं से विभूषित किया गया है। सृष्टि के निर्माता के रूप में वेदोत्तरकाल में भी उनकी प्रतिष्ठा बनी रही। ब्रम्ह पुराण में ब्रम्ह को सृष्टि का रचने वाला, पालन करने वाला तथा संहार करने वाला मानता हैं इनका जन्म नारायण की नाभि से उत्पन्न कमल से हुआ। अपने आप ही उत्पन्न होने के कारण वे स्वयम्भू कहलाये। ब्राम्हण ग्रन्थों में उन्हें देवों, असुरों का पिता और विश्व का रचियता कहा गया है। उपनिषदों, आरण्यकों, संहिताओं तथा पुराणों में ब्रम्हा का उल्लेख किया गया है।[40]

चमुण्डा देवी का अंकनः– चमुण्डा देवी की प्रतिमा युक्त शिलाफलक मंदिर की पश्चिमी दीवार पर लगा है। देवी की प्रतिमा को षड्भुजी बनाया गया है। दाये हाथ में त्रिशूल, खड्ग एवं एक आयुध अस्पष्ट है। बाये हाथ में धनुष एवं परशु है एक आयुध अस्पष्ट है। देवी के पैरो के नीचे एक शव पडा हुआ है। देवी के शरीर में हड्डियां दिख रही हैं। देवी की उपासना मातृदेवी अथवा समृद्धि की देवी के रूप में प्राचीन काल में प्रचलित रही है। ऋग्वेद में इला, सरस्वती, भारती, उशा, अदिति इत्यादि देवियों के नाम वर्णित हैं। उपनिषद् तथा सूत्रकाल में देवी का महत्व बड़ा। सूत्र साहित्य में षिव और रूद्र की पत्नी को शिव और रूद्र का समकक्ष माना गया है। महाभारत में विजय प्राप्त करने के लिये अर्जुन के द्वारा देवी की स्तुति

Scanned by CamScanner

की गई। पुराण काल में देवी सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। सप्तदेवों की शक्ति के रूप में देवी ने असुरों का संहार किया। यह दुर्गा का एक रुप है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चण्डिका देवी उल्लेख है। यह प्रतिमा कलुचरीकालीन कला का महत्वपूर्ण उदाहरण है।[41]

नृत्यरत पुरुष नारी षिलाफलकः– इस मंदिर में दक्षिणी दीवार में नारी पुरुषों के युगल जोडों को नष्त्य संगीत के साथ एवं वाद्य यंत्रों के सहित प्रदर्शित किया गया। षिलापट्टों पर मिथुन युगल आकषतियां प्रदर्षित हैं। युगल आकषतियों` को मंदिरों के प्रवेष द्वारों, स्तंभों के आधारों आदि पर स्थापित करने का विधान था। ये युगल मूर्तियाँ यथार्थ में सषश्टि के विकासक्रम का प्रतीक हैं, ये अनुराग तथा समर्पण के भावों के व्यक्त करती हैं। ध्वस्त मंदिर के द्वारशखा पर भी मिथुन युग्म हैं। शिलाफलकों पर ढोलक,बासुरी वीणावादक, मजीरावादक व अन्य वाद्य यन्त्रों का भी दृश्य हैं। इन दृश्यों से तत्कालीन कलायें, नृत्य तथा संगीत की स्थित का ज्ञान होता है। वाद्य यन्त्रों का सामान्य परिचय तो मिलता ही है, तत्कालीन निवासियों के आनंद तथा समृद्ध जीवन की झलक मिलती है।तत्कालीन समय में नृत्य एवं संगीत मनोरंजन का साध न था।[11] यह आकृतियॉ बहुत कलात्मक व चारुतत्व से परिपूर्ण प्रदर्शित है। प्रतिमाओ पर अधोवस्त्रों का सुन्दर अंकन हैं। प्रतिमाओं को क्षीण कटि, गहरी नाभि एवं उन्नत स्तनों के साथ सौन्दर्यत्व से परिपूर्ण बनाया है। अधोवस्त्र स्खलित होते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। नारियों के कोमल अर्द्धनग्न शरीर की इंद्रियाग्राहिता, अत्यंत सीमित रेखीयता के अनुशासन से नियंत्रित की गयी है। यह नारियां त्रिभंग मुद्रा में उत्कीर्ण है। यह क्षीण कटि, गहरी नाभि, नितम्ब व उन्नत स्तनों से झुकी हुई कामिनी तुष्टा की सौन्दर्यतत्व से परिपूर्ण मूर्ति है। इन नारी प्रतिमाओं में में प्रफुल्लता, ओज सुघड़ता, सुनम्य लय की स्वतंत्रता का मनोवैज्ञानिक चित्रण, तीव्र उल्लासिता, स्वेच्छाचारिता का मिश्रण हुआ है। सुन्दर शरीर मुद्रा, क्षीण कटि, उन्नत नितम्ब व स्तन स्त्री के सौन्दर्य के अभिप्राय बन गये हैं। अप्सरा,देवकन्या एवंन नृत्यागंना इत्यादि सुन्दर नारियों की अनेक प्रतिमाए मध्यकालीन कई मंदिरों में प्राप्त हुई है। स्तूप व मंदिर वास्तु पर अप्सराओं का अंकन बहुतायत से हुआ है। अप्सराएँ, देवांगना, देवकन्या, सुरसुन्दरी, नृत्यांगना, अलशा आदि भिन्न–भिन्न नामों से पहिचानी जातीं हैं। खजुराहों के मंदिर समूह की तरह ही युगल मूर्तियां इस मंदिर में दिखने को मिलती है। बहगढ नाला के कलचुरी मंदिर की मूर्तिकला में हिन्दू देव प्रतिमाओं के अतिरिक्त प्राप्त मानव मूर्तियों में, जीवन के विभिन्न पक्ष उजागर हुए हैं। पूजा उपासना के दृश्य, योद्धा, कामक्रीड़ा प्रसंग, स्त्री व पुरुष इत्यादि की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। स्त्री–पुरुष की आकृतियां चोली, साड़ी हार, पगडी

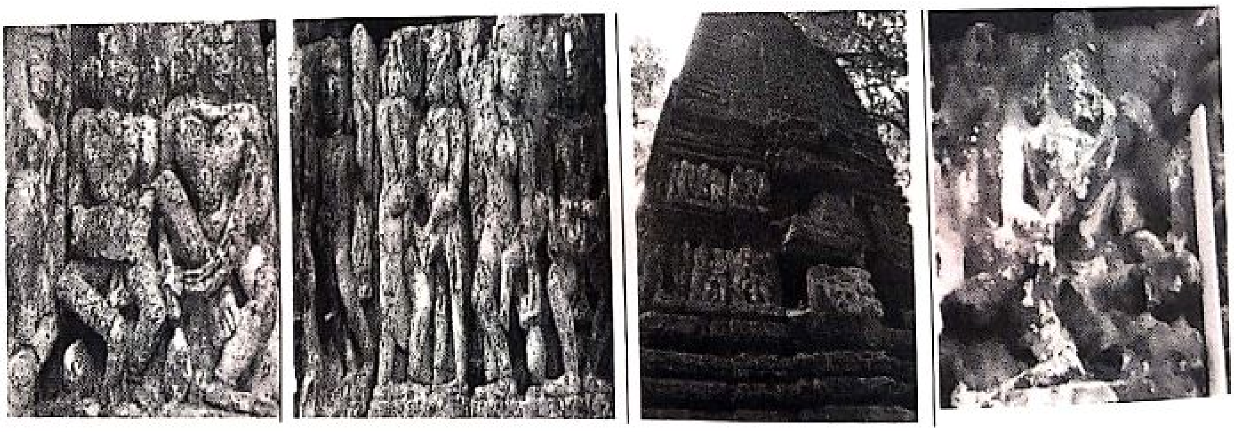

बहगढनाला, अमरकटंक से प्राप्त कलचुरीकालीन कलावशेष

Scanned by CamScanner

से सुसज्जित व केशविन्यास मनमोहक बनाया गया है।[42]

द्वारशाखाः– इस मंदिर की द्वार शाखा में ऊपर ललाट पर सूर्य सहित नवग्रहों का अंकन है। यह आकृतियों अस्पष्ट है। ललाट पर शिव,विष्णु एवं ब्रह्मा को स्थानक अवस्था में बनाया गया है। प्रतिमाए काफी अस्पष्ट है। अमरकटंक के कलचुरीकालीन मंदिर परिसर में एक नवीन बद्रीनाथ मंदिर में दो द्वार स्तम्भ लगे है। जिन पर सुन्दर नर नारी आकृतियों को बनाया गया है। स्तम्भों पर साधु, सिह ब्यालक प्रतिमाएँ व मालाधारी गन्धर्व बने है। स्तम्भों पर नदी देवीयों का अंकन किया गया है।

गंगा–यमुनाः–इस मंदिर की द्वारशाखा पर भारत की पवित्र नदियों मकर वाहिनी गंगा एवं कूर्म वाहिनी यमुना का कलात्मक अंकन शिल्पकार ने किया है। सर्वप्रथम गुप्तकाल में कला में मकरवाहिनी गंगा और कच्छवाहिनी यमुना का चित्रण देखने को मिलता है। गुप्तकाल में प्रायः गंगा–यमुना को मंदिर के द्वारा के ऊपर मध्य, नीचे दोनों ओर स्थापित किया जाता था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में यमुना की प्रतिमाओं के निर्माण के लक्षणों का उल्लेख हुआ है।[70] कूर्म पर बैठी चामर सहित हाथ में नील कमल लिए हुए सौम्य नील कमल के सदृश्य वर्ण वाली यमुना को निर्मित करना चाहिए। कालिदास ने भी अपने ग्रन्थों में गंगा–यमुना का विवरण दिया है। इस प्रतिमा में यमुना को द्विभंग–मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। निकट ही छत्र लिये छत्रधारिणी खड़ी हुई है। निम्न भाग में उनका वाहन कच्छप बना हुआ है। देवी यमुना को सुन्दर रूप में अंकित किया गया है।[43]

नाग : बहगढ नाले की द्वार शाखा पर नागों का अंकन किया गया है। वैदिक युग के पूर्व नाग–पूजा के साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि हिन्दु धर्म में प्रारंभ से ही नाग पूजित रहा हैं मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा ससे प्राप्त मुद्राओं पर भी नागों को अंकन प्राप्त हुआ है। नाग का भरतीय धर्म और कला से घनिश्ट संबंध ा रहा है। ऋग्वेद में नाग को देवता नहीं माना गया है। किन्तु अथर्ववेद में यक्षों, गंधर्व–अप्सराओं के साथ इनका उल्लेख मिलता है, इन्हें देवजन कहा गया है। यजुर्वेद तथा गृह्यसूत्रों में नागपूजा का प्रसंग है। ब्राह्मण ग्रंथ, भगवतगीता, महाभारत तथा पुराणों में नागों का उल्लेख हुआ है।[44] बुद्ध तथ जैन तीर्थंकरों के साथ नागों के घनिश्ट संपर्क साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा सुप्रमाणित है। ब्राह्मण साहित्य में देव ओर दलित रूपें में नागों का उल्लेख किया गया है। मंदिर के प्रवेश द्वार के सिरदल का निचला बंध करबद्ध नाग प्रतिमाओं से अलंकृत है। नागों का निचला षरीर जो कि सर्पकार है एक दूसरे से लिपटा हुआ अंकित है।

गज अकंनः– द्वारशाखा पर गज का सुन्दर अंकन किया गया है। मंदिर स्थापत्य में हाथी का अंकन लोकप्रिय रहा। मंदिर के द्वारमूल दोनों छोरों पर पद्मवन में विचरते हुए हाथी का मनोहारी अंकन है।

वृक्ष, लता–पुष्प :बहगढ नाला के वास्तु शिल्प में कलात्मक रूप से प्रकृति चित्रण किया गया है। शिव मंदिर के द्वार शाखाओं पर लता पत्र और पुष्प उकेरे गये हैं। पुष्पांकन में पूर्ण विकसित एवं अर्द्धविकसित पुष्पों का अंकन हैं मंदिर के अवशिष्ट विशाल पाषाण खंड का निचला बंध पुष्पांलकरण युक्त है। अन्य बन्धों पर लतांकन है। लताएँ क्रमशः ऊपर की ओर विकसित होतीं गईं हैं।

घटपल्लव :मंदिर की द्वाशाखा पर दो पारियों को पुष्पों एवं पल्लवों से परिपूर्ण पूर्णघट लिए दिखाया गया है। यह घट मांगलिक प्रतीक है। भारतीय कला में घट से निकलते हुए पुष्पों एवं पल्लवों को मूर्तिरूप प्रदान किया गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार कमल पुष्प और पल्लवों से परिपूर्ण पूर्णघट जीवन के जल को धारण करने वाले मानव षरीर का प्रतिरूपक है। मानव शरीर (घट) जीवन (जल) से परिपूर्ण

Scanned by CamScanner

होने पर ही सभी सुखों (पुष्प–पल्लवों) का अनुभव कर सकता है। प्रगति स्वरूप पूर्ण घट का शिल्पकला में अंकन हुआ है। मंदिर के द्वारमंडल के बाह्य स्तंभों के ऊपरी हिस्से में एवं प्रवेश द्वार के बन्धों पर घटपल्लव अलंकरण है। पुष्पों एवं पल्लवों से परिपूर्ण पूर्णघट मांगलिक प्रतीक है। भारतीय कला में घट से निकलते हुए पुष्पों एवं पल्लवों को मूर्तिरूप प्रदान किया गया है। बहगढ नाले व अमरकटंक के कलचुरीकालीन मंदिर के द्वारमंडल के बाह्य स्तंभों के ऊपरी हिस्से में एवं प्रवेश द्वार के बन्धों एवं शिखर पर घटपल्लव अलंकरण बनाये गये है।[45]

अमरकटंक की कला में वनस्पति चित्रण : अमरकंटक व आसपास के क्षेत्रों के मंदिरों के स्तंभों पर अधोमुखी एवं ऊर्ध्वमुखी कमल का अंकन किया गया है। बहगढ नाले के कलचुरी कालीन मंदिर के द्वार मंडप के दोनों बाह्य द्वार–स्तंभों के मुख्य भाग में ऊपर की ओर अधोमुखी कमल का अंकन किया गया है। अमरकटक के समीप लगभग 24 किलोमीटर दूर जबलपुर मार्ग पर कुकरमठ मंदिर पर अधोमुखी व ऊर्ध्वमुखी कमल का सुंदर अंकन हुआ हैं। इस मंदिर की दीवारों पर क्रमशः मेखला, घटपल्लव, कीर्तिमुख तथा फिर ऊर्ध्वमुखी कमल का सुंदर अंकन है। अमरकटंक के वास्तु शिल्प में कलात्मक रूप से प्रकृति चित्रण किया गया है। कुकरमठ मंदिर के द्वार शाखाओं पर लता पत्र और पुष्प उकेरे गये हैं। पुश्पांकन में पूर्ण विकसित एवं अर्द्धविकसित पुष्पों का अंकन हैं बहगढ मंदिर के अवशिष्ट विशाल पाषाण खंड का निचला बंध पुष्पांलकरण युक्त है। अमरकटंक से प्राप्त कलचुरी कालीन मूर्तियों के आभूषणों पर पुष्पों एवं पंक्तियों का सुंदर अंकन मिला है। विष्णु प्रतिमाओं में वनमाला को धारण किए हैं उस पर विभिन्न वृक्षों के पत्ते, अशोक के पत्ते, अशोक के पत्ते, पूर्ण विकसित पुष्प एवं लताओं का अंकन हुआ है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकटंक धार्मिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण रहा है। यहॉं सभी धर्मो का सम्यक विकास हुआ। कल्चूरी कालीन समाज में जैन धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, सौर धर्म, शाक्त धर्म, गाणपत्य धर्म इत्यादि का बोलबाला था। कल्चूरी कालीन प्रशासक भी सभी धर्मो को समान रुप से महत्व देते थे। इसी कारण उन्होनों सभी धर्मो के देवी देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण करवाया था। इस क्षेत्र मे शैव धर्म का अधिक प्रचार प्रसार था इसी कारण यहॉं शिव की अनेक प्रतिमाऍं प्राप्त हुई है। कलचुरी नरेश भी शैव धर्म के अनुयायी थे। देवी प्रतिमाओं की प्राप्ति से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे शाक्त धर्म का भी बोलबाला था। बहगढ़ नाले के कलचुरी मंदिर में शिव के विभिन्न रुपों का अंकन किया गया है। भगवान शिव पुराणों के अनुसार नष्त्य एवं संगीत के प्रेणता है। इस मंदिर में शिव के नृत्यरत स्वरुप का अंकन व वीणाधारी शिव का अंकन भव्यता से किया गया है। गणेश को नृत्यरत मुद्रा में दिखाया गया है। अनेक पुरुष व नारियों को नृत्यरत एवं संगीत के विभिन्न बाद्य यंन्त्रों जैसे वासुरी मृद्ग एवं ठोलक. बजाते अंकित किया गया है। संगीत प्रेम इस क्षेत्र के लोगों में इस कला के माध्यम से देखने को मिलता है। कलाकार ने विभिन्न वाद्य यन्त्रों को कला में उत्कीर्ण किया है इससे ज्ञात होता है कलचुरी कालीन समाज में वीणा, ठोलक, मजीरा एवं नृत्य काफी प्रचलित था एव शिव को नृत्य संगीत का प्रारम्भ करते समय स्मरण किया जाता होगा। इसलिए ही कला में कलाकार ने शिव को नृत्य एवं संगीत की मुद्रा में दिखाया है। शिव मंदिर में अनेक पुरुष व नारियों को भी नृत्य एवं संगीत की मुद्रा में दिखाया है।[74]

Scanned by CamScanner

सन्दर्भ :–

1. शहडोल जिला गजेटियर, भोपाल, 1994
2. अनन्त, आर, ऐस :आर्ट एण्ड आर्केटेकचर ऑफ दा कलचुरी ऑफ त्रिपुरी, शोध प्रबन्ध, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश, 1965
3. मलपानी, जे.एन.:–अनूपपुर जिले का ग्रामवार पुरातत्व सर्वे रिपोर्ट, मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग, भोपाल, 2009
4. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 9
5. वही, पृ. 13
6. ुबे, के.एन. : अमरकटंक परिदर्शन, विजन कम्प्यूटर, जबलपुर, पृ. 20
7. मलपानी, जे.एन.:–अनूपपुर जिले का ग्रामवार पुरातत्व सर्वे रिपोर्ट, मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग, भोपाल, 2009
8. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 17
9. शर्मा,राजकुमार :–म.प्र. के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1974,पृ. 361
10. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 33
11. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 44
12. स्कन्दपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 750
13. शर्मा,राजकुमार :–म.प्र. के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1974, 361
14. देसाई कल्पना, आइकोनोग्राफी ऑफ विष्णु, दिल्ली, 1973, पृ. 74
15. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 55
16. मलपानी, जे.एन.:–अनूपपुर जिले का ग्रामवार पुरातत्व सर्वे रिपोर्ट, मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग, भोपाल, 2009
17. सोमपुरा प्रभाशंकर : भारतीय शिल्पसंहिता,नई दिल्ली,1975
18. चढार, मोहन लालः–धनपुर से प्राप्त जैन प्रतिमाएँ, प्राचान तीर्थ जीर्णोद्धार शोध पत्रिका, नई दिल्ली, पृ.17
19. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 99
20. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 119
21. रीवा राज्य गजेटियर, अंक 6,1907,पृ.104
22. शहडोल जिला गजेटियर, भोपाल, 1994
23. रीवा राज्य गजेटियर, अंक 6,1907, पृ.104
24. श्रीवास, संजय, श्री नर्मदा परिक्रमा, श्री माँ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकटंक,2014, पृ.27
25. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग की पत्रिका, अंक 8, बर्ष 2015, पृ. 1–'6
26. श्रीवास, संजय, श्री नर्मदा परिक्रमा, श्री माँ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकटंक,2014, पृ. 38
27. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग की पत्रिका, अंक 8, बर्ष 2015, पृ. 1–'6
28. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग की पत्रिका, अंक 8, बर्ष 2015, पृ. 1–'6
29. चढार, मोहनलालः हिस्टोरिकल स्टडी आफ अपर जोहला रिवर वेसिन, एडरॉयड अन्तराष्ट्रीय पत्रिका अंक 1, बर्ष 2014, पृ. 59–'63
30. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा
31. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 111
32. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग की पत्रिका, अंक 8, बर्ष 2015, पृ. 1–'6
33. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष, कोशल पत्रिका, छत्तीसगढ संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग की पत्रिका, अंक 8, बर्ष 2015, पृ. 1–'6

Scanned by CamScanner

34. श्रीवास, संजय, श्री नर्मदा परिक्रमा, श्री मॉ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकटंक, 2014, पृ.26
35. चढार, मोहनलालः बहगढनाले से प्राप्त नवीन कलचुरीकालीन पुरावशेष,पूर्वोक्त, पृ.112
36. वही
37. वही
38. वही
39. वही
40. वही
41. चढार, मोहन लाल : अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, नई दिल्ली, 2017, पृ. 131
42. वही
43. वही
44. वही
45. वही

Scanned by CamScanner

9 मिथिला की भित्ति चित्रण–परम्परा

राखी कुमारी

भित्ति का अर्थ दीवार होता है, यह शब्द मिथिलांचल में प्रशस्त शब्द 'भीत' से लिया गया है। मिथिलांचल में मिट्टी की दीवाल को भीत कहते हैं। इस भीत को अन्दर एवं बाहर से सजाने के लिए इस पर अनेक प्रकार के चित्र बनाए जाते हैं, जिसे भित्ति–चित्र की संाा दी गई है। चित्रकला का अतिहास प्रागैतिहासिक काल आर्थात पाषाण काल शैलचित्रकला के रुप में देखने को मिलता है। भारत के अनेक प्रान्त जैसे मध्यप्रदेशए छत्तीसगढ, कर्नाटक महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, राजस्थान एवं बिहार इत्यादि से बाहुल्य मात्रा में शैलचित्रकला के प्रमाण मिलते है। यही प्राचीनकालीन शैलचित्रकला का स्वरूप हमें मिथिला की भित्ति चित्रण कला में देखनें को मिलता है। इसका विस्तार से वर्णन अग्र प्रकार है।

सामान्यतया सभी प्राणियों में यह एक विशेष गुण होता है कि वह अपने रहने के स्थान का कुछ प्रमाण छोड़ जाता है। मनुष्य ही नहीं जानवर भी जिस रास्ते से गुजरते हैं वे अपने मलमूत्र द्वारा यह प्रमाण छोड़ जाते हैं, कि वह जानवर वहाँ पर आया था। इस बात की सम्पुष्टि का इन दिनों काफी वैज्ञानिक विश्लेषण भी हो रहा है। मनुष्य स्वभावतः जानवर से अधिक विवकेशील प्राणी रहा है। वह जब जंगलों में निवास करता था तो पेंड़ों पर तथा पत्थरों पर अपने रहने के निशान बनाता था। वह ऐसा इसलिए करता था कि यदि कोई अन्य मानव गिरोह उस स्थान से गुजरे तो उसे इस बात का आभास हो कि यहाँ पर कोई मानव झुण्ड निवास कर चुका है तथा वह चाहे तो निवास कर सकता है।अपने विचार के प्रतीकों और शारीरिक भाव–भंगिमाओं द्वारा प्रकट करना मानवीय स्वभाव रहा है। प्रारम्भ में वह अपने ज्ञान को दूसरे तक पहुँचाने के लिए गुफाओं की दीवारों, बड़ी–बड़ी चट्टानों, मिट्टी की परतों या अन्य सामग्रियों पर अपने विचारों को अंकित करता था। इन्ही रेखांकित प्रयत्नों के कारण ही मानव–सभ्यता का लगातार विकास होता गया।

यह प्रक्रिया मानवों की गुफावासी होने पर कुछ अधिक प्रशस्त हो चुकी, वाक् क्षमता द्वारा अपने ह्रदय के भावों को वे सम्प्रदेषण नहीं कर पाते थे। अतः सांकेतिक भाषा का चित्रण गुफाओं में होने लगा। यह सांकेतिक भाषा उनके शिकार उनके संरक्षण, प्रेम प्रंसग इत्यादि के लिए व्यवहार में आने लगा। आज से हजारों–हजार साल पहले यानी यायावर (संचरणशील) युग, जब मनुष्य अपनी आदिम स्थिति में था और

Scanned by CamScanner

उसे सभ्यता की किरण भी नहीं मिली थी। वह तब पेंड़ों पर गुफाओं में, गड्ढ़ों में रहता था। नंगा ही घूमता था या अधिक–से–अधिक पत्तों की छाल या मरे हुए जानवरों की खाल से अपना तन ढ़कता था। उस समय मनुष्य शिकार करके ही अपना पेट पालता था। पर शिकार बहुत आसान नहीं था। बड़े–छोटे खूँखार जानवर थे, जो आज खत्म हो गए। उस समय धातु का ज्ञान नहीं हुआ था। अतः हथियार पत्थर के ही थे, तेज पत्थर को जिन्हें रगड़कर और फिर लकड़ी में ठोककर भाले का फल बना लिया जाता था।

उस समय शिकार करना काफी कठिन था। आदमी अपनी सफलता के लिए केवल अपनी ताकत के ऊपर ही निर्भर रहता था। वह उसके लिए कई प्रकार के जादू–टोने भी करता था। इस प्रकार का एक टोटका था अपनी पहाड़ी खोह की दीवार पर शिकार किए जाने वाले जानवरों का रेखा चित्र बनाकर उसे तीरों और भालों से बेध देना। यह शिकारियों को शिकार के शरीर का, उसके अंग प्रत्यंग को पूरी तरह समझने का मौका तो देता ही था, साथ ही शिकारियों के विश्वास के अनुसार उन्हें मारने का टोटका भी तैयार कर देता था। उन्हें भालों से मारने के पहले ही शिकारी शिकार को चित्र में ही मार डालते थे। ऐसा करने के पीछे उनका एक और उद्देश्य होता था। वे अपने एवं अपने बच्चों के मन में यह विश्वास बैठा देते थे कि इन जानवरों का शिकार किया जा सकता है। जिस जानवर को चित्र में अंकित करता है। वह अपने वश में सहज़ता एवं सरलता से आ जाता है। इस तरत भित्ति–चित्रण गुफावासी के समय एक शिक्षा का माध्यम था। गुफावासी मानव अपने जीवन में सफलता पाने, भय को दूर रखने, अदृश्य शक्तियों की पूजा के लिए ज्यामितीय आकारों को सांकेतिक रूप में भी प्रयोग करते थे। त्रिभुज, वृत्त, आयताकार, स्वसितक, षट्कोण, अंकों तथा रेखाओं आदि अनेक प्रतीक–चिन्हों को चित्रित कर टोना–टोटका व जादू कर निज़ात पाते थे। इस प्रकार के अनेक चित्र आज भी मध्यप्रदेश के गुफाओं में देख सकते हैं। जिसे हम भीमबेटका के नाम से जानते हैं। यहाँ दो स्तर के चित्र देखने को मिलते हैं। पहले स्तर के चित्रों में शिकार, नृत्य, हिरण, बारहसिंगा, सुअर, रीछ, जंगली भैंसे, घोड़े, हाथी एवं अस्त्रधारी घुड़सवार हैं। दूसरे स्तर पर मानवों को जानवरों के साथ अन्तरंग मित्र के रूप में दिखाया गया है। यह कलाकृतियाँ गुफाओं के ऊबड़–खाबड़ दीवारों पर टिमटिमाती लौ में बनाया गया है। आज भी ये चित्र हमारी आज की सोच से आगे है।

मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया का विकास बहुत अधिक तेजी से होता है। आज के युग मे भी जब कम्प्यूटर इतर तेज सोचने वाला हो गया है फिर भी वैज्ञानिक मानते हैं कि इसके सोचने की क्षमता मानव–मस्तिष्क से कम हैं। मानव अपने मस्तिष्क का पूर्ण सोच लिखकर या कहकह सम्पूर्ण समाज में प्रसारित–प्रचारित करने में अपने को पूर्ण समर्थ नहीं पा रहा है, क्योंकि समाज पूर्ण रूपेण शिक्षित नही हैं तथा मनुष्यों के पास इतना अधिक समय नहीं है कि पुस्तकों को पढ़कर पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें। इसी कारण से अन्य शास्त्रों की तरह चित्र शास्त्र का अविर्भाव हुआ उदाहरण स्वरूप दुर्गा सप्तशती पुस्तक को पढ़कर इस बात को सभी नहीं कर सकते हैं कि महिषासुर को दुर्गा जी ने क्यों और कैसे मारा है। लेकिन महिषमर्दिनी दुर्गा जी का चित्र देखकर लोग तुरन्त समझ लेते हैं कि दुर्गा जी ने महिषासुर को कैसे मारा। आजकल प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम भी चित्रलिपि ही है। क्योंकि बच्चे, जिनका ज्ञान परिपक्व नहीं होता है वह भी चित्र को देखकर यह समझ जाते हैं कि ये किस वस्तु का चित्र है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी वस्तु के ज्ञान प्राप्ति के लिए चित्रकला एक विश्वसीय माध्यम है।

Scanned by CamScanner

भित्तिचित्रण की दो प्रकार की पद्धतियाँ प्रचलित हैं:

1. वास्तविक फ्रस्को अथवा फ्रस्को बुओनो।
2. फ्रेस्को असेक्को अथवा टेम्परा

पहली पद्धति ईस्वी सन् के आरंभ के पूर्व यूरोप में भी काफी प्रचलित थी और विटरूवियस एवं टिलनी ने इसकी चर्चा भी की है। इसके अनुसार दीवार पर पलस्तर की एक मोटी तह देकर चित्र का आधार तैयार किया जाता था। आधार के सुखाने के पूर्व ही रंग का कार्य कर लिया जाता था। पलस्तर में नमी के कारण रंग पलस्तर के भीतर तक बैठ जाता है और वे चित्राधार के अभिन्न अंग बन जाते हैं। इस पद्धति में पलस्तर का उतना ही चित्राधार तैयार किया जाता है जितने पर चित्रकार उसके सूखने के पूर्व चित्र की रचना कर सके और यदि चित्र पूर्व होने से पूर्व पलस्तर सूख जाए तो पलस्तर काट कर हटाना पड़ता है। इस कारण फ्रेस्को बुआना पद्धति से निर्मित भित्ति–चित्र को बारीकी से देखने पर जोड़ दिखता है। इस विधि में जो रंग प्रयोग होता है उसे टिकाऊ बनाने के लिए उसमें गोंद, सरेस अथवा लसदार पदार्थ मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसके विपरीत फ्रस्को असेक्को अथवा टंपरा पद्धति के अनुसार पलस्तर के सूख जाने के पश्चात् उस पर चित्रांकन किया जाता है तथा रंग के घोल में लसदार पदार्थ मिलाया जाता है। रंग कर्म के समय आध ार शुल्क होने के कारण रंग पलस्तर के भीतर न पैठ कर केवल उसकी सतह पर ही रहता है और इस पद्धति के अनुसार निर्मित चित्र बहुत आसानी से अपने आधार से अलग हो जाता है। पहली विधि के अनुसार बनाए चित्र दूसरी विधि द्वारा निर्मित चित्रों की अपेक्षा कहीं अधिक टिकाऊ होती है तथा उन्हें आधार से हटाया नहीं जा सकता। मिस्र तथा मेसोपोटामिया के प्राचीन चित्र टेपरा पद्धति से बनाए गए हैं, लेकिन मिथिला में भित्ति या दीवार को चित्र के लिए तैयार करने की विधि भिन्न हैं–

पिठार–चावल को भिगोकर उसे सिलबट्टे पर पीसकर बनाया जाता है। इस पिसे हुए घोल को ही पिठार कहते हैं। पिठार से दिवाल पर पहले आधार बनाते हैं, फिर इस पर चित्र की रचना करते हैं। सबसे पहले काले रंग से तूलिका के सहारे आकृति बनाते हैं। फिर उसमें अपनी इच्छा या जरूरत के अनुसार रंग भरते हैं। रंग भी ये कलाकार स्त्री प्रकृति से फूल–पत्ती को एकत्रित करके स्वयं घर में बनाती हैं। लाल रंग – कुशुम के फल से, पीला हल्दी से, हरा सेम की पत्तियों से नीला नील से, दो या दो से अध िक रंगों को मिलाकर अन्य रंग तैयार करती हैं।

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि भित्ति चित्रण मूलतः गुफाकाल से ही प्रारम्भ हुआ था। गुफाकाल की प्रारम्भिक स्थिति में जब आदिमानव दीवालों पर कुछ चित्र लिखते थे तो वास्तव में वह चित्र न होकर उनकी सांकेतिक भाषा हुआ करती थी। क्योंकि सम्बाहु सम्प्रेषण करने की क्षमता उनमें नहीं थी, क्योंकि उस समय में भाषा एवं बोली का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। उस समय के मानव न तो सभ्य थे और न ही बोलने की कला जानते थे, तो अपनी बात को समझाने के लिए चित्रों का सहारा लेते थे। उस समय के चित्र आज के चित्रों की तरह सुन्दर और सजीले नहीं होते थे। क्योंकि उनका पूर्ण रूप से मानसिक विकास नहीं हुआ था। वे शिकार के लिए जानवरों के टेढ़े–मेढ़ चित्र बनाकर उस पर किसी हथियार का चित्र बनाते थे। इससे स्पष्ट होतो था किस हथियार से शिकार करने के लिए जाना है। आगे चलकर जब सभ्यता का विकास हुआ तो पुरानी परम्परा को अर्थात भितिचित्र को सहज एवं सरल होने के कारण

Scanned by CamScanner

उसका परित्याग नहीं करके उनमें विकास लाने की प्रक्रिया अपनायी। भित्तिचित्र सुन्दर बनने लगे। गुफाओं का सौन्दर्यीकरण इन चित्रों से होने लगा। जिसका उदाहरण आज भी अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में वर्तमान में हैं।

भारतीय भित्तिचित्रों के इतिहास में अजन्ता के भित्तिचित्रों का नाम सबसे पहले आता है। जिनका निर्माण शुंक, कुषाण, गुप्त आदि अनेक राजाओं के समय 200 ई.पू. से 7वीं शताब्दी में हुआ। अजन्ता का प्रकृति–वैभव आज भी इतना आकर्षक है कि वहाँ जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता कि अजन्ता के उन महान कला–पण्डितों ने अपनी कला के लिए जिस स्थान को चुना वह सर्वथा उपयुक्त था। भारतीय कला का यह पावन तीर्थस्थल बम्बई राज्य के औरंगाबाद जिले में स्थित है। (पहले 29 गुफाएँ ही थी, बाद में एक और गुफा का पता चला है। अजन्ता में कुल 30 गुफायेंह", जिनके दो भाग किये गये हैं, स्तूप गुफायें और विहार गुफायें। पहले भाग की गुफा में प्रार्थना और दूसरे भाग की गुफा में रहने की दृष्टि से बनाई गई थी। सभी गुफा में चित्र बने हैं, लेकिन अब पहली, दूसरी, नवीं, दसवी, सोलहवीं और सत्रहवीं गुफाओं के चित्र ही सुरक्षित हैं। अजन्ता की कृतियाँ विश्व की सर्वोच्च कला कृतियों में गिना जाता है, उनकी प्रतिकृतियों की कई बार विदेशों में प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की जा चुकी हैं, इन कलाकृतियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें न्यूयार्क–यूनेस्को से 1954 ई. में प्रकाशित 'प्रिंटिंग्स ऑफ अजन्ता केब्ज' का नाम प्रमुख है।

अजन्ता की कला–कृतियों में भगवान तथागत के जीवन–दर्शन के उक्त दोनों पक्ष गुम्फित है। उनमें एक ओर जहाँ बुद्ध की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर बहुजनहिताय की कल्याण–कामना भी व्याप्त है। अजन्ता के चित्रों में शुंग और कुषाण युग की कला का रिक्त विद्यमान है, किन्तु प्रधानता उसमें गुप्त शैली की है। अजन्ता की चित्रों को बारीक से विश्लेषण करने वाले विद्वानों का मत है कि उसमें लगभग बीस प्रकार के शैलियों का समावेश है। इसके बावजूद जिस भी कलाकार ने इन कृतियों का स्पर्श किया उसी ने उसके रंगों, रेखाओं एवं आकृतियों को विकृत नहीं किया वरण परिष्कृत ही किया, क्योंकि वे सभी कलाकार अपने व्यवसाय में पारंगत थे। अजन्ता की कृतियां में हमें वास्तु, मूर्ति और चित्रकला इन तीनों रूपों का एक साथ दर्शन होता है, किन्तु उसको अन्तरराष्ट्रीय ख्याति उसके चित्र–विधान के कारण प्राप्त हुई। विद्वानों ने अजन्ता के निर्माण कार्य को दो कालों में विभाजित किया है। उनके अनुसार दोनों धर्मों के कलाकार बौद्ध धर्म से प्रेरित थे। पहले काल के कलाकार हीनयान मत के और दूसरे महायान मत के समर्थक थे।

विद्वानों ने अजन्ता के चित्रों को तीन भागों में बाँटा है। जिनके नाम है आलंकारिक, रूपऔदिक और वर्णनात्मक। पहले श्रेणी में पुष्पों की बेले, अलौकिक पशु, राक्षस, किन्नर, नाग, गरुण, यक्ष तथा पांचिक, हारीति आदि। दूसरी श्रेणी में बुद्ध बोधिसत्व, राजा–रानियों की आकृतियाँ आदि, तीसरी श्रेणी में जातकों से सम्बन्धित यानी बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ हैं। आलंकारिक चित्रों के विषय में काफी विविधता है। पशु, पक्षी, फूल, वृक्ष, बादल, नदियाँ आदि को अलंकरण सज्जा में प्रयोग किया है। कहीं–कहीं मानव आकषति को ज्यामितिक रूप में प्रयोग किया है। फूल में कमल का प्रयोग प्रायः सभी जगह देखने को मिलता है। पक्षियों में मोर, तोता, हंस आदि का प्रयोग हुआ है। कला की दृष्टि से दूसरी कोटि के चित्र बड़े ही उत्कृष्ट हैं। गुफा नं.–1 में विश्व–विश्रुत बोधसत्व के चित्र की तुलना एंजेलों की कृतियों से की गयी है। मरणासन्न, राजकुमारी, कृष्णवर्णा और श्रृंगार करती हुई राजकुमारी का वर्णन

Scanned by CamScanner

किया गया है। जीवन की अन्तिम घड़ियों में राजकुमारी की देहयष्टि में मृत्यु की अलसता जैसे स्पष्ट दिखायी देती है। माता–पुत्र नामक चित्र में भी भावांकन का चातुर्य विलक्षण है। तीसरी कोटि के चित्रों में से बहुत से चित्रों को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। जैसे छदंत जातक, ब्राह्मण जातक, शिवि जातक, माटपेरू जातक आदि।

अजन्ता के चित्रों की विशेषताएं

1. भाव–संप्रेषण ही अजन्ता की चित्रकला की आत्मा है, जिसके बिना वह निष्प्राण ही रह जाती है।
2. रेखा सौष्ठव – अजन्ता के चित्रों के रेखाओं में कहीं भी भारीपन या संकोच नहीं दिखता। कलाकार की तूलिका में इतनी गतिशीलता है कि उसके थोड़े ही परिवर्तन से चित्र की रूपरेखा उभर आती है।
3. रंगों का संयोजन – अजन्ता के चित्रों में रंगों का संयोजन भी बड़ी निपुणता के साथ किया गया है। चित्रों में गेरुवा, रामरज, हरा, काजल, नीला और चूने के रंग का विशेष प्रयोग है, उनके संयोजन इस तरह से किया गया है कि चित्रों में पर्याप्त विविधता पैदा हो गई है। रंग गहरे पर भारी नहीं लगते।
4. रूढ़िहीनता – चित्रों में एक विषयों की पुनरावषत्ति के बावजूद अलग–अलग चित्रकारों का अपना–अपना स्वतंत्र कला–कौशल विद्यमान है। अजन्ता के चित्रों में रेखाओं की भिननता के आध ार पर कम–से–कम बीस प्रकार की शैलियाँ तथा रंगों के आधार पर उससे भी अधिक शैलियाँ खोज कर अलग की जा सकती है।
5. जीवन की विविधता – अजन्ता की कला–कृतियों में जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों की सुंदर व्यंजना देखने को मिलती है।
6. हस्तमुद्राओं द्वारा भावप्रदर्शन – हस्तमुद्राओं का अजन्ता के चित्रों में विशेष महत्व है। इसके पहले और न बाद में ऐसा प्रदर्शन देखने को नहीं मिलता है। मुख की भंगिमा और नेत्रों का लास्य भी इस चित्रावली के प्रमुख आकर्षण हैं।
7. नारी का आदर्श रूप – अजन्ता के चित्रों में नारी का स्थान ऊँचा है व नारी मुक्तियाँ कला की अधि ष्ठात्री देवियाँ हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार नारी को एक आदर्श रूप में स्वीकार किया गया है, उसका चित्रण मानवीय रूप में न होकर सैद्धान्तिक रूप में हुआ है, जो कि सौन्दर्य का प्रतीक है।

अजन्ता की चित्रकला का हर पहूल शाश्वत और चिरन्तन है। उसका निर्माण हुए आज लगभग तेरह–सौ वर्ष बीत गये किन्तु उसकी नवीनता आज भी विद्यमान है। उसके स्वरूप एवं शिल्प की विरासत बाघ, बादामी स्तिनवासल और एलोरा आदि की चित्रकला में पहुँची। आधुनिक चित्रकारों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की। आज भी अजन्ता चित्रकला का सर्वोच्च स्थान माना जाता है।

भारतीय गुफाचित्रों की परम्परा का प्रतिनिधत्व अजन्ता के बाद बाघ की गुफाओं में देखने को मिलता है। इन भित्तिचित्रों को देखकर उन महान कलाकारों के साहस का स्मरण होता है, जिन्होंने बीहड़ चट्टानों से कला की ऐसी अजस्र धारा को बहाया, जो आज भी जीवंत हैं। बाघ की गुफायें मध्यप्रदेश में धार जिला में स्थित है, जहाँ आज भी घोर जंगल और झीलों की बस्ती है। ये गुफायें महायान बौद्ध–संप्रदाय से संबंधि

Scanned by CamScanner

ात है। इन गुफाओं को बौद्ध–भिक्षुओं के आवास के लिए तथा बुद्ध के उपदेशों तथा उनके प्रवचन के उद्देश्य से बनाया गया है।

बाघ की गुफाओं में प्रकृति मानव और पशु पक्षियों का चित्रण बहुत ही भव्य है। पेड़–पौधे, फल, फूल, पत्र लतायें आदि के चित्रण प्रकृति के नैसर्गिक सुन्दर रूप को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करते हैं। उनके रंगों, रेखाओं आदि की सजीवता दर्शनीय है। इन गुफाओं में सबसे ज्यादा प्रभावशाली चित्र पक्षियों के हैं। एलोरा, अजन्ता से लगभग 50 मील की दूरी पर स्थित है, यहाँ का चित्र–वैभव अपने ढंग का सर्वथा अपूर्व है, एक पूरे–के–पूरे पहाड़ को काटकर इस मन्दिर का निर्माण किया गया है। ये चित्र आठवीं से दशवीं शताब्दी के बीच के हैं। इन मन्दिरों के भित्तिचित्रों में कैलाशनाथ लंकेश्वर इन्द्र सभा और गणेश के चित्र अधिक मोहक हैं, ऐसा लोगों का मानना है कि एलोरा की चित्र रचना के बाद अजन्ता की शैली का ह्रास होने लगा था।

बिहार में भी हमें भित्तिचित्रों के नमूने देखने को मिलते हैं, नालन्दा विश्वविद्यालय जो कि बिहार की राजधानी पटना से 80 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वहाँ हमें भित्तिचित्र के कुछ नमूने देखने को मिलते हैं। विश्व का सबसे प्राचीन शिक्षण और इस विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि देश–विदेशों में थी। युव्यान–च्वांग, जो भारत में हर्ष के समय आये थे, के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय पाँचवी सदी में स्थापित हुआ और इन्ही के अनुसार इसका प्रथम संस्थापक शक्रादित्य था, जिसे कुमारगुप्त प्रथम माना जाता है। विश्वविद्यालय एक नगर के समान बना था, और इसके चार द्वार थे। यहाँ भिक्षुओं के निवास के लिए चार महल थे, और प्रत्येक महल पर शिल्पियों ने अमानवीय जन्तुओं के चित्र बना रखे थे। प्रत्येक बालकनी पर रंग–विरंगे दृश्य चित्रित थे इसके अलावा गुप्तकालीन चैत्य की आलों से भरी दीवारों पर भी लोक–जीवन के स्वस्थ और सुन्दर चित्र उत्कीर्ण मिले हैं, जो लोक–कला के परिष्कृत उदाहरण हैं।

प्रत्येक देश, प्रान्त या नगर की भित्तिचित्रण उस स्थान के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन को प्रकाश में लाकर उसे अमर बना देती हैं, जैसा वातावरण, जैसा वेष–भूसा, जैसी आकृतियाँ और जैसा जीवन मूल्य समय–समय पर प्रचलित होता है, उसक अनुरूप ही भित्तिचित्रों के विषय, भाव–भंगिमा और नख–शिख होते हैं। इस दृष्टि में भारत के भित्तिचित्रों में भारतीय नख–शिख का प्रभाव होता है, यही स्थिति बिहार की मिथिला के भित्तिचित्रों का है। मिथिला का भित्तिचित्रा कितना पुराना है, इसका अनुमान लगाना कठिन है, फिर भी कुछ विद्वानों का मत है, यह गुप्तकाल के समान ही पुराना है। पीढ़ियों से ही इस शैली के कलाकारों ने जब भी धरती पर आँखें खोली तो अपने को मिथिला कला की गोद में खेलते हुए पाया। बचपन में माँ की अंगुली पकड़ कर चलना सीखने के साथ–साथ इस कला में दक्षता प्राप्त कर लेते है ये कलाकार।

यहाँ के वातावरण एवं परिवेश में जितने प्रकार के परिवर्तन आए हैं वह भित्तिचित्रों में आज भी परिलक्षित होता है। मिथिलांचल के सर्वप्रथम राजा के रूप में जनक जाने जाते हैं, उनकी लड़की सीता से रामचन्द्र जी की शादी हुई थी। इतिहासकारों का माननता है कि इनका काल ईसा पूर्व 2000 निर्धारित किया जा सकता है। प्राचीन ग्रन्थों एवं रामायण में यह स्पष्ट लेख है कि सीता के विवाह के समय में जो कोहवर (विवाह के समय में वर–वधू के रहने का कमरा) उसमें विभिन्न प्रकार के आकर्षक भित्तिचित्र बने हुए थे। इससे स्पष्ट होता है कि मिथिला में भित्तिचित्र कला सीता–विवाह के बहुत पूर्व ही प्रचलित थी। प्राचीन समय से मिथिला राज्य में महिलायें एक कठिन और अलग हटकर भित्तिचित्रों का निर्माण

Scanned by CamScanner

बिना कोई महत्वपूर्ण बदलाव लाए करती आ रही हैं। इस पारम्परिक कला के इतिहास में असंख्य बदलाव आने के बावजूद बचे रहने का प्रथम कारण उस सामाजिक व्यवस्था में है जो कि ग्राम्य समुदाय पर आधारित थी। महिलाओं की निश्चित भमिकाएँ थी। परिवार की आवश्यकताओं के बाद कलाकार महिलाएँ उस ग्राम्य समुदाय में कला का काम करती हैं। जिसमें वे पूर्ण रूप से निपुण हैं। इसलिए इस परिधि में ही महिलाएँ इतनी प्राचीन कला को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया है कि वे यह अमूर्त चित्र बिना किसी विशेष प्रयास के बनाती है। आधुनिक युग में इस तरह की मौलिकता की संभावना काफी सीमित है।

इस ग्राम्य जीवन को मजबूती व सहारा वहाँ की सामूहिक सभाओं पारंपरिक कथा वाचन, नृत्यों व गायन, त्योहारों और आयोजनों, रीति–रिवाजों एवं जुलूसों से मिलती है। यहाँ पर भित्तिचित्रों की प्रेरणा का आधार मुख्य रूप से धार्मिक है। उस क्षेत्र में तरह–तरह के जन विश्वासों को सम्मिलित किया गया है और विश्वास का विद्यमान रहना जारी रहा। यह सिलसिला हिन्दुत्व और बौद्ध (जिसका आधार साधारण तांत्रिक था) से प्रचलित पौराणिक कथाओं तक है। मिट्टी के दीवालों पर की गई पेंटिंग दृश्य किताबों की तरह है जो कि एक दृश्य शिक्षा है। जिसमें कोई भी ऐतिहासिक कथाएँ पौराणिक कथाएँ और किस्से, कहानियों को पढ़ सकता है। इस पारंपरिक कला के बचे रहने का दूसरा कारण इसके बनाने की सामग्री का अस्थायी होना। इसकी सामग्री सस्ती है, मौसम के अत्यधिक आर्द्र रहने के कारण इसे बार–बार एक अन्तराल पर रंगते रहना जरूरी है, जैसे की कोई नया पर्व आने पर उपहार क लिए नया सजावटी कागज उपहार को लपेटने के लिए आवश्यक होता है। माताएँ अपनी पुत्रियों को इस काम के लिए निर्देश देती है ताकि इसी प्रकार बड़ों से वह सीख सकें और इस प्रकार रंगने की यह तकनीक तथा विषय–वस्तु को पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रखा जा सके।

यहाँ के भित्तिचित्रों में नाटकीय प्रभाव इसमें उपयोग किया जाने वाले, जीव्र तथा अवास्तविक रंग देता है तथा इनके चित्रों को विषय वस्तु मिथिला की महिलाओं के लिए विशेष महत्व रखता है। एक शहरी कलाकार चित्रों का वर्णन अपने हिसाब से करता है, परन्तु मिथिला की महिलाओं के भित्तिचित्रों में 'जानवरों' निश्चित रूप से किसी पौराणिक कथा या रिवाज़ से जुड़ा होता है। इस प्रकार की सांकेतिक दृश्य–भाषा का वर्णन करना आसान नहीं जब कि विषय का अर्थ जो कि दिखाने की कोशिश की जा रही है, हर अवसर पर अलग–अलग हो। इसके अतिरिक्त एक डिजाईन जो कि एक निश्चित आयोजन में जिस धार्मिक महत्व और पवित्रता का स्थान लेगी, उसके आयोजन के समाप्ति के बादउसकी स्थान लेगी, उसके आयोजन के समाप्त होने के बाद उसकी धार्मिक महत्व और पवित्रता भी समाप्त हो जाती है। मिथिला का भित्तिचित्रों एक सामुदायिक एवं धार्मिक अनुभव की उपज है, हमें इसको समझने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि यहाँ के चित्र केवल धार्मिक कार्य न होकर एक सामूहिक विभाग को मूर्त रूप से प्रकाशित करता है तथा पारंपरिक ज्ञान को साकार रूप देता है। मिथिला की भित्तिचित्रों में तीन प्रमुख चिंतन धाराओं के प्रभाव परिलक्षित है। प्राचीनतम शैव चिंतनधारा का प्रभाव इस शताब्दी के छठें दशक तक की चित्रकला में मिलता है, इस समय के चित्रों के सम्पूर्ण फलक की किनारी में नागफण, त्रिशूल, डमरू, बसहा के मुखमंडल आदि के क्रमिक अलंकरण मिलते हैं तथा मूल चित्र में शिव–पार्वती के जीवन से संदर्भित गाथाओं के चित्रांकन होते हैं अथवा इनमें ऐसी बिंब–योजना मुखर होती है जिसमें लिंग तथा आधार अर्थात योनि की बहुलता होती। ऐसे चित्रों में दूज का चाँद भी होता है। परन्तु ये चित्र अब दुर्लभ हो गए हैं।

Scanned by CamScanner

मिथिला की दूसरी प्रमुख चिंतनधारा शाक्त चिंतनधारा में शक्ति के विभिन्न रूपों को चित्रांकित करने की परम्परा रही है। इस परम्परा के चित्रों में मत्स्य, घट, नारियल, खंड़ा, मुंड, स्त्री के गहने, बाहर निकली हुई जिह्वा, जीसरा नेत्र, आग की ज्वाला आदि के चित्रांकन होते रहे हैं। इस तरह के चित्रों में चित्र–संयोजन के बीच कलश, पल्लव तथा दीप को बड़ी आस्था के साथ अंकित किया जाता रहा है। शक्ति देवियों के चित्रांकन में अनेक बाह्य रूपों में हाथी, हंस, सिंह आदि किसी उर्जस्वी प्रेरणा से निरूपित किये जाते रहे हैं। साथ ही देवियों की अठारह भुजाओं में अठारह प्रकार के आयुधों अथवा अस्त्रों को चित्रांकित किया जाता रहा है, ऐसी रचना से यह आभास होता है कि कलाकार ने इसके लिए अपूर्व साध ाना की है और किसी स्व–स्फूर्त भावना से वह सब चित्रांकित की गयी है, ऐसे चित्रों में कला समर्पित आस्था का मान तो होता ही है, इसमें कहीं विलक्षण सृजन रूपों का भी आभास होता है। तीसरी चिंतनध ारा है– वैष्णव चिंतनधारा इसकी दो शाखाएँ हैं– राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा के चित्रों में राम कथा पर आधारित सीता और राम को विभिन्न रूपों में चित्रित किया जाता है। शेषशायी विष्णु, लक्ष्मी तथा सरस्वती के चित्रांकन भी किये जाते हैं। इन चित्रों में कमल, शंख, चक्र, गदा, पशु आदि के अंकन बड़े मनोयोग से किये जाते हैं। राम–कथा चित्रों में मुख्यतया रमा–विवाह, धनुष–भंग, पुष्प–वाटिका, सीता हरण, केवट–प्रसंग, सीता का ससुराल जाना, गिरिजा–पूजन आदि चित्रांकन के प्रमुख विषय रहे हैं। परंतु इस चित्रांकन में सीता से अलग राम के चित्र की रचना नहीं मिलती है। यहाँ चित्रकला में ऐसी बातें इसलिए अंतर्निहित हैं कि यहाँ के जन–मानस में यह बात गहरे पैठी है,कि मिथिला जगत जननी सीता की जन्मभूमि है।

वैष्णव चिंतनधारा के कृष्ण–चित्रों में वृदावनी चित्रों की जितनी रचना होती है शायद उसके दशांश में भी कुरुक्षेत्र या महाभारत के प्रसंगों पर आधारित चित्रों की रचना यहाँ नहीं होती है। इसका कारण है कि मिथिला के जन–जीवन में श्रीमद्भागवत् गीता, 'गीतगोविन्द' तथा विद्यापति के गीतों का प्रभाव अधिक रहा है, इस परंपरा में आज भी मिथिला की कलाकार स्त्रियाँ अपने चित्रांकन का विषय मुख्य रूप से आदर्शवादी रामकथा और आध्यात्मिक कृष्ण लीला को ही मानती है। यह सहज संयोग है कि इन कथाओं के विस्तार में इतने अधिक रोचक दृश्य आते हैं कि इनकी विविधताओं को अंकित करने के लिए शायद एक कलाकार स्त्री का पूरा जीवन कम होगा

कोहबर–लेखन– मिथिला की एक ज्यामितीय एवं तांत्रिक पद्धति की चित्रकला है, जिसमें अनेक रूपाकारों के विन्यास एवं प्रति–चिन्हों के अनिवार्य निरूपण किये जाते हैं। कोहबर वस्तुतः उस स्थान को कहा जाता है, जहाँ विवाह के समय कुल देवता की स्थापना होती है। हिन्दू विवाह के कुल देवता के स्थापन स्थान की दीवाल पर एक चतुर्भुजीय या आयताकार क्षेत्र में जो चित्रांकन तथा अलंकरण किये जाते हैं, उन्हें 'कोहबर–लेखन' कहा जाता है। मिथिला में इस कोहबर–लेखन का क्षेत्र लगभग बीस वर्गफुट से लेकर पचास वर्गफुट तक का होता है। कोहबर–लेखन आरंभ कने से पहले स्त्रियाँ अपने कुल–देवता का स्मरण करती है, तथा नवविवाहित जोड़े के मंगलमय जीवन की कामना करती हुई रेखांकन आरंभ करती है। सबसे पहले सीप के काली चूने से पूर्व दीवार पर सफेदी की जाती है। बाद में रेखांकन अमूमन गेरू अथवा हल्दी के रंगों से किया जाता है। तांत्रिक प्रतीकों, षट्चक्रों या चिन्हों के निर्माण में ज्यामितीय औजारों का भी सहारा लिया जाता है। इस लेखन में बौद्ध तांत्रिक पुनर्जागरण काल से अब तक यह मान्यता रही है कि वर–बधू आगामी जीवन के अभीष्ट के लिए, चित्रकार के सही विन्यास या

Scanned by CamScanner

संयोजन आवश्यक है। कोहबर में प्रमुख अकन होता है बाँस, ताता, कमल का पत्ता, कुछआ, मछली आदि का जिनकी स्थाना विभिन्न प्रतीक रूपों में की जाती है। इनमें बाँस चित्रांकन पुरुष लिंग तथा वंश–वृद्धि का प्रतीक के रूप में किया जाता है। तोता ज्ञान का अथवा ज्ञान के विकास का एवं कमल का पत्ता स्त्री प्रजननींद्रीय का प्रतीक है। इस प्रकार कछुआ से वर–वधु के दीर्घायु होने तथा मछली से उनके पुत्रवान होने की कामना की जाती है। इस प्रकार यह कोहबार–लेखन अपनी परम्परा में एक वैाानिक चित्रांकन होता है, जिसमें सिद्धहस्त होना मिथिला के प्रत्येक प्रौढ़ नारी के लिए अनिवार्य माना गया है। लेकिन अब ये परंपराएँ कुछ टूटती नजर आ रही है या इसके स्वरूप बिखरते जा रहे हैं।

विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार के दिनों में मिथिला की स्त्रियों में नैना–योगिन के चित्रांकन का भी प्रचलन है। नैना–योगिन का अर्थ होता है जो आंखों से योग करें या जो आँखों से मुग्ध कर लें। इसमें कुछ ऐसे सुन्दर स्त्रियों की कल्पना की गयी है। जिनकी आँख तो सुन्दर है ही, उनके रंग–रूप और संपूर्ण यौवन के आपादमस्तक स्वरूप बेहद आकर्षक है। यहाँ कि परम्परा में पहले कोहबर–घर के चारों कोनों में नयना योगिन के चित्रांकन किये जाते हैं। इनमें मंगोल तथा आर्य मिश्रित प्रभाव से युक्त पूरब की नयना योगिन चंपई गोरे रंगों की, मंगोल प्रभाव से युक्त, उत्तर की नयना योगिन लाल गोरे रंग की, विन्ध्य प्रभाव से युक्त पश्चिम की नयना योगिन श्यामल रंगों की तथा मगध प्रभाव से युक्त दक्षिण की नयना योगिन गुलाबी गोरे रंग की होने की सुखद कल्पना मिथिला के संवेदनशील कलाकार करते हैं, और इन नैना–योगिन रूपसियों को इनके ही परिकल्पित रूपों में रूपांकित करने का प्रयास मिथला के स्त्री कलाकारों द्वारा किया जाता है। वैसे आजकल इसका चित्रांकन कागज पर भी होने लगा है।
मिथिला के प्रसिद्ध लोककथा लेखक एवं कला–मर्मज्ञ श्री ब्रजकिशोर वर्मा मणिपदम् ने यहाँ की भित्ति–चित्रण कला के बारे में एक और रहस्य का उद्घाटन किया कि 'मिथिला की शिल्पी–स्त्रियाँ काम–युग्मों के चित्रों का भी अंकन परंपरा से करती रही हैं।'

कोहबर–लेखन, जैना–योगिन या काम–गृह के साथ ही मिथिला में कुछ और आनुष्ठानिक लोककला का सष्जन भित्ति–चित्रण के रूप में होता है। इन चित्रणों में 'सामा–चकेवा' के चित्रण अत्यंत लोकप्रिय है। 'सामा–चकेवा' नाम का व्रत मिथिला की क्वाँरी तथा विवाहित स्त्रियाँ अपने भाईयों के सुखद एवं सौहार्दपूर्ण संबंध व भविष्य के लिए करती है। कार्तिक पूर्णिमा के छः दिनों पहले यह व्रत आरंभ करने के दि नही दीवार पर जो चित्रण किये जाते हैं, उनके कहीं 'रामा' पत्नी तथा 'चकवा' पति के रूप में अंकित किया जाता है। इस लोक–त्यौहार के बारे में मिथिला के कला–मर्मज्ञ भी मणिपदम् का कहना है कि यहाँ लगभग पचास वर्ष पहले 'सामा–चकेवा' को चिड़ियों के उत्सव के रूप में मनाया जाता रहा है। ऐसे लोक–उत्सव भारत के अलावा जापान में भी मनाया जाता है। यह उत्सव मिथिला में उस समय मनाया जाता है जब धान के खेतों में सफेद हंस उतरते हैं। श्री मणिपदम का यह भी कहना है कि इस उत्सव के समय दीवारों पर किये जाने वाले चित्रांकन में शरीर चिड़ियों का चेहरा एक सुन्दर स्त्री का चित्रित किया जाता था लेकिन मिथिला में अब इस रूप में सामा–चकेवा नहीं मनाया जाता है।

सामा–चकेवा की तरह ही मिथिला का एक और प्रचलित लोक–त्यौहार रहा है 'जट–जट्टिन'। इस त्यौहार के समय भी एक अनोखी भित्ति–चित्रण की परम्परा यहाँ के जन–जीवन में विद्यमान रही है। इस लोक त्यौहार का आयोजन वर्ष के आगमन के लिए होता है। स्त्रियों में ही कोई जट्टिन बन जाती है और कोई जट। फिर लोक–नृत्य के साथ जट और जट्टिन के बीच एक रोचक वार्तालाप होता है। इस

Scanned by CamScanner

वार्तालाप में जट्टिन, जट से कहती है कि तुमने मेरे लिए जो गहना लाया, वह ठीक नहीं लाया——ऐसे ही गेय वार्तालाप के बीच ऊखल में एक मेंढ़क को डालकर जट्टिन उसे समाठ से धमकाती है। इस लोक–त्यौहार में जट–जट्टिन मुख्यतः एक लोक–नृत्य है परंतु इसे आरंभ होने के पूर्व यहाँ की कलाकार–स्त्रियाँ दीवारों पर विभिन्न प्रकार के अलंकरण खनिज रंगों के द्वारा बड़ ही सुन्दर ढंग से चित्रित करती हैं और कभी–कभी इसमें जट और जट्टिन के रेखांकन को संपुंजित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी अनेक लोक–कथाएँ मिथिला में प्रचलित हैं। जिन्हें लोक नृत्य के साथ लोक–त्यौहार के रूप में मनाया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. अग्रवाल, आर.ए. : भारतीय चित्रकला का विवेचन, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1995.
2. हावदार, आसित कुमार : भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1959.
3. खरे, एम.डी. : बाघ की गुफाएँ, भोपाल, 1971.: पेंटेड रॉक शेल्टर्स, भोपाल, 1981.
4. गुप्त, जगदीश : प्रागैहितहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967.: भार, चित्रकला के पद चिन्ह.
5. गोस्वामी, प्रेमचन्द्र : कला, चित्रकला और चित्र तत्व, कला–सरोवर, वाराणसी, 1987, अंक 1, सं. 2.
6. झा, चिरंजी लाल : भारतीय चित्रकला का विकास, 1962.
7. राय, कृष्णदास : भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, वाराणसी, 1950.
8. राय, निहार रंजन : चित्रकला तथा अन्य कलायें
9. सिंह, अरविन्द कुमार : प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 1994.
10. सिंह, रामशब्द : काशी के भित्तिचित्र, कला–सरोवर, वाराणसी, 1988.
11. शर्मा, लोकश चन्द्र : भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, गोयल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1987.
12. शर्मा, महेश चन्द्र : लोक कला शैली के प्रवर्तक – यामिनी राय, कला–वैभव, अंक 10–11, वर्ष 2000–01
13. राखी कुमारी : मिथिला की भित्ति चित्रण परम्परा का अनुशीलन, पी.एच–डी शोध–प्रबंध (अप्रकाशित), वर्ष 2009 (इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छग)

Scanned by CamScanner

10 सोमवंशीय मूर्तियों का शिल्पशास्त्रीय अध्ययन

जयप्रभा शर्मा

दक्षिण कोसल क्षेत्र में स्थित राजिम, सिरपुर, मल्हार, पलारी एवं डीपाडीह नामक स्थल सोमवंशी शासन काल में वैष्णव–संप्रदाय के प्रमुख कला केन्द्रों ने सिर्फ दक्षिण कोसल ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मध्यप्रदेश के वैष्णव क्रियाकलापों का नेतृत्व किया। यहाँ का धर्म सामाजिक परिवेश, कला, प्राचीन आर्थिक संगठन वैष्णव धर्म से प्रभावित थे। वास्तु एवं मूर्तिशिल्प पर वैष्णव संपद्राय का अत्यधिक प्रभाव था। वैदिक अधिष्ठान पर पल्लवित और पौराणिक आख्यानों के पुंज से अनुप्राणित विष्णु के नाना रूपों का प्रतिनिधत्त्व करने वाली प्रतिमाएँ इस क्षेत्र से प्राप्त हुई है, विष्णु के दशावतारों को उनकी प्रकृति के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया गया है, जो निम्नानुसार है– 1. पशु अवतार – मत्स्य, कूर्म, वराह (2) मानवातार – वामन, राम, परशुराम, कृष्ण–बलराम, बुद्ध एवं कल्कि (3) मिश्रित अवतार – नृसिंह, नृवराह। दक्षिणकोसल क्षेत्र में यद्यपि शैव–धर्म का प्रचार का व्यापक केन्द्र था, विष्णु वैष्णव धर्म के अस्तित्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यहाँ के परवर्ती कुछ शासकों की ब्राह्मण विचार धारा द्वारा इसका पोषक होता है। जिन्होंने इस धर्म को प्रोत्साहित ही नहीं किन्तु अपितु, इस धर्म की मूर्ति निर्माण करने पर बल देकर मूर्ति–निर्माण प्रारम्भ किया।

दक्षिणकोसल से शिव लिंगों के अतिरिक्त शिव की मंगलकारी (शांत) अमंगलकारी (संहारक) एवं नृत्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यथा, शिव स्थानक, उमामहेश्वर कल्याणसुन्दर, बीणाधारी शिव, अर्धनारीश्वर, नटराज, परशुधारी शिव, भैरव, भिक्षाटन शिव, लकुलीश, त्रिपुरांतक शिव, रुद्र शिव, गणेश तथा कार्तिकेय आदि की प्रतिमाएँ या तो मंदिरों में प्रतिष्ठित हैं अथवा पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप प्रकाश में आयी हैं, जो वर्तमान समय में संग्रहालयों और खुले प्रांगणों में संरक्षित हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के राजिम, सिरपुर, मल्हार, गढ़धनोरा, खरोदा, ताला, डीपाडीह आदि कला–केन्द्रों में देवी के विविध रूपों की प्रतिनिध प्रतिमाएँ अधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। इस क्षेत्र में शाक्त उपासना का परिचय अभिलेखों एवं अन्य कलाकृतियों से भी प्राप्त होता है। इनमें गजलक्ष्मी, दुर्गा, स्कंदमाता, चामुण्डा, गौरी, सरस्वती, महिषमर्दिनी, नदी देवी गंगा–यमुना तथा अन्य प्रतिमाएँ प्रमुख हैं। मल्हार से सूचित स्कंदमाता प्रतिमा का दीर्घ अंग–सौष्ठव रेखाओं का प्रवाह और मुख का सौम्य भाव अत्यंत विशिष्ट है। प्रो. आर.एन. मिश्र के अनुसार

Scanned by CamScanner

इसकी विशेषता का आधार शिल्प–सौन्दर्य है। भरे हुए मांसल मुख और शरीर ढलाव दार कंधे, उन्नत वक्ष क्षीण कटि में नारी सुलभ सौंदर्य की अद्भुत सृष्टि इस मूर्ति में हैं, किन्तु सच्चा में मातृत्व पक्ष के इस भार के कारण मूर्ति में भौतिक धरातल से उच्च दैवी सौन्दर्य की व्याख्या है।

दक्षिणकोसल के सोमवंशी शासकों के युग में उनकी राजधानी सिरपुर में अनेक बौद्ध–मंदिरों एवं बौद्ध–भिक्षुओं को उल्लेख करने वाले शिलालेख तथा बौद्ध धर्म से संबंधित प्रतिमाएँ भी सिरपुर से प्राप्त हुई है। इनमें सामान्य बुद्ध, बोधिसत्व, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, मंजुश्री तथा वज्रयान मत का प्रतिनिधित्व करने वाली अनेक तांत्रिक बौद्ध प्रतिमाएँ प्रमुख हैं। सिरपुर से प्राप्त बौद्ध–धर्म से संबंधित काँस्य प्रतिमाएँ अपनी अनोखी शैली के कारण भारतीय मूर्तिकला में असाधारण स्थान रखती हैं। यहाँ की मूर्तियों पर नालन्दा तथा तिब्बती प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है। मल्हार उत्खनन में एक बौद्ध–मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसमें 'हेवज्र' की प्रतिमा स्थापित थी। अभिलिखित साक्ष्य से स्पष्ट है कि इसका निर्माण महाशिव बालार्जुन के शासनकाल में हुआ था।

दक्षिण कोसल क्षेत्र जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र था। शैव, वैष्णव एवं शाक्त संप्रदायों के समान जैनों ने यहाँ अपने धर्म और कला के केन्द्र स्थापित किये थे। अड़भार (बिलासपुर) की तीर्थकर प्रतिमा मल्हार से प्रापत 8वीं शती ई. की महावीर की प्रतिमा तथा उत्कृष्ठ कलाकृति के रूप में, सिरपुर से आदिनाथ की काँस्य प्रतिमायें भी प्राप्त हुई हैं। सिरपुर के गधेश्वर मंदिर के निकट प्राचीन जैन मंदिर के भग्नावशेष उपलब्ध है। प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ की प्रतिमाएँ रतनपुर एवं मल्हार से मिली हैं। इस प्रकार दक्षिण कोसल का सम्पूर्ण क्षेत्र जैन पुरातत्व वैभव सम्पदा से भरा हुआ है। प्राचीन भारतीय कला में नारी रूप के असीम सौंदर्य की अभिव्यक्ति हेतु सुर–सुंदरियों का अंकन किया जाता रहा है। नारी का शालभंजिका रूप सहज लौकिक और यौवन की अबोध किन्तु सरस भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें युवतियों को वृक्ष से झूलने, उनकी टहनियों से खेलने, पुष्प संचय करने की हार्दिक इच्दा का यथार्थ छिपा हुआ है। इन्ही सारी इच्छाओं ने एक सहज नारी को कदाचित शालभंजिका रूप प्रदान किया है। दक्षिक कोसल क्षेत्र का शिल्पी भी अपनी कलात्मक वत्तिंयों तथा सौंदर्य बोध की तृप्ति हेतु शालभंजिका के अंकन को आधार बनाने से अछूता न रह सका। भारतीय कला में नायिका मूर्तियों का स्थान शालभंजिका के बाद आता है। अथक प्रयास के बाद भी शिल्पी मानव की सहज आंतरिक भावनाओं, लालसओं, हर्ष, दुख, विषाद और उपहास आदि भावनाओं को प्रतिमाओं में आरोपित नहीं कर सका, तभी नायिका प्रतिमाओं का सृजन हुआ। शालांजका मूर्तियों के माध्यम से कलाकार ने दैहक सौंदर्य की अशियोक्ति पूर्ण कल्पनाओं को भले ही रूपायित किया हो किन्तु सहज लौकिक भावनाओं के प्रदर्शन को उसने नायिका मूर्तियों में संभव बनाया।

दक्षिण कोसल के मूर्तिशिल्प में परिचारक, परिचारिकाओं, उपासकों, राजपुरुषों एवं द्वारपालों की मूर्तियों का निर्माण विशेषरूप से किया गया है। प्राचीन मूर्तिकला में प्रचलित परम्पराओं के अनुरूप लगभग सभी धर्मों के देव–प्रतिमाओं के साथ परिचारकों एवं उपासकों की प्रतिमाएँ भी सुंदर ढंग से बनाई गयी हैं। यहाँ से ज्ञात विभिन्न शालभंजिकाओं एवं नायिका प्रतिमाओं में भी परिचारक एवं परिचारिकाओं का बड़ा मनाहारी अंकन दृष्टव्य है। इसमें मुख्य प्रतिमाओं की विभिन्न क्रियाकलापों से सहयोग देती है प्रदर्शित हैं। दक्षिणकोसल के मूर्तिशिल्प में विविध देवी–देवताओं तथा मानवीय प्रतिमाओं के अतिरिक्त शिल्पियों ने तत्कालीन शिल्प–परंपरा के निर्वहन हेतु विविध पशु–पक्षियों तथा जीव–जंतुओं की प्रतिमाओं का अंकन

Scanned by CamScanner

भी किया है। शिल्पकारों ने अपने सूक्ष्म हस्त लाघव द्वारा विभिन्न पशुओं का दैवी धरातल पर प्रतिष्ठित करने का अद्‌भुत प्रयास किया है। फलस्वरूप पशुओं में नंदी, सिंह, गज, अश्व तथा पक्षियों में गरुण, हंस, मयूर, बतख एवं जीव जंतुओं में मकर, कच्दप, मूषक आदि का कलात्मक एवं अलौकिक अंकन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिलापट्टों पर कतिपय पौराणिक मिथक एवं अर्धमानवीय रूपों की कल्पना को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया। यहाँ के मूर्तिशिल्प में प्रकृति को भी बराबर की भागीदारी मिली है। मानव जनित विभिन्न क्रियाकलाओं में देवी–देवताओं एवं पशु–पक्षियों आदि की सत्ता प्रकृति के अभाव में नगण्य है। संभवतः इसीलिये कला में प्रकृति के अभिनन रूप को भी इन अंकनों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

यहाँ की का में समाहित आलंकारिक अभिप्राय में पत्र, पुष्प, वृक्ष, लताएँ, सरोवर, शंख पूर्णघट, घट, पल्लव एवं कीर्तिमुख आदि प्रमुख हैं। दक्षिण कोसल के राजिम, खरोद, मुल्हार, सिरपुर एवं डीपाडीह के मंदिरों के प्रवेश द्वारों एवं अन्य विभिनन स्तंभों का कल्पलता अभिकल्पों एवं विविध जीव–जंतुओं के अंकन से शिल्पी ने मनोहर स्वरूप प्रदान किया है, जिससे स्मारकों का स्वरूप समष्द्ध हुआ। "सोमवंश कालीन कला का सौन्दर्यात्मक एवं कलात्मक भावपक्ष" में भावपख, शारीरिक–संरचना, केश–विन्यास, वेश–भूषा आसन एवं मुद्राएँ, अलंकरण, पशु–पक्षी, आयुध (अस्त्र–शास्त्र), साज–सज्जा (मांगलिक प्रतीक), एवं प्रतीकतत्त्व (आयुध, पशु–पक्षी) की चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गई है।

इस क्षेत्र की कला में वैष्णव–प्रतिमाओं के अंतर्गत स्थानक, शयन, यानक मूर्तियों तथा अवतार रूपों का अंकन बहुतायत से प्राप्त होता है। राजिम स्थित बद्रीनारायण रूप का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रतिमा में समाधि की दृढ़ता को प्रस्तुत करने में सफल है। प्रतिमा के मुखमण्डल पर परमशांति का भाव स्पष्ट है। अधोन्मीलित नेत्र, पुष्ट, नासाग्र दृष्टि तथा स्पंदन हीनता के भाव से युक्त संरचना आदि तत्व समाधि ा के अनुरूप वातावरण के निर्माण में सहायक हुए। इस मूर्ति में दैहिक सौन्दर्य एवं आध्यात्मिक भावों का अनुपम समन्वय है। यहाँ की कला में विष्णु की स्वतंत्र गरुड़ासन प्रतिमाओं के अतिरिक्त स्तंभों एवं भित्ति स्तंभों या देवालयों के अन्य अंगों पर भी इसके लघु रूप आमूर्तित हैं। इंदलदेव मंदिर, खरोद एवं सिद्धेश्वर मंदिर, पलारी तथा लक्ष्मण मंदिर की दक्षिणी जंघा पर उड्डीयमान गरुड़ पर आसीन एवं चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा उल्लेखनीय है। विष्णु प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में उनकी शक्तियाँ, श्रीदेवी एवं भूदेवी का अंकन है। उड़ते हुए गरुड़ पर अपनी सहचरियों के साथ विष्णु का यह अंकन इस क्षेत्र की अपनी निजी विशेषता है। सिरपुर स्थित गंधेश्वर मंदिर के महामण्डप में भी गरुड़ासीन विष्णु की एक विलक्षण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसमें गरुड़ के पंख पत्ते की भांति दोनों तरफ प्रदर्शित है ऐसे अंकन दक्षिण कोसल में अन्यत्र नहीं मिलता। शैव एवं शाक्त प्रतिमाओं में भी वाहन के रूप में पक्षी अंकित किये गये हैं, परन्तु कला में उक्त उदाहरण जैसी विशेषता अन्य प्रतिमाओं में देखने को नहीं मिलती।

सिरपुर की नटराज प्रतिमा विलक्षण शिलप–वैभव से ओतप्रोत है, इसमें शिव अपने वाहन नंदी की पीठ पर सुशोभित एक पद्म पीठिका पर नष्त्यरत प्रदर्शित हैं। पार्वती अत्यंत विस्मय भाव से अपलकर निहारते अपने स्वामी के नृत्य से मंत्रमुग्ध अंकित की गई हैं। नटराज के मुख की स्मित मुस्कान उनके ललित नष्त्य को और भी प्रभावोत्पादक बनाती हैं। शारीरिक संतुलन हेतु रेखाओं द्वारा निःसृत प्रवाह भी यहाँ विलक्षण है। हाथों एवं पैरों की भंगिमा क्रमशः 45 एवं 60 अंश के कोणीय ज्यामितिय से नियंत्रित है। दोनों ओर एक–एक हाथ और अंगुलियों द्वारा इंगित विशिष्ट मुद्रा तथा अतिभंग रूप में निर्देशित अंग

Scanned by CamScanner

यष्टि द्वारा शिव को नृत्य में तल्लीन निरूपित करने का सफल उपक्रम अत्यंत भाव–प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया गया है। नृत्य की तीव्रता को प्रकट करने के लिए शिल्पी ने उत्तरीय को उड़ते हुए दिखाया है।

डीपाडीह से प्राप्त कार्तिकेय प्रतिमा का अंग–सौष्ठव सराहनीय है। इसमें कार्तिकेय अपने बांये हाथ को मयूर के गले में गुम्फित कर आलिंगन भाव में प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के मुख–मण्डल पर स्नेहिल मुस्कान देखते ही बनती हे। वाहन मयूर के पंख ऊपर तक विस्तीर्ण प्रदर्शित है। जिन पर गोल–गोल बुन्दे बने हैं। इससे प्रतिमा के सौन्दर्य में अभूत–पूर्व वृद्धि हुई है। इस उदाहरण में मानव एवं वन्य पक्षियों के मध्य स्नेह एवं पारिवारिक भावना के दर्शन होते हैं। मल्हार से सूचित स्कंदमाता प्रतिमा का दीर्घ अंग–सौष्ठव रेखाओं का प्रवाह और मुख का सौम्य भाव अत्यंत विशिष्ट है, भरे हुए मांसल मुख और शरीर ढलावदार कंधे, उन्नत वक्ष क्षीण कटि, में नारी सुलभ सौन्दर्य की अद्‌भुत सृष्टि इस मूर्ति में है, किन्तु सच्चा में मातृत्व पक्ष के इस भार के कारण मूर्ति में भौतिक धरातल से उच्च दैवी सौन्दर्य की व्याख्या है। किसी देश या क्षेत्र में कालक्रमानुसार सामाजिक इतिहास के अंतर्गत केश–विन्यास शैली का विवेचन वास्तव में आकर्षित और आह्‌लाद कारण होता है। केश–विन्यास लोगों की सौंदर्य प्रियता के प्रति चेतना और आनन्दानुभूति के साथ–साथ जिजीविषा (जीने की इच्छा) पर अवलम्बित रहता है। नारी आदिम युग से श्रृंगार करती आ रही है। मूर्तिशिल्प में नारी श्रृंगार में केश–विन्यास का श्रृंगार प्रमुखता से है। शिल्पी अपनी कल्पना शक्ति को मौलिकता प्रदान करने की दृष्टि से नारी के रूप को अत्यधिक निखारने के लिये विविध केश–विन्यास नारी प्रतिमाओं व लौकिक प्रतिमाओं, नायिका, सुरसुन्दरी, रानी, परिचारिका आदि में प्रमुख है।

विभिन्न स्त्रोंतों से ज्ञात होता है कि हमारा भार केश–विन्यास की विविधता के नाते विश्व में अगण्य देश हैं। इस विविधता में इस देश के निवासियों की कल्पना कला के प्रति रूचि और प्रतिभा का समावेश है। मूर्तिकला, चित्रकला, संस्कृत साहित्य में यह सभी स्त्रोंतों से केश–सज्जा का वर्णन मिलता है। सिरपुर संग्रहालय में संग्रहीत मुख लिंग प्रतिमा की केश–सज्जा जटाभार शैली (त्रिखण्ड) में निबद्ध है, जिस पर अर्ध चंद्र अलंकृत है, खरोद स्थित शबरी मंदिर के मण्डप की वाम तथा दक्षिण भित्ति पर स्थानक शैव प्रतिमा में शिव के वलयित केश को बायें स्कंध पर लटकते हुए प्रदर्शित किया गया है। मल्हार संग्रहालय में संग्रहीत उमा–महेश्वर प्रतिमा में उमा का जटामुकुट धम्मिल शैली में नियोजित है, तथा अर्धनारीश्वर प्रतिमा में शिव के वलयित केश दाहिने स्कंध पर लटक रहे हैं। यहाँ से प्राप्त मूर्तियों के अवलोकन से हमें तद्‌युगीन वस्त्रों का ज्ञान होता है। उस युग में पुरुष उत्तीय, अधोवस्त्र, धोती तथा उष्णीय धारण करते थे। अधोवस्त्र पर सलवटें और बेलबूटे भी बने हुए हैं। बेलबूटों के बीच–बीच में विभिन्न आकर्षक नमूने हैं। देव–प्रतिमाओं में धोती का अंकन बहुतायत में प्रापत होता है। सूर्य को यूनानी लंबा कोट (वारबान) पहने अंकित किया गया है। उपासक प्रतिमाओं में यदाकदा उष्णीष का अंकन प्राप्त होता है। यहाँ से प्राप्त देवी प्रतिमाओं में विशेषकर गंगा–यमुना में स्तनांशुक का अंकन है। स्तनांशुक को स्तनोंत्तरीय एवं कहीं–कहीं स्तनपट्ट भी कहा गया है। साड़ी का अंकन बहुतायत से प्रापत होता है।

छत्तीसगढ़ की देव–प्रतिमाओं में मुकुट का विशेष अंकन मिलता है। मुकुट प्रायः सभी देव प्रतिमाओं में विविध रूपों में प्राप्त होता है। शैव एवं ब्रह्मा प्रतिमाओं में जटा मुकुट, वैष्णव मूर्तियों में किरीट मुकुट एवं अन्य देवी–देवताओं में करण्ड मुकुट, शिरस्त्राण मुकुट, नाग, यक्ष, विद्याधर, कुंतल मुकुट, सरस्वती, धम्मिल मुकुट विविध देवियों तथा अलख चूड़क (अलक चूड़क) मुकुट, राजा, महाराजा, रानियाँ इत्यादि

Scanned by CamScanner

की प्रतिमाओं में मिलती है। यहाँ से प्राप्त प्रतिमाओं में मुख्यतया किरीट, जटामुकुट, मुकुट एवं मौलि आदि का अंकन है। प्रायः सभी विष्णु प्रतिमाएँ किरीटयुक्त है, कुद प्रतिमाओं में महाकिरीट का अंकन है। भारतीय कला में मुकुट श्रृंगार का शिल्पांकन शिल्पी देव–देवियों के मुखाकृति को अत्यधिक देदीप्यमान बनाने की दृष्टि से करते थे। वही वे शास्त्र निर्दिष्ट नियमों का पालन अवश्य करते थे।

इस क्षेत्र की मूर्तियों में अंगूठी धारण किये हुए स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से देखा जा सकता है। मूर्तियों के अंग–प्रत्यंग को देखते हुए इस आभूषण की छटा, आकार तथा जलवायु और काल के प्रभाव से मूर्तियों के घिसे होने के कारण उनकी पहिचान कठिन है। मूर्तियों में इसका बोध हो जाता है। कला की दृष्टि से कोसल एक सम्पन्न क्षेत्र रहा है। यहाँ प्राप्त विविध धर्मों से संबंधित देवी–देवताओं की कलात्मक प्रतिमाएँ एवं वास्तुखण्ड विभिन्न दृष्टियों से उल्लेखनीय है। प्रतिमाओं एवं अलंकृत वास्तुखण्ड से तत्कालीन समाज की आर्थिक समर्षद्धि एवं ऐश्वर्य तथा अभिरुचियाँ ही हैं, साथ ही प्राचीन भारत इतिहास के लेखन में ये प्रतिमाएँ प्रामाणिक तथ्य भी प्रस्तुत करती है। सामाजिक एवं धार्मिक विचार–ध ाराएँ प्राचीनकाल से कला को प्रभावित करती रही हैं। यहाँ की शिल्पकला भी विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित होती हैं। विभिन्न संप्रदायों में समय–समय पर प्रचलित विचारधाराओं के अनुरूप शिल्पियों ने विविध धार्मिक पृष्ठभूमियों से युक्त प्रतिमाओं का निर्माण किया है।

भारतीय इतिहास में दक्षिणकोसल के गौरवशाली इतिहास को देखांकित करने वाली अधिकांश प्रतिमाओं के निर्माण में स्थनीय रूप से उपलब्ध लाल, पीले अथव भूरे बालुकामय प्रस्त का प्रयोग किया गया है, प्रतिमाओं के निर्माण में जहाँ कहीं शिल्पी ने अधिक ठोस काले बेसाल्ट प्रस्तर का उपयोग किया है। वे आज भी अधिक सुरक्षित हैं। इसी प्रकार धातु–प्रतिमाएँ भ बनायी गयीं। विवेच्य काली प्रतिमाओं में अलंकरणों की न्यूनतम अपारदर्शी वस्त्राभूषणों एवं अण्डाकार मुखाकृति आदि कालतत्व इस क्षेत्र की कला पर सोमवंशियों के प्रभाव को दर्शाते हैं। अलकष्त केश–सज्जा, पारदर्शी परिधान और विविध प्रकार के आभूषणों के अंकन में इस क्षेत्र की कलाकृतियाँ असाधारण हैं। विषयानुसार आभूषणों का चयन कलाकार की सृजन शक्ति का परिचायक है। आभूषणों के विशिष्ट रूप यहाँ से प्रात होते हैं, जिनमें मुकुट, ग्रवालंकार, कटिभूष्ण एवं पादाभरण के अनेक नमूने प्रमुख हैं। साड़ी एवं स्तनपट्ट का प्रयोग विभिन्न रूपों में दृष्टव्य हैं।

देव–प्रतिमाओं में यज्ञोपवीत का भी अंकन दिखाई देता है। मल्हार–संग्रहालय में संगहीत उमामहेश्वर प्रतिमा में शिव को यज्ञोपवीत पहने प्रदर्शित किया गया है। डीपाडीह के स्थल संग्रहालय में संग्रहीत उमामहेश्वर प्रतिमा का में शिव को रत्न यज्ञोपवीत, वीणाधरी शिव मेखला धारण किये दिखाया गया है। नारी के सौन्दर्य को उभारने मं ग्रीवा–भूषण विशेष सहायक माना गया है। अतः ग्रीवाभूषण के रूप में विविध रत्नों से जड़ित कंठमाला, मुक्तमाला, सिक्कासूत्र इत्यादि का कलात्मक शैली से शिल्पकारी कर प्रतिमाओं की कला में विविधता प्रदर्शिन में इस क्षेत्र के शिल्पी सफल रहे हैं। इस क्षेत्र की मूर्तियों के अलंकरणों के सूक्ष्म अवलोकन से यह आभास होता है कि स्त्री और पुरुष विविध प्रकार के गले का हार पहनते थे। इन आभूषणों में एकावली दोहरी या त्रिवली कण्ठहार है, जिन्हें त्रिकोणात्मक या वृत्ताकार लटकन के साथ पहनने की प्रथा थी। ये कंठाहार छोटे आकार के हैं कुछ लम्बे होने के कारण वक्ष–प्रदेश या स्तनों से होते हुए झूलते दृष्टिगोचर होते हैं। देवी–देवता प्रतिमाओं में इनका अंकन प्रचुरता के साथ किया गया है। इनकी लंबाई आजानु तक लटकते हुए दिखाई पड़ती है। गले का हार सभी वर्ग के लोग

Scanned by CamScanner

पहनते थे। राज–परिवारा, सन्त–महात्मा, स्वामी–सेवक, कलाकार–सैनिक, यौद्धा और शिकारी, नर्तक–वादक और सभी स्तर की स्त्रियों के गले में कण्ठाभरण देखा जा सकता है। जिनमें मुख्यतः शैव प्रतिमाओं में ग्रैवेयक, मणिमाला, स्तनहार, कंठश्री, मुक्ताहार, त्रिवली, मुक्ताहार, रुद्राक्षमाला, सर्पहार, मुण्डमाला, जानुपर्यंत, लटकते हार आदि अलंकरणों से आभूषित किया गया है।

दक्षिणकोसल की शिल्पकला में विविध प्रकार के बाजूबंदों का अंकन शिल्पियों ने किया है। अष्टपत्र कमल युक्त अनेक रत्नों से शोभित बाहु के मध्य में कड़े जैसा चौड़ा आभूषण केयूर या बाजूबंद के नाम से पहचाने जाने वाला ये आभूषण मोतियों के लड़ियों से सज्जित पुष्पमुखी, सिंहमुखी एवं नाग फनी वाले प्राप्त होते हैं। शिव की बाजुओं पर सर्पाकार केयूर पहनाएँ जाते हैं। इस अंचल में इस आभूषण को नागमोरी कहा जाता है, जिसका प्रचलन अत्यधित रहा है। प्रतिमाओं के पैर के रखने के नीचे पैर पंजे पर आवृत लंबेगोल आकृति के आभूषण जिसे पादजालक कहा जाता है। ये घुंघरू वाले नूपुर जैसा होता है, जो देवी प्रतिमाओं के विशेषकर नूपुर का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार पादवलय के रूप में गोल एवं अन्य विविध आकार शैलियों में कड़ जैसा आभूषण अंकन पैरों के सौन्दर्य–वृद्धि के लिए प्रयोग किये जाते हैं। जिसका शिल्पांकन प्रचुर मात्रा में उपलब है। नारी प्रतिमाओं में पायल, पायजेब, पेरपट्ट चड़ा तटा अन्य प्रकार के नामों से संबोधित पैरों के आभूषणों का शिल्पांकन मिलता हैं

दक्षिण कोसल के मर्ति–शिल्प में विविध देवी–देवताओं तथा मानवीय प्रतिमाओं के अतिरिक्त शिल्पियों ने तत्कालीन शिल्प–परंपरा के निर्वहन हेतु विविध पशु–पक्षियों तथा जीव–जंतुओं की प्रतिमाओं का अंकन भी किया है। शिल्पकारों ने अपने सूक्षम हस्त लाघाल द्वारा विभिन्न पशुआं को दैवी धरातल पर प्रतिष्ठित करने का अद्भुत प्रयास किया है। फलस्वरूप पशुओं में नन्दी, सिंह, गज, अश्व तथा पक्षियों में गरुणं, हंस, मयूर, बत्तख एवं जीवन जंतुओं में मकर, कच्छप, मूषक आदि का कलात्मक एवं अलौकिक अंकन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिलापट्टों पर कतिपय पौराणिक मिथक एवं अर्धमानवीय रूपों का कल्पना को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया है। इसमें कीर्तिमुख विद्याधर युगल तथा गजशार्दूल आकषतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन असाधारण रूपों को धार्मिक आवरण प्रदान किया गया और कला के माध्यम से उन्हें रूपायित कर मानव जगत के साथ एकत्व स्थापित करने का भी प्रशांसनीय प्रयास दक्षिणकोसल के शिल्पियों द्वारा किया गया है। यहाँ के विभिन कला केन्द्रों से ज्ञात सूर्य–प्रतिमाओं के साथ रक्ष खींचते विविध अलंकरणों से सुसज्जित अश्वों का अंकन अत्यंत सजीव है। मल्हार स्थित पातालेश्वर एवं डिडनेश्वरी देवी मंदिरों के बाह्य भाग में अधिष्ठान के बंधनों के अंतर्गत पंक्तिबद्ध हंसों का अत्यंत मनोहारी अंकन है।

बौद्ध–धर्म के अंतर्गत कच्छप जातक में भी हंसों की सम्पूर्ण व्याख्या की गयी है। सरस्वती प्रतिमाओं के साथ वाहन के रूप में हंस आकषतियों के अंकन बहुतायत रूप से किया गया है। राजिम स्थित राजीव लोचन मंदिर के महामण्डप के प्रवेश द्वार की शाखाओं के अधोभाग पर मोती की लड़ियों को चोंच से दबाए हंस की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार सिरपुर स्थित लक्ष्मण मंदिर एवं आनंद प्रभकुटि विहार आदि की द्वार शाखाओं पर भी इनका अंकन देखने को मिलता है। दक्षिणकोसल की कला में मकर तथा कच्छप का अंकन मुख्यतः नदी देवी गंगा एवं यमुना के साथ उनके लांछनों के रूप में हुआ है। सोमवंश काली वैष्णव कला में चक्र, आयुध का प्रदर्शन अत्यंत लोकप्रिय हुआ। चक्र का आयुध पुरुष के रूप में सर्वप्रथम मूर्तन हुआ। वेदों में चक्र को सृष्टि एवं काल का प्रतीक कहा गया है। यह सृष्टि की गति का प्रतीकात्मक

Scanned by CamScanner

रूप है। बौद्ध साहित्य में इसका वर्णन धर्मचक्र के रूप में हुआ है। महाकाव्य में विष्णु के चक्र को समस्त आयुधों का विनाशक एवं शत्रुओं का संहारक माना गया है। प्रभामण्डल का प्रारम्भिक अंकन हिन्दू, यूनानी और कुषाण राजाओं के सिक्कों पर देखने को मिलता है। सोमवंश से प्रभामण्डल का स्वरूपअ त्यंत अलंकष्त हो गया है। बुद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त वैदिक एवं जैन प्रतिमाओं के साथ भी प्रभामण्डल प्रदर्शित किये गये। गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्कों पर भी प्रभामण्डल प्रदर्शित किया है। सोमवंशी कला में स्वास्तिक धार्मिक पक्ष की अपेक्षा सौन्दर्य तत्त्व को अधिक प्राबल्य मिला। मृद्भाण्डों पर भी इस प्रतीक को चित्रित किया गया। गुप्तकाल में मांगलिक प्रतीक के रूप में देवी लक्ष्मी को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

सोमवंश–कला में कल्पवृक्ष को अलंकरण के लिये प्रयुक्त किया गया है। इसे मंदिर के द्वारस्तंभ, (कलकत्ता संग्रहालय) शाखाद्वारा और चौखट पर प्रदर्शित किया जाता था। विदिशा (बेसनगर) से प्राप्त कल्पवृक्ष में प्रदर्शित कल्पवृक्ष का अलंकरण अद्वितीय है, जो शुंगकालीन है। सोमवंशी में देवों और देवी शक्तियों को अनेक प्रतीकों के माध्यम से विभाजित किया गया है। प्रतीक लाक्षणिक आधार पर व्यवस्थित किये गये। रूपमण्डन, वृहतसंहिता, विष्णु पुराण आदि ग्रंथों में प्रतिमाशास्त्र और चित्र की तकनीकी बारीकियों के विशद् उल्लेख हैं। सोमवंशी युग में धार्मिक कथाओं का सजीव शिल्पांकन हुआ। प्रतीकों के माध्यम से कला में अलंकरण एवं सौन्दर्य की वृद्धि हुई। मथुरा कला में प्रतीकों का व्यापक स्वरूप परिलक्षित है। दक्षणिकोसल के मूर्तिशिल्प में प्रकृत को भी बराबर की भागीदारी मिली है। मानव जनित विभिन्न क्रियाकलापों में देवी–देवताओं एवं पशु–पक्षियों आदि की सत्ता प्रकृति के अभाव में नगण्य है। संभवतः इसीलिये कला में प्रकृति के अभिन्न रूपों को भी इन अंकनों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

यहाँ की कला में समाजित आलंकारिक अभिप्राय में पत्र, पुष्प, वृक्ष, लताएँ, सरोवर, शंख, पूर्णघट, घट, पल्लव एवं कीर्तिमुख आदि प्रमुख हैं। दक्षिण कोसल के राजिम, खरोद, मल्हार, सिरपुर एवं डीपाडीह के मंदिरों के प्रवेश द्वारों एवं अन्य विभिन स्तम्भों का कल्पलता अभिकल्पों एवं विविध जीवों के अंकन से शिल्पी ने मनोहर स्वरूप प्रदान किया है, जिसे स्मारकों का स्वरूप समृद्ध हुआ है। स्तंभों तथा पट्टिकाओं को आलंकारिक रूप में परिवर्तित कर मंदिरों में स्थापित करने की परंपरा प्राचीनकाल से स्थापत्य विध ाा में रही है। इसी के अनुरूप कल्पलता तथा पुष्प एवं पद्म वल्लरियों का अंकन मंदिरों की द्वार–शाखाओं, स्तंभों, भित्ति–स्तंभों तथा बाह्य भित्तियों पर अधिक हुआ है, किन्तु कभी–कभी इनका अंकन मंदिर वास्तु के जंघा या मंडोवर भाग के सलिलांतरों में भी किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ठाकुर, विष्णु सिंह, राजिम, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1972.
2. मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा–विज्ञान, भोपाल, 1972.
3. श्रीवास्तव, ए.एल., प्राचीन भारतीय देव–मूर्तियाँ, संस्कृति वि.उ.प., 1998, लखनऊ, भारतीय कला किताब महल, इलाहाबाद, 2013 (सं.–7).
4. बेनर्जी, जे.एन., डेवलपेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956.
5. राव, गोपीनाथ, एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आयकोनोग्राफी, खण्ड–2, भाग–2.
6. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, 1992.
7. श्रीवास्तव, महेशचन्द्र, सिरपुर, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
8. मिश्र, रमानाथ, भारतीय मर्तिकला, दिल्ली, 1978, स्क्लपचर्स ऑफ डाहल एण्ड दक्षिण कोसल, शर्मा, सीताराम,

Scanned by CamScanner

भोरमदेव क्षेत्र की कला, अजमेर, 1990.
9. निगम, लक्ष्मीशंकर (संपादक), दि रिडिल ऑुं इण्डियन आयकोनोग्राफी, दिल्ली.
10. दीक्षित, एम.जी., सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स, बम्बई, 1960.
11. द्विवेदी, एस.के., टेम्पल स्कल्पचर्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1991.
12. नेमा, श्रीराम, पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ सोमवंशी किंग्स ऑफ साउथ कोसल एण्ड उड़ीसा, दिल्ली, 1978.
13. मनवानी, एस.एन., इवोलूशन ऑफ आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर इन सेण्ट्रल इण्डिया, दिल्ली 1988.
14. वर्मा, कामता प्रसाद, छत्तीसगढ़ की स्थापत्य कला, भाग–1, तथा 2, संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्त्व, रायपुर, वर्ष 2014.
15. 'कला–वैभव' (शोध–जर्नल) अंक 1–20 तक, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ़.
16. 'कोसल' रायपुर, संस्कृति एवं पुरातत्व, अंक 1–9 तक.
17. शर्मा, श्रीमती (डॉ.) जय प्रभा, छत्तीसगढ़ की सोमवंश कालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन (अप्रकाशित) पी.एच.डी. शोध–प्रबन्ध, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ़, वर्ष 2010.

Scanned by CamScanner

11 "छत्तीसगढ़ की कला में मृतक स्मृति–स्तम्भों का विवेचन"

महेशचन्द्र राय प्रजापति

स्मृति–स्तम्भों पर बने विषय मुख्यतः देवी–देवताओ, गोत्र विषयक, मानव आकृतियाँ, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, फल–फूल, पहाड़, नदी–नाले, चाँद–सूरज होते हैं। कहीं–कहीं मृतक के प्रिय अस्त्र–शस्त्र, जानवर, हल–बैल, पशु–पक्षी, कीट–पतंगों को उकेरा गया हे। आदिवासी गौर नृत्य की वेश–भूषा में नर्तक और नर्तकी का चित्रण अक्सर देखने को मिलता है। डॉ. के.के. झा के अनुसार– बस्तर में पत्थर के बनाये स्मृति–स्तम्भों में दो हिस्से होते हैं। एक हिस्से की तरफ ये आदिवासी मित्रों से सम्बन्धित चित्र बनाते हैं तो दूसरी तरफ शत्रुओं से सम्बन्धित चित्र बनाते हैं। उसी प्रकार लकड़ी के चौकोर स्तम्भों के एक तरफ मनोरंजन के दृश्य दूसरी तरफ देवी–देवताओं के चित्र, तीसरी तरफ व्यक्तिगत जीवन की झांकियाँ तथा चौथी तरफ मतक से सम्बन्धित किसी घना को चित्रित किया जाता है।यह परम्पराएँ प्राचीनकाल से निरन्तर चील आ रही है। नाग वंशीय जनजाति अपने स्मृति–स्तम्भों में नाग की आकृति को अवश्य अंकित करते हैं, क्योंकि नाग (सांप) को नागवंशी अपना पूर्वज मानते हैं। अनेक गण चिन्हों में इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं जिसमें गोत्र के रूप में पूजे जाने वाले पशु–पक्षी, पेड़–पौधों को दर्शाया गया है। शेर, मगर, बन्दर, रीछ, लकड़बग्घा, कछुआ, मछली, चूहा, गिलहरी, बगुला, हंस, सुअर, सांड, मोर, नेवला, सांप, मृग, साही, चीता, बकरा, ऊँट, घोड़ा, हाथी, छिपकली, केकड़ा, सारस, मेंढक, बतख, खरगोश, हिरन, उल्लू, बैल, तोता, लोमड़ी आदि। अन्य विषय जैसे– चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, सेनल का पेड़, मेरी, केले का पेड़, पीपल, वट, साल वक्ष, आम का पेड़ आदि भी इनके चित्रण विषय हैं। कोरकू जनजाति में भी इस प्रकार के स्तम्भ बनाने की प्रथा सदियों पुरानी है। मध्यप्रदेश का बैतूल क्षेत्र इस बात का गवाह है, "कोरकू का स्तम्भ शडोली मुंडा" के नाम से जाना जाता है।

स्मृति स्तम्भों के बनाये जाने के मुख्यतः दो ही अवसर महत्वपूर्ण होते हैं, पहला शादी–ब्याह के स्मृति–स्तम्भ दूसरा मृत्यु के बाद मृतक की याद में बनाये जाने वाला स्मृति–स्तम्भ, मृतक–स्मृति–स्ताम्भ अधिक संवेदनशील, एवं सम्मान का प्रतीत होता है। बस्तर के माड़िया, मध्यप्रदेश के भील एवं कोरकू इस परम्परा को सदियों से निभाते आ रहे हैं। बस्तर की जनजातीय परम्परा के अनुसार शव को दफनाया जाता है, मृत्यु के पश्चात् शव को घर की बाड़ी में रख दिया जाता है, ताकि आत्मीयजन उसका अंतिम दर्शन

Scanned by CamScanner

कर सकें। साथ ही शव के पास एक दीया जला दिया जाता है। बांस से बनी 'खतरी' या खटिया में शव रखकर श्मशान या गड़ान के स्थान तक ले जाते हैं। यद्यपि समान रूप से शव को दफनाने की परम्परा मुरिया, माड़िया, भतरा व दोरला समूह में पायी जाती है। किन्तु वर्तमान में आर्थिक रूप से सक्षम परिवार दाहक्रिया भी करने लगे हैं।

अगर दाहक्रिया करनी हो तो मष्तक को इसी प्रकार रखकर, मष्तक का बेटा या जमाई मृतक के पैरों की तरफ से अग्नि देते हैं। जैसे ही आग जल उठती है सारे लोग वहाँ से बाहर निकलकर मष्तक के घर में भोजन के लिए आते हैं, श्मशान भूमि ज्यादातर रास्तों के किनारे होती हैं। जिसके विपरीत दिशा में 'माड़िया' मृतक की याद में स्मृति–स्तम्भ खड़ा करते हैं। मृतक–स्तम्भ के लिए गाँव से सहयोग लेने के एवज में गाँव को एक बार फिर से शराब, मांस और अन्न का भोज दिया जाता है। कभी–कभी तो स्वयं मृतक अपने स्मृति स्तम्भ का चुनाव करता है। वह मृत्यु के पूर्व परिवार वालों को निर्देश देता है कि मेरी मृत्यु के उपरान्त इस ढंग से मेरी स्मषति चिन्ह का निर्माण करवना चाहिए।

प्रतीके रूप में अनेक कषतियों से समाधि स्थल को अलंकष्त करने की प्रथा प्रत्येक समाज एवं बिरादरी में देखी जाती है। लकड़ी के दो टुकड़ों को आपस में जोड़कर 'क्रास' क्रिश्चियन समाज के लिएएक महत्वपूर्ण प्रतीक चिन्ह है। यह प्रतीकात्मक रूप है ईसाा मसीह के बलिदान का। इसी प्रकार अस्त्र–शस्त्र आदि को भी अन्य समाज ने अपना प्रतीकात्मक रूप देकर अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की है। फूल–पत्ती, पेड़–पौधे, पशु–पक्षियों को प्रतीकात्मक रूपों में शामिल करना एक महज अभिव्यक्ति है। प्रतीक चिन्हों के विषय मुख्यतः निम्नलिखित होते हैं–

1. देवी–देवता एवं गोत्र
2. दैनिक जीवन के दृश्य
3. शिकार के दृश्य
4. नृत्य के दृश्य
5. वाद्य–यंत्र
6. पशु–पक्षियाँ
7. औजार
8. अलंकरण

छत्तीसगढ़ के मृतक–स्तम्भों की कला का तुलनात्मक विवेचन

1. कलात्मक समानताएँ
2. कलात्मक विभिन्नताएँ
3. गोत्र विषयक विभिन्नताएँ
4. क्षेत्रीय विभिन्नाएँ

Scanned by CamScanner

1. कलात्मक समानताएँ –

मृतक–स्मृति स्तम्भों के कलात्मक पहलू पर विवेचन करें तो हमें ज्ञात होता है कि एक ही क्षेत्र में बने स्तम्भों में अधिकांश में एक तरह की समानता नजर आती है। वह समानता विषय की हो सकती है, संयोजन की हो सकती है, रंगों की या फिर आकृतियों के बनावट की हो सकती है, परन्तु हर स्तम्भ में एक आस्था जरूर नजर आती है। कलाकार की कार्य कुशलता में भले ही अन्तर हो, लेकिन उन्होंने इन स्तम्भों में वही चित्रित किया है जो उनकी परम्परा एवं पूर्वजों की देन है।

प्रत्येक मृतक स्तम्भों में मृतक का नाम, जाति, पिता का नाम, मृत्यु दिनांक एवं गाँव का नाम अंकित किया जाता है। कभी–कभी कुछ अन्य तरह की जानकारियाँ भी अंकित की जाती है। परम्परा का मार्गदर्शन एवं पूर्वजों का अनुसरण कराने के लिए ही ये लकड़ी के स्तम्भ आज भी जीर्णशीर्ण अवस्था में अपने पैर जमाये खड़े हैं। इनके साथ पत्थर के रंग–बिरंगे स्तम्भ को देखकर सचमुच दो पीढ़ी को एक साथ देखने जैसा लगता है। उदार भाव, शांत एवं तन्मयता से खड़े इन स्तम्भों को शायद अपनी असुरक्षा का भी भय नहीं है। कलाकार की कलात्मकता का हम एक नजर में मूल्यांकन नहीं कर पायेंगे। कलाकार की मेहनत, लगन, श्रद्धा आदि का मूल्य चुकाना असम्भव है। इन्हें पलभर रुककर देख लेना ही कलाकार का सच्चा मूल्यांकन होगा। लकड़ी की फटी हुई दरारों के बीच से जैसे आज भी इन आदिवासियों के संस्कारों की खुशबू आ रही है। लकड़ी के बने इन स्तम्भों के विषय भी पत्थर के स्तम्भों के समान ही हैं या हम यह कह सकते हैं कि इन लकड़ी के स्तम्भों ने ही आज के बने पत्थरों के स्तम्भों को विषय दिया है। इन स्तम्भो पर भी सामाजिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों, जानवरों एवं अन्य पशु–पक्षियों के चित्र उकेरे गये हैं।

2. कलात्मक विभिन्नताएँ

मृतक–स्मृति–स्तम्भों में एक ओर जहाँ हम उनकी समानताओं को देखते हैं वहीं दूसरी ओर इन स्तम्भों में काफी विभिन्नताएँ भी दिखाई देती हैं। कहीं ये विभिन्नताएँ रंगों को लेकर हैं तो कहीं माध्यम एवं आकारों में भी देखने को मिलती है। स्तम्भों पर बनी आकृतियाँ, संयोजन एवं विषयों की विभिन्नता का भी दर्शन हो जाता है। कभी–कभी ये भिन्नताएँ कलाकार के द्वारा होती है तो कहीं मष्तक परिवार के आदेश से की जाती है। इन स्तम्भों के निर्माण करने वाले आदिवसी आपनी जाति, गोत्र के कारण एक ही स्थान पर समूह रूप में रहते हैं। अलग–अलग जाति के आदिवासी अपने समूह के रूप में गाँव का निर्माण करते हैं। हालांकि ये सीमाएँ आपस में जुड़ी होती हैं फिर भी अपनी–अपनी अलग–अलग परम्पराओं का आदान–प्रदान बहुत ही कम होता है। आधुनिक समाज के प्रभाव से भी इन स्तम्भों में कुछ परिवर्तत आया है। कलाकार जब कभी समाज से कुछ ग्रहण कर लेता है तो वह कुछ प्रभाव अपनी कला के माध्यम से स्तम्भों पर अंकित कर देता है, इसलिए कुछ भिन्नताएँ तो सम्भव हैं।

3. गोत्र विषयक विभिन्नताएँ

गोत्र के आधार पर ही चित्रकार मृतक का स्मृती–स्तम्भ तैयार करता है। अलग–अलग जाति का अलग–अलग गोत्र होना भी स्वाभाविक होता है। गोत्र उनके कुल देवता का स्मरण कराता है। इसलिए इनके स्तम्भों में भी मृतक के संबंधित गोत्र का दर्शन होता है। हर एक गोत्र के अपने अलग–अलग गण चिन्ह होते हैं। गण चिन्ह के आधार पर ज्ञात हो जाता है कि किस गोत्र का है। गण चिन्ह अधिकांशतः

Scanned by CamScanner

जानवरों के रूप में, प्रकृति के अन्य जीव–जन्तु के रूप में या फिर प्राकृतिक वनस्पति एवं ब्रह्माण्ड के किसी भी अन्य रूपों में हो सकता है।

4. क्षेत्रीय विभिन्नाएँ

हर प्रकार की कला में स्थान परिवर्तन एवं समय के अंतर के बाद बदलाव आ जाता है। लोक शिल्पकला का प्रभाव चिर–निरन्तर से चला आ रहा है लेकिन फिर भी कहीं–कहीं ये अपनी पहचान खो देती हैं। आधुनिक युग का प्रभाव इन कलाओं को कहीं–कहीं मलिन जरूर कर देता है। लेकिन फिर भी बस्तर के इन मृतक–स्मृति–स्तंभों की कला ने अपने अस्तित्व को आज भी कायम रखा है। बस्तर के ही विशाल भू–भाग के कारण इस कला का रूप अनेक विभिन्नताएँ लिए हुए हैं, फिर भी उसकी असलियत को हम आसानी से पहचान सकते हैं। यह अंतर भी स्तम्भों के कलात्मकता के आधार पर ही होती है।

छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के मृतक–स्तंभों का तुलनात्मक अध्ययन

1. मृतक–स्मृति–स्तंभों में तुलनात्मक समानाएँ
2. मृतक–स्मृति–स्तंभों में तुलनात्मक विभिन्नताएँ

1. मृतक–स्मृति–स्तंभों में तुलनात्मक समानाएँ

छत्तीसगढ़ या मध्यप्रदेश के आदिवासियों द्वारा बनाये गये स्तम्भों में एक समानता यह दिखा ई पड़ती है कि हर आदिवासी जनजाति के स्तम्भों पर पुरुष या स्त्री को किसी जानवर पर बैठा हुआ दिखाया जाता है। चाहे वह जानवर घोड़ा हो या हाथी या फिर अन्य जीव। इसी श्रृंखला में कोरकू द्वारा बनाये गये स्मारक स्तम्भों में भी इसी प्रकार का दृश्य उकेरा गया है। बस्तर के मृतक–स्मृति–स्तम्भों पर चित्रित हाथी पर सवार स्त्री जो अपने एक हाथ में छाता एवं दूसरे हाथ में धन की थैली लिए हुए है। जिसे स्थानीय लोग 'लक्ष्मी' के रूप में जानते हैं। परन्तु कुछ आदिवासी जनजाति इसे मृतक का हाथी पर सवार होकर स्वर्ग की ओर जाना बताया है। उसी प्रकार गाथा पर, घोड़े पर सवार युवक के चित्रण पर यह प्रतिक्रिया आयी कि, पुरुष का विवाह के दौरान उसका सर्वश्रेष्ठ रूप होता है, जो घोड़े पर सवार किसी योद्धा की तरह जाता है। घोड़े पर सवार उस युवक को ही मृतक–स्तम्भों में बैठा दिखाया जाता है। इसी प्रकार कोरकू आदिवासी भी मृतक को घोड़े पर सवार दिखाते हैं। जिसमें चांद और सूरज को भी दिखाया गया जिसके बारे में प्राप्त जानकारी यह है कि मृतक चांद एवं सूरज के रास्ते मृत्यु के बाद, स्वर्ग की ओर जाता है।

2. मृतक–स्मृति–स्तंभों में तुलनात्मक विभिन्नताएँ

विषयों के साथ अलंकरण , रंग, रचना एवं तकनीक में भी कई भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। अलंकरण की शैली में काफी बदलाव दिखता है और ये आश्चर्यजनक नहीं है। अगर हम बाइसन हार्न माड़िया, जहाँ तक फैले हैं, उन क्षेत्र की व्यापकता को देखें, साथ ही इनके अन्तर्गत संवाद का सम्भव न होना ही इसका कारण है। छत्तीसगढ़ के साथ लगे मध्यप्रदेश के क्षेत्रों के स्तम्भों में कलात्मक भिन्नताएँ सम्भवतः देखी जा सकती हैं। भारत भवन, भोपाल के प्रांगण में स्थित स्मृति स्तम्भ अपने आप में ढेरों विभिन्नताएँ लिए

Scanned by CamScanner

हुए हैं। कलात्मक दृष्टि से भी यह स्तम्भ अन्य स्तम्भों के साथ मेल नहीं खाता। बस्तर के माड़िया कलाकार के द्वारा बनाया गया सह स्तम्भ कलात्मक दृष्टि एवं कलात्मक विधि लकड़ी के स्तम्भों जैसी है। परन्तु माध्यम पत्थर है जो विशाल लकड़ी क स्तम्भों की झलक देता है।

विषय में भी कलाकार ने परम्परा से हटकर उकेरने का प्रयास किया है। जानवरों की आकृतियां में वो सब पहलू नहीं हैं जो बस्तर के स्तम्भों में दिखाई पड़ता है। स्त्री–पुरुषों की आकषतियों में कलात्मकता की कमी साफा झलकती है। स्त्री द्वारा मुंह से बजाये जाने वाला वाद्ययंत्र का चित्रण अन्य किसी माड़िया स्तम्भों में नहीं देखा गया और ना ही अन्य स्तम्भों में उकेरी जाने वाली आकृतियों की कलात्मकता का अनुभव कराती है। बस्तर के जंगल में यह कला अपने लिए होती है। परन्तु भारत भवन, भोपाल में विशेष निर्देशानुसार बनवाने के कारण स्तम्भ का असली रूप कहीं खो सा गया है। परन्तु सिर्फ कला के रूप में देखा जाये तो यह स्तम्भ अन्य स्तम्भों की तरह गौरवपूर्ण है। सच्ची कला वहीं है जिसमें मन की सच्ची अभिव्यक्ति की प्रस्तुति हो। कला का रूप तब तक सार्थक नहीं होता, जब तक की वह मानव समाज के द्वारा ग्रहण न की गई हो। प्रकृति अनेक सुन्दर वस्तुओं से निर्मित है, जैसे– पेंड़–पौधे, पहाड़, नदी, मैदान आदि लेकिन ये समस्त वस्तुएँ मानव के उपयोग के अलावा कुछ भी नहीं होती है। परन्तु कला इन सबके बीच या कहें इन सबसे ही रूप ग्रहण करती है। पर फिर भी कला इन सब में सर्वोपरि है।

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ के अलावा यह कला पूरे भारत में देखी जा सकती है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में फैली इस कला के रूप को मैने शोध प्रबंध के माध्यम से सामने लाने का प्रयास किया है। कला के इस विशाल रूप को सीमाओं में बांधकर, मैंने छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश के कुछ भागों को अपने अध्ययन में शामिल किया है। जिसका समस्त अनुभव एवं खोज से प्रापत जानकारियाँ मैं यहाँ प्रस्तुत कर चुका हूँ। जब प्रथत बार इस अनोखी कला का दर्शन हुआ तब सहसा यही विचार जागा कि क्यों इस प्रकार की कला खुले आसमान के नीचे नष्ट हो रही हैं? कौन लोग हैं, तो इस प्रकार की कला को रूप देते हैं? क्यों इसे बनाया जाता है? इत्यादि। आदिवासी जनजातियों के बीच बैठकर उनसे बातचीत कर मैंने यह देखा कि ये अपने धर्म, समाज, गोत्र एवं रीतिरिवाजों में रहकर जीवन बिताना पसंद करते हैं। जीवन का हर पहलू अपनों के बीच बैठकर बांटते हैं। हृदय से भोले एवं शुद्ध विचारों के इन आदिवासियों का प्रभाव इनकी कला में भी देखने को मिलता है। यही कारण है कि इनके अधिकंश स्तम्भों में उनके नाचगानों के दृश्य एवं उनसे संबंधित देवी–देवताओं एवं रोजमर्रा के क्रियाकलापों के साथ जीव–जन्तु, पशु–पक्षियों को विषय के रूप में दिखाया गया है।

मृतक स्मृति–स्तम्भों में अंकित आकृतियाँ भी इस बात का संदेश देती हैं कि कला किसी धर्म, समाज या जाति से बंधी नहीं होती, बल्कि वह समस्त कला जगत में विचरण करती है। रंग, रूप, आकार भले ही बदल जाये लेकिन उनका संदेश भाई–चारे, देश–प्रेम एवं शांति का उपदेश देता है और सच्ची कला का यही धर्म है कि वह मानवता सिखाये एवं समस्त मानव जगत के लिए कल्याणकारी हो। यह सुखद आश्चर्य और प्रसन्नता का विषय है कि बिना शिक्षा–दिक्षा के अपनी परम्पराओं को निर्वाह करने की क्षमाता इन सरल, सहज व्यक्तित्व वाले आदिवासियों में अभी भी शेष है। इन स्मृति–स्तम्भों को आधुनिक परिवेश में आंका जाये तो किसी कुशल सिद्धहस्त शिल्पी द्वारा उकेरी गई अद्भुत आकर्षक रचना होगी, ये सभी स्मृति–स्तम्भ अपनी मौलिकता, संयोजन–शीलता, सरल–सुबोध आकार एवं कल्पना के बेजोड़ उदाहरण हैं।

Scanned by CamScanner

प्रादेशिक तथा केन्द्रीय शासन, सांस्कृतिक स्थानों, संचार–माध्यमों, दूरदर्शन, समाचार पत्रों, अन्वेषणकर्ताओं, शोधार्थियों, शिक्षाविदों, पुरातत्ववेत्ताओं, नृतत्वशास्त्रियों, स्थानीय प्रशासन, निकायों इत्यादि के समवेत प्रयास से मृतक–स्मृति–स्तम्भों के कलात्मक एवं धार्मिक सांस्कृतिक स्वरूप को संरक्षण दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही इस विधा से जुड़े कलाकारों–शिल्पियों को प्रोत्साहन एवं आर्थिक संरक्षण दिया जाना उपादेय होगा। इस कार्य में जन–जाग्रति के साथ–साथ जन–जन का सहयोग अपेक्षित है। पर्यटन की दृष्टि से भी इन कलात्मक अवशेषों, स्मारकों का विशेष महत्व है। आंचलिक कलाकारों–शिल्पियों की शाश्वत शिल्प–संधारणा के अन्तर्भावों को समझने के साथ–साथ सत्यमं–शिव–सुन्दरम् की भावना को आत्मसात कर परम्परागत सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को परिभाषित किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. यदु ,मन्नूलालः छत्तीसगढ़ की अस्मिता
2. सुरजन, ललितः छत्तीसगढ़ संदर्भ
3. सिद्धिकी,एम.के.ए. :भारत के आदिवासी
4. मदन लालः छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन
5. शुक्ल, हीरालालः आदिवासी सामान्तवद
6. श्रीवास्तव, शिवशंकर : पिरामिड जैसे मृतक–स्तम्भ, दंतेवाड़), मधुरिमा, बुधवार, 8 फरवरी, 2012, दैनिक भास्तकर, भोपा (म.प्र.)
7. मिश्र, उमाशंकर :भारतीय आदिवासी
8. कुमार,प्रमिलाः छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन
9. महोबे, संतरामः बस्तर के आदिवासियों के आभूषण एवं साज–सज्जा
10. प्रधान, श्रीमती शैल तथा कुंजाम, इंद्रजीत सिंहः बस्तर की जनजातियों के मृतक–स्तम्भ, हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल
11. प्रजापति, महेश चन्द्र रायः छत्तीसगढ़ की शिल्पकाल में मृतक–स्मृति–स्तम्भों का सांस्कृतिक अध्ययन (पी.एचडी शोध–प्रवन्ध) वर्ष–2007, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

Scanned by CamScanner

12 मध्यकालीन स्थापत्य कला का स्वरुप एवं सांस्कृतिक योगदान

हरित कुमार मीना

इतिहास के वास्तविक स्वरूप की पहचान और उसकी विवेचना के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसके बहुमुखी स्वरूप और विविध आयामों का तार्किक अध्ययन हो जिसमें पुरातात्विक प्रमाणों, ऐतिहासिक अनुसंधानों और संस्कृति से जुड़े विविध पक्ष शामिल हों। पुरातात्विक साक्ष्यों और ऐतिहासिक अनुसंधानों से स्पष्ट होता है कि कला के क्षेत्र में समाज की एक विशिष्ट भूमिका रही जिसकी अभिव्यक्ति राजनीतिक प्रथाओं, कानून व्यवस्था, प्रशासन, कला और संस्कृति के रूप हुई। इस प्रकार कला को एक ऐसे सामाजिक यथार्थ का संकेत माना जा सकता है जो मौलिकता को अभिव्यक्ति देने में पूर्णत सफल रही। भारत के मुस्लिम शासक केवल बर्बर आक्रमणकारी ही नहीं बल्कि कला एवं साहित्य के मर्मज्ञ और महान पोषक भी थे। मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय के फलस्वरूप न केवल भारतीय जन–जीवन प्रभावित हुआ था, बल्कि कला और साहित्य भी अछूते नहीं रह सके। मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने कला और साहित्य को संरक्षण प्रदान कर उसे पर्याप्त विकसित होने का अवसर भी प्रदान किया।

इस्लाम धर्म के मानने वालों का जब भारत में प्रवेश हुआ तो वे अपने साथ पश्चिमी और मध्य एशिया की कलाएँ लेकर आए। लेकिन ये कलाएँ भारतीय कलाओं को पूरी तरह से आच्छादित नहीं कर पायीं बल्कि तत्कालीन आवश्यकताओं तथा धार्मिक और व्यक्तिगत रुचियों के अनुकूल स्वतंत्र क्षेत्रीय शैलियों का भी विकास हुआ। ऐसी कलाएँ विशेषकर 14वीं शताब्दी में तैमूर के आक्रमण और साम्राज्य के विघटन के बाद विकसित हुईं जो देशी परम्पराओं पर बहुत हद तक निर्भर थीं। जहाँ तक मुगल स्थापत्य का प्रश्न है तो उसमें विविधता और सौंदर्य सल्तनतकाल की अपेक्षा अधिक था। मुगलकाल में सत्ता और संसाधनों का केन्द्रीकरण हुआ, जिसने बादशाह की शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि की। उस शक्ति की अभिव्यक्ति हेतु नए साधनों और माध्यमों की खोज हुई जो कला, साहित्य और संस्कृति के रूप में परिलक्षित हुई। 13वीं शताब्दी में जिस वास्तुकला की नींव रखी गयी थी वह पारम्परिक, अमूर्त और अनुकरणात्मक थी, जिसमें अधिकतर एक ही प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया गया था। मुगलकालीन वास्तुकला प्रबंधन, आयोजन और वैविध्य तथा संरचनात्मक सिद्धान्तों का एक सुंदर समिश्रण प्रदर्शित करती है। मुगलकालीन निर्माण

Scanned by CamScanner

के स्थान पर उपयोग पर आधारित विधि की अपेक्षा सामंजस्य, रिक्त और निर्मित स्थान के बीच संतुलन कायम करने की ओर विशष ध्यान दिया गया है। लेकिन ऐसा अधिकतर अकबर और शाहजहाँ के समय के लिए कहना अधिक उचित है क्योंकि बाबर और हुमायूँ के पास स्थापत्य के लिए पर्याप्त समय नहीं रहा। बाबर ने विजय और क्षेत्र विस्तार के साथ साथ सांस्कृतिक क्षेत्र की पद्धति पर भारत में अनेक बागों का निर्माण करवाया। बाबरनामा में उसने अपने द्वारा निर्मित कुछ मण्डपों की चर्चा की है।

मध्यकाल में तुर्कों की विजय और तुर्क सत्ता की स्थापना के फलस्वरूप एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हुई जो आरम्भ से ही सही अर्थों में ऊपर से थोपी गयी थी, लेकिन समय के साथ साथ इसने भारतीय जनमानस में अपनी गहरी पैठ बनाना आरम्भ कर दिया। यद्यपि एक सामान्य अवधारणा यह है कि विजेता संस्कषति ही प्रभावी होती है लेकिन भारतीय संदर्भ में यह बात पूरी तरह से समाविष्ट नहीं होती क्योंकि भारतीय समाज और मध्यवर्ती तबकों में इसका कोई खास प्रभाव दिखाई नहीं दिया। चूँकि तुर्की शासक वर्ग ने सत्ता और संस्कृति को केन्द्र शहरों को बनाया था, जो ग्रामीण क्षेत्र के कषषि अधिशेष पर निर्भर थे। इस अधिशेष का व्यय युद्ध और कला में हुआ। इस प्रकार से इन नवविकसित शहरों ने तकनीकी विकास के साथ साथ एक नई संस्कृति को जन्म दिया जिसे हिन्द–इस्लामी (इंडो सारसेनिक) नाम दिया गया। जिस समय इस्लामिक कला और हिन्दू कला का पारस्परिक साक्षात्कार हुआ तब दोनों कलाओं में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता था, उदहारण हेतु (क) हिन्दू स्थापत्य कला में अलंकरण था, किन्तु इस्लामिक कला सादगी पर आधारित थी, (ख) हिन्दू स्थापत्य कला के अन्तर्गत मन्दिरों के ऊपरी शिखर बनाये जाते थे, जबकि इस्लामिक कला में मस्जिदों के ऊपर गुम्बद बनाये जाते थे, (ग) हिन्दू मन्दिरों में गर्भगृह प्रकाश एवं वायु रहित होता था जबकि मस्जिद का भीतरी भाग प्रकाश एवं वायु से युक्त होता था, (घ) हिन्दू स्थापत्य कला में मजबूती और सुन्दरता को अधिक महत्व दिया जाता था, जबकि इस्लामिक कला में विशालता, एवं सरलता को महत्व दिया जाता था, (ड) हिन्दू कला में स्तम्भों व सीधे पाटों का महत्व था जबकि इस्लामिक कला में मेहराबों व गुम्बदों को अधिक महत्व दिया जाता था। उपर्युक्त विभिन्नताओं के बावजूद दोनो शैलियों में कुछ समानताएँ भी थीं, जिसके कारण दोनों शैलियों के समन्वय में सुविधा हुई होगी, उदहारण हेतु हिन्दू मन्दिर व मुस्लिम मस्जिद दोनों में खुला आँगन होता था, जिसके चारों ओर खम्भेदार कमरे होते थे। इसलिये तुर्क सुल्तान कभी–कभी हिन्दू अथवा जैन मन्दिरों की छतों को गिरा कर उनके स्थान पर गुम्बद और मीनारें बनवा देते थे। इस प्रकार बनी मस्जिदें कालान्तर में मुस्लिम शासकों के लिए प्रतीक बन गईं, जिनमें हिन्दू व मुस्लिम स्थापत्य का समन्वय अनजाने में ही हो गया था। इस प्रकार भारत में एक नई स्थापत्य कला विकसित हुई।

हिन्द–इस्लामी (इंडो सारसेनिक) न तो इस्लामी कला का स्थानीय रूप था, न ही हिन्दू कला का रूपान्तरित स्वरूप बल्कि यह हिन्दूवाद और जैनवाद पर आधारित जटिल सामाजिक संरचना के तत्वों और ईरानी तत्वों के सम्मिश्रण के रूप में निर्मित हुई थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "जिन परिस्थितियों में भारतीय मुस्लिम कला का प्रादुर्भाव हुआ, उसके कारण दोनों आदर्शों में समन्वय अनिवार्य हो गया। हिन्दुओं में मूर्तिपूजा थी, जबकि मुस्लमान इसका विरोध करते थे। हिन्दू श्रृंगार चाहते थे और इस्लाम सादगी को ही पसन्द करता था। इन विरोधी आदर्शों ने मिलकर ऐसी नवीन कला को जन्म दिया जिसे 'भारतीय मुस्लिम कला' कहते हैं, परन्तु कला के इस समन्वय में हिन्दू कला अधिक प्रभावित हुई अथवा मुस्लिम कला, इस प्रश्न पर कला मर्मज्ञों में पर्याप्त मतभेद है। कला मर्मज्ञ हेवल का मानना है कि म

Scanned by CamScanner

ययुगीन कला में हिन्दू कला का बाहुल्य है, जबकि स्मिथ, फर्ग्युसन और एलफिंसटन का मानना है कि मध्यकालीन इमारातों में हिन्दू प्रभाव नगण्य था। इन विद्वानों में मतभेद का मुख्य कारण पाश्चात्य विद्वानों का संकीर्ण दृष्टिकोण है, जिसके कारण उन्हें प्रत्येक वस्तु में विदेशी शैली दिखाई देती है। यदि कहीं उन्हें उच्चकोटि की शैली दिखाई देती है तो उनकी साम्राज्यवादी भावना को ठेस पहुँचती है और वे उनमें विदेशी तत्त्व ढूँढने का प्रयास करते हैं। डॉ. परमात्मा शरण ने ठीक ही लिखा है कि, "फर्ग्युसन जैसे विद्वानों ने यह समझने में भूल की है कि पठानकालीन सुल्तानों ने एक नई शैली का विकास किया। वास्तव में न तो पठानों की कोई नई शैली थी, न तुर्कों की, न मंगोलों की, वे सब प्राचीन कला के रूपान्तरण थे। हिन्दू घरों व मन्दिरों तथा बौद्ध विहारों के चौक और दालान मस्जिदों के नामाजशाह बन गये। देवालय के तोरण मेहराब के रूप में मस्जिदों में मक्के की तरह बनाये जाने लगे।"

मकबरा निर्माण कला इस्लामी स्थापत्यकला की एक प्रमुख विशेषता रही है, जो मष्त व्यक्ति को दफनाने की प्रथा थी। मकबरा वास्तुतकला की सामान्य तकनीकों में एक गुम्बुदाकार कक्ष (हुजरा), इसके केंद्र में एक स्मारक और पश्चिमी दीवार पर एक मेहराब और भूमिगत कक्ष में वास्तकविक कब्र होती है। 16 वी शताब्दी से ही मुगलों ने मकबरों के चारों ओर बागों की व्यवस्था करके मकबरा स्थापत्यकला को एक नया आयाम दिया। मुगल मकबरे आमतौर पर एक विशाल उद्यान परिसर के केंद्र में स्थित होते हैं और इस उद्यान परिसर को वर्गाकार भागों में विभाजित किया जाता है। यह शैली चारबाग के नाम से जानी जाती है जिसका विस्तष्त उल्लेख बाबरनामा से प्राप्त होता है। उद्यान के चारबाग पद्दति का विकास मुगलों की मूल भूमि, काबुल घाटी को मानते हैं जहां प्राकृतिक दृष्यों या भूभागों के आधार पर उद्यानों और आवासीय परिसरों का निर्माण किया गया था। मुगलों को यह उद्यान शैली विरासत में मिली थी और उन्होंने भारत में नए इलाकों के अनुसार इसमें परिवर्तन कर लिया। मुगलों ने चारबाग पद्दति पर विभिन्न स्थानों पर विशाल उद्यान भी बनवाए।

मुगल काल में दक्षिण भारत में मुसलमान शासकों द्वारा भी बहुत बड़ी संख्या में इमारतों का निर्माण कराया गया। इनमें से अहमदनगर के शासक अहमद निजामशाह का मकबरा, बाग ए रौजा, उसी के द्वारा बनवाया गया एक बाग और महल, हस्त बहिस्त (आठवाँ स्वर्ग), बीजापुर के शासक अली प्रथम द्वारा बनवायी गयी जामा मस्जिद, सुल्तान इब्राहीम द्वारा बनवाया गया स्वयं का मकबरा, आनन्द महल, मिहतरु महल और जामा मस्जिद तथा गोलकुण्डा के सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह द्वारा बनवाये गये महल जैसे चन्दन महल हीरा महल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुगल काल में सभी ललित कलाओं की अभूतपूर्व उन्नति हुई। मुगल सम्राट स्थापत्य कला के प्रेमी थी। मुगल काल में ईरानी और हिन्दू स्थापत्य शैली के समन्वय द्वारा मुगल शैली का उद्‌भव एवं विकास हुआ था। फर्ग्युसन के अनुसार मुगल शासकों की निर्माण शैली विदेशी है, जबकि हावेल के अनुसार मुगल कला देशी और विदेशी शैलियों का उत्तम सम्मिश्रण है। लेकिन हावेल का यह भी मानता है कि विदेशी कला ने भारतीय कला को प्रभावित किया था। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय कला परम्परा को ईरानी आदर्श के हित में अपना लिया गया। अकबर के शासन के अन्तिम वर्षों में विदेशी तथा भारतीय तत्त्व ऐसे घुलमिल गये थे कि भारतीय अथवा ईरानी कला के पृथक् अस्तित्व का पता लगाना कठिन हो गया।

मुगल स्थापत्य का वास्तविक विकास अकबर (1556-1605) के समय से ही शुरू हुआ। अकबरी स्थापत्य का विकास प्रमुख रूप से दो चरणों में हुआ। पहले चरण में आगरा, इलाहाबाद, और लाहौर का

Scanned by CamScanner

किला शामिल है, जबकि दूसरे चरण में फतेहपुर सीकरी का निर्माण रहा जिसे मुगल साम्राज्य की नयी राजधानी बनाया गया। आगरे के किले के निर्माण की मूल विशेषताओं को देखें तो इसमें विशालकाय दीवारों का प्रयोग और परकोटे वास्तव में किसी महान सत्ता और शक्ति का परिचय देते हैं। किले के अन्दर गुजरात और बंगाल शैली के भवन हैं। प्रवेश द्वार में जो तकनीकी विशेषताएं दृष्टव्य है उनमें मेहराब और दोनों ओर झुकी हुई अष्टकोणीय दीवारें, तोरणयुक्त छत जिसमें मंडप, कंगूरे, लाल बलुए पत्थर पर सफेद संगमरमर का अलंकरण प्रमुख हैं। अकबर को स्थापत्य कला के प्रति गहरी रुचि थी। उसके काल में जो सुन्दर इमारतें बनीं वे अबुल फज़ल के इस कथन को युक्तिसंगत ठहराती हैं कि "सम्राट सुन्दर इमारतों की योजना बनाता है और अपने मस्तिष्क एवं हृदय के विचार को पत्थर और गारे का रूप दे देता है।" अकबर ने तत्कालीन शैलियों की बारीकी को समझा और अपने शिल्पकारों को इमारतें बनाने के लिये नये विचार दिये। अतः अकबर के काल में स्थापत्य कला की जो नई शैली विकसित हुई वह वास्तव में हिन्दू–मुस्लिम शैलियों का समन्वय थी।

अकबर के शासनकाल में स्थापत्य के क्षेत्र में देशी तकनीकों को बढ़ावा मिला और अन्य देशों के अनुभव का भी उपयोग किया गया। यद्यपि हुमायूँ के मकबरे में फारसी शैली को अधिक स्थान मिला लेकिन अकबर के शासनकाल में इस शैली में हिन्दू और बौद्ध परम्पराओं का सम्मिश्रण अधिक हुआ। अकबर ने न केवल मुस्लिम शासन की परम्पराओं को अधिक शक्तिशाली बनाया बल्कि अपने उत्तराधिकारियों के लिए ऐसा साम्राज्य छोड़ा जो अपने 'अखिल भारतीय रूप' में प्रतिष्ठित था और उसकी अभिव्यक्ति उसके अधीन विकसित हो रही संस्कृति व कला में हो रही हो। इस प्रकार से सही मायने में अखिल भारतीयता की अभिव्यक्ति एक साथ इन दोनों ध्रुवों पर हुई। अकबर कालीन स्थापत्य की कुछ प्रमुख विशेषताएं थीं– (क) भवन निर्माण में अधिकांशतः लाल बलुए पत्थर का प्रयोग हुआ था, (ख) शहतीरों का अधिकतम प्रयोग किया गया, यद्यपि अलंकरण के लिए ट्यूडर मेहराबों का भी प्रयोग किया गया। खम्भे का अग्रभाग बहुफलक युक्त था और इनके शीर्ष पर ब्रैकट या ताक बने होते थे। स्थापत्य शैली में मेहराबी और शहतीरी शैली का प्रयोग समान अनुपात में किया गया, (ग) भवनों का अलंकरण प्रायः नक्काशी या पच्चीकारी द्वारा होता था और उनमें चमकीले रंग भरे जाते थे। अकबर के शासनकाल में स्थापत्य कला का विकास हिन्दू शैली के आकारों, धार्मिक संकेतों और विशेषताओं से प्रभावित हुआ। वह इस्लामी चापाकार (आर्क्यूयेट शैली) की अपेक्षा हिन्दुओं की शहतीरी शैली (ट्रैबियेट) को अधिक पसंद करता था। मूलतः अकबर की वास्तुकला शैली में मुगल काल के पूर्व की शाही शैली तथा गुजरात, मालवा और चंदेरी की आंचलिक शैलियों का संयोजन है। कालांतर में उसे फारसी और मध्य एशिया की शैलियों ने भी प्रभावित किया है।

अकबर के शासनकाल की प्रथम इमारत दिल्ली का हुमायूँ का मकबरा है, जिसे अकबर की सौतेली माँ हाजी बेगम ने बनवाया था। हाजी बेगम ईरानी आदर्शों से प्रभावित थी और इस मकबरे को बनाने वाला प्रधान कारीगर मीरक मिर्जा गियासी भी ईरानी था। प्रधान कारीगर की सहायता के लिये अनेक भारतीय शिल्पकारों ने भी काम किया था। अतः यह मकबरा फारसी आदर्श की भारतीय अभिव्यक्ति है। इस इमारत का मेहराबयुक्त विशाल मण्डप फारसी शैली का है, जबकि सुन्दर छतरियों वाले कलात्मक मण्डप भारतीय शैली के हैं। इसका गुम्बद सफेद संगमरमर का है और शेष इमारत में सफेद और काले संगमरमर के साथ लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया गया है।

Scanned by CamScanner

अकबर शैली का सबसे सुन्दर नमूना आगरे का लाल किला है। यह लगभग डेढ़ मील के घेरे में बना है और पूरी लाल पत्थरों की बनी इसकी दीवारें लगभग 70 फीट ऊँची हैं। प्रवेश द्वार के ऊपरी भाग की सजावट बेहद आकर्शक है। मेहराबों और पेनलों पर सफेद संगमरमर जड़कर सुन्दर डिजायनें बनाई गई हैं। किले का दूसरा दरवाजा अमरसिंह दरवाजा कहलाता है। इस दरवाजे की बनावट में कोई कलात्मकता नहीं है। इस किले की चारदीवारी के भीतर अकबर ने 500 से भी अधिक इमारतें लाल पत्थर की बनवाई थीं। इनमें अधिकांश को शाहजहाँ ने गिरवाकर उनके स्थान पर सफेद संगमरमर के मण्डप बनवा दिये। किले के अन्दर अकबर के समय बनवायी गई सबसे महत्वपूर्ण इमारतें अकबरी महल और जहाँगीरी महल हैं। ये महल लाल पत्थर के बने हुए हैं। जहाँगीर महल हिन्दू डिजाइन का है और इसमें सजावट भी हिन्दू ढंग की ही है। अकबरी महल में सजावट का काम नहीं है। आगरे के किले की रूपरेखा मानसिंह द्वारा बनवाये गये ग्वालियर किले से मिलती है। अकबर द्वारा बनवाया गया लाहौर का किला भी लगभग आगरा के किले के समान ही है। लाहौर के किले की इमारतें आगरा के किले के जहाँगीरी महल के समान ही हैं। उनमें मुलांतर यह है कि लाहौर के किले की सजावट आगरा के किले की अपेक्षा अधिक घनी है। तोड़ो में हाथी और सिंहो की मूर्तियाँ और छत के नीचे कारनिस में मोरों के चित्रों को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि इसके शिल्पकार अधिकतर हिन्दू थे और मुगल निरीक्षक का दृष्टिकोण सहिष्णुतापूर्ण था।

फतेहपुर सीकरी के निर्माण के साथ अकबरी वास्तुकला के दूसरे दौर का आरम्भ मान लिया जाता है। सम्भवतः इसका निर्माण वर्ष 1571 था, जैसा कि अबुल फज़ल और आरिफ मोहम्मद कंधारी ने लिखा है। यह समय अकबर की सफलता के चर्मोत्कर्ष का समय था अर्थात् वह गुजरात और राजस्थान पर विजय प्राप्त कर चुका था। इस निर्माण के पीछे उत्तरदायी अनेक कारणों में से एक कारण शेख सलीम चिश्ती के प्रति सम्राट का आदर प्रकट करना भी बताया जाता है। जे.एफ. रिचर्डस का मानता है कि शेष के सम्मान की अपेक्षा यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि फतेहपुर सीकरी में राजधानी रखना बादशाह और संभ्रांत शासक वर्ग के लिए रणनीतिक, राजनीतिक, वैचारिक और औपचारिक दृष्टि से कहाँ तक हितकर था। पूर्व के बादशाह के शत्रुओं में राजपूतों का स्थान अफ़गानों ने ले लिया था और राजपूत राजाओं के साथ शांति स्थापित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त फतेहपुर सीकरी के निर्माण से अकबर के वैचारिक हितों की भी पूर्ति हो सकती थी। रिचर्ड्स का विचार है कि महलों के बीच बनी मस्जिद में शेख का मकबरा बनवाकर अकबर ने सांकेतिक रूप में राजनीतिक और आध्यात्मिक सत्ता का परस्पर संयोजन किया। संक्षेप में कहें तो अकबर द्वारा निर्मित फतेहपुर सीकरी आगरा की राजनीतिक सत्ता और अजमेर की आध यात्मिक सत्ता का संयुक्त स्वरूप था। फतेहपुर सीकरी के स्थापत्य के दो परिप्रेक्ष्य हो सकते हैं– धार्मिक और गैरधार्मिक। धार्मिक भवनों में प्रमुख हैं– जामा मस्जिद, बुलंद दरवाजा और शेख सलीम चिश्ती की दरगाह जबकि गैर धार्मिक भवनों में जोधाबाई महल, बीरबल महल, मरियम महल, सुल्ताना महल आदि प्रमुख है। विशेष बात यह है कि धार्मिक भवनों का निर्माण अर्द्धवृत्ताकार या धनुषाकार शैली में हुआ जबकि गैर धार्मिक भवनों में शहतीर पद्धति की प्रमुखता है। लौकिक प्रयोग में आने वाले प्रमुख भवनों में दीवाने खास प्रमुख है। इस कक्ष के मध्य में एक नक्काशीदार स्तम्भ (केन्द्रीय स्तम्भ) है जिसका शीर्ष आकार में विशाल है। इसी शीर्ष पर जैन शैली के मेहराबदार ब्रैकिटों पर गोल चबूतरा टिका हुआ है। इसमें बौद्ध तथा हिन्दू वास्तुकला की झलक दिखाई देती है। केन्द्रीय खम्भे के शीर्ष पर कमल के ऊपर बैठी देवी की

Scanned by CamScanner

मूर्ति की कल्पना की गयी है, जिसे कन्हेरी की बौद्ध गुफाओं में देखा जा सकता है। वास्तव में अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि यह कक्ष दीवाने खास था अथवा धार्मिक चर्चाओं के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला कक्ष (इबादतखाना) था, जहाँ अकबर ने दीन ए इलाही को जन्म दिया। पंचमहल में अकबर द्वारा आंचलिक तत्वों को एकीकृत करने का प्रयास किया गया है। इसमें नालंदा के बौद्ध विहारों के लक्षण प्रकट होते हैं। जोधाबाई महल की रचना पारम्परिक रीति पर आधारित है, परन्तु इसमें अलंकरण दक्षिण के हिन्दू मन्दिरों और गुजरात की वास्तुकला से लिए गये हैं।

निष्कर्ष

तुर्कों के भारत विजय के समय तक मध्य एशिया की विभिन्न जातियों ने स्थापत्य कला की एक ऐसी शैली विकसित कर ली थी कि एक ओर ट्रान्स–ऑक्सियना, ईरान, अफगानिस्तान, इराक, मिस्त्र, उत्तरी आफ्रीका तथा दक्षिण–पश्चिम यूरोप की स्थानीय शैलियों और दूसरी ओर अरब की मुस्लिम शैली के समन्वय से बनी थी। इस प्रकार तुर्क विजेता जो स्थापत्य कला भारत लाये थे वह न तो पूर्ण रूप से मुस्लिम थी और न अरबी। लेकिन उनकी स्थापत्य कला पर उनके धर्म और उनके प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट प्रभाव था। इस विदेशी स्थापत्य कला की कुछ मौलिक विशेषताएँ थी, जैसे नोकदार तिपतिया मेहराब, मेहराबी छतें, इमारतों का विषाल रूप आदि। इस शैली को सारसैनिक या इस्लामिक कला जाता है। मुसलमानों के भारत आने से पूर्व यहाँ की स्थापत्य कला पूर्ण विकसित शैली में विद्यामान थी। इस स्थापत्य की विशेषता, शिल्प सौष्ठव, अलंकृत पद्धति और विषयों की विभिन्नता है। यह भारतीय कला, जो उस समय हिन्दू कला कहलाती थी, अपनी अलंकरण व विविधता के लिये प्रसिद्ध थी। भारत में आने के बाद मुसलमानों को भारतीय शिल्पकारों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी। भारतीय शिल्पकारों की इमारतों की रचना में अलग दृष्टिकोण था, जिन पर वे सदियों से काम करते आये थे। अतः मुस्लिम सुल्तानों द्वारा निर्मित भवनों में भारतीय शिल्पकारों ने अपनी परम्परागत शैली का प्रयोग किया और उन इमारतों की बनावट और सजावट में ऐसी बातें रखी जो भारत में लम्बे समय से प्रचलित थी। अतः अनजाने में ही हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला का समन्वय हो गया। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने प्रारम्भ में अनेक हिन्दू व जैन मन्दिरों को ध्वस्त किया था और इनकी सामग्री का प्रयोग मस्जिदें, महल व मकबरे बनाने में किया। इस प्रकार परिवर्तित इमारतों के स्वरूप में जो परिवर्तन हुआ वह केवल बाह्य आकार तक सीमित था। आगे चलकर जब नई मस्जिदें, मकबरे बनाये गये तब इस प्रकार परिवर्तित इमारतों को ही आदर्श मान लिया गया, जिसमें हिन्दू व मुस्लिम कलाओं का समन्वय विद्यमान था। इस संदर्भ में अकबर को स्थापत्य कला के अंतर्गत वैधानिक परम्पराओं के संस्थापक एवं सर्जक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 अशेर, सी.बी., आर्किटेक्चर ऑफ मुगल इंडिया, कैंब्रिज, 1992
2 मिचेल, जार्ज इस्लामिक हेरिजेट ऑफ द दक्कन, बम्बई, 1986
3 हर्ले, जे.सी., द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इंडियन सबकांटिनेंट, पेंगुईन बुक्स, 1986
4 मेटकाफ, टामस, नई दिल्लीः द बिगिनिंग ऑफ द एण्ड, इन आइडेम, ऐन इम्पेरियल विजन इंडियन आर्किटेक्चर एण्ड ब्रिटेनस राज, लंदन, 1989
5 मिचेल जी., एण्ड जेब्रोस्की, मार्क, आर्किटेक्चर एण्ड आर्ट ऑफ दक्कन सल्तनतस, कैंब्रिज, 1999
6 टिलोत्सन, जी.एच., आर. द राजपूत पैलेसेजः द डेवलपमेंट ऑफ एन आर्किटेक्चरल स्टाइल, 1450–1750, नई दिल्ली, 1987

Scanned by CamScanner

7 बाषम, ए.एल., द वन्डर दैट वाज इंडिया, लन्दन, 1954
8 मित्तर, पार्थ, इंडियन आर्ट, आक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001
9 वर्मा, एस.पी., मुगल पेंटर ऑफ फलोरा एण्ड फाउना, अभिनव पबिलकेषन, नई दिल्ली, 1999
10 वर्मा, एस.पी., आर्ट एण्ड मैटेरियल कल्चर इन द पेंटिंग्स ऑफ अकबरस कोर्ट, विकास पबिलकेषन, नई दिल्ली, 1978
11 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987
12 अहमद, अजीज, स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दि इंडियन एनवॉयर्नमेण्ट, ऑक्सफोर्ड, 1964
13 ब्राउन, पर्सी, इण्डियन आर्किटेक्चर, इस्लामिक पीरीयड, बम्बई, 1965
14 ब्राउन, पर्सी, इण्डियन पेंटिग, मैसूर, 1930
15 चौबे, झारखण्डे एवं श्रीवास्तव, कन्हैयालाल, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कषति, लखनऊ, 2000
16 चौपड़ा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक, सांस्कषतिक एवं आर्थिक इतिहास, तीन खण्ड, दिल्ली, 1975
17 दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कषति के चार अध्याय, पटना, 1956
18 फर्ग्युसन, जेम्स, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, लंदन, 1910
19 धुर्रे, जी.एस., कास्ट, क्लास एण्ड ऑकोपेसन, बम्बई, 1961
20 कर्वे, इरावती, किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इंडिया, बम्बई, 1968
21 कुरेशी, आई.एच., दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि सल्तनत ऑफ देहली, लाहौर, 1942
22 कादिरी, असगर अली, हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली, आगरा, 1963
23 कुमारस्वामी, आनंद के., हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1927
24 कौशाम्बी, डी.डी., दि कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एनशियन्ट इंडिया, 1965
25 मजूमदार, डी.एन., रेस एण्ड कल्चरस ऑफ इंडिया, बम्बई, 1958
26 मैकली, बी., इंगलिश एजूकेशन एण्ड द ऑरिजिन ऑफ इण्डियन नेशनालिज्म, न्यूयॉर्क, 1940
27 नाथ, आर., हिस्ट्री ऑफ डेकोरेटिव आर्ट इन मुगल आर्कीटेक्चर, दिल्ली, 1976
28 नाथ, आर., हिस्ट्री ऑफ सल्तनत आर्कीटेक्चर, नई दिल्ली, 1978
29 पाण्डेय, जयनारायण, पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 2000
30 पाण्डेय, डॉ. राजेन्द्र, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1983
31 रोलैंड, बेजामिन, ऑर्ट एवं आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया, हार्मड्बर्थ, 1953
32 रशीद, ए, सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, कलकत्ता, 1969
33 श्रीवास्तव, के.एल., द पोजिसन्स ऑफ हिन्दूज अण्डर द दिल्ली सल्तनत, दिल्ली, 1980
34 श्रीवास्तव, अशर्फीलाल, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1988
35 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय वास्तु शास्त्र, लखनऊ, 1955
36 श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, मेडीवल कल्चर, आगरा, 1964
37 बर्नियर, ट्रेवल्स इन मुगल इम्पायर, कांस्टेबल, दिल्ली, 1968
38 मनुची, स्टोरियो द मोगोर, अनु. इरविन, लंदन, 1907-8
39 स्मिथ, बी.ए., अकबर दि ग्रेट मुगल, दिल्ली, 1958
40 हुसैन, युसुफ, ग्लिम्पसेस ऑफ दि मेडिवल इंडियन कल्चर, बम्बई, 1959
41 सक्सेना, बी.पी., हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ देहली, इलाहाबाद, 1958
42 टोमोरी, ई., हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इंडिया एण्ड द वेस्ट ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 1989
43 मुखर्जी, अजीत, इंडियन प्रिमीटिव ऑर्ट, ऑक्सफोर्ड बुक, कलकत्ता
44 वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
45 गुप्ता, परमेश्वरी लाल, भारतीय वास्तुकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
46 कावरी, चालर्न एल, भारत का मूर्तिशिल्प, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1970

Scanned by CamScanner

47 रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973
48 रशब्रुक, विलियम, एन इम्पायर बिल्डर ऑफ दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, लंदन, 1918
49 फ्राइकेनबर्ग, आर., लैण्ड कन्ट्रोल एण्ड सोसल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री (सं.), नई दिल्ली, 1979
50 निजामी, के.ए., स्टडीज इन मडिवल इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, इलाहाबाद, 1966
51 टैवर्नियर, ट्रेवेल्स इन इंडिया, भाग 1–2, लंदन, 1889

Scanned by CamScanner

13 भारतीय लोक संस्कृति और यक्ष–प्रतिमा विज्ञान

रमेश चन्द्र यादव

भारतीय लोक संस्कृति में यद्यपि कई देवी देवताओं की पूजा होती रही, किन्तु यक्ष उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली माने गये है। लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति कला के माध्यम प्रकट हुई, जिसे लोक कला कहा जाता हैं। ऐसी कला जिसका उद्‌भव एवं विकास जन सामान्य के बीच से हुआ। लोक कला की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम पाषाण कालीन शैल चित्रों से मिलती हैं, जिसमें शैलाश्रयों के निवासियों ने अपनी कलाप्रियता को चट्‌टान पर चित्रित कर अभिव्यक्त किया। इन चित्रों में यद्धपि केवल दैनिक जीवन की घटनाओं,पशुओं, आखेट,नृत्य आदि का चित्रण किया है,किन्तु प्रकृति के साथ संघर्ष करने वाले व्यक्तियों के विश्वास में शक्तिशाली देवता अस्तित्व में आये, इनमें यक्षों का महत्वपूर्ण स्थान था। यक्ष पूजा परम्परा एक ऐसी परम्परा है, जो हजारों वर्ष पूर्व से चलकर कई चरणों से गुजर कर आज भी अस्तित्व में है। आज भी भारत में ग्रामीण अंचल में ग्राम देवता यथा जखई बाबा,भैरों बाबा, मशान बाबा, नगराज बाबा के रूप में पूजा की जाती हैं। इनकी पूजा के पीछे यह विश्वास किया जाता है कि बाबा हमारी रक्षा करेगें। इतना ही नहीं आदिवासी अंचलों में भी ठाकुर देव, कारसदेव, बड़ादेव या बूढ़ादेव या अन्य स्थानीय नाम वाले बाबा पूजे जाते हैं। इस पूजा परम्परा में पशु बलि देने की भी प्रथा हैं। यक्ष पूजा भारत की मूल संस्कृतिक भावना को अभिव्यक्त करती हैं, जो आर्येत्तर समाज की देन हैं, किन्तु आर्यों को भी यक्ष पूजा अथवा यक्षों की शक्ति को मानना पड़ा।

'यक्ष' शब्द सर्वप्रथम जैमिनीय ब्राहमण[1] में मिलता हैं,जहॉ इसका अर्थ एक षक्ति षाली देव के रूप में दिया गया है कि 'इससे अधिक कुछ नहीं' है, जो एक अद्‌भुत शक्तियों से परिपूर्ण माने गये है, जिसे कुबेर से समीकृत किया गया। यक्षों को गृहसूत्रों में भूतों के साथ उल्लेखित किया गया हैं।[2] यही कारण है कि आर्य संस्कृति में कुबेर को यक्षपति व लोकपाल का पद प्रदान किया गया। शंखायन गृहसूत्र में मणिभद्र का उल्लेख है, जो कुबेर के सहायक थे और व्यापारियों के रक्षक माने गये हैं। सतपथ ब्राह्मण[3] में कुबेर को राक्षस एवं लुटेरों का देवता कहा गया हैं। रामायण, महाभारत में राक्षस, प्रेत, भूतों के साथ यक्षों की चर्चा की गई है।[3] ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में यक्षों के मंदिर या विहार भी बनने लगे थें। यक्ष–यक्षी प्रायः नगर रक्षक, ग्राम रक्षक व क्षेत्र रक्षक के रूप में पूजे जाते थे। इनका तत्कालीन समाज पर इतना

Scanned by CamScanner

प्रभाव था, कि यक्ष परम्परा एक सम्प्रदाय ही बन गई। यही कारण है,जो भी सम्प्रदाय अस्तित्व में आये, उसने यक्षों को षामिल करने का प्रयास किया। यही कारण है कि बौद्ध व जैन धर्म में यक्षों की भूमिका सहयोगी देवता या क्षेत्रपाल की हो गई। सर्वाधिक प्रभाव बौद्ध धर्म पर पड़ा और यक्षों की मूर्तियां बनायी गई। यक्ष मूर्तियों का निर्माण यद्धपि ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी के लगभग हो गया था, किन्तु इनकी काश्ठ प्रतिमायें नगर, द्वारों व मार्गों पर लगायी जाती थी, ताकि यक्ष नगर या ग्राम की रक्षा करें। मौर्यकाल में प्रस्तर प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ। मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत कुणिन्द, पटना संग्रहालय का यक्ष व दीदारगंज से प्राप्त यक्षी मौर्य काल के प्रमुख उदाहरण है। शुंग काल में यक्ष पूजा सर्वाधिक लोकप्रिय थी। यही कारण है कि भरहुत व सांची के स्तूपों के बेदिका व तोरण पर यक्षों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ।

प्रारंभ में जब यक्ष प्रतिमायें प्रकाश में आयी, तो विद्वानों ने इन्हे शिशुनाग वंश के शासकों से समीकृत किया, किन्तु पवाया उत्खनन में प्राप्त यक्ष प्रतिमा की पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख का वाचन ग्वालियर रियासत के पुरातत्वविद् श्री एम.बी. गर्दे द्वारा किये जाने पर यह स्पष्ट हुआ कि ये यक्ष प्रतिमायें है।[6] देष की महत्वपूर्ण यक्ष प्रतिमाओं में मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष प्रतिमा है, जिसकी पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख में उसे कुणिका के नाम से सम्बोधित किया गया है। जो यक्षी मनसा का भाई था।[7] मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित परखम ग्राम से प्राप्त यह यक्ष प्रतिमा 8फीट 8 इंच ऊँची है। प्रारम्भ में विद्वानों ने पादपीठ में लेख के आधार पर राजा कुणिक अजातशत्रु से समीकृत करने का प्रयास किया था। के.पी. जायसवाल ने इस प्रतिमा की लिपि ई.पू. 618 निर्धारित की थी, किन्तु अन्य विद्वानों ने इस मूर्ति को शिशुनाग राजा से समीकृत किया, जिसकी मृत्यु 459 ई.पूर्व में हो गई थी। जायसवाल व अन्य विद्वानों के विचारो का खण्डन करते हुए आर.चांदा ने चार यक्ष प्रतिमाओं के ऊपर सन् 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के जर्नल में लेख प्रकाशित करवाया।[8] मथुरा से प्राप्त मनसादेवी की मूर्ति की पीठिका पर उत्कीर्ण लेख में यक्षिणी मनसा को कुणिक की बहिन बताया गया हैं।[8] विद्वानों ने इस प्रतिमा को मौर्य कालीन बताया है। यह भारत की प्राचीनतम यक्ष प्रतिमा हैं। विदिशा जिले के बेस नगर नामक स्थल से प्राप्त यक्षी भी मौर्य कालीन है, जिसकी ऊँचाई 7 फीट 7 ईंच हैं, जो इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में प्रदर्शित है। पटना संग्रहालय में प्रदर्शित चंवरधारिणी यक्षी दीदारगंज नामक स्थल से प्राप्त हुई। मौर्य कालीन ओप युक्त सुन्दर प्रतिमा कला की श्रेष्ठ उदाहरण है।[10] इसी प्रकार ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा पवाया के उत्खनन में वर्ष 1914 में प्रकाश में आयी। इसकी पादपीठ के उत्कीर्ण लेख के आधार पर श्री एम.पी. गर्दे ने इसे कुषाण कला की श्रेष्ठ कृति कहा है। इस प्रतिमा का निर्माण मणिभद्र भक्त शाखा की श्रेणी द्वारा करवाया गया, जो उस समय का व्यापारियों का संगठन था।[11]

भरहुत के स्तूप पर यक्ष व यक्षियों का शिल्पाकंन है, इनके नाम यथा कुपिरो यखो (कुबेर यक्ष), सुपावसु यखो, विरूढ को यखो, गंगिता यखो, सुचिलोमा यखो, भजकालक यखो, सुदासना यखी, चांदा यखी, सिरमादेवता, चुल्लकोका देवता, महाकोका देवता आदि मूर्तियों के नीचे नाम उत्कीर्ण हैं। सांची के स्तूप के तोरण स्तम्भों पर यक्षों का सुन्दर आलेखन है। यक्ष मूर्तियों का निर्माण लोककला में हुआ। मौर्यकाल ही वह काल था, जब लोक कला से परिश्कष्त होकर राज्याश्रित कला अस्तित्व में आयीं, किन्तु लोक कला की जड़े समाज में इतनी गहरी थी, निरन्तर समाज में जीवित रही। यक्षों की मूर्तिया लोक कला की महत्वपूर्ण देन हैं। लोक संस्कृति में प्रचलित रचनाओं के आधार पर ही यक्ष व यक्षी मूर्तियां महाकाय बनायी गयी, इनका यथेष्ट अंलकरण हुआ, किन्तु लोक कला का प्रभाव निश्चित रूप से रहा।

Scanned by CamScanner

विदिशा में बेतवा नदी के तट से प्राप्त विशालकाय यक्ष व यक्षी मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय है। इनमें महाकाय कुबेर प्रतिमा को विद्वानों ने शुंगकाल का बताया हैं। मौर्यकाल–शुंगकाल व कुषाण काल में लोककला की महत्वपूर्ण ये कृतियां यक्ष–यक्षी मूर्तियों के साथ बनती रही। विदिशा संग्रहालय में प्रदर्शित इस प्रतिमा का दाया हाथ भग्न है। सिर के ऊपर की पगड़ी आकर्षक व बायीं ओर दबी हुई हैं, जिसकी गांठ शुंगकाल में प्रचलित शैली की है। प्रचलित धारणा के अनुसार कुबेर को शक्तिशली दिखाने के लिए भरा हुआ अण्डाकार चेहरा व मांसल युक्त शरीर रचना दिखाई गई है। कुबेर के हाथ में धन की थैली शिल्पांकित है। विदिशा संग्रहालय में ही प्रदर्शित एक यक्षी प्रतिमा है, जिसे प्रथम शती ई. का माना गया हैं। रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर में प्रदर्शित यक्षी प्रतिमायें विशेष उल्लेखनीय है। लोककला की महत्वपूर्ण कृतियॉ है। कुषाण कालीन यक्षी प्रतिमायें जबलपुर के समीप स्थित भेड़ाघाट के पास कुड़न ग्राम से प्रकाश में आयीं हैं। एक अभिलिखित यक्षी प्रतिमा नागपुर संग्रहालय प्रदर्शित है जिस पर शक शासक भूवक (भूमक) के काल का अभिलेख उत्कीर्ण है। इनमें से एक प्रतिमा चौसठ योगिनी मंदिर को देव.कुलिका में, एक नीचे सीढ़ियों पर रखी हैं, जिसमें आज नीचे का भाग सुरक्षित है।

जबलपुर संग्रहालय में प्रदर्शित यक्षी प्रतिमाओं में– एक प्रतिमा (क्र. 2878) द्विभुजी समपाद स्थानक मुद्रा में दिखायी गयी हैं। प्रतिमा का निर्माण लाल प्रस्तर पर हुआ हैं यक्षी का मुख, दाया हाथ भग्न है, अन्य भाग क्षरित है। यक्षी के उन्नत वक्ष है, किन्तु क्षरित है। क्षीण कटि पर बधा कटिबन्ध के छोर दोनो ओर लटकते हुए अधोवस्त्र के साथ संलग्न हैं। आभूषणों में बाजूबंद के स्थान पर चूड़ियां, कलाई में चूड़ियां तथा कड़े, पैरों में चूड़ियों के नीचे मोटे कड़े हैं। प्रतिमा में क्षरण के कारण वस्त्रों का आलेखन स्पष्ट नहीं हैं। यक्षी का बायां हाथ कटिबंध के समीप हैं, दायां उपर की ओर हैं। प्रतिमा में आभूषणों व वस्त्रों के आलेखन में पूर्णतः लोक कला परिलक्षित होती हैं।

परखम से प्राप्त यक्ष

विदिशा से प्राप्त यक्ष

दीदार गंज से प्राप्त यक्षी

Scanned by CamScanner

दूसरी यक्षी प्रतिमा (अ.क्र.2879) भी उक्त प्रतिमा के समान आलेखन है, किन्तु सिर ग्रीवा से भग्न हैं। प्रतिमा में संतुलित तालमान तथा सौन्दर्य व कला के स्पष्ट आलेखन में उन्नत वक्ष, सुगठित वदन की संरचना है। गले में एकावली, लॉकेट सहित स्तन हार, बाजू में व कलाई में चूड़ियां, पैरों में मोटे कड़े, कटिबन्ध के नीचे अधोवस्त्र घुटने के नीचे तक कुषाण शैली में शिल्पाकिंत हैं। हाथ की चूड़ियों के कड़े के स्थान पर कुषाण शैली का ब्रासलेट हैं। यक्षी का दाया हाथ अभय मुद्रा में बांया कटि पर हैं। तीसरी यक्षी प्रतिमा (2876) उक्त प्रतिमाओं के समान है, किन्तु पैर भग्न है, शेष प्रतिमा का आलेखन स्पष्ट हैं। प्रतिमा में सुन्दर सिरोसज्जा में दोनों ओर केशबन्ध है, कानों में लटकते हुए विशाल कुण्डल, गले में लटका एक लड़ी हार जो उन्नत वृक्षों के मध्य से नीचे झूल रहा है। दोनों हाथों की कलाई में बाजू में क्रमषः 8 व 12 चूड़ियों का आलेखन हैं। चूड़ियों में आगे ब्रासलेट हैं। अधोवस्त्रों के उपर बांधा गया कटिबन्ध के छोर सामने की ओर नीचे अंकित हैं। घुटने के नीचे तक चौड़ा घेरदार कुषाण शैली का अधोवस्त्र नीचे मध्य पट्ट से दबा है। इसके ऊपर वस्त्रों की सलवटों को दिखाने वाली रेखायें है, जो धोती जैसी प्रतीत होती है। बांया हाथ कटि पर तथा दाया अभय मुद्रा में हैं। चौथी प्रतिमा (2877) उक्त मूर्तियों के समान ही निर्मित है किन्तु सिर के उपर मेहरावदार गवाक्ष आलेखन सातवाहन काल की शैलोत्कीर्ण गुफाओं के मेहराब से साम्य रखता हैं। यद्यपि प्रतिमा क्षरित है, किन्तु पैरों आलेखन में पंजे पर भार देते हुए आलेखन नृत्य मुद्रा जैसी बनाता है, किन्तु पैर मुड़े नहीं हैं। शेष अलंकरण उक्त मूर्तियों के समान हैं। गुप्तकाल में भी यह प्रतिमायें स्वतंत्र रूप से बनती रहीं। मन्दसौर में संग्रहीत भोपाल संग्रहालय में प्रदर्शित यक्ष मूर्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। मध्यकाल में भी यक्ष मूर्तियां बनती रही, किन्तु उसके उद्देश्य में भिन्नता थी।

जैन धर्म में एक ओर सभी तीर्थंकरों के सहयोगी यक्ष व यक्षी बने, दूसरी ओर क्षेत्रपाल देवता के रूप में यक्ष स्वतंत्र अस्तित्व में बने रहें। यहाँ पर यक्ष प्रतिमाएं शास्त्रीय कला का अंग बन गयी। यद्यपि यक्ष प्रतिमा निर्माण का कोई भी शास्त्रीय विधान नहीं है, केवल लौकिक आधार ही हैं, जिसके कारण भैरव, हनुमान, गणेश जैसे देवताओं की महाकाय प्रतिमायें बनने लगी, जिसका शास्त्रीय विधान तैयार हुआ। लोक संस्कृति में एवं आदिम संस्कृति में यक्ष जीवित रहे और आज भी जीवित है। यक्षी पूजा शीतला माता के रूप में, मरी माता के रूप में, कालिका के रूप में, वीजासेन के रूप में, खेरमाई के रूप में समाज में प्रचलित हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण शष्ठी पूजा है, जिसे बौद्ध धर्म में हारीति के नाम से, जैन धर्म में अम्बिका के नाम तथा ब्राम्हण धर्म में स्कन्दमाता के नाम से या मातृका शष्ठी के नाम से पूजते हैं। ग्रामीण अंचल के देवी देवता ही वे यक्ष–यक्षी हैं, जिनकी सदियों से पूजा होती आयी है। यक्षी देवी के रूप में तथा यक्ष देवता या बाबा के रूप में आज भी लौकिक जगत में पूज्य हैं। कहावत है:–

"गॉव–गॉव का वीर गॉव–गॉव का सिंद्ध"

यही सिंद्ध जखई बाबा (यक्ष बाबा) कहे जाते हैं, जो ग्रामीण अंचल में आज भी लोकप्रिय है। आदिम समाज में भी पृथक–पृथक नाम से यह पूजा प्रचलित हैं।

Scanned by CamScanner

संदर्भ

1. जैमिनीय ब्राहमण, 111,203,272
2. कुमार स्वामी आनंद के. यक्षस,(नई दिल्ली 1971) पृ.5
3. शांखायन गृहसूत्र, चतुर्थ, 9
4. कुमरी स्वामी आनन्द के. यक्षस, पृ.5
5. वही, रामायण, 3,11,94
6. गर्दे एम.वी. आर्केलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया एन्नुअल रिपोर्ट 1914–15 पृ. 21
7. आर्केलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया एन्नुअल रिपोर्ट 1920–21 एवं 1922–23 पृ.165
8. कुमार स्वामी उक्त पृ. 38
9. आर्केलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया एन्नुअल रिपोर्ट 1921 एवं चांदा.आर. मेमोरियल भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण वो. 30
10. कुमार स्वामी उक्त पृ. 38
11. गर्दे एम.बी. आर्केलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया एन्नुअल रिपोर्ट 1920–21

Scanned by CamScanner

14 सांची स्तूप में प्रतिबिम्बित जनशिक्षा

प्रसन्न सहारे

साँची भारत के मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित एक गांव है। यह भोपाल से 46 कि.मी. पूर्वोत्तर में तथा बेसनगर और विदिशा से 10 कि.मी. की दूरी पर मध्यप्रदेश के मध्य भाग में स्थित है। यह बौद्ध की प्रसिद्ध ऐश्वर्यशाली नगरी विदिषा (भीलसा) के निकट स्थित है। साँची से मिलने वाले कई अभिलेखों में इस स्थान को काकनादबोट नाम से अभिहित किया गया है। इनमें से प्रमुख अभिलेख गुप्त संवत (450–51) ई. का है जो, कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल से संबंधित है। इसमें बौद्ध उपासक सनसिद्ध की पत्नी उपासिका हरिस्वामिनी द्वारा काकनादबोट में स्थित आर्यसंघ के नाम दान दिए जाने का उल्लेख है। एक अन्य लेख स्तंभ पर उत्कीर्ण है, जिसका संबंध गोसुरसिंहबल के पुत्र विहारस्वामिन से है। यह भी गुप्तकालीन है। बौद्धकाल में साँची, महानगरी विदिशा की उपनगरी तथा विहार स्थली थी। सर जॉन मार्षल के मत में, कालिदास ने नीचगिरि नाम से जिस स्थान का वर्णन मेघदूत में विदिशा के निकट किया है, वह साँची की पहाड़ी ही है।

जीवन पर्यन्त शिक्षा एक व्यापक संकल्पना है। इसकी प्रक्रिया मनुष्य के जीवन से प्रारंभ होकर उसकी अंतिम श्वास तक जारी रहती है। इसके माध्यम से मात्र व्यक्तित्व ही नहीं अपितु मनुष्य के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में व्याप्त अंधकार से छुटकारा पाया जा सकता है। इस देश में प्राचीन काल से ही औपचारिक शिक्षा के साथ साथ अनौपचारिक तथा प्रभाविक शिक्षा के माध्यम से सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की जाती रही है। प्राचीन भारत में शिक्षा परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में वास्तुकला और मूर्तिकला के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। गृह एवं वास्तु के निर्माण के साथ ही मूर्ति एवं शिल्पकला का विकास हुआ जिनके सर्वश्रेष्ठ नमुने मंदिरो, विहारों और गुफाओं के रूप में आज भी विद्यमान है, इनकी बाह्य और आंतरिक सजावट एवं अंलकरण के रूप में प्रस्तुत की गई। अनेक पौराणिक कथाएँ अनायास ही जनशिक्षा का एक शसक्त माध्यम बन जाती हैं। समूचे देश में बिखरे हुए प्राचीन स्तूपों और मंदिरों जो मनोहारी उत्कीर्ण चित्र मिलते है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन भारतीय शिक्षक दृश्य साधनों को कितना महत्व देते थे।

Scanned by CamScanner

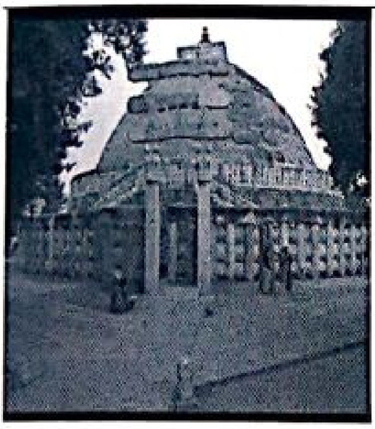

चित्र कमांक 1 सांची स्तूप का सामान्य दृश्य

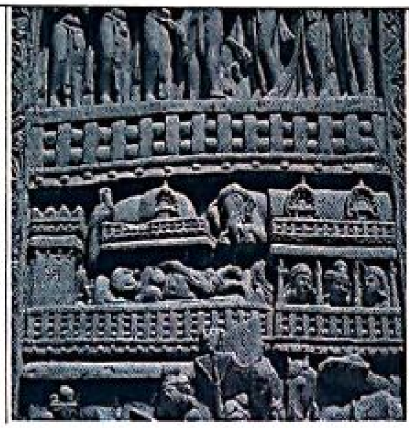

चित्र कमांक 2 माया देवी का स्वप्न

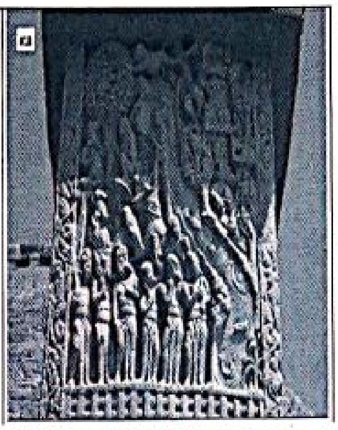

चित्र कमांक 3 महाकपि जातक

सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से स्वाभाविक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है सांची का स्तूप। प्राचीन भारत में सांची स्तूप के तोरण द्वारा में बुद्धकालीन सामाजिक जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं के निदर्श चित्र उत्कीर्ण किये गये हैं, इनमें महात्मा बुद्ध के जीवन गाथा और उनके उपदेशों को चित्रित किया गया है। प्राचीन भारत में दृश्य साधनों के शैक्षणिक उपयोगों के कुछ विशिष्ट उदाहरण सांची स्तूप के तोरण स्तंभो पर देखे जा सकते हैं, इन उत्कीर्ण चित्रों में अंकित बुद्ध की जीवन गाथा आज भी याथावत है। सांची स्तूप क्रमांक 1 के पूर्वी द्वार के उत्तरी स्तंभ के भीतरी भाग पर बना अभिकल्प जिसमें पैर फैलाकर खड़ा द्वारपाल या सैनिक चित्रित है। (चित्र कमांक 1) रत्न जटित पगड़ी के अलावा वह अनके लटकनों से युक्त है। हार कलाईयों और हाथों से अनके गहने और एक चुस्त धोती पहने हुये है। उनके दहिनी ओर एक बड़ी तलवार के म्यान जैसी कोई चींज है । इसी भाग पर शिल्पाकिंत फलक में ऊपर से पिता राजा शुद्धोधन द्वारा बुद्ध (जिसमें बोधी वृक्ष बुद्ध का प्रतीक है) की अवधारणा, माया देवी का स्वप्न और बुद्ध की कपिलवस्तु को वापसी अंकित है(चित्र कमांक 2) । पूर्वी द्वार के एक दीवार से लटकी हुई वृक्षिका (चित्र कमांक 3) के क्रमशः अग्र भाग और पष्ठ भाग का दृश्य है। तकनीकी और रूप की दृष्टि से यह एक ऐसी शिल्प कृति जिसे पूरी गोलार्ध में बनाया गया है। किसी यौवन भरी स्त्री की पूर्ण और गोल आकृति का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण और संवेदनशील इंद्रिय बोध, सूक्ष्म और सुरूचिपूर्ण रेखीय गति और प्रतिरूपण के कोमल तथा गोल लचीलेपन के साथ मिलकर एक ऐसी रचना का निर्माण करते है। जिसे प्रारंभिक भारतीय शिल्प के सर्वोत्तम नमूने में से एक माना जा सकता है।

इसी तरह स्तूप क्रमांक 1 के पश्चिमी द्वार के दक्षिणी स्तंभ पर बने अभिकल्प जिनमें ऊपर से महाकवि जातक का तुषित स्वर्ग में धर्मादेष का दृश्य अंकित है(चित्र कमांक 4) । बहते जल और वृक्षें का निरूपण ध्यान देने योग्य है। पूर्वी द्वार के उत्तरी स्तंभ पर बना अभिकल्प, जिसमें बुद्ध के कपिलवस्तु जैसे दृश्य अंकित हैं। पश्चिमी द्वार के दक्षिणी स्तंभ के ऊपरी भाग पर बना अभिकल्प, जिसमें महाकवि जातक का दृश्य अंकित है।(चित्र कमांक 3)

Scanned by CamScanner

क्रमांक चित्र 4 पैर फैलाकर खड़ा द्वारपाल

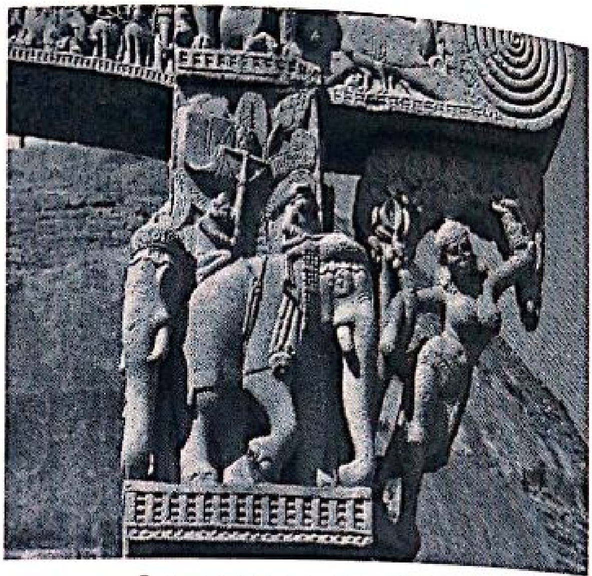

चित्र क्रमांक 5 शालभंजिका

पश्चिमी द्वार के दो ऊपरी पादांगो के भीतरी भाग पर बनी नक्काशियों जिसमें ऊपर से बुद्ध के अवशेषों को कुशीनगर वापस लाते मल राजाओं की तथा अवशेषों के युद्ध कहानी चित्रित है। पूर्वी द्वार के तीन पादांगों के बाहरी भाग पर बनी नक्काशियां जिनमें ऊपर से नीचे सात बुद्ध, कपिलवस्तु के राजप्रासाद से बुद्ध का महाप्रस्थान और बोधगया में बोधि वृक्ष के पास अशोक का जाना अंकित है। पूर्वी द्वार के दो ऊपरी पदांगो के भीतरी भाग में बनी नक्काशियों जिनमें ऊपर से सात बुद्धों (पुनः प्रस्तुति में दोनें छोरो के दो बुद्ध नहीं दिखाये गये है) और उस महाबोधी का दृश्य अंकित है। जिसके कारण बुद्ध के चरणों पर पशु भी आकर पड़ने लगे ऐसा था उनका प्रभाव । उत्तरी द्वार के पूर्वी स्तंभ के भीतरी भाग में बने नक्काशी फलक जिनमें ऊपर से नीचे तक राजगृह के निकट इंद्र शैल गुफा में बुद्ध के पास इंद्र के जाने का दृश्य राजगृह से विदा लेता हुआ एक राजा (बिंम्बिसार या अजातशत्रु) और राजगृह वेणुवन अंकित हैं। और अनेक ऐसे दृश्य है जो उस समय के सामाजिक ,धार्मिक ,तथा सांस्कृतिक जीवन को प्रतिबिम्बित करते है। और हमे उस समय के जनजीवन के बारे में संदेश दे रहे है।

यहां पर पुनः प्रस्तुत सांची के अभिकल्प वस्तुतः दूसरे स्तूप के अभिकल्पों को छोड़कर तीनों स्तूपो से संबंधित सांची की सभी नक्काषियां षैली ओर पुरालेख की दृष्टि से पहली शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तराध र्द की है। और सभी अपनी मूल लिपि में है। सामाजिक दृष्टि से हम देख सकते है। इन नक्काशियों में किस प्रकार मध्य देश के समकालीन ग्रामीण और शहरी किंतु मुख्य रूप से देहाती और कृशिय भारत का जीवन अपनी तमाम विशद नैसंर्गिकता के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है। किस प्रकार एक तरफ मानव और पशुजीवन तथा दूसरी तरफ प्रकृति का जीवन एक ईकाई में समन्वित और सामंजस्यपूर्ण कर दिया गया है। और कितनी सप्रेम सावधानी से शिल्पियो ने उन पर हाथ लगाया है और इस प्रकार उनके रूप और ढांचे के सहज मूल गुणों को भारत के परम्परागत बुद्ध पूर्व और गैर बौद्ध जीवन के पद्धति संरचना में कर दिया है। वास्तविक इतिहास, परम्परागत गाथाऐं, कहानियां और प्रतीक धार्मिक कर्मकांड, आदर्श और आकांक्षाये दैनन्दिन जीवन और जीवन प्रतिमान सामाजिक माहौल और प्रकृति, सौंदर्यगत विचार व्यवहार और आकांक्षाये इन सब ने यहां तक जीवंत कला की रचना कि जो अवयविक और प्रमाणिक है।

Scanned by CamScanner

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. चक्रवर्ती, सुजीत कुमार : भारत में दृश्य श्रव्य शिक्षा, कोलकाता, पृ. 45–47
2. तिवारी, काशीनाथ : जीवन पर्यन्त शिक्षा की अवधारणा (कला वैभव) – कला वैभव, पृ. 10–111
3. अग्रवाल, पृथ्वी कुमार : प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु विश्वविद्यालय प्रकाशन ,वाराणसी, पृ. 133–134
4. कुमारस्वामी, आनंद, अर्ली इंडियन आर्किटेक्चरः सिटीस एंड सिटी गेट्स, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1991
5. कुमारस्वामी, आनंद, अर्ली इंडियन आर्किटेक्चरः प्लेसेस, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1975
6. कुमारस्वामी, आनंद, सिंबलिजम ऑफ इंडियन आर्किटेक्चरः द स्तंभ एंड स्तूप, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1983
7. कनिंघम, अलेक्सजेंडर, द स्तूप ऑफ भरहूत, लंदन, 1879
8. दहेजिया, विद्या, डिस्कोर्स इन अर्ली बुद्धिस्ट आर्टः विसुअल नॅरेटिव्स ऑफ इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल नई दिल्ली, 1997
9. दहेजिया, विद्या, अर्ली बुद्धिस्ट रॉक टेंपल्सः ए क्रॉनलॉजिकल स्टडी, एडम्स एंड हड्सन, लंदन, 1972
10. धवलीकर, एम. के., साँची, ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003
11. मार्शल, जॉन, ए गाइड टू साँची, कलकत्ता, 1918
12. मार्शल, जॉन, द बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ गंधारः द स्टोरी ऑफ द अर्ली स्कूल, इट्स बर्थ, ग्रोथ एंड डिक्लाइन, केंब्रिज, 1960
13. मिश्रा, सुधाकर, गुप्ता आर्ट एंड आर्किटेक्चर, विथ स्पेषल रेफरेन्स टू मध्य प्रदेश, अंग कला प्रकाषन, नई दिल्ली, 1992
14. मित्रा, डेबला, मॉन्युमेंट्स बुद्धिस्ट, साहित्य संसद, कलकत्ता, 1971
15. मूर्ति, कृष्णा, अर्ली इंडियन सेक्युलर आर्किटेक्चर, संदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987
16. नागराजू, एस., बुद्धिस्ट आर्किटेक्ट ऑफ वेस्टर्न इंडिया (सी. 250 बीसी–सी. 300), आगम कला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
17. पंत, सुशीला, द ऑरिजिन एंड डेवेलपमेंट ऑफ स्तूप आर्किटेक्चर इन इंडिया, भारत मनीशा रिसर्च सीरीज 8, भारत मनीषा, वाराणसी, 1976

Scanned by CamScanner

15 आम्रपाली– नगरशोभनी या नगरबधु

लल्लेश कुमार एवं श्वेता सिंह

प्राचीन काल में वेश्यावृत्ति का कार्य करने वाली गणिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उन्हें गणिका, नगरशोभिणी, वनदासी, कुम्भदासी आदि नामों से संबोधित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गण से गणिका नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ। प्रत्येक गण में एक गणिका होती थी जिसे नगरवधु की संज्ञा दी जाती थी। गणिका के निवास स्थान को गणिकागृह कहा जाता था। गणिका व वेश्या में नाममात्र फर्क था। वेश्या मात्र अपना आकर्षण बेचती थीं, इन्हें 'रूपाजीवा' कहा गया है। संभवतः इनमें गणिकाओं के समान कला प्रतिभा का अभाव था।[1] कई स्थान पर गणिकाओं को वैश्या कहा गया है। वस्तुतः कोई भी स्त्री गणिका नहीं होती, बल्कि समय व परिस्थितियाँ उसे गणिका बनने पर मजबूर कर देती थी। गणिका बनने के पीछे कई कारण थे, यथा– किसी संरक्षणकर्त्ता का न होना, जीविका का कोई साधन न होना, दिशाहीन होना, अधिक सौन्दर्य होना आदि। इसके अतिरिक्त कई गणिकाएं ऐसी थीं जो इसलिए गणिका बनी क्योंकि उनकी माताएं भी इसी व्यवसाय में थीं।[2] यद्यपि निम्न परिवार की स्त्रियां ही मजबूरीवश गणिका बनती थी, तथापि उच्च परिवार की कन्याएं भी स्वेच्छा से इस व्यवसाय का चयन करती थीं।[3]

आम्रपाली एक महान स्त्री थी जिसने न केवल दो राज्यों के बीच होने वाले युद्ध को रोका बल्कि अपना समस्त जीवन राज्य की सेवा में समर्पित कर दिया। उसने कभी भी अपने सपनों को राज्य के आदेश के आगे नहीं आने दिया। इतिहास में उसे कई विशेषणों से संबोधित किया गया है जैसे– वेश्या, राजनर्तकी, नगरबधु, नगरशोभनी, गणिका आदि। उसे आम्रपाली, आम्बपाली और आम्रदारिका नामों से भी जाना जाता है। बुद्ध ने उसे 'आर्यअम्बा' कहकर संबोधित किया था। यह महानामन[4] नामक व्यक्ति को आम्रवन में आम के वृक्ष के नीचे मिली थी, इस कारण इसका नाम आम्रपाली पड़ा। वह परम रूपवती और काम कला प्रवीण थी। वह गरीब–अमीर, राजा–रंक, बहादुर–किसान आदि सभी का मनोरंजन करती थी। उसकी ख्याती वैशाली के बाहर कई राज्यों तक फैली हुई थी। जन्मांतर में वह लाख बार वेश्या हो चुकी थी। जब कश्यप बुद्ध ने अवतार धारण किया था तो उसने आत्मसंयम किया था और उसके फल से देवलोक में देवकन्या हुई थी। देवलोक से च्युत हो वह वैशाली में जन्मी। इस जन्म में भी पूर्व संस्कार के अनुसार वेश्या हुई।[5] मगध का राजा बिंबसार उसके रूप सौन्दर्य पर इतना मुग्ध हो गया था कि लिच्छवियों से चल रहे युद्ध

Scanned by CamScanner

को बीच में छोड़कर एक रात चुपके से अंबपाली से मिलने चला गया, जहां वह सात दिन तक गुप्त वास पर रहा। उसी समय के संसर्ग से अंबपाली से बाद में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अभय था।[6] अंबपाली कभी वैशाली में और कभी राजगृह में रहती थी। बिम्बसार आम्रपाली से विवाह करना चाहता था परन्तु वैशाली और मगध के बीच शस्त्रुता होने के कारण आम्रपाली ने विवाह करने से इन्कार कर दिया।[7] इस प्रकार आम्रपाली के विवाह से होने वाले संभावित युद्ध को टाल दिया। दोनों राजधानियों में उसके घर आराम बाग बगीचे बने थे। बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि एक बार महात्मा बुद्ध वैशाली पध ारे थे। उस समय आम्रपाली ने बुद्ध को संघ सहित भोजन का निमंत्रण दिया। जब बुद्ध संघ सहित उसके आवास में जाकर भोजन कर चुके थे, उसी समय आम्रपाली ने अपना आरामगृह (उद्यान) भिक्षुसंघ को भेट कर दिया और स्वयं भिक्षुणी बन गई।[8] आम्रपाली महात्मा बुद्ध एवं उनके धर्म से अत्यंत प्रभावित थी। वह निष्ठापूर्वक अन्तर्मन से धर्म की साधना किया करती थी। साधना करते हुए आम्रपाली ने अपने प्रव्रजित पुत्र विमल कौण्डिन्य[9] के उपदेश से प्रव्रज्या ग्रहण की। निरंन्तर साधना एवं बुद्धदेव के उपदेश से अंबपाली ज्ञान लाभकर अर्हत्व पद प्राप्त किया।[10] थेरीगाथा से ज्ञात होता है कि वष्द्धावस्था में अपने शरीर के परिवर्तनों को देखकर आम्रपाली ने बुद्ध वचनों की सत्यता प्रतिफलित होते हुए देखी एवं यह अनुभव किया कि संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। अपने निरन्त जर्जरित शरीर को देखकर उसका हृदय भौतिक मोह माया से विमुख हेता गया।

गणिकाओं से उत्पन्न पुत्र समाज में अपमानजनक दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। उन्हें भी अन्य लोगों की भांति सम्मान प्राप्त था एवं वे भी साधारण जीवन व्यतीत कर सकते थे। राजा से उत्पन्न पुत्र को राजकुमार के भांति ही शिक्षा दी जाती थी। जीवक किस गणिका का पुत्र था इस विषय में विवाद है फाहियान इसे आम्रपाली का पुत्र कहता है जबकि कुछ साक्ष्यों में इसे राजगष्ह की राजनर्तकी सालवती का पुत्र कहा गया है। जीवक एक बड़ा बैद्य था, जिसने लक्षशिला के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। यह बुद्धदेव का बड़ा भक्त और अजातशत्रु के दरबार में बड़ा प्रतिष्ठालब्ध कर्मचारी था। अवन्ति नरेश चण्डप्रद्योत को पीत रोग से मुक्ति दिलायी। इसने राजगृह में अपनी माता अंबपाली के उद्यान में एक विहार का निर्माण करवाया था और बुद्ध को अर्पण किया था। इसने एक चिकित्सालय भी स्थापित किया था, जिसमें वह भिक्षुओं की धर्मार्थ हेतु चिकित्सा करता था।[11]

प्रसिद्ध गणराज्य लिच्छवि की राजधानी वैशाली की पहचान वर्तमान मुजफ्फरपुर से 40 किमी दूर स्थित बसाढ़ नामक ग्राम से की जाती है। यहां एक पुराना गढ़ है जिसे 'राजा विशाल का गढ़' कहा जाता है। राजा विशाल को ही प्राचीन वैशाली का संस्थापक माना जाता है।[12] वैशाली में एक कानून प्रचलित था कि नगर की सर्वश्रेष्ठ सुंदर कन्या विवाह नहीं कर सकती थी। कानून उसे ''नगर बधू'' अथवा ''नगर शोभिनी'' बनाकर सर्वभोग्य बना दिया जाता था। उसी समय में ''महानामन'' नामक लिच्छवी की एक कन्या थी, जिसका नाम ''आम्रपाली'' था। जब 12–13 वर्ष की थी, तो उस बालिका का सौन्दर्य लोगों के निगाहों में आया। वह बात गण परिषद तक पहुंची। वहां वह बालिका बुलायी गयी और उसे सर्वसम्मिति से सर्वश्रेष्ठ सुंदरी स्वीकार किया गया। आम्रपाली को नृत्य, गान, वार्तालाप और स्वागत करने की शिक्षा विधि पूर्व दी गई।[13] थेरीगाथा से ज्ञात होता है कि आम्रपाली वैशाली में निवास करने वाली अद्वितीय सौन्दर्य की स्वामिनी थी। आम्रपाली के सौन्दर्य ने कई लोगों को आकृष्ट किया। वैशाली के राजपुत्रों एवं श्रेष्ठिपुत्रों में आम्रपाली को पाने के लिए होड़ मची हुयी थी। फलस्वरूप उनमें आपसी विवाद

Scanned by CamScanner

उत्पन्न हो गया। कलह को शांत करने के लिए संथागार का निर्णय हुआ कि वह सबकी पत्नी बनकर रहे, इस प्रकार आम्रपाली को गणिका बना दिया गया।[14]

वस्तुतः प्रत्येक स्त्री का स्वप्न होता है कि वह भी अन्य स्त्रियों की भांति विवाह करके समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करें। एक पत्नी, माता के उच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर वह अपने स्त्रीत्व पर गौरवानुभव कर सके। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि जो भी गणिकाएं भिक्षुणियां बनीं वे सभी अपने मिथ्या उद्देश्य हीन जीवन से तंग आ चुकी थीं। वे सभी सांसारिक जीवन की निस्सारता का अनुभव करती थीं, फलतः उनका ध्यान बौद्ध धर्म की तरफ आकृष्ट हुआ। तथागत के धर्म की शरण में आकर उन्होंने मानसिक शान्ति की अनुभूति की। आम्रपाली वैशाली द्वारा प्रदान की गयी उपाधि से प्रसन्न नहीं थी। वह कभी भी वैश्यावृत्ति को पसन्द नहीं करती थी। वह अपने जीवन से घृणा करने लगी थी और वह भी एक समान्य स्त्री की तरह जीवन विताना चाहती थी परन्तु उसका दुर्भाग्या ही था।

गणिकाओं का स्थान समाज में अन्य साधारण लोगों से श्रेष्ठ था। लोग इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते थे, अपितु उनका समाज में प्रतिष्ठा व महत्ता प्राप्त थी। गायन, वादन एवं संगीत प्रेमी जनता गणिकाओं को विशेष स्थान देती थी एवं लोग प्रायः उनके यहां आया–जाया करते थे। उनका मुख्य व्यवसाय संगीत एवं नष्त्य होता था। अपने आकर्षक व्यक्तित्व, रूप सौष्ठव, मधुर आवाज, कमनीयता एवं मोहक नृत्य से वह जनसाधारण के हृदय पर शासन करने में सक्षम होती थीं। नगर के प्रमुख उत्सव, त्यौहार, आयोजन आदि उनके बिना अधूरे व फीके माने जाते थे। यही कारण है कि बौद्ध काल में गणिकाओं का विकास तीव्र गति से हुआ।

आम्रपाली का स्तूप

आम्रपाली के स्तूप को वर्तमान में पीर का मजार कहा जाता है। यह हाजीपुर जिला मुख्यालय से 35 किमी दूर टोलागाह ग्राम में स्थित है। जिस स्थान पर यह स्तूप स्थित है उसे आम्रवन कहा जाता है, जिसे आम्रपाली ने बुद्ध को दान दिया था। माना जाता है कि स्तूप का निर्माण उसे पुत्र ने करवाया था। आम्रपाली का अंकन हातीदांत पर बने बुद्ध से संबंधित दष्यों में प्राप्त होता है। दृश्य क्रमांक 36 में आम्रपाली बुद्ध का स्वागत करते हुए प्रदर्शित है। हाथीदांत पर बुद्ध से संबंधित जीवन दृश्यों का अंकन 20 वीं शताब्दी में किया गया। वर्तमान में यह भारतीय संग्रहालय, दिल्ली में संग्रहित है।

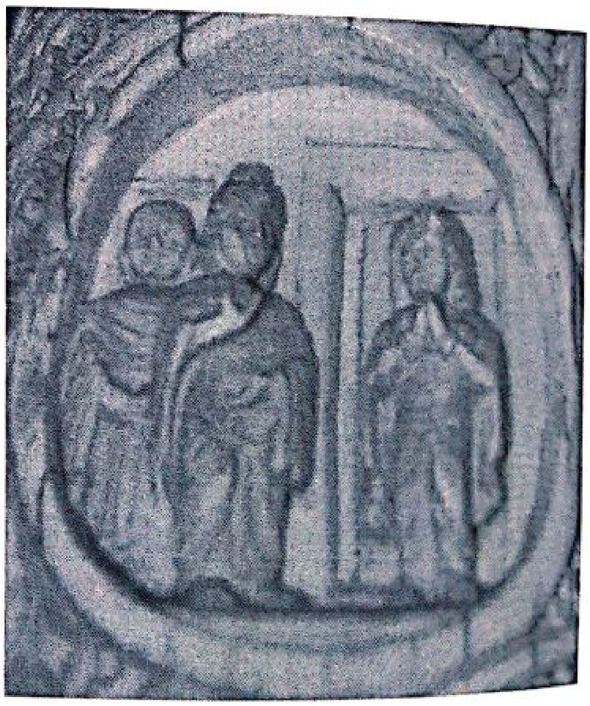

स्पष्ट है कि आम्रपाली भारतीय इतिहास की एक महान स्त्री थी, जिसने न केवल दो राज्यों के बीच होने वाले युद्ध को टाला बल्कि उसने अपने राज्य में होने वाले आन्तरिक विद्रोह को भी रोका। उसने अपना समस्त जीवन राज्य की सेवा एवं लोगों के मनोरंजन में बिता दिया। भले ही उसका

Scanned by CamScanner

जीवन नगरबधु या नगरशोभनी के रूप में गुजरा हो परन्तु वह एक श्राप की तरह था। भारतीय इतिहास में इस तरह के कानून अवश्य ही घृणित थे, जिसने समाज में सुन्दर एवं बौद्धिक स्त्रियों को अंधेरे में ढकेला। भगवान बुद्ध ने उसकी बेदना को समझा और उसका उद्धार किया।

संदर्भ सूची

1. संत, वन्दना (2015) बौद्धकाल में स्त्रीकर्मी एवं गणिकाओं की स्थिति, इंण्डियन कल्चर एण्ड आर्टः कंटीन्यूटी एण्ड चेन्ज, श्री आर. सी. त्रिपाठी फिलेस्टेशन वोल्यूम, पृ.. 477–778।
2. थेरीगाथा से ज्ञात होता है कि विमला वैशाली की एक वेश्या की कन्या थी। यौवन प्राप्त होने पर वह भी दूषित जीवन बिताने लगी थी। इसी प्रकार सालवती नामक गणिका की पुत्री सिरमा भी एक प्रसिद्ध गणिका थी।
3. थेरीगाथा से ज्ञात होता है कि अर्द्धकाशी का जन्म वाराणसी के एक वैभव सम्पन्न सेठ परिवार में हुआ था। अपने परिवार के पाखण्डी जीवन, मिथ्या धारणाओं से तंग आकर उसने गृहत्याग कर राजग्रह में वेश्या हो गयी।
4. गौतम, रामहेत (2015) बौद्ध धर्म–दर्शन में आम्रपाली की दीक्षा–एक समीक्षात्मक अध्ययन, New International Journal of Multidisciplinary Studies, Vol. II, Issue-II, P. 71.
5. A Record of Buddhistic Kingdoms, By Fa-hsien, Chapter-XXV (ebooks.adelaide.edu.au)
6. श्रीवास्तव, शैलेन्द्र (1984) लिच्छवियों का उत्थान एवं पतन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 124। Murthy, K. Krishna (1987) Glimpses of Art, Architecture and Buddhist Literature in Ancient India, Abhinav Publications, New Delhi, P. 159-60. She asked fifty Kahapanas for one night. Bimbisara, the king of Magadha took a fancy to her and lived with her. A son was born to them. He was named Abhaya (Fearless).
7. Sharma, Raj (2010) Amrapali- A Historical Love Story, P. 9.
8. परशुराम ठाकुर ब्रह्मणवादी (2013) विक्रमशिला का इतिहास, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 108।
9. संत, वन्दना (2015) बौद्धकाल में स्त्रीकर्मी एवं गणिकाओं की स्थिति, इंण्डियन कल्चर एण्ड आर्टः कंटीन्यूटी एण्ड चेन्ज, श्री आर. सी. त्रिपाठी फिलेस्टेशन वोल्यूम, पृ.. 484। पाली ग्रंथों में बिम्बसार से उत्पन्न अम्बपाली के पुत्र का नाम 'विमलकोदण्ड' लिखा है जो बाद में भिक्षु बन गया था।
10. शर्मा, जगनेहन वर्मा (अनुवाद) चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 102।
11. शर्मा, जगमोहन वर्मा (अनुवाद) चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 106।
12. श्रीवास्तव, शैलेन्द्र (1984) लिच्छवियों का उत्थान एवं पतन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 17।
13. परशुराम ठाकुर बह्मणवादी (2013) विक्रमशिला का इतिहास, सत्याहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 108।
14. संत, वन्दना (2015) बौद्धकाल में स्त्रीकर्मी एवं गणिकाओं की स्थिति, इंण्डियन कल्चर एण्ड आर्टः कंटीन्यूटी एण्ड चेन्ज, श्री आर. सी. त्रिपाठी फिलेस्टेशन वोल्यूम, पृ. 479।

Scanned by CamScanner

16 भारत में नदियाँ: अभिलेखों के संदर्भ में

लल्लेश कुमार

विश्व की प्रमुख संस्कषतियाँ नदियों के किनारे विकसित हुई। भारत का प्राचीन इतिहास मुख्यतः सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा के तट का इतिहास है। सरस्वती नदी के तट पर वेदों की ऋचाएँ रची गई। नदियों के अध्ययन से प्राचीन भूगोल, समय–समय पर बदलती राजनीतिक सीमाएँ, धार्मिक एवं सांस्कषतिक इतिहास की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। नदियों को वैदिक काल से ही देवत्व (आपो देवता) प्राप्त हो गया था। रामायण और महाभारत में नदी देवताओं का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण में नदियों की संख्या 500 बतायी गयी है। प्राचीन लोक परम्परा, विधि विधान एवं जन्म से मष्त्यु तक किये जाने वाले संस्कारों का संबंध नदियों से जुड़ा हुआ है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'सप्त सिन्धवः' अर्थात् सात नदियों का कई बार उल्लेख आया है। एक मंत्र में कहा गया है कि ये सात नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और सिन्धु में मिलती हैं। इन्हें सिन्धु की पत्नी और सिन्धु को इनकी रानी भी कहा गया है। इन सात नदियों में पंजाब की 5 नदियाँ शुतुद्री (सतलज), विपाशा (व्यास), इरावती (राप्ती) चन्द्रभागा (चिनाब) और वितस्ता (झेलम) ली जाती हैं। इनके अतिरिक्त दो नदियाँ सिन्धु और सरस्वती ली जाती हैं। ये सात मिलकर 'सप्त सिन्धु' होती हैं। ऋग्वेद के 'नदी सूक्त' (10.75) में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), परूष्णी (इरावती या रावी), असिक्नी (चन्द्रभागा या चेनाब), मरूद्वृधा (वर्तमान मरूबर्दवान्, चेनाब की एक सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), आर्जीकीया (झेलम और सिन्धु के बीच की एक नदी, यास्क ने इसका अर्थ विपाशा अर्थात् व्यास माना है), सुषोमा (अटक जिले में बहने वाली सोहन नदी)।[1]

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति, शुतुद्रि स्तोमं सचता परूष्णया।
असिक्न्या मरूद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।। (ऋ. 10.75.5)

ऋग्वेद के अगले मंत्र (10.75.6) में सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों का उल्लेख है–

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं यामिरीयसे।।

इस मंत्र में सिन्धु नदी की पश्चिमी सहायक इन नदियों का उल्लेख है– तृष्टामा (जासकार नदी), सुसर्तु (सुरू नदी), रसा (वर्तमान 'शेषक' नदी, कुछ विद्वानों ने 'रन्हा' नदी माना है), श्वेती (कश्मीरी नदी

Scanned by CamScanner

गिलगिल), कुभा (काबुल), गोमती (वर्तमान गोमाल नदी), क्रुमु (कुर्रम), मेहत्नु (संभवतः सवान नदी)।[2] प्राचीन काल में अनेक प्रसिद्ध नगर भी नदियों के तट पर ही बसे हुए थे। नदियों द्वारा व्यापार तथा यातायात किया जाता था तथा ये नदियाँ बड़े–बड़े बंदरगाहों से जुड़ी होती थी, जहाँ से विभिन्न देशों तक व्यापार किया जाता था। व्यापारिक नौकाओं और व्यापारिक नदीमार्ग की सुरक्षा हेतु नदियों के तट पर जल दुर्गो का निर्माण प्राचीन काल से किया जाता था। भारतीय व्यापारी ताम्रलिप्ति, दंतपुर, कावेरीपट्टन के बंदरगाह से श्रीलंका, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, बर्मा, थाईलैण्ड़ आदि अनेक देशों तक जाते थे।[3] ब्राह्मण धर्म की तरह ही बौद्ध धर्म में नदियों का महत्व था। सांची के पश्चिमी तोरण पर बुद्ध नौका द्वारा नदी पार करने का दृश्य अंकित है। इसमें नदी की धारा को टेढ़ी रेखाओं द्वारा दर्शाया गया है, जिसमें अधखिले कमल दिखलाए गये है। इस नदी की पहचान गंगा नदी से की गई है।[4]

नदियों का मानवीय रूप सर्वप्रथम स्थानीय सिक्कों पर दिखायी देता है। मथुरा के प्राचीनतम स्थानीय सिक्कों पर नारी की आकषति के अंकन के नीचे लहरियादार लकीर प्राप्त होती है और उसके बीच मछलियाँ की पांत बनी हुई है। विद्वानों ने इस नारी आकृति को नदी देवी (यमुना) माना है। नदियों का मूर्तिकला में मानवीय रूप में अंकन गुप्तकाल से दिखायी देता है।[5] सर्वप्रथम गंगा का मानवीय रूप में अंकन उदयगिरि की गुफाओं में हुआ है। उदयगिरि की गुफा संख्या चार (शैव गुफा) की द्वारशाखा पर ऊपर की ओर दोनों तरफ गंगा की आकृति उनके वाहन के साथ उत्कीर्ण है। कुछ विद्वान इनमें से एक आकषति को यमुना की आकृति मानते हैं, परन्तु दोनों आकृतियों के वाहन समान होने पर संदेह होता है। संभवतः प्रारंभिक गुप्त काल में गंगा ही प्रमुख नदीं देवी थी, यमुना को गंगा के समान प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं था। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वरूण के मूर्तन स्वरूप का उल्लेख करते हुए पार्श्वचारी नदियों को गंगा और यमुना के नाम से अभिहित किया गया है और उन्हें क्रमशः मकर और कच्छप आरूढ़ बताया गया है। शिल्पशास्त्रों में गंगा को श्वेतवर्णी एवं यमुना को श्यामवर्णी बताया गया है।[6] मंदिरों के द्वार पर नदियों का अंकन शुभ माना जाता था। बैजनाथ की प्रथम प्रशस्ति में मण्ड़प के द्वार पर गंगा–यमुना की आकृतियाँ बनाने का उल्लेख है।[7] कुमारसंभव में में गंगा और यमुना के हाथों में चोरी बनाने का उंल्लेख किया गया है[8], परन्तु मंदिरों में इन नदियों के आकषतियाँ चोरी, कलश अथवा पुष्प लिये हुये प्रदर्शित की जाती हैं। इनके पीछे छत्रधारी अनुचर तथा शैवद्वारपाल एवं अन्य आकषतियाँ उत्कीर्ण रहती है। कुमारस्वामी का कहना है कि ये जलचर मूलतः वरूण के प्रतीक थे और इसलिए नदियों को वरूण की पत्नी कहा गया है।[9]

इस प्रकार कुमारगुप्त के व्याघ्र निहंता भांति के सिक्कों पर मकर वाहिनी देवी मयूर को चुगाते हुए अंकन किया गया है। इस देवी की पहचान विद्वानों ने मकरवाहिनी गंगा से की है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त के व्याघ्र निहंता भांति के सिक्कों पर देवी के हाथ में कमल है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण और अग्निपुराण में गंगा को कमल धारिणी भी कहा गया है। अतः इनकी पहचान गंगा नदी से की जा सकती है।[10] एलोरा की गुफाओं में मंकर वाहिनी गंगा (गुफा सं. 21, 16), कुर्म वाहिनी यमुना (गुफा सं. 16) तथा कमल वाहिनी सरस्वती (गुफा सं. 16), का अंकन किया गया है। इन गुफाओं का निर्माण लगभग 800 ई. में इन्द्र (राष्ट्रकूट) द्वारा कन्नौज (आर्यवर्त की राजधानी) विजय के उपलक्ष्य में किया गया था। माना जाता है कि इन्द्र विजित करता हुआ प्रयाग (इलाहाबाद) तक पहुँच गया था, जहाँ उसने इन तीन नदियों का संगम एवं पवित्रता को देखा था।[11] इसी प्रकार एलिफन्टा की गुफा एवं महाबलीपुरम की गुफाओं में गंगा अवतरण का दृश्य अंकित किया गया है। प्राचीन काल में दान देते समय पथ्वी, वायु आकाश, चन्द्र

Scanned by CamScanner

और सूर्य के साथ–साथ नदियों का उल्लेख भी साक्षी के रूप में उल्लेखित किया जाता था। जब अभिलेखों में राजाओं की उपलब्धियों का विवरण दिया जाता है तो उनकी तुलना महाकाव्य के नायकों, नदियों तथा सागर से की जाती थी। अधिकांश अभिलेखों में गंगा–यमुना नदी का उल्लेख एक पवित्र नदियों के रूप में प्राप्त होता है। अतः नदियों का उल्लेख शिलालेख, ताम्रलेख, स्तम्भलेख एवं मूर्तिलेख आदि में प्राप्त होते हैं।

सरस्वती : ऋग्वेद में उल्लेख है कि सरस्वती नदी पर्वत से निकलती है और समुद्र में मिलती है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि देवों ने सरस्वती नदी के किनारे सर्वप्रथम जौ की खेती की। वहाँ की भूमि अत्यन्त उर्वरा थी। ऋग्वेद में सरस्वती नदी का बड़ा महत्व है। इसे सर्वोत्तम देवी, सर्वोत्तम नदी और सर्वोत्तम माता के तुल्य पूज्य बताया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार सरस्वती 'प्लक्ष प्रास्त्रवण' नामक स्थान से उत्पन्न हुई और विनशन नामक स्थान पर लुप्त हुई है। विनशन कुरूक्षेत्र में वर्तमान सिरसा नामक स्थान है। डॉ. सूर्यकान्त ने लिखा है कि यह थानेश्वर के पश्चिम में बहने वाली और भटनेर में रेगिस्तान में विलीन हो जाने वाली 'सरसुति' नदी हो सकती है, जिसमें पटियाला के समीप घग्घर नदी आ मिलती है। वहाँ से सिन्धु तक एक सूखी नदी का मार्ग या घग्घर नदी का निशान अब भी विद्यमान है। कुछ विद्वानों का मत है कि घग्घर नदी ही सरस्वती नदी कही जाती थी। प्रो. मैक्समूलर का मत है कि सरस्वती सतलज जैसी विशाल नदी थी और वह समुद्र तक पहुंचती थी।[12] इस नदी का उल्लेख सारंगदेव[13] की चिन्त्रा प्रशस्ति में किया गया है। प्राचीन भारत की यह परम पवित्र नदी थी। पुराणों में इसकी महिमा का विशद् वर्णन किया गया है। हिमालय से निकलकर केदार होती हुई, पश्चिम की ओर छिपती और प्रकट होती हुई बहती हैं।[14] ऋग्वेद में सरस्वती को 'नदीतमा' (नदियों में प्रमुख) भी कहा गया है।[15]

सरस्वतीसागरसंप्रयोगविभूषिताभोगमथागद्यः।

नर्मदा नदी : पुलकेशी द्वितीय के अयहोल अभिलेख (वि. सं. 556) में इसे रेवा कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस नदी का उल्लेख यशोधर्मन के दशपुर नलकूप अभिलेख, पथ्वीदेव द्वितीय (कलचुरि) के डकोनी ताम्रपत्र लेख[16], बुद्धगुप्त के एरण प्रस्त लेख[17], कलचुरि नरेश विजय सिंह (ई. सं. 1193)[18] जयसिंह का जबलपुर ताम्रपत्र (ई. सं. 1180–81)[19] तथा अल्हनदेवी के भेराघाट अभिलेख[20] में किया गया है।

भुवमुरूभिरनी कैश्शासतौ यस्य रेवाकृक्.।[21] (पुलकेशी द्वितीय का एहोल अभि.)

हिमवत इव गागंस्तुगंनम्र प्रवाहः

शशभृत इव रेवा वारिशशिः प्रथीयान्।[22] (यशोधर्मन का दशपुर अभि.)

नर्मदा की उत्पत्ति शिव से मारनी गयी है। विभिन्न पुराणों से ज्ञात होता है कि कहीं नर्मदा की उत्पत्ति ताण्ड़व करते शिव के शरीर से उत्पन्न स्वेद से, तो कही तपस्या रत शिव स्वेदबिन्दु से, तो कहीं शिव के सिर पर स्थित सोमकला से नर्मदा की उत्पत्ति बताई गई है। इसीलिए 'शांकरी' नर्मदा कहा गया है और उसे 'रूद्रदेह समुद्रभूता' माना गया है।[23] रामायण में वर्णन दिया गया है कि रावण का माहिष्मतीपुरी में जाकर विन्ध्यगिरि के निकट नर्मदा में स्नान व शिवाराधना करना तथा नर्मदा नदी की शोभा का वर्णन[24] एवं सुग्रीव ने सीता की खोज हेतु अंगद को नर्मदा तट के अरण्य में भेजना आदि। वामन पुराण में तोया, रेवा और महागौरी का उल्लेख एक साथ किया गया है। रेवा की नर्मदा से पहचान निर्विवाद है।[25] अमरकोश में रेवा को ही नर्मदा बताया गया है।[26] स्कन्दपुराण में रेवा और नर्मदा का उल्लेख प्राप्त होता है। ये दोनों धारायें ऋक्षपर्वत से निकलती है एवं कुछ दूर तक बढ़कर एक हो जाती है। पाली साहित्य

Scanned by CamScanner

में इसे 'नम्मदा' कहा गया है। विन्ध्यपर्वत श्रृंखला की मेकल पहाड़ी से निकलने के कारण अमरकोश एवं कर्पूरमंजरी में नर्मदा नदी को मेकलसुता एवं मेकलकन्या कहा गया है।[27] राजशेखर ने अपनी नाटिका "विद्धशालभन्जिका" में नर्मदा का उल्लेख तुहिनकरसुता नाम से किया है।[28] टॉलमी ने इसे नमदेश (Namades), नमडोज (Namodos) या नर्मदोस कहा है।[29] पेरीप्लस आफ ऐरीथ्रेन्सी में नर्मदा का नाम 'नामोडियस' (Nammodious) मिलता है।[30]नर्मदा नदी में सैकड़ों की संख्या में नर्मदेश्वर शिवलिंग (बटिकाश्म पत्थर) स्वनिर्मित रूप में प्राप्त होते है। पुराणों के अनुसार यह शिवलिंग जागृत अवस्था में रहते है। गंगा नदी का आविर्भाव नर्मदा के बाद हुआ था।[31] पौराणिक आख्यानों में इसे गंगा के समान ही पुण्यदायिनी माना गया है। साहित्य में नर्मदा नदी के अनेक नाम जैसे– रेवा, मेकलसुता, ऋक्षपादप्रसूता, शिवसुता, रौद्री, रेवोत्तरस, चंचला, सरित प्रवर, कुपा, कृत्रा, बालुवाहिनी, त्रिकूटा, चपला, अजिता, दक्षिण गंगा, सप्तगंगा, शंकरी, साधुप्रिये आदि प्राप्त होते हैं।[32] नर्मदा मध्यप्रदेश की नदियों में सबसे विशाल है और वृहद है। लंबाई के तौर पर नर्मदा देश की पांचवीं बड़ी नदी है। इसके साथ सभ्यता के विकास की कहानी जुड़ी है। वैज्ञानिक तथ्यों के अन्वेषण से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि नर्मदा घाटी की सभ्यता एशिया महाद्वीप की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता थी। यह उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के बीच परम्परागत सीमा बनाती है। इसका अपवाहतन्त्र की कुल लम्बाई 12,200 कि. मी. है। नर्मदा नदी अमरकण्टक से 1051 मीटर की ऊंचाई से निकलकर भड़ौच के निकट खंभात की खाड़ी में गिरती है। इसकी कुल लम्बाई 1312 किमी है। यह 1077 किमी तक मध्यप्रदेश के शहडोल, मण्ड्ला, जबलपुर, नरसिंह, होशंगाबाद, खण्ड्वा तथा खरगोन जिला से होकर बहती है। इसके बाद 74 किमी महाराष्ट्र तथा 161 किमी गुजरात में बहती है। इसकी सहायक नदी हिरन, ओरोग, कोलाट, तवा तथा कुण्डी आदि है।[33] नर्मदा नदी को मध्यप्रदेश की जीवन रेखा कहा जाता है। नर्मदा के उद्गम कुण्ड् को रोहणी कुण्ड कहा जाता है। यहाँ पर स्थित नर्मदा कुण्ड के समीप गौमुख से निकलती हुई माँ नर्मदा की जल धारा अनुपम दृश्य के दर्शन कराती है। इसे कोटीतीर्थ कहते है। इसके पश्चात् एक किमी की दूरी पर पश्चिम दिशा में नर्मदा का प्रथम आलौकिक बाध प्रशासन द्वारा बनाया गया है। इसे पुष्कर नाम से जाना जाता है। यहाँ से लगभग 2.5 किमी. की दूरी पर चक्रतीर्थ नाम का दिव्य स्थान स्थित है। पुराणानुसार यहाँ भगवान विष्णु ने तप कर सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। इस कारण इस स्थान का नाम चक्रतीर्थ पड़ा। इस स्थान पर अभी भी सुदर्शन नामक वनस्पति मिलती है। चक्रतीर्थ से 500 मीटर पर एरण्डी संगम है। लोक मान्यता के अनुसार यहाँ स्नान करने से संपूर्ण पापों का नाश होने के साथ–साथ धन, विद्या, संतान, मोक्ष इत्यादि की प्राप्ति होती है। यहाँ से 3 किमी. की दूरी पर कपिलधारा नामक जलप्रपात है। यहाँ कपिल ऋषि ने तपस्या की थी। यहाँ अभी कपिल मुनि का आश्रम बना है। इन्हीं ऋषि के नाम पर इस स्थान पर नर्मदा माँ का नाम कपिला धारा पड़ा। यहाँ पर नर्मदा जी का जल तीव्र वेग से गिरता है। यहां नर्मदा का सबसे ऊँचा जलप्रपात है। यहाँ पर नर्मदा का प्राकृतिक सौन्दर्य स्वर्गतुल्य अभास देने वाला है। यह नर्मदा का द्वितीय जल प्रपात है। यहाँ 11 फुट की ऊँचाई से जल नीचे गिरता है। यहाँ नर्मदा जी का जल दूध की तरह दिखाई देता है। यहाँ पर दुर्वासा ऋषि ने तपस्या की थी, आज भी उनकी सिद्ध तपोस्थली के रूप में एक विशाल गुफा यहाँ स्थित है।[34] अमरकंटक में नर्मदा मंदिर का निर्माण सर्वप्रथम कल्चुरी काल में लगभग 10वीं–11वीं सदी ई. में हुआ था। जनश्रुतियों के आधार पर कालान्तर में मुख्य नर्मदा मंदिर का निर्माण रेवा नायक ने करवाया था। इसके पश्चात् नागपुर के भोसले शासकों ने नर्मदा मंदिर का जीर्णोद्धार एवं

Scanned by CamScanner

कुण्ड़ का निर्माण करवाया था। अन्तिम रूप से रीवा के महाराज गुलाव सिंह ने सन् 1939 ई. में नर्मदा मंदिर का जीर्णोद्धार एवं मुख्य दरवाजे के साथ चाहर–दीवारी का निर्माण करवाया था।[35] नर्मदा की कुल 41 सहायक नदियाँ हैं जिनमें से 22 दक्षिण दिशा से तथा 19 उत्तर दिशा से उसके साथ जुड़ती हैं। इन 41 नदियों में से 39 मध्यप्रदेश में उसके साथ मिलती हैं तथा 2 गुजरात में। राज्य में नर्मदा घाटी का फैलाव अनूपपुर, शहडोल, बालाघाट, मंडला, सिवनी, डिंडोरी, कटनी, जबलपुर, दमोह, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, हरदा, रायसेन, सीहोर, खंडवा, इंदौर, देवास, खरगौन, धार, झाबुआ और बड़वानी जिलों में है।

गंगा नदी : गंगा नदी का उल्लेख स्कन्दगुप्त के भीतरी (गाजीपुर उत्तर प्रदेश) प्रस्तर लेख, यशोधर्मन का दशपुर का नलकूप अभिलेख (सं. 589), अमोघवर्ष प्रथम का संजान (महाराष्ट्र) ताम्रलेख, उद्योतकेशरी (सोमवंश) के ब्रह्मेश्वर मंदिर शिलालेख[36], महाराज नरेन्द्र (शरभपुरीय वंश) के कुरूद ताम्रपत्र[37], महाशिवगुप्त बालार्जुन (पाण्डुवंशी) के गंधेश्वर मंदिर शिलालेख[38] तथा रत्नदेव द्वितीय (कलचुरि) के अकलतरा शिलालेख[39] में 'जान्हवी' (गंगा) नाम से किया गया है। बिलासतुंग के राजिम शिलालेख में शिव की जटाओं से निकलने वाली गंगा नदी का उल्लेख किया गया है।[40] देवल अभिलेख से ज्ञात होता है कि गंगा नदी को भागीरथ स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये, इस कारण गंगा नदी को भागीरथी कहा जाता है।[41] गंगा–यमुना नदी का प्रयाग (अलाहाबाद) में संगम का उल्लेख सारंगदेव की प्रशस्ति में किया गया है।[42] भीमदेव के राजघाट अभिलेख में गंगा को अविमुक्त नदी कहा गया है।[43] स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र में इस पद्मा कहा गया है।[44] गंगा नदी के सुरापगा, स्वर्ग तरगिणी, जान्हवं, मन्दाकिनी, पद्मा, पद्या आदि नाम प्राप्त होते हैं।[45] गंगा नदी को स्वर्ण से पथ्वी पर लाने का उल्लेख यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन के मदसौर अभिलेख में प्राप्त होता है।

लक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गार्गध्वनिः।[46] (स्कन्दगुप्त का भीतरी अभि.)

गंगा यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नष्यतः।[47] (अमोघवर्ष का संजान अभि.)

गंगा का प्रारंभिक वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है। रामायण में गंगा नदी को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। सर्वप्रथम राम गंगा–सरयू के दर्शन करते हैं। रामायण में गंगा का वर्णन विभिन्न संदर्भों में हुआ है– पुण्यसलिला भागीरथी का दर्शन, स्नान, गंगा की उत्पत्ति, गंगा से कार्तिकेय की उत्पत्ति, गंगा द्वारा भगीरथ के पितरों का उद्धार, गंगा के सौन्दर्य तथा प्रभाव का वर्णन, सीता द्वारा गंगा की स्तुति, गंगा–यमुना संगम, राम का वनवास से लौटते हुए सीता को गंगानदी के पुण्यजल तथा सौन्दर्य को दिखाया जाना इत्यादि।[48] इसके अतिरिक्त गंगा का वर्णन सतपथ ब्राह्मण (13।5।4।11), तैत्तरीय आरण्यक (2।10), जैमिनीय ब्राह्मण (3।83) पतंजलि के महाभाष्य, कालीदास के रघवंश और पुराणों में तो कई बार प्राप्त होता है।[49] गंगा भारत वर्ष की महत्वपूर्ण नदी है, जो भारत और बंग्लादेश में प्रवाहित होकर लगभग 2525 किमी की दूरी तय कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। गंगा नदी का उद्गम स्थल गोमुख (गंगोत्री हिमपर्वत) है। यह भारत के 11 राज्यों (उ.प्र., हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, हरियाणा, छत्तीसगढ़, झारखाण्ड़, बिहार, पं. बंगाल, दिल्ली) से गुजरती है। इसकी 14 सहायक नदियाँ– बेतबा, चम्बल, दामोदर, गंडक, गंगा, घागरा, गोमती, हिंडन, काली, खान, कोशी, क्षिप्रा, रामगंगा तथा यमुना हैं।[50]

यमुना : ऋग्वेद में यमुना नदी की चर्चा तीन बार की गयी है।[51] इन्हें जमुना तथा यम की बहन होने

Scanned by CamScanner

के कारण यमी भी कहा जाता है। रामायण में यमुना नदी का वर्णन गंगा–यमुना संगम उल्लेख में आता है। इसके अतिरिक्त रामायण में यमुना नदी को सीता द्वारा पार करते समय प्रणाम करना तथा कुशलता की प्रार्थना करना, राजगष्ह से लौटते समय भरत का सेना सहित यमुनातट पर विश्राम तथा स्नान, वन से लौटते समय राम द्वारा सीता को यमुना का दर्शन करवाना तथा शत्रुघ्न का मधुपुरी जाते समय यमुनातट पर निवास करना आदि वर्णन प्राप्त होते हैं।[52] महाभारत में यमुना का उल्लेख कृष्ण के साथ कई स्थान पर हुआ है। जैसे– कृष्ण के जन्म के बाद वासुदेव ने यमुना को पार किया। कलिया का दमन, जो यमुना नदी में रहता था, यमुना के किनारे रास लीला आदि अनेक कथानक महाभारत में प्राप्त होते हैं। भागवत पुराण में यमुना को संज्ञा और सूर्य की पुत्री बताया गया है।[53] मेगास्थनीज ने यमुना नदी को जोबरेस नदी के नाम से संबोधित किया है।[54] यह हिमालय की एक पर्वत खण्ड़ कलन्द से निकलती है। इस कारण यमुना नदी का कलिन्द कन्या या कालिन्दी कहा जाता है।[55] इस नदी का उल्लेख बुद्धगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भलेख (484 ई.), अमोघवर्ष प्रथम के संजान ताम्रपत्र लेख, राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के खंवायत के ताम्र[56], गोविन्द चतुर्थ के खम्भात ताम्रपत्र, देववर्मदेव के चरखरी ताम्रपत्र तथा भवत्तवर्मन[57] के रिधपुर प्लेट, चंदेल धंग के शिलालेख[58], पृथ्वीदेव द्वितीय (कलचुरि) के रतनपुर शिलालेख[59] में 'कालिन्दी' नाम किया गया है।

कालिन्दर्ा (यमुना)–नर्म्मदयोर्म्मध्यं ----------।[60] (बुद्धगुप्तकालीन एरण अभि.)

नवराष्ट्र मण्डलविजये यमुनातटे भूतपल्लिकानाग्रामोय[61]। (देववर्मदेव का चरखरी ताम्रपत्र)

यह गंगा की प्रमुख सहायक नदी है, जो लगभग 1,376 किमी की दूरी तय कर इलाहाबाद के पास प्रयाग तीर्थ में गंगा नदी में मिल जाती है। यह उत्तराखण्ड़, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, हिमाचल तथा दिल्ली से गुजरती है। इसकी सहायक नदियाँ टोंस, चम्बल, सिन्ध, बेतवा, केन आदि हैं।

पलाश्शिनी और सुवर्णसिकता नदीः– इन दो नदियों का उल्लेख महाक्षत्रप रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख (150 ई.) तथा स्कन्दगुप्त के अभिलेख में किया गया है। इस अभिलेख में इन नदियों का उद्गम स्थल ऊर्जयत पर्वत (रैवतक पर्वत[62]) बताया गया है। पलाशिनी नदी का उल्लेख मार्कण्ड़ेय पुराण में किया गया है[63], जिसकी पहचान कुछ विद्वान जोंक नदी से करते हैं। इसे महानदी की सहायक नदी बताया गया है।

सुवर्णसिकता–पलाश्शिनी–प्रभश्तीनां नदीना --------.।[64] (रूद्रदामन का जूनागढ़ अभि.)

सवर्ण नदी की पहचान मिराशी ने जांजगीर के पास बहने वाली सोन अथवा सोनरेखा नामक नदी से की है।[65] स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख में इसका नाम सिकताविलासिनी मिलता है।[66] सुवर्णनदी का उल्लेख भीमसेन द्वितीय (राजर्षितुल्यकुल) के ताम्रपत्र में सुवर्णनद्या नाम से किया उल्लेख किया गया है।[67]

इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता।

पलाश्शिनीयं किकता–विलासिनी।।[68] (स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभि.)

वरदा नदी : पुलकेशी द्वितीय के अयहोल अभिलेख (वि. सं. 556) तथा महाशिवगुप्त बालार्जुन (पाण्डुवंशीय) के सेनकपाट शिलालेख में इस नदी वर्णन किया गया है।

वरदातुंगतरंगरड्गविलसद्र--------।[69] (पुलकेशी द्वितीय का एहोल अभि.)

यह नदी कर्नाटक के शिमोगा जिले के वर्दमूला से निकलती है। पश्चिमी घाट से बहती हुई गलगनाथ

Scanned by CamScanner

के पास तुगभंद्रा नदी में मिल जाती है। यह विदर्भ क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है। यह वैनगंगा की सहायक नदी है। यह मध्य प्रदेश के बैतूल जिले के मुलताई के निकट खैरबाई ग्राम से निकलती है। जब यह वैनगंगा से मिल जाती है, तो यह प्राणहित के नाम से जानी जाती है। यह मध्य प्रदेश में लगभग 32 किमी बहती है।

कावेरी नदी : यह दक्षिण गंगा के नाम से जानी जाती है। इस का उल्लेख भूविक्रम के बेदिरूर दानपत्र तथा त्रिऋचापल्ली[70] के गुहा अभिलेखों में किया गया है। पुलकेशी द्वितीय के अयहोल अभिलेख (वि. सं. 556) इस नदी का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है–

कावेरी हतष्फरीविलोलनेत्राकृकृकृ।[71] (पुलकेशी द्वितीय का एहोल अभि.)

कांची, कावेरीपट्टन, कावेर तथा चोल देश इसके तट पर स्थित थे। इस नदी के नाम कर्नाटक की परम्परा के अनुसार तालकावेरी नामक स्थान के नाम पर पड़ा। यह कर्नाटक की ब्रह्मगिरी (पश्चिमी घाट) नामक पहाड़ी से निकली है। यह दक्षिण–पूर्व के ओर कर्नाटक, तमिलनाडु, केरला, पोण्डेचरी तथा दक्षिण के पठार को पार करके लगभग 800 किमी. दूरी तय कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसकी सहायक नदियाँ हेरांगी, अमरावती, काबनी, सिमसा, भवानी, हेमावती आदि है।[72]

फल्गु तथा महना नदी: इस नदी का वर्णन विशाखमित्र का केलवन (पटना, बिहार) प्रस्तर–पात्र अभिलेख में किया गया है– **महनदके फगुनदिके कितिभूतिक मिष**।[73] (विशाखमित्र का केलवन अभि.)

महानदक की पहचान अधुनिक महना नदी से की गयी है, जो केलवन से दो मूल दूर स्थित है। फल्गुनदिक की पहचान आधुनिक धोवा नामक नदी से की गयी है। धोवा नदी महना से कुछ ही मील दूर बहती है। संभवतः धोवा ही प्राचीन काल में फल्गु कहलाती थी। फल्गु और महना का संगम उस समय केलवन में होता था।[74]

इबा, परदा, दमण, तापा करबेना तथा दहनुका नदी:– इन नदियों का उल्लेख नहपान के तिथि रहित नासिक गुहालेख (गुहा सं. 10) में किया गया है– **इबा– पारदा– दमण– तापी– करबेणा –दाहनुका, नावा–पुण्य–तर करेणा एतासां च नदीनां ------**।[75] (नहपान का नासिक गुहा लेख) इबा नदी की पहचान वर्तमान गुजरात के सूरत जिले के जलालपुर में बहने वाली अम्बिका नदी की जा सकती है।[76] तापा की पहचान ताप्ती, दमण की दमनगंगा (यह दमन के पास बहती है), पारदा की सूरत जिले की पार नामक नदी से की गयी है। दाहनुका नदी की पहचान भूतपूर्व पुर्तगाली कस्बे दहनु के पास बहने वाली कोई धारा मानी जाती है।[77]

भागवतपुराण में ताप्ती को सूर्य और छाया की पुत्री बताया गया है। आख्यान से पता चलता है कि सूर्य का अह्यय तेज न सहन कर पाने के कारण संज्ञा, छाया के रूप पति (सूर्य) की सेवा करने लगी और स्वयं तपस्या करने लगी। छाया से तापती (ताप्ती) तथा शनिश्चर नामकं दो सन्ताने उत्पन्न हुई।[78] वायु पुराण में एक भिन्न कथा अंकित है। उसमें कहा गया है कि ताप्ती सूर्य पुत्री थी। चन्द्रवंशी राजा संवरण और ताप्ती का विवाह हुआ था। उनका पुत्र करू था, जिसने कुरू वंश की उत्पत्ति हुई। ताप्ती के धार्मिक महत्व का वर्णन स्कन्द पुराण में किया गया है। उसमें कहा गया है कि ताप्ती की पवित्रता की कोई सीमा नहीं है। ताप्ती का जन्म आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को माना जाता है, इसलिए इसका जन्म दिन पर बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उद्गम स्थल मुलताई में ताप्ती को माँ की तरह पूजा जाता है।[79] मत्स्य पुराण में इसे मूलतापी कहा गया है।[80] श्रीमद्भावतपुराण में ताप्ती और उसकी शाखा पयोष्णी का उल्लेख

Scanned by CamScanner

एक साथ किया गया है–

कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विंध्या पयोष्णी तापी रेवा।[81]

टॉलमी ने इसे ननगौन (Nanagouna) कहा है।[82] ताप्ती नदी बैतूल के पास मुलताई से निकलकरपश्चिम की ओर बहती है। यह मध्यप्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट में बहकर सूरत के पास खंभात की खाड़ी में गिरती हैं। यह नदी नर्मद के समानान्तर बहती है। इसकी कुल लम्बाई 700 किमी. है।[83] मध्य प्रदेश में ताप्ती लगभग 322 किमी क्षेत्र में बहती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ पूर्णा, गिर्ना, पन्जर, वोरी, अनेर, बाघुड़, शिवा आदि हैं।

वैनगंगाः–इस नदी का उल्लेख गौतमीपुत्र सातकर्णी के नासिक गुहालेख (गुफ सं. 3, लगभग द्वितीय शताब्दी ई. पू.) बेनाकटक तथा करनदेव[84] के बनारस ताम्रपत्र में वेण्या नाम किया गया है।

(गो)वधनम बेनाकटक स्वामि गोतमिपुत्रो सिरिसदकणि ------।[85] (गौतमीपुत्र सातकर्णी का नासिक गुहा लेख)

इसे बेण्वा, बेणा, वेण्या भी कहा जाता है। पुराणों इसे बेवा, वैया, दिदि नामों से संबोधित किया गया है। वैनगंगा नदी का उल्लेख सर्वप्रथम महाभारत में वेण्वा नाम से हुआ है। डी. सी. सरकार, अली और पार्जिटर ने वेण्वा की पहचान वैनगंगा से की है। इस नदी के किनारे पुलिन्द नगर स्थित था।[86] बैनगंगा सिवनी जिले के 640 मी. ऊंचे स्थान से निकलकर बालाघाट जिले में प्रवेश करती है। बालाघाट जिले में इसका कुल बहाव 98 किमी. है और औसत चौड़ाई लगभग 800 फुट है। बालाघाट जिले के बाद यह नदी महाराष्ट्र के भंडारा जिले में प्रवेश करती है वहां से यह चन्द्रपुर जिले से प्रवाहित होती हुई वर्धा नदी में मिल जाती है। बैंनगंगा और वर्धा का संगम प्राणहिता कहलाता है।[87] इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ पेंच, कन्हान और बाघ है।

कृष्णवेणीः– यह दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी कृष्ण है, जिसमें वेणा या वेणी नदी के संगम से इसे कष्ष्णवेणा, कष्ष्णवेणी या कन्हवेणा के नाम से जाना जाता है। यह पश्चिमी घाट के महावलेश्वर (महाराष्ट्र) से निकलकर पूर्वी घाट को पार कर बंगाल की खाड़ी में मसलीपट्टम के समीप गिरती है।[88] इसकी कुल लम्बाई लगभग 1400 किमी. है। इसकी सहायक नदियाँ कोयना घाटप्रभा, मालप्रभा, भीम, मूसी, तुंगभद्रा, हलिया, उरमोड़ी, तारली, कासील आदि है। यह महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश में बहती है। इस नदी का उल्लेख खारवेल के हाथी गुफा अभिलेख (भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ी, उड़ीसा) में किया गया है। इस अभिलेख में इस नदी के तट पर मूषकनगर (असिकनगर) बताया गया है।

कन्हबेंण–गताय च सेनाय, वितासिति आसिकनगर।[89] (खारवेल का हाथी गुफा अभि.)

कटनी नदीः इस नदी का उल्लेख देवल नामक स्थान से प्राप्त 'कुटिल भाषा' के एक अभिलेख (देवलऋषि मंदिर अभि. 992 ई.) में निर्मला नदी के नाम किया गया है।[90] इस नदी की पहचान देवल के निकट वहने वाले 'कटनी' अथवा करवा नामक एक नाले से किया गया है। यह नदी देवल और देयूरिया के बीच, पीलीभीत से 20 मील की दूरी पर बहती है। देवल अभिलेख में इस नदी को कठनदी तथा गंगा के समान निर्मल उल्लेखित किया गया है।[91]

खपुरीसन्निधो रमवा पुण्या कठनदी कृता।[92] (देवल प्रशस्ति)

लौहित्य नदीः इस नदी का उल्लेख आदित्य सेन के अफसद शिलालेख (गया, बिहार) तथा यशोध र्मन[93] के मदसौर प्रस्तर स्तम्भ लेख में किया गया है। जिसकी पहचान ब्रह्मपुत्र नदी से की जाती है।

Scanned by CamScanner

ब्रह्मपुत्र नदी लोहितगिरि से निकलती है। लोहितगिरि हिमालय का एक भाग है।[94] तिब्बत में यह सांपो नाम से जानी जाती है। यह तिब्बत, भारत एवं बंग्लादेश में बहती हुई गंगा नदी में मिल कर बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। इसकी कुल लगभग 2900 किमी है।

लौहित्यस्य तटेशु शीतलतलेष्भूत्फुल्लनागद्रुमकृक्।[95] (आदित्य सेन का अभि.)

सिंधु नदीः– इस नदी का उल्लेख चन्द्र के मेहरोली लोह स्तम्भ लेख तथा दभोई[96] अभिलेख में किया गया है। सिन्धु नदीं का उल्लेख ऋग्वेद में 176 बार किया गया है। ऋग्वेद में इसे सप्तसिंन्धु तथा जैन्द अवेस्ता में इसे हप्तसिन्धु कहा गया है। लगभग 510 ई. पू. फारस के शासन डैरियस ने साईलैक्स को सिन्धु नदीं के उद्‌गम का पता लगाने के लिये भेजा था। तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्निका।[97] अभिलेख में सिन्धु के सात मुख का उल्लेख किया गया हैं। ये सात धाराएँ– शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता, सिन्धु और कुम थी। सिन्धु नदी का उद्‌गम स्थल तिब्बत (चीन) में मानसरोवर झील के पास स्थित सानोख्बाब हिमनद (Glacial) है। भारत में इसकी लम्बाई 709 किमी. है। यह अन्ततः पाकिस्तान से होकर अरब सागर में विलीन हो जाती है। पंजाब में सिन्धु नदी में झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज नदियाँ मिलती हैं, पाँच नदियाँ मिलने के कारण पंजाब ने यह नाम ग्रहण किया था।

कालीसिन्ध नदीः– इस नदी का उल्लेख विश्वकर्मा के गंगाधर अभिलेख (झालवाड़, राजस्थान) में गर्गरा नाम से किया गया है, जिसकी पहचान कालीसिन्ध नदी से की गयी है। महाभारत में इसका उल्लेख दक्षिण सिंधु तथा मेघदूत में सिंधु नाम से किया गया है।[98] शिष्टामिवाभरण–जातिभिरंगनां स्वां, यो गर्गरा–तट–पुरं सक्कलन्चरकार।।[99] (विश्वकर्मा का गंगाधर अभि.) यह नदी कुरात बागली नामक स्थान से निकलती है। इसमें काले पत्थरों के बिछे होने के कारण इसे काली सिंध कहा जाता है। तखूदर, तीलर, नेवजा तथा घोर इसकी सहायक नदियाँ हैं।[100] यह देवास के बंगालों गॉव के समीप विंध्याचल से निकलकर राजपूताना (राजस्थान) में चंबल नदी में मिल जाती है।

षिवना तथा समुलीः–कुमारगुप्तकालीन बन्धुवर्मा के दशपुर अभिलेख में दो नदियों का उल्लेख किया गया है, जिसकी पहचान शिवना और समुली (श्रवण) नदी से की गयी है।

यद्यात्यभिरम्य सरिद्द्वयेन चपलोर्भिणा समुपग(ढ़म्। रहिस कुच– शालिनीभ्यां प्रीति रतिभ्यां स्मरांगमिव।।[101]

(बन्धुवर्मा का दशपुर अभि.)

कहा जाता है कि महाराज दशरथ के बाण द्वारा श्रवण (सुमली) नदी के तट पर अन्धे माता–पिता के एक मात्र पुत्र श्रवण कुमार का प्राणोत्सर्ग हुआ था।

अनवेती नदीः– इस नदी का उल्लेख राष्ट्रकूट शासक अविधेय के पाण्डरंगपल्ली ताम्रपत्रलेख में किया गया है।

कोल्लगिरेः पूर्व्वतः अने {वती} कूले काम्यक जावल {वाटि}[102] अभिलेख में कोल्लगिरि पर्वत के पूर्व में अनेवती नदी के तट पर स्थित काम्यक एवं जावल वाटिकाओं सहित पाण्डरंगपल्ली नामक ग्राम दान देने का उल्लेख है। गोल्लगिरि की पहचान कुर्ग से की गई है। कावेरी नदी यही से निमलती है और इसे कोलागिरि या कोडगु भी कहा जाता है। महाभारत के अनुसार कोल्लगिरि अथवा कोलगिरि दक्षिण समुद्र तट के निकट द्रविड़, आंध्र के पास स्थित था। सुराष्ट भी इसके समीप था।[103]

बनासः– बनास नदी का उल्लेख नहपान कालीन कार्ले तथा नासिक गुहालेखों में हुआ है। अभिलेखों

Scanned by CamScanner

में इसके बनासा **(Banasa River)** और बरनासा **(Barnasa River)** नाम प्राप्त होते है। यह नदी राजस्थान में चम्बल नदी में मिल जाती है। यह 'वन की आशा' के नाम से जानी जाती है। इसकी लम्बाई लगभग 512 किमी है। यह अरावली पर्वत माला के कैमूर पर्वत से निकलकर मेवाड़ से बहती हुई चंबल नदी में मिल जाती है।

गोसतसहस {दे}ण नदिया बणासाया --------।[104]

इसला नदीः– इस नदी का उल्लेख रविवर्मन के गुड्नपुर अभिलेख में किया गया है।[105] इसकी पहचान अभी स्पष्ट नहीं हो सकी है।

उर्वशी नदीः– इस नदी का उल्लेख विनायकपाल देव के रखेत्र (गुना, वि. सं. 999) के एक शिलालेख में प्राप्त होता है। इसका उर्रा (Urra River) नाम भी मिलता है।[106] उर्वशी नद का वर्तमान नाम उर है। इस नदी के किनारे पर प्राचीन चैद नगर (बूढ़ी चंदेरी) बसा हुआ था।[107] इसका वर्तमान नाम उर नदी है।

कौशिक नदीः– इस नदी का उल्लेख भास्करवर्मन के निधनपुर दानपत्र में किया गया है। इस नदी की पहचान कुसीयर (KusiyaraRiver) नदी से की गयी है।[106] यह नदी तमिलनाडु के गुरु ऋषि पर्वत से निकलती है।

कपिनी नदी :– इस नदी का उल्लेख स्कन्दवर्मन के बसवनपुर ताम्र पत्र में किया गया है। इसकी पहचान कपिला नदी से की गयी है। यह कप्पूनी भी कही जाती है।[109] इसका उद्गम केरल के वयनाड जिले होता है और यह कर्नाटक में कावेरी नदी में मिल जाती है। मैसूर में इसी नदी पर कबिनी बांध बनाय गया है।

वलूबा अथवा बलुआ नदीः– इस नदी का उल्लेख बंगला, शिवपुरी के एक स्मषति स्तम्भ लेख में किया गया है।[110]

पणणी नदी (Panni River) **:-** इस नदी का उल्लेख वेयलूर के कोप्पेरुन्जीन्गदेव पाल के अभिलेख में किया गया है। इस नदी की पहचान मल्लाई कस्बे, महाबलीपुरम् के पास वहने वाली नदी से की गयी है।[111]

सोमदरी (Somadari River) **:-** इसका उल्लेख प्रवरेसन के माहूझरी ताम्रपट्ट अभिलेख में किया गया है।[112] इसकी पहचान अभी स्पष्ट नहीं है।

प्रेहरा नदी (Prehara River) **:-** इस नदी का उल्लेख सांतीवर्मन के तल्गुण्ड़ अभिलेख में किया गया है। यह नदी मुरला नदी के साथ प्रवाहित होने वाली धारा है।[113]

बेतवा (Betwa River)**:-** इस नदी का उल्लेख विदिशा के विभिन्न स्थानों तथा बेतवा नदी पर लगे पाषाण स्तम्भों में है। इन अभिलेखों में बेतवा नदी को गंगा तथा बेतवा (प्राचीन वेत्रावती) आदि नामों से संबोधित किया गया है।[114] इसके अतिरिक्त इस नदी का उल्लेख हरिराज[115] का भारत कला भवन ताम्रपत्र अभिलेख, महाकुमार हरिश्चन्द्र का भोपाल ताम्रपत्र[116] तथा त्रैलोक्यवर्मन के विदिशा अभिलेख[117] में किया गया है। धंग के खजुराहों अभिलेख में इसे मालवा नदी कहा गया है।[118] कुछ अभिलेखों में इसे मालवा नदी भी कहा गया है।[119] इसे सुक्तिमती नाम से भी जाना जाता था।

महाराजाधिराज श्रीहरिराजदेवेन वेत्रवत्यां स्नात्त्वा, (हरिराज का भारत कला भवन अभि.) बेतवा नदी का उल्लेख मार्कन्डेय तथा वायुपुराण में वेत्रवती और मत्स्य तथा ब्रह्माण्ड़ पुराण में वेगुमती

Scanned by CamScanner

के नाम से किया गया है। वराह पुराण में कहा गया है कि भागीरथी और वेत्रवती सब नदियों में श्रेष्ठ हैं, उनके दर्शन और स्मरण मात्र से पापों से मुक्ति मिल जाती है। पद्म पुराण में भी स्वयं भगवान शिव ने वेत्रवती की पवित्रता प्रतिपादित की है। उसमें कहा गया है कि वस्त्रासुल ने एक कुंआ खोदकर इसे प्रवाहित किया था। पद्म पुराण में एक और कथा है उसमें कहा गया है कि चंपक नगर में विदारूप नामक एक राजा का शासन था। अपने दुष्कर्मो के कारण वह कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो गया। जिसे वेत्रवती में स्नान करने से मुक्ति मिल गई थी। वेत्रवती का उल्लेख साहित्यिक कृतियों में भी किया गया है। वाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में कालिदास ने 'मेघदूत' में इसका वर्णन किया है।[120] कालीदास ने अपने ग्रंथ मेघदूत में इसके बारे में उल्लेख किया है कि बेतरावती का मीठा जल इसके तट पर सुनाई देने वाली जल की मंद ध्वनि के साथ पीने पर और भी आनन्दमय लगता है।[121] महाकवि केशव के लिये बेतवा का तट आकर्षण का प्रधान केन्द्र था। 'रसिक प्रिया' में उन्होंने इसकी महिमा का गान कुछ इस तरह किया है– नदी बेतवय, तीर जहं तीरथ तुंगारन्यः नगर ओछड़ों बह–बसै, धरनीतल में धन्य बेतवा।[122] इसका उद्गम भोपाल के पास स्थित विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों में उबेदुल्लागंज से माना जाता है। यह उत्तर–पूर्व की ओर भोपाल, ग्वालियर, झांसी, जालौन आदि जिलों को पार करती हुई गुना एवं शिवपुरी जिले की प्राकृतिक सीमा का निर्धारण करती है। हमीदपुर के निकट यमुना नदी में मिल जाती है। इसका कुल जलग्रहण क्षेत्र 19,365 वर्ग किमी. है। 98 किमी. उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमा रेखा पर बहती है और 251 किमी. उत्तरप्रदेश में बहती है।[123] इस नदी की कुल लम्बाई 480 किमी है। बेतवा के बांये किनारे पर बेश, कूनी, सागर या नरैनी और कैथान नदियाँ तथा दाहिने किनारे पर केवटन नदी मिलती है।[124] बेतवा की सहायक बीना (प्राचीन वेन्दा) नदी प्रमुख है। बेतवा नदी पर राजघाट बांध, माता टीला बांध तथा परीच्छ बांध बने हुये है।

वृश्चिकला (Vrishchikala River):-यह नदी वर्तमान में ग्वालियर दुर्ग के पास वहती है। इस नदी का उल्लेख ग्वालियर के बाइल्लभट्टस्वमिन के द्वितीय अभिलेख में किया गया है। हरिहर निवास द्विवेदी ने इस नदी का उल्लेख ग्वालियर राज्य के अभिलेख में वर्षश्चिकला नाम से किया है। स्वर्णरेखा नदी का उल्लेख रइघु ने अपने साहित्य में भी किया है।[125] **वृष्चिकालानदीपरकूले**[126] -------- यह सांक नदी की प्रमुख सहायक नदी है। इसका उद्गम स्थल लश्कर के दक्षिण में स्थित गिरवाई ग्राम के पास है और यह चक्राकार मार्ग में बहती हुई मुरैना जिले में सांक नदी में मिल जाती है।

स्वर्ण रेखा नदी (Suvarnnarekha River):- यह नदी उड़ीसा के बलासौर जिले में बहती है। इस नदी का उल्लेख नरसिंह द्वितीय के केन्द्रपड़ा (केन्दुपाटना) ताम्रपत्र (उड़ीसा) में किया गया है।[127] इस नदी का उद्गम रांची के पास पिस्क नामक स्थान से हुआ है। यह नदी झारखण्ड, उड़ीसा तथा बंगाल में बहती है। यह 470 किमी की दूरी तय कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ खरकई, रोहो, कांची, दमरा, चिन्नुरू, खैजोरी आदि हैं।

अधिर्किप्य स्वर्णन्रेखा नदी सेतु पर्यन्त, (नरसिंह द्वितीय का अभिलेख),

नीलागर नदीः– इस नदी का उल्लेख शरभपुरीय वंशीय व्याध्रराज के मल्लार ताम्रपत्र लेख में निडिलया नाम से किया गया है। **स्त्रोतस्वत्या निडिलया पवित्रीकृतादमरारूर्यकुलाम्बरणशिनः**।[128]

संकरी नदी :– फणिनागवंशी शासकों द्वारा जारी किये गये मड़वा महल शिलालेख में शंकरी नदी

उल्लेख मिलता है, जिसकी पहचान फांफ नदी की सहायक नदी संकरी से की जाती है।[129]

मधुनदी (Madhunadî)**:-** इस नदी का उल्लेख प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक दान में किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान चन्द्रभागा नदी से की गयी है, जो पूर्णा नदी की एक सहायक नदी है।[130]

हिरणय नदी (Hiranya nadî)**:** इस नदी का उल्लेख प्रवरसेन द्वितीय के बडगॉव अभिलेख में किया गया है।[131] इस नदी की पहचान इराई (Erai) नदी से की जा सकती है, जो अमोल जिले की वरोर तेहसील में उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है। अंत में यह वर्धा में मिल जाती है।

महानदी:– महानदी का उल्लेख सोमवंशीय शासकों के अभिलेखों जैसे– महाभवगुप्त ययाति, भवगुप्त द्वितीय, भीमरथ के कटक ताम्रपत्र और महाभवगुप्त तृतीय के जेठसिंह डूंगरी ताम्रपत्र, सम्बलपुर विश्वविद्यालय ताम्रपत्र, महुलपालपारा ताम्रपत्र[132] आदि में किया गया है।[133] पुलकेशी द्वितीय के कन्दलग्राम दानपत्र में किया गया है।[134] मारंजपुरा ताम्रपत्र में तेल एवं महानदी संगम का उल्लेख किया गया है।[135] महानदी का उद्‌गम शिहावा के पास दण्ड़कारण्य से माना जाता है। यह 858 किमी की दूरी तय करके छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा से बहती हुई कटक के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसकी सहायक नदियाँ ईब, हसदो, तेल, शिवनाथ आदि हैं। महानदी पर सम्भलपुर के समीप दुनियां का सबसे लम्बा बांध हीराकुण्ड़ बना हुआ है।

महानद (Mahâ-Nada)**:** इस नदी का उल्लेख विशाखमित्र के कैलवन अभिलेख में किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान महन नदी से की गई है, जो कैलवन (पटना) से 2 मील की दूरी पर बहती है।[136]

इन्द्रावती नदी:–छिंदक नागवंशी शासकों के कुरूषपाल शिलालेख में इन्द्रावती नदी का उल्लेख किया है।[137] यह गोदावरी की प्रमुख सहायक नदी तथा बस्तर जिले की सबसे बड़ी नदी है। इसका उद्‌गम उड़ीस के कालाहांड़ी पठार से हुआ है। बस्तर जिले लगभग 370 किमी की दूरी तय करती हुई पश्चिम दिशा में गोदावरी में मिल जाती है। यह नदी जगदपुर से लगभग 35 किमी की दूरी पर चित्रकोट जल प्रपात की रचना करती है।

गोमती नदी (Gomati River)**:-** इस नदी का उल्लेख जीवित गुप्त द्वितीय के देव बरनार्क (Deo Baranark) अभिलेख में किया गया है। इस नदी का उद्‌गम उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर में माना जाता है। यह लखनऊ और जौनपुर से बहती हुई, वाराणसी और गाजीपुर के बीच गंगा नदी में मिल जाती है।[138]

डंकनी एवं शंखनी नदी:– दंतेवाड़ा से प्राप्त अभिलेख में शंखनी और डंकनी नदी उल्लेख मिलता है।[139] ये दोनो इन्द्रावती की प्रमुख सहायक नदियाँ है। डंकनी नदी का उद्‌गम डांगरी–डोगरी तथा शंखनी नदी का उद्‌गम बैलाडीला पहाड़ी से हुआ है। दंतेवाडा में ये दोनो नदियाँ आपस मिल जाती हैं।

वंक्षू नदी (Vankshu River)**:-** इस नदी का उल्लेख मालवा शासक के नागपुर अभिलेख (वि. सं. 1161) में किया गया है। इस नदी की पहचान एम. मोनीयर ने गंगा की किसी छोटी शाखा से की है।[140]

केसराधिकमृदौ वंक्षूपकण्ठस्थले।

सुल नदी (Sûla Nadî)**:-** इस नदी का उल्लेख स्वामीराज की नगर्धन प्लेट में सूलनदी (Sûla River), हर्ष[141] के जयपुर अभिलेख तथा श्रीधर[142] की देवपट्टन प्रशस्ति में सूर नाम से किया है। इस नदी की पहचान वर्तमान सूर नदी (Sûr River) से की जा सकती है, जो नगर्धन (Nagardhan, Nagpur) से 4 मील की दूरी पर स्थित है। इसी नदी के तट पर अरोली ग्राम स्थित है, जिसे अभिलेख में अंकोल्लिका ग्राम नाम से उल्लेखित किया है।[143] सूर नदी का उल्लेख रामचन्द्र के रमटेक अभिलेख में भी किया गया

Scanned by CamScanner

है।[144] शूलनद्याः उत्तरतटे। चलपुराग्राहारात्पश्चिमन।[145]

कठनदीः– इस नदी का उल्लेख देवल प्रशस्ति में किया गया है। कठनदी की पहचान कटनी (करवा) नदी से की जा सकती है।

कन्दुकाबिन्दुका नदीः– यह वर्तमान बिनोआ (Binoa) अथवा बिनवा (Binwa) नाम से जानी जाती है। इस नदी का उल्लेख बैजनाथ की द्वितीय प्रशस्ति (जिला कंगरा, पंजाब) में किया गया है।[146] यह व्यास (रिपासा अथवा बिआस) की सहायक नदी है।[147]

यत्र स्फुरदुरलहरी कन्दुकाबिन्दुकास्या।

गोदावरी नदीः इस नदी का उल्लेख यसहकर्नदेव[148] के जबलपुर ताम्रलेख (1122 ई.) तथा सारंगदेव[149] के अभिलेख में किया गया है। रघुदेव[150] के राजमुद्री ताम्रपत्र अभिलेख में गोदावरी को गोड़ा नदी तथा अनंगभीम तष्तीय[151] के नागरी ताम्रपत्र में गौतम गंगा कहा गया है। गोदावरी नदी को दक्षिण गंगा या बृद्ध गंगा भी कहा जाता है। यह दक्षिण भारत की सबसे बड़ी एवं लम्बी नदी है।[152] **नृत्यलहरीद्रुवाल्लिगोदावरी,** यह दक्षिणापथ की प्रसिद्ध नदी है, जो पश्चिमी घाट (80 किमी) के सहय पाद से निकलती है। इसका उद्गम ब्रह्मगिरि पर्वत त्रियम्बक (नासिक) नामक स्थान से हुआ है। यह दक्षिण की पवित्र नदी है जो गोदावरी जिले में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसके तट पर अश्मक जनपद स्थित था।[153] इसकी कुल लम्बाई 1456 किमी. तथा यह महाराष्ट्र एवं आन्ध्राप्रदेश में बहती है। बंगाल की खाड़ी के पास दो मुंह हो जाते हैं, जिन्हें गौतमी गंगा तथा अगस्त गंगा के नाम से जाना जाता है। इसकी सहायक नदियाँ पूर्णा, मंजरी, पेनगंगा, इन्द्रावती, सबरी, वेगू, प्रवरा आदि है।

मातुलिंगी नदी (Matulingi River)**:-** इस नदी का उल्लेख खानदेश के वघली प्रस्तर अभिलेख में किया गया है। जिसकी पहचान जिला अहमदनगर की तेहसील संगमनेर में बहने वाली मालुन्गी नदी से की जा सकती है।[154] **मातुलिंगीतटसमावासितं अज्र्जुनोण्ढिकाग्राम**[155]

अरूणा नदी :– इस नदी का उल्लेख खानदेश के वघली प्रस्तर अभिलेख में किया गया है। अरूणा नदी और गोदावरी नदी का संगम नासिक में है। संगम स्थल पर इसे अरूणा तीर्थ के नाम से जाना जाता है।[156]

श्रीनासिकीय अरूणासंवै(वे)द्यमहातीर्थ।[157]

सोन नदी (Son or Sone River)**:-** सोन नदी के नाम शोण, सुवर्ण या शोणभद्र, शोणनद, हिरण्बाहु आदि प्राप्त होते हैं।इस नदी का उल्लेख प्रबोधशिव के गुर्गी अभिलेख, चन्द्रेह अभिलेख तथा भीमसेन द्वितीय के अरंग ताम्रपत्र में सुवर्ण नाम से किया गया है।[158] संभवतः इसका नाम सोन इसलिये पड़ा क्योंकि इसके रेत में सोना मिलता था। बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में सोन नदी को सुभागधी कहा गया है। महर्षि विश्वामित्र ने शोणभद्र के तटवर्ती प्रदेश को महात्मा वसु की भूमि के रूप में भगवान राम को जानकारी दी थी। महाभारत में भी शोण नदी का बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया गया है। कालिदास के रघुवंश में भी इसका उल्लेख है। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी आयु के प्रथम चौदह वर्ष शोण के तट पर बिताए थे। सोन के संबंध में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। इनमें से एक कथा नर्मदा और सोन के प्रेम की है, परंतु अनबन के कारण उनका विवाह नहीं हो सका।[159] भारत की बड़े महानदों में से एक सोनभद्र अर्थात सोन नदी का उद्गम अमरकटंक की मैकल पर्वत श्रेणी से हुआ है। नर्मदा मंदिर से यह स्थान लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। माई की बगिया से इसकी दूरी लगभग 1.2 किलोमीटर

Scanned by CamScanner

है। इसे स्थानीय लोग सोनमुडा के नाम से जानते हैं। सोनभद्र को ब्रम्हाजी का मानस पुत्र माना जाता है। सोनभद्र कुण्ड से 180 मीटर की की दूरी पर मध्यप्रदेश का का सबसे ऊँचाई का जलप्रपात यह जलध ारा बनाती है। इसकी ऊँचाई लगभग 111 मीटर है। लोक परम्परा में सोनभद्र जलप्रपात से नीचे गिरने के पश्चात भूमिगत हो जाते है। इसके बाद लगभग 55 किलोमीटर की दूरी पर **सोनबचरवार** नामक स्थान पर सोनभद्र पुनः एक गतिमान जलधरा के रुप में दिखाई देती है। यह स्थान पेण्डा नामक कस्बे से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर वर्तमान छत्तीसगढ राज्य में पडता है। यहाँ पर एक बांध बना दिया गया है। इसी बाध के समीप से सोनभद्र का उद्‌गम होता है। बांध के नीचे सोनभद्र का कुण्ड बना हुआ है। कुण्ड के समीप भगवान शिव मंदिर, सोन मंदिर, गणेश मंदिर, राम सीता मंदिर, कृष्ण मंदिर, भैरव मंदिर, हनुमान मंदिर बने है। यहाँ से सोन बडी जलधारा के रुप में बहती दिखाई देती है। यह स्थान प्राकृतिक दृष्टिकोण से अनुपम व मनभावन है। उत्तरप्रदेश में इसी नदी के नाम पर एक जिला बनाया गया है। जिसका नाम सोनभद्र है। सोनभद्र विशाल सोन नदी के नाम से मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश में बहते हुए बिहार राज्य में भारत की पवित्र नदी गंगा में मिल जाती है।यह नदी मध्यप्रदेश में कुल 500 किमी. बहती है तथा इसकी कुल लम्बाई लगभग 780 किमी. है। इसका कछार क्षेत्र 47,849 वर्ग किमी. है। ब्रम्ह पुराण, रामायण, महाभारत, भगवत गीता में इनका उल्लेख मिलता है। सोनभद्र को पुरुष नद के रुप में माना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में नदियों को भी मानवीय स्वरुप प्रदान किया गया है।[160] इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं– जोहिल्ला महानदी, बनास, गोपद, रिहन्द, उत्तरी कोईल, कन्हर, घांघर आदि।

तुंगभद्रा नदीः–इस नदी का उल्लेख कृष्णदेवराय[161] का कांचीपुरम् ताम्रपत्र अभिलेख तथा रेड्डीज के कोन्डविडू अभिलेख[162] में किया गया है। कृष्णा नदी की एक शाखा है। **तुंगभद्रानदी–तीरे श्री–विरूपाक्ष– संनिधौ।** (कष्णदेवराय का कांचीपुरम् अभि.)

ताम्रपर्णी नदी (Tamraparni River): यह मलय पर्वत पर बहने वाली प्रसिद्ध नदी थी। मलय पर्वत पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग है, जो समुद्र तट का विस्तष्त है। यह पाण्ड्य देश की प्रसिद्ध नदी है। यह समुद्र के निकट बहती थी।[163] इस नदी का उल्लेख नरवर्मन[164] के नागपुर संग्रहालय अभिलेख में किया गया है। वर्तमान में यह नदी तम्बरवरी नाम से जानी जाती है। **ताभिः संप्रति पप्रथे नु पष्थिवीं यत्ताम्रपर्ण्णी पयः**

(नरसिंह का नागपुर अभिलेख)

तेल नदी (Tel River):- तेल और महानदी के संगम का उल्लेख महाशिवगुप्त प्रथम ययतिदेव के डूगरी ताम्रपत्र तथा मारेजपुरा ताम्रपत्र[165] में किया गया है। यह तेल और महानदी का संगम वर्तमान सोनपुर (उड़ीसा) के पास होता है। यह महानदी की सहायक नदी है। **तैला महानदी संगम विमल जल पवित्रिक्रित**[166]

नन्द्या नदी (Nandya River):- इस नदी का उल्लेख महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख में किया गया है।

उत्तरस्यां दिशि नन्द्या नदी समीपवर्तिनी[167] (महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभि.)

नान्दी नदी (Nandi River):- इस नदी का उल्लेख कष्ण तष्तीय के कांधार स्तम्भ अभिलेख में

Scanned by CamScanner

किया गया है।

गोदावरी तटाध्यासिनि नान्दी तटे।[168](कृष्ण तृतीय के कांधार स्तम्भ अभि.)

मूसी नदी (Musi River):- यह कष्णा नदी की सहायक नदी है, जो तेलंगाना राज्य से बहती है। इसी नदी के तट पर हैदराबाद नगर बसा हुआ है। यह गोलकुण्डा (हैदराबाद) के पास कष्णा नदी में मिलती है।[169] इस नदी पर हिमायत सागर तथा उसमान सागर बांध बने हुई है। पहले यह मुचुकुण्डा नदी के नाम से जानी जाती थी। इसका उद्गम तेलंगाना की अनन्था पहाड़ी से होता है।

शालिमा (Shâlimâ River):-इस नदी की पहचान वर्तमान सालिआ नदी (Sâliâ River) से की जा सकती है। जो उड़ीसा के पुरी जिले के बनपुर में बहती है। इस नदी का उल्लेख शशांकराज के गंजाम ताम्रपत्र में किया गया है।[170]

अम्भोर नदी (Ambhora River):- इस नदी का उल्लेख नन्नराज के तिवारखेड़ ताम्रपत्र में Amveviaraka or Ambeviara River नाम से किया गया है।[171] इस नदी की पहचान अम्भोर नदी से की गई है। जो वर्तमान मुलताई तेहसील, जिला बैतूल में बहती है।

इन्द्रानदी (Indra River):- यह वर्तमान इन्द्रवती नदी है, जो कुरूषपाल तथा चक्रकूट मध्य बहती है। इस नदी का उल्लेख सोमेश्वरदेव कुरूषपाल (छिंदक नागवंशी) प्रस्तर अभिलेख में किया गया है।[172]

दक्षिणस्यामिंद्रनदी।

(सोमेश्वरदेव कुरूषपाल अभि.)

वंषधारा नदी:– यह नदी गंजाम और विजगपत्तम जिलों के मध्य बहती है।[173] यह पूर्व की ओर ऋषिकुल्या एवं गोदावरी नदी के मध्य बहती हुई बंगाली की खाड़ी में मिल जाती है। इसकी लम्बाई लगभग 254 किमी है। **पष्चिमे वंषधारा तटे कंचषाला।**

ऋषिकुल्या नदी (Rishikulya River):- इस नदी का उल्लेख अरकेश्वरदेव (गंगा वंश) के पोल्सर ताम्रपत्र में किया गया है। यह उड़ीसा में बहने वाली प्रमुख नदी है, जिसका उद्गम उड़ीसा के दारिगबाडी (कश्मीर ऑफ उड़ीसा) से होता है। यह लगभग 165 किमी बहती हुई बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। **हिंगुल कढकाड अगस्य ऋषिकुल्या तीरे।**[174]

वरह नदी (Varah River):- इस नदी का उल्लेख अनन्तशक्तिवर्मन[175] के मद्रास ताम्रपत्र एवं वज्रहस्त तष्तीय[176] के नरसपत्तम के अभिलेख में किया गया है। इस नदी का उद्गम गोलकुण्डा पर्वत से होता है, जो उत्तर की ओर नरसपत्तम से बहकर वाताड़ के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

भीमरथी नदी (Bhimarati or Bhaimarathi River):- इस नदी का उल्लेख नासिक गुहा लेख में प्राप्त होता है। इस नदी की पहचान वर्तमान भीम नदी से की जाती है। यह कृष्णा नदी की प्रमुख सहायक नदी है। वायु पुराण में इसे सहय **(Sahya River)** कहा गया है। यह पूना के उत्तर पश्चिम भाग में बहती है और रायचूर के पास कष्णा नदी में मिल जाती है।[177]

वैगंणी नदी:– इसे वैगनियाँ भी कहा जाता है। इसकी का उल्लेख नरसिंह चतुर्थ के पुरी ताम्रपत्र में किया गया है।[178]

वारोगो नदी:–इसका उल्लेख नरसिंह चतुर्थ के पुरी ताम्रपत्र में किया गया है।[179] इसकी पहचान अभी स्पष्ट नहीं हो सकी है।

अने नदी (Ane River):- इस नदी का उल्लेख पण्डरौगपल्ली **(Pandaraugapalli Grant of**

Scanned by CamScanner

Avidheya) ताम्रपत्र में किया गया है। इस नदी की पहचान येन्न **(Yenna River)** से की जाती है, जो कृष्णा नदी की प्रमुख सहायक नदी है। येन्न नदी की उत्पत्ति महाबलेश्वर पर्वत (महाराष्ट्र) से मानी जाती है।[180]

सुप्रयोग नदी (Suprayoga River):- इस नदी का उल्लेख विष्णूगोप[181] के उरूवुपल्ली **(Uruvaupalli)** दान तथा पुण्यकुमार[182] की मलेपदु **(Malepadu River)** प्लेट में किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान मन्नेरू **(Manneru River)** नदी से की जाती है, जो नेलोर जिले के कन्डीकुरू **(Kandikaru)** तथा उलवपदू **(Ulavapdu)** में उत्तर–पूर्व में बहती है।[183]

तमसा नदी (Tamasâ):-इस नदी का उल्लेख सर्वनाथ के खोह दान में किया गया है।[184] इस नदी की पहचान वर्तमान टमस अथवा टोंस से की जाती है। इस नदी का प्राचीन नाम पर्णाशा है। तमसा का उल्लेख बाल्मीकि रामायण, मार्कण्डेय, मत्स्य, वामन व वायु पुराणों में भी हुआ है। उत्तरकाण्ड में तमसा के तट पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम बताया गया है।[185] टोंस का उद्‌गम सतना जिले की मैहर तहसील के झुलेरी के पास कैमूर की पहाड़ियों (तमसाकुण्ड) से हुआ है। सतना के बाद टोंस नदी रीवा जिले में प्रवेश करती है। यहां कैमूर पहाड़ियों के बीच संकरी घाटियों में बहती है और अनेक जल प्रपात बनाती है। इसकी कुल लम्बाई 320 किमी है और यह मध्यप्रदेश में लगभग 238 किमी बहती है। इसका कछार क्षेत्र 1,19,742 वर्ग किमी है। यह मैहर, सिरमौर एवं त्योंथर में प्रवाहित होते हुए गंगा में विलीन हो जाती है। इसकी महत्वपूर्ण सहायक नदियाँ बेहार, बबई, सोनकर, बेलाज, महानदी तथा सतना हैं।[186]

वाटा नदी (Vâtâ Nadî):- इस नदी का उल्लेख सुल्तानपुर ताम्रपत्र में किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान बारा–नाई **(Bârâ-Nai)** नदी से की जाती है, जो राजस्थान के दक्षिणी भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है।[187]

वरदा नदी (Varadâ Nadî):-इस नदी का उल्लेख पुलकेशी–द्वितीय के एहोल अभिलेख[188] तथा शिवगुप्त बालार्जुन के सेनकपट अभिलेख[189] में किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान वर्धा नदी **(Waradâ Nadî)** से की जाती है। यह एक गोदावरी की सहायक नदी है। वर्धा नदी बैतूल जिले के मुलताई कस्बे के पास लगभग 777 मीटर ऊँची सतपुड़ा पहाड़ियों से निकलती है। मध्य प्रदेश में यह लगभग 58 किमी. प्रवाहित होने के बाद महाराष्ट्र में वैनगंगा नदी में मिल जाती है। बाद में यह दोनों नदियाँ प्रणहिता के नाम से आगे बढ़कर महाराष्ट्र के सिरोंछा के पास गोदावरी नदी में मिल जाती है।[190]

महुअर नदी:–इस नदी पर पेसाहरी नामक बांध बनाया गया है। तेरही (शिवपुरी) स्तम्भ लेख में इसका उल्लेख मधुवेणी नाम से किया गया है। यह काली सिंध की सहायक नदी है,

मान नदी (Mâna Nadî):-इस नदी का उल्लेख भोजदेव के तिलकवाड़ा ताम्रपत्र में मना नाम किया गया है। इस नदी की पहचान वर्तमान मान नामक छोटी धारा से की जा सकती है, जो नर्मदा में मिल जाती है।[191]

मणाया{:}संगमे रम्ये मणेस्व(ष्व) रसि(षि) वाल{ये}

कोलार (Kolâra Nadî):-इस नदी का उल्लेख भोजदेव के तिलकवाड़ा ताम्रपत्र में कुविलारा **(Kuvilârâ)** तथा जयवर्मनदेव द्वितीय की मान्धाता ताम्रपत्र में कपिला **(Kapilâ)** नाम से किया गया है। इन दोनों नदियों की पहचान कोलार अथवा खोलार नदी से की गयी। कोलार नदी मान्धाता के पास नर्मदा में मिल जाती है।[192] स्थानीय नागरिक संगम स्थल को कपिला संगम कहते है।[192] **रेवानदीकुविलारानद्योः संगमे स्नात्वा चराचरगुरूं --------**। कोलार नदी का उद्‌गम स्थल सिहोर जिले के पास विन्ध्य पर्वत

Scanned by CamScanner

में स्थित है। इसकी कुल लम्बाई 101 किमी है।

माही नदी (Mâhi Nadî):- इस नदी का उल्लेख हरसोला के सीयक अभिलेख में किया गया है।[194]**र्यानन्तरव्यापुटितैर्महीनदीतट निवासिभि**–इस नदी का उद्‌गम स्थल विन्ध्य पर्वत के पश्चिमी भाग में मध्यप्रदेश के धार जिले के मिण्ड़ ग्राम केपास स्थित है। यह मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात में बहती हुई खम्बत की खाड़ी में मिल जाती है। इसकी कुल लम्बाई 583 किमी है।[195] इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ उजास, भादर, पनम, कून तथा गोम है।

चम्बल नदी:– चम्बल नदी पश्चिमी मध्यप्रदेश की सबसे बड़ी है जिसका उल्लेख श्रीमद् भागवत, महाभारत, मार्कण्डेय, वायु, ब्राह्मण्ड, मत्स्य पुराणों में चर्मण्वती नाम से किया गया है। चंबल नदी का समीकरण महाभारत में वर्णित चर्मण्वती से किया जाता है। महाभारत के अनुसार राजा रन्तिदेव ने यज्ञ में अनके गायों की बलि दी, जिससे नदी का जल रक्तिम हो गया तथा वह चर्मण्वती कहलाई। मेघदूत में कालिदास ने इसे उत्तर की ओर प्रवाहित होन वाली नदी कहा है।[196] उसमें मेघ से कहा गया है कि तुम राजा रंतिदेव की उस कीर्तिकोटि चर्मण्वती को जिसने नदी का रूप धारण कर लिया है, का सम्मान प्रकट करने के लिए नीचे झुक जाना। यह चम्बल संभाग की प्रमुख नदी है। इस नदी की कुल लम्बाई 1040 किमी है। चम्बल नदी इंदौर जिले के महू तहसील में विन्ध्य पर्वत की जनापाव पहाड़ी से निकलकर इटावा से 38 किमी दूर पचनदा नामक स्थान पर यमुना नदी में मिल जाती है। यह मध्यप्रदेश में उज्जैन और रतलाम जिलों में बहती हुई मंदसौर जिले की दक्षिणी सीमा बनाती है। फिर यह राजस्थान में प्रवेश करती है। वहां वह कोटा और बंदी जिलों में बहती हुई पुनः मध्यप्रदेश की आरे मुड़ जाती है। यहां यह मुरैना और भिण्ड़ जिलों की सीमाओं पर बहती है जिसके आगे वह उत्तरप्रदेश में प्रवेश करती है।[197] भिण्ड़ जिले में चम्बल नदी का कुल प्रवाह मार्ग लगभग 48 किमी है। इसकी प्रमुख सहायक नदी शिप्रा, कालीसिंध, पार्वती, बेतवा, मेज, वनासा आदि हैं। चम्बल नदी का उल्लेख चर्मण्वीत नाम से कुरैठा ताम्रपात्र (वि. स. 1277) में किया गया है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहार मलयवर्मन ने सूर्यग्रहण के अवसर पर चर्मण्वती में स्नान कर कुदवठ ग्राम दान दिया।[198]

संदर्भ सूची एवं पाद टिप्पणियाँ

1. द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कषति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृ. 250–51।
2. वही।
3. मिश्र, राम मनोहर; प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ.. 268।
4. चन्द्र, जगदीश, सांची के स्तूप, सिखर प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ.. 63–64।
5. अग्रवाल, श्रीमती माधुरी; प्राचीन भारतीय सिक्कों और मोहरों पर ब्राह्मण देवी–देवताओं और उनके प्रतीक, रामानन्द विद्या भवन, दिल्ली, 1988, पृ. 87।
6. पद्मश्री प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा; भारतीय शिल्पसंहिता, सोमैया पब्लिकेशन्स प्रा. लि., बम्बई, 1975, पृ.. 130।
7. द्वारस्थ गंगायमुनादिमूर्ति कष्ता प्ररीयं सह मण्डपेन।।
8. कुमारसंभव, 7/42, मूर्ते च गंगायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्।
9. अग्रवाल, श्रीमती माधुरी; उपरोक्त, पृ.. 88।
10. अग्रवाल, श्रीमती माधुरी; उपरोक्त, पृ.. 89।
11. Gupte, R.S.; Iconography of the Hindus, Buddhists and Jains, Bombay, 1972, P. 57.
12. द्विवेदी, कपिलदेव, उपर्युक्त, पृ.. 251।

Scanned by CamScanner

13. EI-I, P.283.
14. अवस्थी, डॉ. अवधबिहारी; प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1964, पृ. 85।
15. विद्यालंकार, सत्यकेतु, प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, श्री सरस्वती सदरन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 131।
16. मिराशी, वा. वि.; कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडिकेरम, भाग–4, खण्ड़–2, पृ. 443।
17. CII- III, P. 89.
18. नर्मदा या तस्यास्तटेअस्ति त्रिपुरी पुरी, इ. क. चे. ए., पृ. 350, श्लोक–4–5।
19. त्रिपुर्या सोमग्रहणे रेवायां विधिवत् स्नात्वा, इ. क. चे. ए., पृ. 328।
20. EI-II, P. 13.(नर्म्मदादक्षिणे कूले पर्व्वतोपत्यकाश्रये।)
21. सहाय, डॉ. शिवस्वरूप; भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000, पृ.365।
22. Jha, Pt. Rama Kanta & Jha, Pt. Harihar; Abhilekhamala, Chowkhamba Vidya Bhawan, Varanasi, 1962, P.48.
23. द्विवेदी, डॉ. अयोध्या प्रसाद; संस्कृति–स्त्रोतस्विनी नर्मदा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1987, पृ. 4।
24. चौहान, अंजना सिंह, वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2009, पृ. 43।
25. झा, विवेकदत्त, होशंगाबाद जनपद का इतिहास पुरातत्व के सन्दर्भ में, Mistra, Dr. P.K., Dr. S.K. Sullerey, Heritage of India: Past and Present, Voll. II., Agam Kala Prakashan, Delhi, 1994, P. 432.
26. अमरकोश–1/10/32. (रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका।)
27. गिडियन, नवीन; कलचुरि कालीन भौगोलिक पर्यावरण, शोध समीक्षा एवं मूल्यांकन, 9/2010, वो. 2, अंक 22, पृ. 88।
28. स्वस्ति श्रीमत्त्रिपुर्यां तुहिनकरसुतावीचिवाचालितायाम्ए विद्धशालभञ्जिका, 4/21।
29. Pierre H. L. Eggermont; Sanchi Kakanada and the hellenistic and buddhist sources, Deyadharma (Ed.) Bhattacharya, Gouriswar; Sri Satguru Publications, Delhi, 1986, P. 18. एवं चढ़ार, मोहन लाल, अमरकटंक क्षेत्र की प्राचीनता, प्राग् समीक्षा, वो. 1, अंक –2, 2014, पृ. 42।
30. चढ़ार, मोहन लाल, अमरकटंक क्षेत्र की प्राचीनता, प्राग् समीक्षा, वो. 1, अंक –2, 2014, पृ. 42।
31. चढ़ार, मोहन लाल, वही, पृ. 41।
32. चढ़ार, मोहन लाल, वही, पृ. 42।
33. http://nca.gov.in/hindi_web/narmada_ghati.asp (Narmada Control Authority).
34. चढ़ार, उपर्युक्त, पृ. 43–44।
35. वही, पृ. 52।
36. राजगुरू, एम. एन; उड़ीसा राज्य के अभिलेख, भाग–4,पृ. 244–252।
37. EI-XXI, P.263-266.(गंगायां मज्जनं कुव्वर्द्धि तालपत्रशासनेन स्वपुण्याभिवष्ये।)
38. राजगुरू, एम. एन; उपरोक्त, पृ. 47–54।
39. मिराशी, वा. वि.; उपरोक्त, पृ. 430।
40. EI-XXVI, P.54.
41. EI-I, P.83.
42. EI-I, P.275.
43. Sircar, D.C.; Select Inscriptions, Vol.-II, Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, P. 112.
44. Sharma, Tej Ram; Op. Cit, P. 295.(चेन्द्रापुरक–पद्या– चातुर्विद्य– सामान्यब्राह्मणदेवविष्णु --------।)
45. अवस्थी, डॉ. अवधबिहारी; प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1964, पृ. 51।
46. सहाय, डॉ. शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ..301।
47. उपाध्याय, डॉ. वासुदेव; प्राचीन भारतीय अभिलेख, प्रज्ञा प्रकाशन, पटना, 1970, पृ. 427।

Scanned by CamScanner

48. चौहान, अंजना सिंह, वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2009, पृ 42।
49. Sharma, Tej Ram; Op.Cit, P. 293.
50. Info Adopted by Website of Ministry of Environment and Forest Government of India (NGRBA).
51. सेंगर, शैलेन्द्र; प्राचीन भारत का इतिहास, अटलांटिक प्रकाशक, 2005, पृ. 66।
52. चौहान, अंजना सिंह, वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2009, पृ. 42।
53. द्विवेदी, डॉ. अयोध्या प्रसाद; उपरोक्त, पृ. 25।
54. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ 166।
55. अवस्थी, अवधबिहारी; उपरोक्त, पृ. 105।
56. शर्मा, चन्द्रमणि, ग्वालियर क्षेत्र की संस्कृत सर्जना, ग्वालियर दर्शन, पृ. 21। (इसमें कालप्रिय को यमुना (कालिन्दी) नदी के किनारे बताया गया है, कालप्रिय की पहचना वर्तमान कालपी से की जाती है।)
57. EI-XIX, P. 103.
58. EI-I, P.129.(आकालंजरमाच मालवनदी तीरास्थिते भास्वतः। कालिन्दीसरितस्तटादित इतोप्याचेदि देशावधेः।।)
59. परिहार, दिनेश नंदिनी, छत्तीसगढ़ के अभिलेखों में उल्लिखित नदियों एवं जलस्त्रोतों का ऐतिहासिक विश्लेषण, हिस्ट्री टाईम्स, वो. 1, जुलाई–2013, पृ. 22।
60. Jha, Pt. Rama Kanta & Jha, Pt. Harihar; Op. Oit, P. 325.
61. EI-XX, P.127.
62. Sharma, Tej Ram; Op.cit, P. 321.
63. मार्कण्डेय पुराण–7/29
64. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ. 210।
65. EI-IX, P.342.
66. गोयल, श्रीराम; प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड–1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982, पृ. 332।
67. EI-IX, P.342.
68. उपाध्याय, वासुदेव; उपरोक्त, पृ. 329।
69. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ..364।
70. EI-I, P.60.(विपुलां नदी वा कावीरीभवनिभवनावस्थित इति।)
71. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ.366।
72. http://www.britannica.com/EBchecked/topic/100477/Kaveri-River
73. गोयल, श्रीराम; उपरोक्त, पृ. 269।
74. गोयल, श्रीराम; उपरोक्त, पृ. 270।
75. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ.205।
76. Gupta, Parmanand; Geography in Ancient Indian Inscriptions, D.K. Publishing House, Dehli, 1973, P. 262.
77. गोयल, श्रीराम; उपरोक्त, पृ. 307।
78. द्विवेदी, अयोध्या प्रसाद; उपरोक्त, पृ.25।
79. पटैरया, शिवअनुराग, मध्यप्रदेश, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ 229।
80. Matsya Puran, Ch. 22, V. 33.
81. Bharatidiscovery.org/india
82. Hydrology and Water Resources of India, P. 310.

Scanned by CamScanner

83. http://www.britannica.com/EBchecked/topic/583204/Tapti-River
84. EI-II, P.310.(वेण्यां स्वात्वा भगवंतं देवं देवं त्रिलोचनकृ।)
85. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ 189।
86. झा, विवेकदत्त; उपरोक्त, पृ. 431।
87. पटैरया, शिवअनुराग, मध्यप्रदेश, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 228।
88. अवस्थी, अवधबिहारी; उपरोक्त, पृ. 72।
89. सहाय, शिवस्वरूप; उपरोक्त, पृ. 174।
90. माथुर, विजयेन्द्र कुमार; वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, दिल्ली, 1969, पृ. 501।
91. EI-I, P.75.
92. EI-I, P.79.
93. CII- III, 146.
94. अवस्थी, अवधबिहारी; उपरोक्त, पृ. 49।
95. Jha, Pt. Rama Kanta & Jha, Pt. Harihar; Op.Cit, P. 351.
96. EI-I, P.128.(कृ सिन्धुतीरे वीरब्रतं चरति वीसलदेव एव।)
97. Jha, Pt. Rama Kanta & Jha, Pt. HariharOp.Cit, P. 20.
98. गिडियन, नवीन, प्रतिहार युगीन सांस्कषति भूगोल, हिस्ट्री टाईम्स, वो. 1, जुलाई–2013, पृ. 57।
99. त्रिवेदी, चन्द्रभूषण; दशपुर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1979, पृ. 135।
100. द्विवेदी, एस. के., डॉ. मधुबाला कुलश्रेष्ठ : ग्वालियर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011, पृ. 4।
101. त्रिवेदी, चन्द्रभूषण; उपरोक्त, पृ. 34।
102. मिराशी, वासुदेव विष्णु, शास्त्री डॉ. अजयमित्र (अनु.); प्राच्यविद्या निबन्धावली, खण्ड–4, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1974, पृ. 152।
103. अवस्थी, अवधबिहारी; उपरोक्त, पृ. 67।
104. EI-VII, P. 57.
105. Gupta, Parmanand; Geographical Names in Ancient Indian Inscriptions, Concept Publishing Company, Delhi, 1977, P-44.
106. Michael D. Wills; Inscriptions of Gopakshetra, British Museum press, Lonon, 1996, P-3.
107. मंजूपुरिया, संजय; शिवुपरी–नरवर–चंदेरी का दिग्दर्शन, सुधा प्रकाशन, ग्वालियर, 1992, पृ. 29। (उर्वशी नदी तीरे चैद नगर शोभने)
108. Gupta, Parmanand; Above, P.263. EI- XIX, P. 130.
109. Gupta, Parmanand; Above, P-62.
110. EI-XXXI (1955-56), P. 328-29.
111. EI-XXXIII (195-36), P.180.
112. Gupta, Parmanand; Above, P. 113.
113. Gupta, Parmanand; Above, P. 102.
114. अप्रकाशित अभिलेख– यह अभिलेख मुझे सरवेक्षण के दौरान सूचित हुये थे।
115. सिंह, अरविन्द कुमार; कोसल–3, अंक–3, वर्ष–3, संचालनालय संस्कषति एवं पुरातत्व, रायपुर, 2010, पृ. 2।
116. CII- IV, P. 150.
117. CII- IV, P. 143.
118. Sircar, D.C.; Select Inscriptions, Vol. II, Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, P.259, (आ कालन्जरमा च मालव नदी तीरे स्थिते)

Scanned by CamScanner

119. Sircar, D.C.; Select Inscriptions, Vol. II, Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, No 14, P.265.
120. पटैरया, शिवअनुराग, मध्यप्रदेश, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 223।
121. पाण्ड़ेय, एन. पी.; शिवपुरी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, भोपाल, 1999, पृ. 40।
122. पटैरया, शिव अनुराग, उपर्युक्त, पृ 223।
123. वही।
124. द्विवेदी, एस. के., डॉ. मधुबाला कुलश्रेष्ठ : ग्वालियर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011, पृ. 3।
125. गौरी, गुलाब खाँ, ग्वालियर का राजनैतिक एवं सांस्कषतिक इतिहास, बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, 1986।
126. EI-I, P.159.
127. EI-XXVIII, P.194.
128. EI-XXXIV, P.51.
129. परिहार, दिनेश नंदिनी; छत्तीसगढ़ के अभिलेखों में उल्लिखित नदियों एवं जलस्त्रोतों का ऐतिहासिक विश्लेषण, (Ed.) एन. के. शुक्ला, संचानालय, संस्कृति एवं पुरातत्व, छतीसगढ, 2012, पृ. 32।
130. CII- III, P. 237.
131. EI-XXVI, P. 76.
132. परिहार, दिनेश नंदिनी, छत्तीसगढ़ के अभिलेखों में उल्लिखित नदियों एवं जलस्त्रोतों का ऐतिहासिक विश्लेषण, हिस्ट्री टाईम्स, वो. 1, जुलाई–2013, पृ. 21।
133. EI-XXXI, P.263-266.
134. IA, XIV, P. 331.
135. परिहार, दिनेश नंदिनी; उपर्युक्त, पृ. 31।
136. EI-XXXI, P.231.
137. EI-IX, P.25-31.
138. CII- III, P. 213.
139. EI-IX, P.32-34.
140. EI-II, P.188.
141. EI-II, P.129.(नसुरनदीचंद्रलेखापतित्वं।)
142. EI-II, P.440.(रनाथः सुरनदीं।)
143. EI-XXVIII, P.8.
144. EI-XXV, P.16.
145. EI-XXVIII, P.9.
146. EI-I, P.113.
147. EI-I, P.100. See footnote.
148. EI-II, P.5.
149. EI- I, P.283.(गोदावरीतीरविहारिणीभिर्वनस्थलीनामधिदेवताभिः।)
150. Sircar, D.C.; Select Inscriptions, Vol. II, Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, P.196.
151. EI-XXVIII, P.251, (Karan bhumer gGanga Gautamagangayoh)
152. Gupta, Parmanand; Geography in Ancient Indian Inscriptions, D.K. Publishing House, Dehli, 1973, P. 261.
153. अवस्थी, डॉ. अवधबिहारी; प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1964, पृ. 72।
154. EI-II, P.216.
155. EI-II, P.220.

Scanned by CamScanner

156. EI-II, P.217. See the Bombay Gazetter, Vol. XVI (Nasik), P. 524; Aruna tirth is where the aruna joins the Godavari hear ram's pool.
157. EI-II, P.221.
158. गिडियन, नवीन; कलचुरि कालीन भौगोलिक पर्यावरण, शोध समीक्षा एवं मूल्यांकन, 9/2010, वो. 2, अंक 22, पृ. 88।
159. पटैरया, शिवअनुराग, मध्यप्रदेश, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 220।
160. चढार, मोहनलाल, अमरकंटक क्षेत्र की प्राचीनता, प्राग समीक्षा, वो. 1, अंक–2, 2014, पृ. 44–45।
161. Sircar, D.C.; Select Inscriptions, Vol. II, Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, P. 598.
162. EI-XI, P.325, (तुंगभद्रातरंगिण्याः प्राक्तीरे पर्यवस्थितं।।17।।)
163. अवस्थी, डॉ. अवधबिहारी; प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1964, पृ. 43।
164. Sircar, D.C.; Op. Cit. P. 399.
165. परिहार, दिनेश नंदिनी, छत्तीसगढ़ के अभिलेखों में उल्लिखित नदियों एवं जलस्त्रोतों का ऐतिहासिक विश्लेषण, हिस्ट्री टाईम्स, वो. 1, जुलाई–2013, पृ 21।
166. J.B.O.R.S. Vol.-II, P. 52.
167. Sircar, D.C.; Op. Cit. P. 254.
168. Sircar, D.C.; Op. Cit. P. 513.
169. EI-VI, P.206.
170. EI-VI, P.144.
171. EI-XI, P.278.
172. EI-XI, P.28.
173. EI-XI, P.151.
174. EI-XXVIII, P.66.
175. EI-XXVIII, P.234.
176. EI-XI, P.149.
177. Gupta, Parmanand; Above, P. 260.
178. EI-XXVIII, P.310.
179. EI-XXVIII, P.310.
180. Gupta, Parmanand; Above, P. 259.
181. IA-V, P. 51.
182. EI-XI, P. 345.
183. EI-XXV, P. 48.
184. CII-III, P. 127.
185. वा. रा.– 7/45/17
186. पटैरया, शिवअनुराग, उपर्युक्त, पृ. 220।
187. Sharma, Tej Ram; Op.cit, P. 297.
188. EI- VI, P. 5.
189. EI- XXXI, P. 35.
190. पटैरया, शिवअनुराग, उपर्युक्त, पृ. 228।
191. CII-IV, P. 52.
192. CII-IV, P. 104.
193. CII- IV, P. 203, 205, (रेवाया दक्षिणे कूले रेवाकपिलासंगमे स्नात्वा।।)

Scanned by CamScanner

194. CII-IV, P. 7.
195. http://www.britannica.com/EBchecked/topic/358186/Mahi-River
196. गिडियन, नवीन, उपर्युक्त, पृ. 57।
197. पटैरया, उपर्युक्त, पृ. 221।
198. द्विवेदी, हरिहर निवास, ग्वालियर राज्य के अभिलेख, वाराणसी, 1947, पृ.. 48।

Scanned by CamScanner

17 बुन्देलखण्ड में सूर्य–पूजा

कृष्ण कुमार त्रिपाठी

वैदिक साहित्य में सूर्य का वर्णन मिलता है। वैदिक आख्यानों के आधार पर ही वराह, शाम्ब, भविष्य, अग्नि और मत्स्य पुराणों में सूर्य–संबंधी धार्मिक परंपराओं का विकास हुआ। सूर्योपनिषद में सूर्य को ब्रह्मा–विश्णु और रुद्र का ही रूप माना गया है – एश ब्रह्मा च विष्णुष्च रूद्र एश हि भास्करः। शतपथ ब्राह्मण में द्वादशा दित्यों की गणना है, परंतु पुराण–साहित्य में धातृ, मित्र, अर्यमन्, रुद्र, वरुण सूर्य, भग, विवश्वान् सविता, त्वश्टा और विष्णु नामोल्लेखित मिलते हैं। मित्र तथा अर्यमन के नाम से सूर्य की पूजा ईरानियों में भी प्रचलित थी। ऋग्वेद (115.1) में सूर्य को दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान तथा जगत की आत्मा भी कहा गया है– 'सूर्य आत्मा जगतस्थुशष्च', युजुर्वेद के 'चक्षोः सूर्योअजायत' के अनुसार सूर्य विष्णु भगवान के नेत्र हैं। उत्तर वैदिक साहित्य, रामायण तथा महाभारत में सूर्योपासना के अनेक रोचक प्रसंग मिलते हैं। महाभारत में उन्हें देवाधिदेव की संज्ञा प्रदान की गयी (शसि दिति देवेश्वरो यथा)।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य सूर्य के विभिन्न मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख करते हैं। वराह मिहिर ने वृहत्संहिता में सूर्य की उपासना हेतु 'मगो' का वर्णन किया है। सर्व प्रथम सूर्य की उपासना वैदिक मंत्रों द्वारा होती थी परंतु मूर्ति पूजा के प्रचलन के साथ ही गुप्तकाल में 'पंचदेवों' के साथ सूर्य को भी सम्मिलित किया गया ।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पंचदैवतमित्युक्तं सर्व कर्मसु पूजयेत्।।

श्रीहनुमान जी ने सूर्य से व्याकरण–शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्हें सूर्यदेव से कई वर मिले थे। महाभारत के अनुसार सूर्य के अनुग्रह से कुंती के गर्भ से महावलशाली कर्ण ने कवच–कुण्डल सहित जन्म लिया था। वनवास काल में युधिष्ठिर सूर्योपासना करते थे। द्रौपदी के अज्ञातवास के समय सूर्योपासना से कीचक नामक राक्षस से उनकी रक्षा हुई। श्रीकृष्ण एवं जाम्बवंती के पुत्र शांब भी सूर्य की उपासना करके दुःसाध्य कुष्ठ रोग से मुक्त हुये थे। राजा अश्वपति ने सूर्य की उपासना करके सावित्री देवी को अपनी कन्या के रूप में प्राप्त किया था।

Scanned by CamScanner

आरंभ में सूर्योपासना का स्वरूप प्रतीकात्मक था, उन्हें चक्र, कमल, स्वस्तिक आदि प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता था।

भारत में सूर्य–उपासना के प्रमाण प्राचीन काल से मिलते हैं। फारस में अग्नि एवं सूर्योपासना की परम्परा अति प्राचीन रही है। मैक्सिको–वासियों की मान्यता के अनुसार विष्व की सज्जन शक्ति का मूल सूर्य हैं। यूनान में प्रचलित अपोलो–डेयाना (Diana) उपाख्यान सूर्य उपासना की ओर संकेत करते हैं। त्रेतायुग में भारत में सूर्यवंशी परम्परा में दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम सूर्यवंशी नरेश थे।

कोणार्क (ओड़ीसा) में सूर्य–पूजा की परम्परा प्राचीन काल से मिलती है। चक्र को प्रायः सूर्य के प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया गया है। वैदिक काल में सूर्य को 'नारायण' भी कहा जाता था। अनेक प्राचीन आहत (पंचमार्क्ड) सिक्कों पर चक्र, सूर्य के प्रतीक रूप में अंकित मिलता है। एरण (सागर, म.प्र) से प्राप्त तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के सिक्कों पर सूर्य को कमल के प्रतीक रूप में अंकित किया गया है। मित्र तथा भानुमित्र के सिक्कों पर तृतीय षताब्दी ई.पू. की कर्द नामक जनजाति के सिक्कों पर सूर्य का अंकन पीठिका पर स्थित मिलता है। भीटा, बसाढ़, राजघाट की खुदाई में प्राप्त सिक्कों पर वृत्त को अग्निकुण्ड के समीप पीठिका के ऊपर अंकित दिखाया गया है।

मानव रूप में सूर्य की प्रतिमा पश्चिमी भारत के भॉजा नामक स्थान में प्राप्त हुई है। खण्डगिरि (उड़ीसा), बोधगया (प्रथम शताब्दी ई.पू.) की सूर्य–प्रतिमा को रथ पर आसीन दिखाया गया है। चार अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ सूर्य षक तथा यूनानी परम्परा में मिलते हैं। पटना में प्राप्त मुहरों पर भी ऐसा ही चित्रण मिलता है। कानपुर के समीप लाला भगत से प्रथम अथवा द्वितीय षती की सूर्य–प्रतिमा में अनेक परिवर्तन मिलते हैं। भुवनेश्वर के समीप उड़ीसा में जैन–गुफा के खण्डगिरि समूह में अनन्त गुफा से प्रथम शताब्दी की एक सूर्य–प्रतिमा मिली है। एलोरा गुफा की सूर्य–मूर्ति, घरापुरा में स्थापित सूर्य मन्दिर (5वीं शताब्दी), मिहिरकुल के 15वें राजा द्वारा स्थापित सूर्य–मन्दिर (6वीं शती), ललितादिव्य के मार्तण्ड–प्रासाद; पाल वंशीय शासनकाल की सूर्य–मूर्तियाँ (11वीं षती) तथा अनेक सूर्यमन्दिरों की स्थापना से सूर्य–उपासना का पता चलता है।

मथुरा से प्राप्त कुशाण कालीन सूर्य–प्रतिमा के चार घोड़ों के रथ पर आरूढ़ सूर्य के एक हाथ में कमल है और दूसरे हाथ में तलवार लिए लम्बा कोट और आच्छन्नपद सूर्य के स्कन्धों में गरूड़ की भाँति एक–एक पंख लगे हैं। मथुरा से प्राप्त कुछ अन्य सूर्य प्रतिमाओं की वेशभूषा शकों जैसी है। मध्यप्रदेश के नागौद में भुमरा से प्राप्त गुप्त कालीन सूर्य–प्रतिमाओं में कुषाण कालीन प्रभाव दिखायी देता है। गुप्तकाल के पश्चात सूर्य के साथ उषा, प्रत्यूषा, दण्ड–पिंगल, सारथी, 'अरुण' सम्मिलित हो गये।

मध्यकाल में सूर्य–पूजा का गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेष, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में व्यापक प्रचलन था।

मथुरा की सूर्य–प्रतिमाओं को उदीच्य–वेष में बनाया गया है। वृहत्संहिता (57.46–48) में उदीच्य–वेष में सूर्य–प्रतिमा के निर्माण का विधान है। पुराणों में सूर्य का जो विधान वर्णित है उसमें रथ की भी चर्चा है। उदीच्य–वेष में रथारूढ़ सूर्य–प्रतिमा का विधान मत्य–पुराण (260.104) में है। मथुरा कला–केन्द्र में ही सूर्य–प्रतिमायें प्रमुखता से बनती थीं। यहाँ पर सूर्य प्रायः स्थानक ही प्रदर्शित हुए हैं। भुमरा की गुप्तकालीन सूर्य–प्रतिमायें शैली, भाव–विन्यास और आकृति में भारतीय है। नेपाल–पाशुपत क्षेत्र के गुह्येश्वरी मन्दिर के समीप बाग्मती नदी के पूर्वी तट पर सूर्यघाट नामक एक स्थान है। वहाँ भगवान सूर्य

Scanned by CamScanner

का एक भव्य मन्दिर था, जो अब नष्ट हो गया है, परन्तु उसके स्थान पर एक छोटा दूसरा नवीन सूर्य–मन्दिर बना है। (नेपाल में सूर्य तीर्थ, कल्याण, सूर्य–अंक, पृष्ठ415)

सूर्य प्रत्यक्ष देव है। पंचतत्त्वों पर उनकी छत्रच्छाया है। अन्न, औशधि, आरोग्य, ऋतु–परिवर्तन सभी कुछ सूर्यदेव पर आश्रित है। ऋग्वेद् में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य को परमात्मा का प्रतिरूप मानते हुए, अन्य देवों को सूर्य के अधीन मानता है।

काश्मीर में मार्तंड मंदिर, अल्मोड़ा का सूर्य–मन्दिर, गया का दक्षिणार्क मंदिर, कोणार्क (कोणादित्य–ओड़ीसा); दक्षिण में कुम्भ कोणम में शिव–मन्दिर के पास सूर्य–मन्दिर है।

पुराणों में, विशेषकर भविष्य, अग्नि और मत्स्य पुराण में सूर्य सम्बन्धी परम्पराओं का निरूपण हुआ है। द्वादशादित्य की गणना शतपथ ब्राह्मण में भी है। इनके नाम क्रमशः धातृ, मित्र, अर्यमन, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, सविता, त्वष्टा और विष्णु मिलते हैं। मित्र तथा अर्यमन के नाम से सूर्य की पूजा ईरानियों में भी प्रचलित थी। सूर्य संबंधी कई पौराणिक आख्यानों का मूल वैदिक है। सूर्य की उपासना का इतिहास भी वैदिक है। उत्तर वैदिक साहित्य और रामायण–महाभारत में भी सूर्य की उपासना की बहुत चर्चा है। गुप्तकाल के पूर्व से ही सूर्य के उपासकों का एक सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ, जो 'सौर–सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सौर–सम्प्रदाय के उपासक उपास्य देव के प्रति अनन्य आस्था के कारण सूर्य को आदिदेव के रूप में मानने लगे। भौगोलिक दृष्टि से भी भारत में सूर्योपासना व्यापक रही। मुल्तान, मथुरा, कोणार्क, कश्मीर, उज्जयिनी, मोढेरा (गुजरात) आदि में सूर्योपासना के प्रसिद्ध केन्द्र थे। राजवंशों में भी कतिपय राजा सूर्य भक्त थे। मैत्रक राजवंश और पुष्यभूति के कई राजा 'परम आदित्य' भक्त के रूप में माने जाते थे।

ईस्वी सन् 473 में दशपुर (मालवा का आधुनिक मन्दसौर) में रेशम बुनने वाली 'श्रेणी' ने सूर्य–मन्दिर बनवाया (मन्दौर–अभिलेख)। राजतरंगिणी के अनुसार कष्मीर के ललितादित्य मुक्तापिड ने ईस्वी आठवीं शताब्दी में प्रख्यात् मार्तण्ड (सूर्य–मंदिर) बनवाया।

ह्वेनसांग ने अपने यात्रा–वष्तांत में सातवीं शताब्दी में मुल्तान में सोने की मूर्तिवाली प्रख्यात सूर्य–मंदिर देखने का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने कन्नौज में एक सूर्य–मन्दिर का उल्लेख किया है। एलापुर (एलोरा), भाजा और खण्ड गिरि की गुफाओं में भव्य सूर्य–मूर्तियाँ गढ़ी गईं। जिनसे पता चलता है कि चौथी–पाँचवी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारत में सूर्य–पूजा का अधिक प्रचार था। प्राचीन काल में गुजरात में षासन करने वाले पूर्व राजस्थान के वर्तमान भिलमान स्थान में एक प्राचीन कालीन सूर्य–मन्दिर अस्तित्व में है। कच्छ में कंथ कोट में नवीं शती का एक पुराना सूर्य–मन्दिर जीर्ण अवस्था में है। सौराष्ट्र में थान मित्रेश्वर के पास ग्यारहवीं षताब्दी का सूर्य–मन्दिर है। झालावाड़ा में एक नया सूर्य मन्दिर बनवाया गया है।

साबरमती और हाथपती के संगम के समीप बीजापुर के पास 'कोट्यर्क' का बहुत प्राचीन मंदिर है। यहाँ से क्षत्रप–रुद्रदामन के सिक्के मिले हैं, जो 150 ईस्वी के हैं। यहाँ कोटि+अर्क (करोड़ सूर्य) के तीर्थ–स्थल के रूप में माना जाता है। गुजरात का मोढ़ेरा का सूर्य–मन्दिर मोढ़–वैष्णवों के इष्ट देव का स्थान माना जाता है। पूर्व में उड़ीसा मे कोणार्क (कोण–अर्क) सूर्य–मन्दिर का निर्माण 13वीं शताब्दी में गंग वंश के राजा नरसिंह देव प्रथम ने करवाया था। भुवनेश्वर (ओड़ीसा) से 65 कि.मी. तथा जगन्नाथपुरी से 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। कोणार्क अर्थात् वह कोना जहाँ से सूर्योदय होता है। पुराणों में

Scanned by CamScanner

अर्क–क्षेत्र या पद्म–क्षेत्र को कोणार्क कहा गया है। मन्दिर के उत्तर में समीप ही चन्द्रभागा नदी प्रवाहित होती है। प्रभास क्षेत्र में (सोमनाथ) दो बड़े सूर्य–मन्दिर क्षतिग्रस्त हैं। त्रिवेणी संगम पर स्थित सूर्य–मन्दिर पूर्वाभिमुख है। कहा जाता है कि प्रभास क्षेत्र में सूर्य के बारह मंदिर थे।

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक सूर्य के अनेक स्वरूप देखने को मिलते हैं, उनके रोचक वर्णन कवियों, नाट्यकारों तथा कथाकारों ने किये हैं। ईरान के साथ भारत का संबंध बहुत पुराना है। इन दोनों देषों ने सूर्य–पूजा को व्यापक रूप से अपनाया। ईस्वी प्रथम शती में ईरान के सूर्य–पूजक पुजारियों का आगमन भारत में विषेश रूप से होता था। पेशावर, तक्षषिला, मथुरा आदि में सूर्य की ऐसी अनेक पाषाण–मूर्तियाँ मिली हैं। जिनमें सूर्यदेव को खड़े या बैठे यूनानी वेश–भूषा में दिखाया गया है। ईरान तथा मध्य एशिया में यह वेषभूषा बहुत प्रचलित थी, इसीलिए इसे उदीच्य–वेष (उत्तरीक्षेत्रों) की संज्ञा दी गई है। गुप्तकाल में सूर्योपासना का बहुत महत्त्व बढ़ गया था। वे प्रमुख पंचदेवों (विष्णु, शिव, देवी, गणेष, सूर्य) में सम्मिलित हुए। उत्तरगुप्तकाल से उदीच्यवेश के अतिरिक्त सूर्य की ऐसी बहुसंख्यक प्रतिमायें बनने लगी, जिसमें सूर्य को भारतीय वेशभूषा में दिखाया जाता था। उन्हें धोती तथा उत्तरीय पहने, दोनों हाथों में सनाल कमल धारण किए हुए प्रदर्शित किया जाने लगा। उनके रथ में सप्ताश्व मिलते हैं तथा उनका सारथि 'अरुण' भी दिखाया जाने लगा। सूर्य की अनेक मध्यकालीन प्रतिमाओं में सूर्य को तेजस्वी रूप में प्रभामण्डल सहित दिखाया गया है।

सातवाहन शासक सातकर्णि प्रथम की पत्नी नागनिका के नानाघाट लेख में प्राप्त शिलालेख में अन्य देवों के साथ सूर्य को भी नमस्कार किया गया है। स्कन्दगुप्त के समय का एक लेख इन्दौर (बुलंदशहर, उ.प्र.) से मिला है, जिसमें दशपुर (मन्दसौर) सूर्य–मन्दिर के समान, अचल वर्मा तथा भृकुंठसिंह द्वारा भास्कर का मन्दिर बनवाया गया और तिलपिषक (तेलियों) द्वारा दीप–प्रज्वलित रखने के लिए दान दिया गया, यह कार्य ब्राह्मण देव विष्णु को सौंपा गया। पंचाल के राजाओं में से दो के नाम क्रमशः सूर्य मित्र और भानु मित्र थे। उनके सिक्कों पर उनके नाम तथा दूसरी और सूर्य की प्रतिमा प्रदर्शित की। आहत तथा जनपदीय सिक्कों पर सूर्य का अंकन मिलता है। भारतीय पुरातत्व में उपलब्ध प्रमाण सूर्य–पूजा के परिचायक हैं।

भारत में सूर्य–पूजा, मन्दिर–निर्माण, प्रतिमोपासना वैदिक काल से भी प्राचीन है। द्वापर में भगवान कृष्ण और साम्ब विशेषरूप से सूर्य आराधक हुए। इनमें साम्ब का विस्तृत चरित्र साम्ब–विजय, साम्ब, उप–पुराण, वराह, भविष्य, ब्रह्म एवं स्कंद महापुराणों में प्राप्त होता है। उन्होंने कुष्ठ रोग के निवारण के लिए 'मूलस्थान' में सूर्य–मन्दिर का निर्माण कराया तथा सूर्य देव की आराधना कर रोग मुक्त हुए। सूर्यदेव ने उन्हें अपने प्रतिमा–स्थापना की बात बतलायी। शीघ्र ही उन्हें 'चन्द्रभागा' नदी में बहती हुई विश्वकर्मा निर्मित प्रतिमा मिली, जिसे उन्होंने मित्रवन में स्थापित किया। भगवान सूर्य ने साम्ब को फिर प्रातःकाल सुतीर (मुण्डीर), मध्याह्न में काल प्रिय (कालपी, उ.प्र.) तथा सायंकाल में मूल स्थान में अपने दर्शन देने की बात बतायी।

सांनिध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे दक्षते जनः।
कालप्रिये च मध्यान्हे पराहणे चात्र नित्यशः।।

(चंद्रभागा नदियाँ भारत में कई हैं। इनमें पंजाब की चन्द्रभागा (चनाव) तथा उड़ीसा की चन्द्रभागा विषेश रूप से प्रसिद्ध है। यह चन्द्रभागा सूर्य कानन या मित्रवन के पास की कोणार्क (ओड़ीसा) के पास वाली चन्द्रभागा ही है।)

Scanned by CamScanner

साम्ब ने कृष्णगंगा के दक्षिणी तट पर सूर्य–प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। जो मनुष्य प्रातः मध्यान्ह और अस्त होते समय सूर्य देव का यहाँ दर्षन करता है, वह परम पवित्र होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। साम्ब ने तीन कालों की तीन प्रतिमायें स्थापित करायी थीं। शाम्ब ने 'भविष्य पुराण' में निर्दिष्ट विधि के अनुसार एक मूर्ति स्थापित करायी। मथुरा का वह श्रेष्ठ स्थान 'साम्बपुर' प्रसिद्ध हुआ।

"नमः सूर्याय षान्ताय सर्व रोग विनाशिने।
आयुरारोग्यमैष्वर्यं देहि देवि जगत्पते।।"

जोधपुर के निकट ओसियाँ गाँव में दो हरिहर तथा एक सूर्य मन्दिर उल्लेखनीय हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूर्य–मन्दिर है। ओसियाँ का सूर्य–मन्दिर अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। कश्मीर नरेश के समय का मार्तण्ड मंदिर हिन्दू–परंपरा का विषाल मंदिर है। मथुरा की सूर्य–प्रतिमाओं में सूर्य को रथारूढ़ या आसनस्थ दिखाया गया है। अब तक प्राप्त बारह कुषाणकालीन में एक प्राचीन तम उल्लेखनीय है। इस प्रतिमा में सूर्य चरण चौकी पर घुटनों को उठाकर बैठे हुए हैं। उनके पैरों के नीचे अग्निवेदी है। सूर्य की टोपी गोल और चपटी है, कन्धों पर लहराते केश हैं। नोकदार मूछें, लम्बाकोट, कसा पाजामा, पैरों के जूते विदेषी वेशभूषा है। सूर्य की उपासना ईरान (शक द्वीप) से आये 'मगों' ने प्रारम्भ की थी।

बुन्देलखण्ड में सूर्य–पूजा का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। सम्राट कुमार गुप्त प्रथम और बंधुवर्मा के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है कि लाट देश (गुजरात) की रेशम बुनने वालों की 'श्रेणि' ने दशपुर (मन्दसौर) में विपुल धन खर्च करके एक सूर्य–मन्दिर का निर्माण ईस्वी 436 में कराया था। इससे पूर्व प्रागैतिहासिक काल के शैलचित्रों में सूर्य–चन्द्र आदि प्रतीकों के अंकन आबचन्द (सागर) तथा भीमबैठका (रायसेन) से ज्ञात हुए हैं। प्राचीन आहत सिक्कों के ऊपर भी सूर्य–चन्द्र का उत्कीर्णन देखने को मिलता है। मिहिरकुल के ग्वालियर प्रषस्तिलेख, जो ग्वालियर दुर्ग में स्थित एक सूर्य–मन्दिर की दीवार पर लगी प्रस्तर–पटि्टका, जो वर्तमान में इण्डियन म्यूज़ियम कलकत्ता (कोलकाता) में है। यह लेख धर्म प्रधान है, जो सूर्य की स्तुति से आरम्भ होता है। तोरमाण सूर्यदेव का उपासक था। अतः उसने अपने पुत्र का नाम 'मिहिर' (सूर्य) रखा। इस लेख का प्रयोजन मातृचेट द्वारा गोप नामक पर्वत पर एक सूर्य मंदिर के निर्माण का उल्लेख करना है। भुमरा से ज्ञात सूर्य–प्रतिमा कलात्मक है।

अजयगढ़ (पन्ना) के दुर्ग में स्थित सूर्य–प्रतिमा, सेसई सूर्य–मन्दिर, ऊमरी (टीकमगढ़), अचट की सूर्य–प्रतिमा, खजुराहो (छतरपुर) स्थिति चित्रगुप्त का सूर्य–मन्दिर जिसमें 5 फुट 8 इंच ऊँची सूर्य प्रतिमा, लक्ष्मण–मन्दिर, प्रतापेश्वर मंदिर, दूल्हादेव मंदिर, जवारी तथा विश्वनाथ, केन्द्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय (खजुराहो), एरण (सागर) की गुप्तकालीन स्थानक सूर्य–प्रतिमा, मढ़खेड़ा (टीकमगढ़) सूर्य–मन्दिर; धुबेला (छतरपुर) संग्रहालय में प्रदर्शित सूर्य प्रतिमाएँ, राशि चक्र, दिक्मण्डल, नवग्रह आदि सौर–धर्म की प्रतिमाएँ मिली हैं। खजुराहो के मन्दिरों में अनेक सूर्य–प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं, जिससे पता चलता है कि चंदेल शासकों के शासनकाल में 'सौरमत' का व्यापक प्रचार–प्रसार बुंदेलखण्ड में हुआ।

सूर्य–मन्दिर मढ़खेरा (टीकमगढ़) ग्राम के किनारे दक्षिण–पूर्व में स्थित है। मन्दिर का अधिष्ठान तथा पूर्ण ढाँचा लाल–बलुआ पत्थर से निर्मित है। अधिष्ठान भाग में क्षैतिजीय क्रम से ऊपर की ओर उठा हुआ है। बीच–बीच में लघु–प्रतिमायें हैं। अर्धमण्डप की छत कमल पुष्पों से सुसज्जित है। अर्धमण्डप के सम्मुख स्तम्भ का आधार भाग चतुष्कोणीय है तथा पाँच खण्डों में निर्मित है। स्तम्भ–प्रकोष्ठ के ऊपर कलश, आमलक, लघु–शिखर, चतुर्भुजी अश्विनी कुमार, कीर्तिमुख तथा घट–पल्लव हैं, इस मन्दिर की बाहरी दीवारे सूर्य एवं अन्य कलाकृतियों से परिपूर्ण हैं।

Scanned by CamScanner

सूर्य–मन्दिर उमरी (टीकमगढ़) 8वीं–9वीं षती में निर्मित भव्य मन्दिर है। सौर–स्मारकों की परम्परा में टीकमगढ़ जिले से ज्ञात ये दोनों सूर्य–मन्दिर अच्छी हालत में हैं, जबकि छतरपुर का सूर्य–मंदिर क्षतिग्रस्त है। खजुराहो (छतरपुर) का चंदेलकालीन चित्रगुप्त मन्दिर, सूर्य प्रतिमाएँ अप्रतिम है। धुबेला संग्रहालय की सूर्य–प्रतिमायें, नक्षत्र फलक, दिक्–मण्डल, राषियॉं, नवग्रह आदि दुर्लभ कोटि की हैं।

रहली का सूर्य–मन्दिर (सागर जिला) :

सागर जिले के कतिपय महत्वपूर्ण स्थलों में रहली नगर (तहसील मुख्यालय) सोनार तथा देहार नदियों के संगम पर स्थित है। रहली में सूर्य–मन्दिर, पण्डरीनाथ जी का मन्दिर, 18वीं शताब्दी का भग्न किला तथा बायें तट पर दिगम्बर जैन मतावलम्बियों का अतिषय तीर्थक्षेत्र तथा अन्य देवालय है।

रहली का सूर्य मन्दिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से इस सूर्य–मन्दिर का निर्माण काल 9वीं–10वीं शती प्रतीत होता है। अब यह मन्दिर क्षतिग्रस्त अवस्था में है। विवेच्य मन्दिर में प्रमुख प्रतिमा सूर्य देव भगवान की है। अन्य देव प्रतिमाओं में विष्णु, लक्ष्मी–नारायण, उमा–महेश्वर, ब्रह्म, शिव, हरिहर, सरस्वती, चामुण्डा, नाग–नागी, सुर–सुन्दरियॉं, दिक्पाल तथा कलात्मक स्थापत्य–खण्ड संरक्षित हैं। स्थानीय लोग सोनार–देहार संगम तीर्थ में स्नान कर सूर्योपासना कर पुण्य–अर्जित कर जीवन को सत्मार्ग पर लाकर आध्यात्मिक चिंतन करते हैं। भगवान भास्कर देव की पूजा–अर्चना, पूजा–उपवास से मानव को इहलौकिक तथा पारलौकिक आनंद और पुण्य–फल मिलता है।

पण्डरीनाथ जी का मन्दिर भी प्रमुख आध्यात्म चिंतन का केन्द्र है। महाराष्ट्र प्रांत में स्थित मौलिक पण्डरीनाथ मन्दिर की शैली में ही इसका निर्माण किया गया है। इस मन्दिर का निर्माण स्थानीय मराठा जागीरदारों द्वारा 17वीं–18वीं शताब्दी ईस्वी में करवाया गया था।

नदी के बायें तट पर एक परकोटे के भीतर जैन–मन्दिरों का भव्य समूह है। यह जैन–मतावलंबियों का अतिशय तीर्थ–क्षेत्र है। जैन–तीर्थकरों की भव्य प्रतिमायें मन्दिरों में प्रतिष्ठित हैं, जो 15वीं–16वीं शताब्दी में निर्मित किए गए प्रतीत होते हैं। इन मन्दिरों की आंतरिक भित्तियों में विविध धार्मिक जैन आख्यानों के चित्रों का अंकन देखने को मिलता है, जो जैनमत तथा जैन–तीर्थकरों के जन्म–वृतान्त तथा अन्य धार्मिक अवसरों से संबंधित हैं।

रहली के सूर्य–मन्दिर की कतिपय कलाकृतियाँ, नवग्रह, सिरदल फलक (रहली), सूर्य का अलंकृत खण्ड, सूर्य नवग्रह, तथा सप्तमातृकायें (सागर), हरिसिंह गौर पुरातत्व संग्रहालय, स्थानक सूर्य (सागर वि. वि. संग्रहालय) में प्रदर्शित हैं। यहाँ हरिहर–हिरण्यगर्भ (मल्हार–बिलासपुर) की आसनस्थ प्रतिमा कलात्मक है। रहली नगर से लगभग 4 कि.मी. दक्षिण की ओर टिकीटोरिया में रहली के गोपाल राय द्वारा बनवाया गया देवी–मन्दिर दर्षनीय है। रहली का सूर्य–मंदिर राज्य शासन द्वारा संरक्षित स्मारक है।

रहली के समीप गढ़ाकोटा, चाँदपुर तथा बलेह आदि प्राचीन स्थल हैं। रानगिर में हरसिद्धि माता–मन्दिर सुप्रसिद्ध धार्मिक–केन्द्र है। पर्यटन की दृष्टि से रहली–क्षेत्र विशेष महत्वपूर्ण है। आबचन्द की प्रागैतिहासिक चित्रित गुफाएँ तथा रानगिर के शैलचित्र (गौरीदाँत गुफा) दर्षनीय है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश में सूर्य–पूजा से सम्बन्धित पुरातात्त्विक साक्ष्य हमे एरण (सागर) विदिशा तथा उज्जयिनी के आहत सिक्कों पर मिलते हैं। ये सिक्के ईस्वी पूर्व तृतीय षताब्दी के हैं। इन पर अष्टदल कमल पुश्प का अंकन मिलता है, जो सूर्य के प्रतीक हैं। भरहुत (सतना जिला)

Scanned by CamScanner

बौद्ध स्तूप पर भी सूर्य का प्रतीक 'चक्र' अंकित है। बुन्देलखण्ड के भू–भाग से विविध कलाकेन्द्रों से सौर–प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जो सौर–पूजा को अभिव्यक्त करती हैं।

कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मन के मंदसौर षिलालेख से एक सूर्य–मंदिर के निर्माण का विवरण प्राप्त होता है, इसे जुलाहों या बुनकरों ने बनवाया था। भुमरा (सतना) से प्राप्त सूर्य–प्रतिमा में अनुचरों की वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। हूणवंशीय मिहिर कुल के ग्वालियर अभिलेख में सूर्य–प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख है।

नागवंशीय सूर्य स्तम्भ–शीर्ष पवाया के निकट प्राप्त हुआ था। मध्यप्रदेश में कायथा (उज्जैन), मोड़ी (मन्दसौर), देपालपुर (इन्दौर) आदि से 6वीं षती से लेकर 10वीं शती तक निर्मित सूर्य–प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। मध्यकाल में अनेक सूर्य–मन्दिर बने। मढ़खेड़ा (टीकमगढ़) में प्रतीहारों एवं खजुराहो (चित्रगुप्त मंदिर) में चंदेलों ने सूर्य मंदिर का निर्माण कराया।

परमारयुगीन दो प्रतिमायें मांडव (इंदौर) से उपलब्ध हुई हैं। एक प्रतिमा में सात अश्वों के रथ को अरुण सारथी के द्वारा चलाया जा रहा है। ललितासन में बैठे सूर्य के दोनों हाथों में सनाल पद्म पुष्प है। दूसरी सूर्य प्रतिमा श्वेत संगमरमर की है। परमारकाल की ये दोनों प्रतिमायें सौर–पूजा की ओर संकेत करती हैं।

मध्यकाल में सूर्य–पूजा के अस्तित्व की सूर्य प्रतिमायें अनेक स्थलों से प्राप्त हुई हैं। सुरवाया (शिवपुरी) की ध्वस्त–मन्दिर की दीवाल पर 10वीं शती की सूर्य–प्रतिमा उत्कीर्ण है। विदिशा के विश्रामगृह के बाहर 2 फुट 11 इंच ऊँची सूर्य प्रतिमा रखी है।

धुबेला (छतरपुर) के राजकीय पुरातत्व संग्रहालय में मध्यकालीन सूर्य प्रतिमायें प्रदर्शित हैं। सुहानिया (ग्वालियर) से प्राप्त सूर्य की दो प्रतिमायें ग्वालियर संग्रहालय में संरक्षित हैं। इन्दौर के देपालपुर नामक स्थान से प्राप्त रथारूढ़ सूर्य देव की प्रतिमा में आभामय मुख–मण्डल की सुन्दरता को प्रदर्शित किया गया है। मन्दसौर जिला के भाड़ोत नामक स्थान से प्राप्त सूर्य–प्रतिमा में सभी शिल्प–शास्त्रीय लक्षण दृष्टिगत होते हैं। भोपाल संग्रहालय की हरिहर की प्रतिमा दुर्लभ कृति है।

रहलिया सूर्य–मन्दिर (राहिल्यदेव–महोबा, झांसी संग्रहालय, उ.प्र.), रहली (सागर) का सूर्य–मंदिर छतरपुर, खजुराहो, उमरी, मढ़खेड़ा, अचट के सूर्य मन्दिर सौरमत का प्रतिपादन करते हैं। मध्यप्रदेश के प्रायः सभी पुरातत्व संग्रहालयों में सूर्य, नवग्रह, सूर्यपुत्र रेवन्त की कलात्मक प्रतिमायें देखने को मिली हैं। एरण (सागर) की गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमा उल्लेखनीय है। डॉ. हरिसिंह गौर पुरातत्त्व संग्रहालय में हरिहर–हिरण्यगर्भ की आसनस्थ प्रतिमा (मल्हार से प्राप्त), धुबेला संग्रहालय की रेवन्त प्रतिमा, सोहागपुर, शहडोल की रेवंत प्रतिमा उल्लेखनीय है। सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय में स्थानक सूर्य (सागर), नवगृहशिल्प–पट्ट, खजुराहो के संग्रहालय की सौर–प्रतिमायें शिल्पकला की अनुपम धरोहर हैं। बिहार तथा उत्तरप्रदेश में कार्तिक मास में छठ पूजा में सूर्य भगवान को अर्ध्य देते हैं। सूर्य के मकर राशि में आने पर उत्तरायण में सूर्य की अवस्था मकर–संक्रान्ति कहलाती है, इस काल में पवित्र नदियों तथा तीर्थों में सूर्य–पूजा का महत्व है।

"नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः" (भविष्यपुराण, ब्रह्म पर्व अ. 48)

प्रातःकाल पूर्वाभिमुख होकर सूर्य पूजन अर्चन वंदन करते हैं। सूर्य की पूजा से भी व्याधियाँ, रोग, चर्मरोग इत्यादि कष्ट दूर हो जाते हैं। सूर्य, सृष्टि में नव–शक्ति ऊर्जा का संचार करते हैं। सूर्योपासना से मुक्ति प्राप्त होती है। सूर्य–भगवान स्वतः नारायणदेव हैं। पितृपक्ष में हम सूर्य भगवान को तिल सहित

Scanned by CamScanner

अंजुलि में जल लेकर पितरों को जल का तर्पण करते हैं। इस प्रकार भगवान सूर्य हमारे परम आराध्य देव हैं। सूर्य कवच, सूर्य हृदय स्तोत्र पाठ करने के अनेक वैदिक विधि–विधान हैं। नवग्रहों में सूर्य का स्थान सर्वोपरि है। सौर–उपासकों के छह वर्ग माने गए हैं–

- प्रथम सम्प्रदाय के भक्त उदीयमान सूर्य का भजन करते हैं एवं सृष्टि का कारण वे सूर्य को ही मानते हैं।
- द्वितीय सम्प्रदाय के साधक मध्यान्ह काल के सूर्य की आराधना करते हैं। उनके अनुसार सूर्य संहार करने वाले महेष्वर हैं।
- तष्तीय सम्प्रदाय के साधक सायंकाल सूर्य की उपासना करते हैं ,वे सूर्य को पालनकर्ता विष्णु मानते हैं।
- चतुर्थ सम्प्रदाय के भक्त प्रकाशपुंज की ही उपासना करते हैं। वे त्रिकालीन सूर्य को त्रिमूर्ति के रूप में मानते हैं।
- पंचम सम्प्रदाय के भक्त या साधक सूर्य मण्डल को देखकर पूजा करते हैं। वे हिरण्य केश एवं हिरण्यस्मश्रु की परमात्मा के रूप में आराधना करते हैं तथा वे लोग शोडषोपचार से सूर्य की पूजा करते हैं।
- छठवें प्रकार के साधक शतरूद्रीय पाठ करके 'ऊँ घृणि सूर्याय नमः' का मंत्र जाप करते हैं। 'ऊँ भास्कराय विद्महे महातेजसे धीमहि तन्नः सूर्यःप्रचोदयात्' (डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 राय, सुरेशव्रत जी : सूर्य–पूजा की व्यापकता सूर्य अंक 'कल्याण' वर्ष 53 संख्या 1, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 410–413

2 उपाध्याय, श्री बलदेव जी (आचार्य) : सूर्यपूजा की परम्परा और प्रतिमाये, कल्याण, सूर्य अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, वर्ष 53, संख्या 1, पृष्ठ संख्या 414–415

3 वर्मा, बिहारीलाल जी (श्री सावलिया) : वैदिक सूर्य का महत्व और मंदिर, सूर्यांक पृष्ठ 416–17

4 व्यास, उमिया शंकर जी : भारत में सूर्य–पूजा और सूर्य–मन्दिर, कल्याण, सूर्य–अंक, गोरखपुर

5 वाजपेयी, कृष्णदत्त जी (प्रोफेसर) : भारतीय पुरातत्त्व में सूर्य कल्याण, सूर्य अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 423–425

6 श्री हर्षदराय प्राणशंकर जी बधको : भारत में सूर्य–मूर्तियाँ, 'कल्याण' सूर्यांक, पृ.. 425–427

7 शर्मा, जानकी नाथ जी : भारत के अत्यन्त प्रसिद्ध तीन प्राचीन सूर्य–मन्दिर 'कल्याण', सूर्यांक, पृ. 427–428

8 ''वही'', पृष्ठ 428 :

9 श्रीवास्तव, ए., एल. : भारतीय कला, किताब महल, पटना 7वाँ संस्करण, वर्ष 2013, पष्ठ 92 तथा 148

Scanned by CamScanner

18 महेशपुर की कला एवं संस्कृति

हेमलता मिंज

महेशपुर ग्राम सरगुजा जिले के उदयपुर तहसील के अन्तर्गत अम्बिकापुर बिलासपुर मार्ग पर उदयपुर के पहले बायें तरफ जजगीर केदमा मार्ग पर रेण नदी के बायें तट पर 22.48′ उत्तरी अक्षांस एवं 83.20′ दक्षिणी देशांस पर स्थित है। यहाँ से निकटतम अम्बिकापुर रेलवे स्टेशन लगभग 45 कि.मी. दूर है। वनों से आच्छादित रेण तट पर स्थित ग्राम महेशपुर एवं आसपास के क्षेत्रों में 8वींसदी ई. से 13वीं सदी ई. के मध्य तक के पुरावशेषों के दर्शन होते हैं। रेण नदी सरगुजा की जीवनदायिनी नदी है। इस नदी को अंचल की प्राचीन नदियों में गिना जाता है। इस नदी के तट पर ऋषि जमदग्नि के आश्रम होने एवं तपोभूमि होने का उल्लेख प्राचीन साहित्यों में हुआ है। ऋषि जमदग्नि की पत्नी एवं परषुराम जी की माताश्री रेणुका से ही इस नदी का नाम रेण पड़ा। इसे कालंतर में रिहन्द, रेंड, तथा रेहर के नाम से संबोधित किया जाता है। इस नदी का ब्रह्म पुराण में रेण एवं मत्स्य पुराण में रेणुका नाम होने का उल्लेख मिलता है। सरगुजा जिले की गंगा रेण नदी का उद्‌गम स्थल मतरिंगा पहाड़ (सरगुजा जिला) है।रेण नदी के उद्‌गम स्थल मतरिंगा पहाड़ से महेशपुर तक का सम्पूर्ण वनाच्छादित क्षेत्र, प्रागैतिहासिक काल और ऐतिहासिक काल के विभिन्न पुरावशेषों को अपने आँचल में समेटे हुए है। यह पुरास्थल शैव, वैष्णव, और जैन धर्म से संबंधित है। कहा जाता है कि इस क्षेत्र में त्रिपुरी के कलचुरी शासकों का अधिपत्य था। कलचुरी शासक शैव सम्प्रदाय के उपासक थे। कलचुरी कालीन कला और संस्कृति से संबंधित साक्ष्य भी प्रकाश में आ चुके हैं। पुरातात्विक स्थल महेशपुर ग्राम के निकटतम प्राचीन पुरास्थलों में लक्ष्मणगढ़, रानूमाड़ा, रामगढ़, एवं देवगढ़ महत्वपूर्ण हैं।

महेशपुर में कई मंदिर के पुरावशेषों की जानकारी मिलती है जो स्थापत्य कला के आधार पर लगभग 9वीं सदी ई. के समकालीन है तथा सरगुजा में कलचुरी राजवंष के राजाओं से संबंधित कई ग्राम आज भी हैं जैसे लखनपुर (लक्ष्मणराज से संबंधित), शंकरगढ़ (वर्तमान शंकरगढ़ तहसील) आदि इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। इस क्षेत्र में त्रिपुरी के कलचुरी शासकों का अधिपत्य था। डॉ. एस. के. पाण्डेय के अनुसार, कलचुरी नरेश युवराजदेव प्रथम के महेषपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र पर डाहल के कलचुरियों का अधिपत्य 9 वीं सदी ई. के प्रारंभ में (ई. 805 से ई. 82) हो चुका था। 'झारखण्ड झंकार'

Scanned by CamScanner

नामक पुस्तक के अनुसार, महेषपुर ग्राम में कुल 12 मंदिरों के अवशेष हैं जिनमें से एक ईंट का तथा शेष पत्थर के थे। भारतीय गजेटियर सरगुजा 1 के अनुसार, रामगढ़ के पूर्व दिषा में लगभग 9.6 कि.मी. दूरी पर सिरिधी के निकट और कोहर के तट पर 12 मंदिरों के भग्नावशेषों को 1864 में मि. डेलगन ने उत्खनन कार्य किया था। संभवतः यह स्थल महेशपुर ग्राम हो सकता है। आज भी इन टीलों के भग्नावशेषों दृष्टव्य हैं। इन मंदिर समूहों में शैव, वैष्णव और जैन तीनों धर्मों से संबंधित स्थापत्य कला और संस्कृति के दर्शन होते हैं। इन मंदिर समूहों को 5 भागों में बांटा गया है।

1) शिवमंदिर समूह
2) निशान पखना देउर समूह
3) कुरियाझुरकी (छेरका देउर समूह) मंदिर समूह
4) भीतरदुरा मंदिर समूह
5) आदिनाथ मंदिर समूह

इन मंदिर समूहों में से वर्ड्ढ 2008.2009 में पुरातत्वविद श्री जी. एल. रायकवार, संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्व, रायपुर, छ. ग. द्वारा शिवमंदिर समूह एवं आदिनाथ मंदिर समूह में उत्खनन कार्य कराया गया। इसके पश्चात वर्ष 2009–2010 में निशान पखना देउर समूह और वर्ष 2010–2011 में कुरिया झुरकी मंदिर समूह का उत्खनन कराया गया है। वर्तमान में श्री जी. एल. रायकवार एवं रसायनविद् डॉ. कामता प्रसाद वर्मा, संस्कृति विभाग, रायपुर द्वारा इन भग्नावशेष मंदिर समूहों का पुनरुद्धार किया जा रहा है। इसके लिए भारत देश के विभिन्न राज्यों से आए कलाकारों की सहायता ली जा रही है।

1) शिवमंदिर समूह

भगवान शिव को समर्पित यह मंदिर समूह उत्खनन के दौरान वर्ष 2008 में प्रकाश में आया है।यह मंदिर रेण नदी के किनारे अंतिम मंदिरावशेष है। इस मंदिर समूह में कुल 5–6 मंदिर अवस्थित हैं। इनमें सबसे बड़ा और प्रमुख शिवमंदिर, ताराकृति लिए बड़ा शिवमंदिर है। दक्षिण कोसल में ताराकृति मंदिरों की प्राप्ति सोमवंशी काल (लगभग 7.8वीं शती ई.) से प्रारंभ होती है। वर्गाकार गर्भगृह में स्थित शिवलिंग जलहरी युक्त है। इस मंदिर के निर्माण में पत्थर और पकाई गई ईंटों का प्रयोग किया गया है। इस स्थल के उत्खनन से प्राप्त पुरावशषों में द्वारपाल, नदी देवी, द्वारशाखा, गजलक्ष्मी युक्त स्तंभ, अलंकृत स्तंभ, गणेश, विष्णु प्रतिमा खण्ड, और त्रिविक्रम आदि बहुमूल्य प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं।

2) निशान पखना देउर समूह

यह मंदिर समूह महेषपुर ग्राम से रेण नदी की ओर जाने वाली कच्ची सड़क मार्ग में दायें तरफ आदिनाथ मंदिर के बाद स्थित है। इस मंदिर समूह का उत्खनन, तत्कालीन उत्खनन निदेशक श्री जी. एल. रायकवार द्वारा वर्ष 2009–2010 में करवाया गया था। स्थानीय ग्रामीणों द्वारा इस मंदिर समूह को निशान पखना देउर समूह के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर समूह में कुल 4 प्रस्तर निर्मित मंदिर एक समूह में स्थित हैं। उत्तर दिशा की तरफ से प्रथम टीले में 2 मंदिरावशेष मध्य टीले में 3 मंदिरावशेष एवं सबसे दक्षिणी किनारे में एक बड़ा एवं दो छोटे मंदिरावशेष हैं। उपर्युक्त टीलों के पश्चिम में एक बड़ा टीला

Scanned by CamScanner

है जिसमें उत्तर की तरफ बड़ा मंदिर एवं दक्षिण की तरफ छोटे छोटे मंदिर हैं। इस समूह में विष्णु मंदिरों की अधिकता है। यहाँ से विष्णु, वराह, सूर्य, नषसिंह, उमामहेश्वर, कृष्णलीला से संबंधित फलक, द्वारशाखाएँ, विविध नायिकाएँ, सिरदल तथा कई महत्वपूर्ण प्रस्तर खण्ड प्रकाश में आए हैं।

कुरियाझुरकी (छेरका देउर समूह) मंदिर समूह

यह मंदिर समूह महेषपुर ग्राम से रेण नदी की ओर जाने वाली कच्ची सड़क मार्ग पर बायीं ओर, भीतरदुरा टीला के बाद स्थित है। इस मंदिर समूह का उत्खनन कार्य वर्ष 2010 में श्री जी.एल. रायकवार द्वारा करवाया गया था। यहाँ उत्खनन कार्य के दौरान एक ऊँचे जगती के ऊपर 4 मंदिरों के अवशेष प्रकाश में आये हैं। ये सभी मंदिर पश्चिमाभिमुखी हैं। यहाँ से कई महत्वपूर्ण प्रस्तर प्रतिमाएँ जैसे :–सूर्य, उमामहेश्वर, सिरदल, सप्तमातृकाएँ, अलंकरण स्थापत्य खण्ड, खण्डित विष्णु प्रतिमा, खण्डित नृसिंह प्रतिमा, गरूड़ासीन लक्ष्मीनारायण, महिषासुरमर्दिनी, गजलक्ष्मी, वराह, चतुर्भुजी विष्णु, नायक तथा नायिका की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

Scanned by CamScanner

4) भीतरदुरा मंदिर समूह

यह टीला रेण नदी की ओर जाने वाली कच्ची सड़क मार्ग पर बायीं तरफ कुरिया झुरकी मंदिर समूह के पहले तथा आदिनाथ मंदिर के सामने स्थित है। इस टीले में 3 मंदिरों का समूह है, जो पूर्व से पश्चिम में फैला हुआ है। वर्तमान में इस टीले की उत्खनन नहीं हुआ है। इस टीले में कई महत्वपूर्ण स्थापत्य खण्ड दबे हुए हैं।

5) आदिनाथ मंदिर समूह

महेशपुर ग्राम से रेण नदी की ओर जाने वाली सड़क मार्ग पर दायीं तरफ आदिनाथ मंदिर के पुरावशेष तथा सड़क के बायीं तरफ दो लघु आकार के टीले स्थित हैं। आदिनाथ टीले का उत्खनन कार्य वर्ष 2008 में श्री जी. एल. रायकवार एवं रसायनिक संरक्षण कार्यवर्ष 2008–2009 में डॉ. कामता प्रसाद वर्मा, द्वारा कराया गया है। उत्खनन से प्राप्त प्रस्तर षिलालेख महत्वपूर्ण है, जिसे लगभग 10वीं शती ई. का माना जाता है। इस मंदिर में आदिनाथ की एक प्रतिमा पद्मासन ध्यान मुद्रा में रखी हुई है, जिसे ग्रामीणों द्वारा साधु बाबा के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर में आदिनाथ के अतिरिक्त नृसिंह, गणेश, नदी देवी से युक्त द्वारशाखा, विशाल हनुमान प्रतिमा का अधिष्ठान भाग, भारवाहक तथा अन्य अलंकष्त पाषाण खण्डित अवशेष बिखरे हुए हैं।

पुरातत्वविदों का मानना है कि इस स्थल पर मंदिर निर्माण में प्रयुक्त भूरा तथा दानेदार बलुआ पत्थर टांकीनारा नामक खदान से लाया जाता रहा होगा। यह खदान रेण नदी तट पर स्थित है। वर्तमान में इस खदान पर स्थानीय ग्रामीणों द्वारा कृषि कार्य किया जाता है। महेशपुर तथा रेण नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में बसे ग्राम एवं सघन वनों के सर्वेक्षण से प्राप्त प्रागैतिहासिक कालीन पाषाण उपकरण, इस क्षेत्र में आदिमानवों के निवास स्थल के साक्ष्य हैं। महेशपुर ग्राम से लगभग 9 कि.मी. की दूरी पर, के दमा जाने

Scanned by CamScanner

वाली सड़क मार्ग में बायीं ओर रानूमाड़ा नामक गुफा अवस्थित है। इस प्राचीन गुफा में जलप्रवाह से निर्मित तीन प्रवेशद्वार हैं। इस गुफा को देखकर ऐसा लगता है कि प्रागैतिहासिक काल में आदिमानव यहाँ निवास करता रहा होगा। स्थानीय ग्रामीणों का कहना है कि पूर्व में यह गुफा छोटी थी। लेकिन कालांतर में जल रिसाव होने के कारण यह गुफा काफी विषाल हो गई। जल रिसाव के कारण यहाँ ग्रीष्म ऋतु में भी शीतलता बनी रहती है। इस गुफा के ऊपरी धरातल पर सूक्ष्म पाषाण उपकरण आज भी मिलते हैं, जो कि चर्ट, अगेट, क्वार्टज आदि कठोर पाषाणों के द्वारा निर्मित किए गए हैं।

अभी भी महेशपुर ग्राम में स्थापत्य कला और संस्कृति से संबंधित महत्वपूर्ण पुरावशेष मिट्टी के भूगर्भ में समाए हुए हैं। महेशपुर की कला का कुछ ही भाग प्रकाश में आया है और इनका रासायनिक संरक्षण कार्य भी किया जा रहा है। वर्तमान में संस्कृति विभाग के माध्यम से यहाँ प्राचीन धरोहरों को सहेजने का काम चल रहा है। उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश सहित भारत देश के कई राज्यों के कलाकार यहाँ के पुराने टीलों को संवारने में लगे हुए हैं। यहाँ बिखरे भग्नावशेषों को देखने के बाद, कल्चुरी राजाओं की संस्कृति और कला की वैभवता का पता चलता है।

संदर्भ

1. वर्मा, कामता प्रसाद, छत्तीसगढ़ की स्थापत्य कला, संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्व, रायपुर, छत्तीसगढ़, 2010.
2. वर्मा, रघुवीर प्रसाद, झारखण्ड झनकार, द्वितीय संस्करण, रायपुर, 2005.
3. यदु, हेमू, छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक वैभव, नई दिल्ली, 2002.
4. वर्मा, कामता प्रसाद, महेशपुर की कला, संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्व, रायपुर, छत्तीसगढ़, 2012.
5. भट्ट, एस. सी., द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ छत्तीसगढ़, 2003.
6. निगम, एल. एस., दक्षिण कोसल का ऐतिहासिक भूगोल, 1998.
7. कनिंघम, ए. एस. आई. रिपोर्ट, वाल्युम .
8. पाण्डेय, एस. के., दक्षिण कोसल, छ.ग. का इतिहास तथा वास्तुशिल्प, 2002.
9. सिंहदेव, समरबहादुर, सरगुजा का ऐतिहासिक द्वितीय संस्करण, 2002.
10. षर्मा, राजकुमार, कलचुरी राजवंश और उनका युग, खण्ड 2, 1998.

Scanned by CamScanner

19 कालिदास द्वारा उद्धत मदिरा के प्रकार

मुकेश कुमार शाह

प्रस्तुत आलेख में कालिदास के युग में मदिरा पान के अनेक संदर्भ उनके ग्रन्थों में मिलते है जिनका विवरण रघुवंश, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, अभिज्ञानशकुन्तलम् और कुमारसंभव में मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि इस युग में मद्य–पान के प्रति लोगों में अधिक आसक्ति थी और इसके विभिन्न प्रकार का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। जनसाधारण के अवसरिक अमिताचरण के असंख्य संकेत कालिदास करते है, जो कभी–कभी इतना मद्यपान कर लेते थे कि उसके परिणाम पर संयमन रखना कठिन हो जाता था।[1] केवल पुरुष ही नहीं, अपितु स्त्रियाँ भी आसव–पान का आनन्द लेती थी। ऐसा विश्वास था कि नशे से स्त्रियों में एक विशिष्ट मनोहारित्व आता है।[2] 'मालविकाग्निमित्र' में अग्निमित्र की रानियों में इरावती मद्य के[3] नशे में देखी जाती हैं। 'रघुवंश' में अज की प्यारी रानी इन्दुमती अपने पति के मुख से मद्य लेती थी जो अपने मुख से सीधे उसके मुख में[4] स्थानान्तरित कर देता था। 'कुमारसंभव' में शिव को मद्य–पान करते तथा अपनी पत्नी को आसव पिलाने[5] का संदर्भ मिलता हैं। 'अभिज्ञानशकुंतलम्' में नागरिक तथा उसके नगर–रक्षकों के मद्य–पान[6] का पाठ मिलता हैं। 'रघुवंश में रघु के समस्त सैन्य को नारियल का मद्य[7] पीते हुए उल्लेख किया गया है। हमें पान–पात्र[8] (चवक) मद्यशाला[9] और पान–पात्र से संकुल (चशकोत्ता) मद्य–पान[10] की खुली भूमि (पान–भूमि) के संकेत भी प्राप्त होते हैं। कालिदास की रचनाओं में मद्य के लिए सामान्य शब्द हैं 'मद्य'[11] आसव[12] मधु[13] और मदिरा[14] यद्यपि वारुशी[15], कादम्बरी[16] और शीधु[17] जैसे वाक्यांश भी प्रयुक्त हुए हैं। कालिदास विशेषकर मद्य के तीन प्रकारों का उल्लेख करते हैं यथा – (अ) नारियल से बना 'नारिकेलासव',[18] (ब) गन्ने के रस[19] का बना 'श्रीधु' तथा (स) मधूक[20] जैसे पुरुषों से निकाला गया 'पुष्पासव'।

श्शार्ङ्गधर संहिता के मध्यखण्ड के दसवें अध्याय में सन्धित द्रव्यों का वर्णन आता हैं कि पानी आदि द्रवों में बहुत समय तक द्रव्यों के पड़े रहने पर जो संधित द्रव्य तैयार होते हैं, वे आसव और अरिष्ट आदि कहलाते हैं।[21] अपभव (कच्चे या बिना पकाये) औषधी और पानी के योग से सन्धान करके जो मद्य तैयार किया जाता है, वह आसव कहलाता हैं। इसके विपरीत औषध और जल का क्वाथ करके जो संधित द्रव्य मिलता है, वह अरिष्ट हैं।[22] अपक्व मधुर द्रवों (जैसे ईख (गन्ना)का रस) के संधान से बना हुआ द्रव

Scanned by CamScanner

शीतरस–सीधु (शीधु अथवा कच्चा सिरका) और सम्पक्व मधुर द्रव के संधान से बना सन्धित द्रव्य पक्वरस–सीधु कहलाता हैं। परिपक्व अन्नों के साधन से जो संधित द्रव्य तैयार होता है, उसे सुरा कहते हैं।[23]

श्षार्ङ्गधर संहिता में सुरा के भेद भी बताये गये हैं उनमें से प्रमुख है – (1) सुरामण्ड (अर्थात् ऊपर का सार भाग) प्रसन्नता कहलाता है।

(2) प्रसन्नता की अपेक्षा जो धन भाग होता हैं, वह कादम्बरी कहलाता हैं।

(3) जो सुरा मद्य ताल या खजूर के रस से तैयार की जाती हैं वह वारुणी कहलाती हैं।[24]

समरण रखने योग्य बात यह हैं कि आसव और अरिष्ट बनाने के लिये घृत लिप्त मृत्तिका पात्र का व्यवहार किया जाता था। सन्धान योग्य द्रव इसमें भर कर रख छोड़े जाते थे। घड़े के मुख को बन्द रखा जाता था। कहीं भी भभकें द्वारा उड़ाकर आसव चुभाने का संकेत नहीं हैं।[25] कालिदास ने धनी व्यक्तियों द्वारा सुगन्धित मद्य[26] के प्रयोग का भी विवरण दिया हैं। विविध प्रकार के आसवों में गंध–मिश्रण के लिए आम की मंजरियों तथा रक्त पाटल के पुष्प[27] व्यवहार में आते थे। मद्य को सुवासित करने के अतिरिक्त **मारुतुंग या बीजपूरक**[28] की छाल का व्यवहार कर दुर्गन्ध के प्रभाव को दूर करने की चेष्टा की जाती थी। मद्य की गंध का आभास मात्र तक दूर करने उदारतापूर्ण भोजन के उपरांत खट्टी डकार को रोकने, ष्वास में मधुरता लाने के लिये भी बीजपूरक की छाल (बिजौरिया नींबू) प्रयोग में आती थी।[29] मद्य की गंध ा को दूर करने की दूसरी विधि थी पान के पत्तों[30] तथा सुपारी[31] को चबाना। लाल–लाल नेत्रों के घुमाने और प्रत्येक डग–मग पद पर[32] भावश्शून्य चेष्टाओं से प्रकट सौन्दर्य में मदिरा–पान के प्रभाव के साथ–साथ मदिरा के मद को दूर करने के लिए 'मत्स्यण्डिका'[33] के प्रयोग का वर्णन भी कालिदास ने किया है। मत्स्यण्डिका एक प्रकार की शंकर थी, जिसको प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों ने ' **मदात्यचिकित्सा**' के प्रकरण में अत्यंत नशे की दशा के लिये विशध्न बताया हैं –

मद्यं पीत्वा यदि वा तत्क्षणमेव लेह्यत् ष्अर्करा सघ ष्ताम्।
मदयति न जातु मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि।।
तथा – मदयति न हि मद्यं जातुचित्पीतमद्यं
पिबति घृतसमेतां ष्अर्करामेव सद्य।।

इस प्रकार कालिदास ने मदिरा तथा उसके प्रकार तथा मदिरा को सुगंधित करने तथा उसके मद को और उसकी दुर्गन्ध को दूर करने के वैज्ञानिक उपायों का विशद् वर्णन अपने ग्रन्थों में किया हैं। यह मदिरा पान के रसिकों के साथ–साथ आधुनिक युग में भी मदिरा के प्रचलन को सापेक्ष रूप से बताता है साथ ही कालिदास के इस विवरण से हमें उस युग की मदिराओं के विभिन्न प्रकारों का विवरण मिलता है तथा उसे बनाने के लिये किस प्रकार आसव (Distilatioin) किया जाता था और किस प्रकार के पात्रों का प्रयोग, विभिन्न द्रव्यों का संयोजन, मदिरा को बनाने में भभके का प्रयोग और अप्रयोग पर विस्तृत चर्चा कालिदास ने की है। ये संदर्भ वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है और इसके लिये हमें कतिपय आयुर्वेदिक ग्रन्थों का प्रयोग संदर्भ के रूप में लेना चाहिये जिससे तद्युगीन मदिरा के प्रकार और उसे बनाने के वैज्ञानिक उपाय ज्ञात हो सकते है।

Scanned by CamScanner

संदर्भ

1. कुमारसंभव, स्खलयन्पदे पदे, 4.12; कुमारसंभव, धूर्णमानननयनं, 8.80; उपाध्याय, बी.एस., इण्डिया इन कालिदास, पृ. 318–322.
2. कुमारसंभव, पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि, 3.38.
3. मालविकाग्निमित्रम्, ण मे चलणो अण्णदो पवहन्ति। मदो मं विआरेदि, पृ. 49 उपरोक्त, उपाध्याय, बी.एस., पृ. 319
4. रघुवंशम्., 8.68.
5. कुमारसंभव, 8.77
6. अभिज्ञानशकुंतलम्, पृ. 188 उपरोक्त, उपाध्याय. बी. एस. पृ. 319
7. रघुवंशम्, नारिकेलासवं, 4.42
8. रघुवंशम्, 7.49
9. अभिज्ञानशकुंतलम्, षष्ठम् अंक, पृ. 101; रघु. 4.42, 19.12.
10. कुमारसंभव, 6.42.
11. ऋतुसंहार, पिबन्ति मघं मदनीयमुत्तमम्, 5.10
12. रघुवंशम् 4.42, 19.12, 46; ऋतुसंहार, 4.11; कुमारसंभव, 3.38; विक्रमोर्वशीय 4.44.
13. उत्तरमेघ, 3; रघुवंशम्, 8.68
14. उत्तरमेघ., 15; ऋतुसंहार, 6.10; विक्रमोर्वशीय, 2.13, 4.42
15. कुमारसंभव, 4.12
16. अभिज्ञानशकुंतलम् पृ. 188 उपरोक्त, उपाध्याय, बी. एस. पृ. 320
17. रघुवंशम्, पुराणशीधु, 16.52; मालविकाग्निमित्रम्. सीहु. पृ. 42 (उक्त पृ. 320)
18. रघुवंशम्, 4.42.
19. रघुवंशम् 16.52
20. कुमारसंभव, 3.38; ऋतुसंहार, 5.5
21. डॉ. सत्यप्रकाश, प्राचीन भारत में रसायन का विकास, प्रकाशन षाखा, सूचना विभाग, उत्तर–प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1960, पृ. 245.
22. उक्त.
23. उक्त.
24. उक्त.
25. उक्त, पृ. 247.
26. रघुवंशम्, 16.52; ऋतुसंहार, 4.12; विक्रमोर्वशीय 4.44.
27. रघुवंशम्, सहकारमासवं रक्तपाटलमागमं पृ, 19.46.
28. मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 290.
29. कालिदास का मालविकाग्निमित्र; ए स्टडी दि इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली, भाग 11.10, 1 मार्च 1935, पृ. 40–41; पूर्वोक्त, उपाध्याय बी. एस., पृ. 320.
30. रघुवंशम्, 4.42; ऋतुसंहार, 5.5.
31. रघुवंश, 4.44.
32. कुमारसंभव, 3.38.
33. मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक. पृ. 296

Scanned by CamScanner

20 जनजातीय संग्रहालय और आदिवासी संस्कृति

गौरी शंकर महापात्र एवं सौरभ कुमार

अमरकंटक मध्यभारत के एक धार्मिक प्राकृतिक एवं जनजातीय पर्यटन स्थल है। यह मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले में विन्ध्य, सतपुड़ा और मैकल पर्वत के संगम स्थल पर स्थित है। मध्यप्रदेश में 46 जनजातियों में से 7 आदिम जनजातीयां हैं। गोंड, बैगा एवं पनिका जनजाति अमरकंटक के आस–पास रहते हैं। भारत सरकार के द्वारा इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2007 के तहत अमरकंटक में जनजातियों की कला, संस्कृति, भाषा, परम्परा, पारंपरिक चिकित्सा पद्धति तथा आर्थिक गतिविधियों को शिक्षा और अनुसंधान द्वारा विकास करने के लिए स्थापित किया गया है। उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए विश्वविद्यालय में एक जनजातीय संग्रहालय की शुरुआत 2010 में मानवशास्त्र विभाग की देख–रेख में डॉ. बसन्त मोहन्ता द्वारा किया गया। जहां जनजातियों की भौतिक संस्कृति को विथिकाओं में प्रदर्शित किया गया है। इसी विथिका में जनजातियों के शिकार, कृषि उपकरण, आभूषण, वाद्य यंत्र , व्यावहारिक वस्तु, मछली पकड़ने का उपकरण आदि प्रदर्शित किए गए हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार भारत में कुल 700 अनुसूचित जनजातियां हैं, जो भारत के विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में फैले हुए हैं। कई जनजातीय समूह एक या एक से अधिक राज्यों में फैले हुए हैं। अनसुचित जनजातीय समुदाय की सबसे बड़ी संख्या ओडीसा में 62 है। मध्य प्रदेश भी भारत का एक बड़ा अनुसूचित जनजाति समुदाय का राज्य है। यह राज्य भारत के केंद्र में स्थित होने की वजह से इसे भारत का हृदय प्रदेश भी कहा जाता है।

इस राज्य में विभिन्न जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। 1991 के जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजातीय जनसंख्या 15399034 थी, जो कुल जनसंख्या का 19.94: है। जबकि उस समय छत्तीसगढ़ राज्य मध्यप्रदेश से अलग नहीं हुआ था, यह मध्यप्रदेश ही था। नवम्बर 2000 में जब छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश से अलग हुआ और एक नया राज्य बना, इसके साथ ही मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा छत्तीसगढ़ राज्य में चला गया। छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश के विभाजन

Scanned by CamScanner

के बाद सन 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 12234374 हो गई यह मध्यप्रदेश के कुल जनसंख्या का 20.3ः था। वर्तमान में मध्यप्रदेश में कुल 46 अनुसूचित जनजातियां एवं 7 आदिम जजतीय समूह निवास कर रहे हैं। यहाँ की जनजातियां मुख्यरूप से शिकार, कृषि एवं स्थानांतरण कृषि पर आधारित है। मध्यप्रदेश की जनजातियों में से कुछ जनजातियों का नाम इस प्रकार है– अगरिया, बैगा, भील, गोंड, हलवी, कोरखू, पनिका, प्रधान, कोल, भारिया आदि। अमरकंटक के आसदृ पास रहने वाले आदिवासियों में मुख्य रूप से गोंड, बैगा, पनिका हैं। गोंड और पनिका दोनों काफी विकास कर रहे हैं और ये दोनों लगभग कृषि पर निर्भर हैं जबकि बैगा जनजाति अपने पारम्परिक चिकित्सा और स्थानांतरित कृशि पर निर्भर हैं। बैगा जनजाति के अंतर्गत आते हैं। बैगा आदिवासी मुख्य रूप से वनों से अपना जीवन निर्वाह करते है, किन्तु वर्तमान में कृषि, बैगा आदिवासी के जीवन निर्वाह का एक अंश हो गया है।

गोंड :. मध्यप्रदेश के प्रमुख जनजातियों में से एक है। ये आदिवासी मुख्यरूप से बालाघाट, बैतूल, बुरहानपुर, छिंदवाड़ा, दमोह, होशंगाबाद, खंडवा, मंडला, नरसिंगपुर, रायसेन, सागर, सतना, सीहोर, षाहडोल, उमरिया, अनूपपुर, डिंडौरी आदि जिले में पाए जाते हैं। 1991 के जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में गोंड की कुल जनसंख्या 6723838 है।

पनिका : पनिका मध्य भारत के आदिवासी समूह मुख्य रूप से अनूपपुर, मंडला, शहडोल, सतना, सीध ी, रीवा, पन्ना, छतरपुर, दतिया, टीकमगढ़ डिंडौरी आदि जिलों में पाए जाते हैं। इस जनजाति को मध यप्रदेष के कुछ जिलों में आदिवासी का स्थान मिला हुआ है, तो कुछ जिलों में इसे अन्य पिछड़ा वर्ग में रखा गया है। पनिका जनजाति की अपनी एक भाषा है जो पनिका के रूप में मानी जाती है। अपनी भाषा के अलावा ये लोग अन्य भाशा भी बोलते हैं जैसे – हिंदी, इंडो–आर्यन भाषा के स्थानीय रूप बोलते हैं और दोनों अंतर और अंतर समूह संचार के लिए देवनागरी लिपि का उपयोग करते हैं। ये लोग पहले पहाड़ी एवं घने जंगलो में गोंड, बैगा, प्रधान, आदि जनजातियों के साथ घुल–मिलकर रहते थे, लेकिन वर्तमान में हिन्दू धर्म के प्रभाव के साथ ही बहु जातीय गाँव में रहने लग गए हैं। ये विजातीय विवाह करनेवाले कुलों को कुर्रा कहते हैं। पनिका जनजाति के कुछ कुलों का नाम इस प्रकार है– कुमारिया, कोरबा, मारिया, टांडिया, पनारिया, पड़वार, सरीमा, परेवा, जनता, धारी, सनवारा, फुंगी, करैटा, छूरा, रावरा, सोनवारी, पनिका, परवा आदि। इस प्रकार के जो अपना कुल का नाम लिखते हैं वे अपने आप को कबीर पंथी कहते हैं। कबीर पंथी सबसे बड़ा समूह है। पनिका जनजाति के लोग समान्यतः शाकाहारी होते हैं वे लोग शराब भी नहीं पीते हैं किन्तु कुछ पनिका आदिवासी शराब भी पीते हैं एवं मांसाहारी दोनों होते हैं। इनका व्यवसाय मुख्य रूप से बुनाई है जो इनका पारंपरिक व्यवसाय भी है। किन्तु वर्तमान में वे कृषि भी कर रहे हैं। इसके अलावा अभी वर्तमान में वनरक्षक, चौकीदार , शिक्षक एवं अन्य रोजगार प्राप्त किए हुए हैं। ये धीरे–धीरे वहाँ के निवासियों को व्यवस्थित कृषि करने के लिए सहायता प्रदान की गई है।

बैगा :– बैगा जनजाति मध्यप्रदेश में विशेष आदिम जनजाति समूह के रूप में मानी जाती है। ये लोग मुख्य रूप से पारंपरिक उपचार एवं स्थानांतरित कृषि करते हैं। हालांकि भारतीय वन समिति के वन अधि ानियम लागू होने के कारण अब धीरे–धीरे स्थानांतरित कृषि करना बंद कर दिए हैं, और अब व्यवस्थित कृशि कर रहे हैं। बैगा जनजाति मुख्यरूप से डिंडौरी (अविभाजित) मंडला के 7 ब्लाक अर्थात् शाहपुर, अमरपुर, समनापुर, करंजिया में रहते हैं। डिंडौरी जिला के एक विशेष क्षेत्र में बैगा के प्रभुत्व के कारण

Scanned by CamScanner

यह बैगाचक के नाम से जाना जाता है। यह बैगाचक 52 गाँव से मिलकर बना है 2001 की जनगणना के अनुसार वहाँ की जनसंख्या 23443 है। इनमें से 11753 पुरुष एवं 11690 महिला हैं। इस जिले में बैगा जनजाति का लिंगानुपात 995ध्हजार है, इनमें से लगभग 9000 बैगा, बैगाचक के 52 गाँव में रह रहे हैं। 1980 में बैगाचक के इस क्षेत्र के स्थनान्तरण के लिए एक कृशक निवास के रूप में एक वन अधिकारी द्वारा निर्धारित किया गया था। बाद में बैगाचक भारतीय वन अधिनियम के तहत वन ग्रामों में परिवर्तित किया गया। इसके बाद इन वन ग्रामों में स्थानांतरित कृषि पर रोक लगाए गए थे।

बैगा स्त्रियाँ अपने शरीर को सजाने के बहुत शौकीन हैं। वे विभिन्न प्रकार के गहने एवं भिन्न भागों में तरह–तरह के गहने पहनती हैं। ये लोग मुख्यतः सोना, चाँदी, प्लास्टिक, घास और लकड़ी से बने गहने बहुत पसंद करते हैं। गहनों के अलावा महिलाएं अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के गोदने गोदवाने के भी शौकीन हैं। उनके लिए गोदना बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है एवं गोदना गोदवाने के लिए एक विशेष उम्र पर ही गोदवाना उचित समझते हैं। यह गोदना सांस्कृतिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जब बैगा महिला वयस्क हो जाती हैं तब अपने माथे पर गोदना एवं शरीर के विभिन्न अंगों पर अलग–अलग प्रकार के चिह्न रहते हैं जिसमें मुख्य रूप से टिपका, मछली कांटा एवं अन्य प्रकार के चिह्न व नाम होते हैं। शरीर के हर अंग यहाँ तक कि गुप्तांगों पर भी जैसे जांघ, पीठ, छाती आदि जगहों पर गोदना गोदवाती हैं।

संस्कृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– भौतिक संस्कृति एवं अमूर्त संस्कृति, भौतिक संस्कृति वह है जिसे हम देख सकते हैं एवं देखने के अलावा स्पर्श नहीं किया जा सकता है केवल इसे महसूस किया जा सकता है। एक आदिवासी एवं ग्रामीण लोगों की भौतिक संस्कृति अपनी आजीविका के अनुसार विभिन्न प्रकार के उपकरण का उपयोग करते हैं। जैसे– शिकार, मत्स्य पालन, कृषि, घरेलू गतिविधियों के लिए उपयोग की जाती है। गैर भौतिक या अमूर्त संस्कृति अदृश्य संस्कृति है जिसे न तो हम देख सकते हैं और न ही छू सकते हैं। इस संस्कृति में गीत, संगीत, लोकगीत, धर्म और अनुष्ठान आदि आते हैं। आदिवासी समाज में दोनों ही संस्कृति का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस सांस्कृतिक धरोहरों में से कुछ जनजाति समुदाय विशेष क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। ये दोनों ही संस्कृति मूर्त एवं अमूर्त समय–समय पर बदलते रहते हैं। क्योंकि जब कोई भी जनजाति समुदाय अपने पड़ोसी को देखता है कि वे नई प्रौद्योगिकी एवं कच्चे माल आदि सामग्री के लिए नई तकनीक का उपयोग करते हैं। इन सभी तकनीक का उपयोग करते हुए वे कैसे विकास कर रहे हैं ठीक उसी को देखकर आदिवासी भी नकल करने लगते हैं तब उनके भौतिक उपकरण में परिवर्तन होता है। अब यदि हमें संस्कृति के बदलते स्वरूप को जानना तो हमें निश्चित तौर पर संबंधित समाज या समुदाय की दैनिक गतिविधियों में क्या उपकरण उपयोग करते हैं उस समाज में देखना पड़ेगा। जिससे हम बदलते संस्कृति के स्वरूप को पहचान कर पाएंगे।

मानव संस्कृति की शुरुआत के बाद से आदमी अपने दैनिक जीवन में जरूरतों को पूरा करने के लिए मिट्टी, लकड़ी बाँस, हड्डी, सिंग, पत्थर, धातु से बने पदार्थों के विभिन्न प्रकार पर निर्भर है। विशेष रूप से सस्ती कीमत पर विभिन्न उपयोगों के लिए रेडीमेड सामान आसानी से उपलब्ध हो जाता है इसलिए हम अपनी पुरानी वस्तुओं, पारंपरिक उपकरण को उतना कीमती न समझते हुए कचरे पर फेंक देते हैं या जला देते हैं इसीलिए औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण और षिक्षा की शुरुआत की वजह से मूर्त सांस्कृतिक

Scanned by CamScanner

क्रमांक	पंजीयन क्रमांक	वस्तु का नाम	निर्मित पदार्थ	प्रयोग
1	*EM/2011/01*	*मिट्टी का दिया (दीपक)*	*मिट्टी*	*प्रकाश*
2	EM/2011/02	धनुष	बाँस	शिकार
3	EM/*2011*/03		मुसर	लकड़ी अनाज कूटने के लिए
4	EM/2011/04	धनष	बाँस	शिकार
5	EM/2011/05	कोइनी	बाँस	मछली शिकार
6	EM/2011/06	गड़ासा		लकड़ी लोहा काटने के लिए
7	EM/2011/07	कोइनी	बाँस	मछली षिकार
8	EM/2011/08	माँदर	मिट्टी, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
9	EM/2011/09	झितोरिया	बाँस	मछली पकड़े के लिए
10	EM/2011/10	घंटी	लोहा	पशुओं का स्थान पहचानने के लिए
11	EM/2011/11	कमरा	भेंड के बाल	वर्शा से बचाव के लिए
12	EM/2011/12		घंटी	लोहा पशुओं का स्थान पहचानने के लिए
13	EM/2011/13	अंगूठी	ताँबा	आभूशण
14	EM/2011/14	अंगूठी	ताँबा	आभूशण
15	EM/2011/15	घंटी	लोहा	पशुओं का स्थान पहचानने के लिए
16	EM/2011/16	गले का माला	प्लास्टिक	आभूशण
17	EM/2011/17	कुड़ो	लोहा	कृषि
18	EM/2011/18	घंटी	लोहा	पशुओं का स्थान पहचानने के लिए
19	EM/2011/19	कजरौटा		लोहा काजल पात्र
20	EM/2011/20	कुड़े	लोहा	कृषि
21	EM/2011/21	कलारी	बाँस के साथ लोहा	कृषि
22	EM/2011/22	पहसूल हसिया	लोहा	सब्जी काटने के लिए
23	EM/2011/23	टांगा कुल्हाड़ी	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	लकड़ी काटने के लिए
24	EM/2011/24	घंटी	लोहा	पशुओं को पहनाने के लिए
25	EM/2011/25	मिट्टी का दिया (दीपक)	लोहा	प्रकाश
26	EM/2011/26		पैला	लोहा माप
27	EM/2011/27	कुप्पी	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	घास हटाने के लिए

Contd.

Scanned by CamScanner

क्रमांक	पंजीयन क्रमांक	वस्तु का नाम	निर्मित पदार्थ	प्रयोग
28	EM/2011/28	हसिया	लोहा	कृषि
29	EM/2011/29	खुरपी कुड़री	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	कृषि
30	EM/2011/30	कलारी	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	कृषि
ष				
31	EM/2011/31		टंगीया	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा लकड़ी काटने के लिए
32	EM/2011/32	खलुआ	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	कृषि
33	EM/2011/33	रेती	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहा	लकड़ी काटने के लिए
34	EM/2011/34	घंटी	लोहा	पशुओं को पहनाने के लिए
35	EM/2011/35	बखर		लोहा कृषि
36	EM/2011/36	खुमरी	बाँस	धूप से बचाव के लिए
37	EM/2011/37	बैल गाड़ी का पहिया	लकड़ी	कृषि
38	EM/2011/38	नांगर	लकड़ी	कृषि
39	EM/2011/39		नांगर	लकड़ी कृषि
40	EM/2011/40	जाल	प्लास्टिक के धागे	मछली के शिकार के लिए
41	EM/2011/41	अखेनी	बाँस	धागा रखने के लिए
42	EM/2011/42	खुमरी छतेली	बाँस	धूप से बचाव के लिए
43	EM/2011/43	जाता–थारी चक्की		लकड़ी व मिट्टी अनाज पीसने के लिए
44	EM/2011/44	हल थंगरा	लोहा व लकड़ी	कृषि
45	EM/2011/45	जुआड़ी	लकड़ी	कृषि
46	EM/2011/46	सिक्का–जोती	बाँस के साथ जूट	पानी ढोने के लिए
47	EM/2011/47	पिथाला		जूट तेल निकालने के लिए
48	EM/2011/48	धीतोरी	कृषि	मछली मारने के लिए
49	EM/2011/49		लवार	प्लास्टिक के धागे मछली मारने के लिए
50	EM/2011/50	बिरन माला	घास	आभूषण
51	EM/2011/51		हेलुका	प्लास्टिक के धागे मछली मारने के लिए
52	EM/2011/52	कोहरी रस्सी	जूट	लकड़ी बांधने के लिए

Contd.

Scanned by CamScanner

क्रमांक	पंजीयन क्रमांक	वस्तु का नाम	निर्मित पदार्थ	प्रयोग
53	EM/2011/53	जुआड़ी		लकड़ी कृषि
54	EM/2011/54	थितोरी	बाँसे	मछली मारने के लिए
55	EM/2011/55	तुमड़ी	सूखेकद्दू	पानी रखने के लिए
56	EM/2011/56	कलगी	मयूर के पंख व ऊन	नृत्य आभूषण
57	EM/2011/57	गुल्ला	लकड़ी, रबर	शिकार
58	EM/2011/58	बरिहा	लोहा	माप
59	EM/2011/59	जाल	टेराकोटा के सिक्कड़ के साथ प्लास्टिक के धागे	मछली मारने के लिए
60	EM/2011/60	झिमर	बाँस	मछली मारने के लिए
61	EM/2011/61	संधि		बाँस के हत्थे के साथ लोहा साँप पकड़ने के लिए
62	EM/2011/62	जुआड़ी	लकड़ी	कृषि
63	EM/2011/63	मोरा		बाँस घरेलू सामान रखने के लिए
64	EM/2011/64	बिरन माला	घास	आभूषण
65	EM/2011/65	बखर	लकड़ी	कृषि
66	EM/2011/66	खरगोस फंदा (फांसने का फंदा)	लोहा	शिकार
67	EM/2011/67	टोपारा		प्लास्टिक के धागे जानवरों के मुंह में डालने के लिए
68	EM/2011/68	धुरमूस	लकड़ी	जमीन समतल करने के लिए
69	EM/2011/69	बगुर (जाल)	जूट रस्सी	शिकार
70	EM/2011/70	दतरी	लकड़ी	कृषि
71	EM/2011/71	पैला	लोहे व लकड़ी	कृषि
72	EM/2011/72	टोपारा	प्लास्टिक के धागे	जानवरों के मुंह में डालने के लिए
73	EM/2011/73	सुप्पा	बाँस	घरेलू उपयोग
74	EM/2011/74	डोंगी	लकड़ी	पालतू जानवरों को खाना देने के लिए
75	EM/2011/75A toEM/2011/75I	गोरसी, चूल्हा, तलिया, कुटेला,	मिट्टी, घास, लकड़ी आदि करचेही, झाड़ू, बहंगा, करची	रसोई घरेलू कार्य
76	EM/2011/76	चिमनी	लकड़ी	हाथ का दीपक

Contd.

क्रमांक	पंजीयन क्रमांक	वस्तु का नाम	निर्मित पदार्थ	प्रयोग
77	EM/2011/77	पिढ़वा	लकड़ी	बैठने के लिए
78	EM/2011/78	कुथाला		मिट्टी अनाज संग्रहित करने के लिए
79	EM/2011/79	मचिया	लकड़ी	बैठने के लिए
80	EM/2011/80	खटिया		लकड़ी सोने के लिए
81	EM/2011/81	माँदर		मिट्टी, चमड़ा व रस्सी वाद्य यंत्र
82	EM/2011/82	खुमरी		बाँस वर्षा से बचाव के लिए
83	EM/2011/83	तेल निकालने वाली	लकड़ी	तेल निकालने के लिए
84	EM/2011/84	गाड़ी का पहिया	लकड़ी	कृषि व परिवहन
85	EM/2011/85	मष्दंग	मिट्टी, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
86	EM/2011/86	नगाड़ा बड़ा	मिट्टी, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
87	EM/2011/87 &EM/2011/88	एक जोड़ा नगाड़ा		मिट्टी, चमड़ा व रस्सी वाद्य यंत्र
88	EM/2011/89	नगाड़ा छोटा	मिट्टी, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
89	EM/2011/90	बांसुरी	बाँस	वाद्य यंत्र
90	EM/2011/91	तोपरा	जूट की रस्सी	पशु पालन
91	EM/2012/92	खलुआ		बाँस के हत्थे के साथ लोहे का पत्तर मिट्टी छीलने के लिए
92	EM/2012/93		खलुआ	बाँस के हत्थे के साथ लोहे का पत्तर मिति छीलने के लिए
93	EM/2012/94	बींधना		लोहा लकड़ी काटने के लिए
94	EM/2012/95	नासफार	लोहा	कृषि
95	EM/2012/96	बांसुला	लकड़ी के हत्थे के साथ लोहे का पत्तर	लहदी छीलने के लिए
96	EM/2011/97	खुराही	टेराकोटा	पेय पदार्थ रखने के लिए
97	EM/2012/01	नगाड़ा	मिट्टी चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
98	EM/2012/02	ताली	लोहा, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र
99	EM/2012/03	डिग्गी	मिट्टी, चमड़ा व रस्सी	वाद्य यंत्र

Scanned by CamScanner

विरासत जीवन और लोगों की संकृति तेजी से समाप्ती की ओर अग्रसर है। और कुछ ही दिनों में हमारे पूर्वजों द्वारा प्रयुक्त सामग्री के अधिकांश भाग विलुप्त या मृत हो जाएंगे। अब यदि हम अपने पूर्वजों के सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित नहीं करते हैं तो यह केवल मौखिक परम्पराओं के माध्यम से सुनेंगे एवं कुछ दिन बाद वह भी समाप्त हो जाएगा। उन्हीं सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित रखने के लिए इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विष्वविद्यालय का यह नृवंश विज्ञान संग्रहालय अपने दायरे के भीतर एक कदम उठाया है। नृवंश विज्ञान से संबन्धित संग्रहित सामग्री की सूची का विवरण निम्नलिखित है–

1. **घरेलू उपकरण** :– गुणवत्ता और एक घर में मौजूद घरेलू उपकरण की मात्रा परिवार का आकार और उसकी आर्थिक स्थिति के बारे में इंगित करता है। अमरकंटक क्षेत्र के आदिवासी मुख्यतः अपने घरेलू उपकरण के लिए अपने आस–पास के वनों से ही अर्थात प्रकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं। इस संग्रह के दौरान छोटे और आसानी से उपलब्ध घरेलू सामान संग्रहालय की तत्काल जरूरतों को पूरा करने के लिए एकत्र किया जा रहा है। विभिन्न घरेलू गतिविधियों के लिए विभिन्न पारंपरिक सामग्री के उपयोग के बारे में इस संग्रहालय में उपकरण संग्रह किए गए हैं। इन घरेलू सामग्री समान्यतः लकड़ी, बाँस, मिट्टी, लोहा एवं अन्य सामग्री से बने हैं। इसके अलावा वस्तुओं के प्रदर्शन में मिट्टी, लकड़ी, घास, लोहा, बाँस आदि से निर्मित सामग्री टोकरी या घरेलू वस्तुओं और विभिन्न प्रकार के अनाज भंडार के लिए उपयोग करने वाली चीजों या उपकरणों को इस संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है इसलिए यह आदिवासी या ग्रामीण लोगों की भौतिक संस्कृ ति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक ग्रामीण के घर में टोकरियां हैं। टेराकोटा शिल्प प्रमुख वस्तुओं जो जीवन, संस्कृति और एक समुदाय की अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। अमरकंटक क्षेत्र के आदिवासी अपनी रसोई के लिए जिन उपकरणों का उपयोग करते हैं जैसे– भोजन पकाने, पानी लाने, अनाज, तरल पदार्थ और अन्य सामग्री के भंडारण के लिए उपयोग किए जाने वाले अपने कम से कम उपकरण पर ही सीमित रहते हैं।

2. **शिकार के उपकरण** :– मानव संस्कृति की शुरुआती दौर पर ही षिकार एवं जीवन निर्वहन के लिए कुछ उपकरण उपयोग करते थे जो लगभग पाषाण काल से पता लगाया जा सकता है। उस समय मानव षिकार पर आश्रित थे तथा अपने आस–पास की परिस्थिति पर निर्भर करते थे। कृ शि करने के पहले ये लगभग पूरी तरह से षिकार पर ही निर्भर थे परंतु बहुत समय व्यतीत हो जाने के बाद जब वन समिति एवं वन कानून बना तब शिकार करना धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है। षिकार उनकी पारंपरिक अर्थव्यवस्था का मुख्य स्त्रोत था किन्तु सरकारी नियमों के अनुसार षिकार करना एक दंडनीय अपराध है जिससे बचाव आवश्यक है। आदिवासी लोग विभिन्न प्रकार के जाल और फंदे से षिकार एवं विभिन्न प्रकार से जानवरों को फँसने और मारने के लिए उपकरण का उपयोग करते हैं जो निम्नलिखित हैं– तीर, धनुष, बरछी, बल्लम आदि। इस संग्रहालय में इस प्रकार के उपकरणों को संग्रहीत करके प्रदर्शित किया गया है जो कि यहाँ के आस–पास के आदिवासियों के भौतिक संस्कृतिओं को संरक्षित करने का कार्य कर रही है।

3. **मछली पकड़ने के उपकरण** :– इस क्षेत्र में आदिवासियों का मुख्य आय मत्स्य भी है एवं उनके अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। यहाँ के लोग मछली पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के पारंपरिक जाल का उपयोग करते हैं एवं उनमें से कुछ जाल इस संग्रहालय में प्रदर्शित किया

Scanned by CamScanner

गया है जो निम्नलिखित है– जाल, बोसर, पेलना, टँगारी, बंसी आदि।

4. **कृषि उपकरण :–** चूंकि अमरकंटक अचानकमार्ग बायोस्फियर रिजर्व के अंदर स्थित है, इसलिए यहाँ बहुत ही अच्छे तरीके से खेती नहीं करते हैं किन्तु अमरकंटक क्षेत्र के अलावा थोड़ी दूर पर कृषि कार्य पर ही निर्भर रहते हैं। वहाँ अलग–अलग समय में अलग–अलग उपकरणों को खेती के लिए उपयोग में लाया जाता है। मुख्यतः इन कृषि उपकरणों के निर्माण में लकड़ी तथा लोहा का उपयोग किया जाता है। कृषि उपकरण समान्यतः वे स्वयं बना लेते हैं एवं कुछ स्थानीय विशेषज्ञों या शिल्पकारों से खरीदा भी जाता है। कृषि से संबन्धित उपकरण निम्नलिखित हैं जो यहाँ उपयोग में लाई जाती है– हल, जुवाड़ी, लकड़ी के डंगूर आदि। आधुनिक युग में उन्नत उपकरण जैसे ट्रैक्टर आदि का प्रभाव कृषि पर धीरे–धीरे होने लगा है, परंतु आज भी बहुतायन स्थानीय उपकरणों का उपयोग हो रहा है। पारंपरिक यंत्रों उपकरणों का छोटा संग्रह भी इस संग्रहालय का अंग है।

5. **कपड़े एवं श्रृंगार :–**मध्य भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के आदिवासी अपने वस्त्र एवं आभूषण के क्षेत्र में बहुत ही अलग पहचान रखते हैं जो कि आज भी देखे जा सकते हैं। यहाँ के आदिवासी गहने पहनने के बहुत शौकीन हैं जबकि उन गहनों में मुख्य रूप से प्रकृति से जुड़ी हुई जैसे फूलों की माला आदि। प्रागैतिहासिक काल में जब सभी कन्दरा में रह रहे थे और उनकी अर्थव्यवस्था शिकार पर निर्भर करता था तथा इसी से संबन्धित झलक उनके पहनावे में दिखती थी। उस समय उनके गहने पशु–पक्षियों, मछलियों, जानवरों तथा उनके सिंग, हाथी दांत आदि से तैयार होते थे। इसके अलावा फूल एवं पत्तियों का भी उपयोग गहने के रूप में करते थे। इस प्रकार के गहने जो प्रकृ ति से जुड़ी हुए हैं जिसे अभी भी कुछ जनजतियों में देखा जा सकता है। मध्य भारत में अपनी रंगीन कपड़े शरीर के गोदना एवं आभूषण कला के लिए बहुत प्रसिद्ध है। आदिवासी महिलाएँ लोहे, चाँदी, तांबा, पीतल, एलमुनियम, प्लास्टिक, मिट्टी, लकड़ी, घास और पंख से बने पहनावे व गहने बहुत पसंद करती हैं। बैगा महिलाएं अपने षरीर के सभी भागों में गोदना गोदवाती हैं जोकि उनके लिए आम बात है। लेकिन इस क्षेत्र के अन्य आदिवासी या गैर आदिवासी समूहों के बीच गोदना गोदवाना कुछ आम प्रतिकों के साथ शरीर के कुछ भाग तक ही सीमित हैं। आदिवासी महिलाएं अपनी जरूरत और क्षमता के अनुसार सजने की कोशिश करती हैं। इन अलंकरण के पीछे संबन्धि त जनजातीय समुदाय की परम्पराओं व मान्यताओं का संबंध है। यह माना जाता है कि अलंकरण स्वयं को बुरी आत्माओं से रक्षा करता है एवं व्यक्तिगत स्थिती में सुधार करने के साथ–साथ सामाजिक व आर्थिक स्थिति को प्रदर्शित करते हुए आकर्शित करता है। हालांकि इन लोगों के पारंपरिक रीति–रिवाजों में भारी परिवर्तन आया है किन्तु फिर भी अमरकंटक क्षेत्र के कुछ आदिवासी और गैर–आदिवासी लोग अपने पारंपरिक कपड़े और गहनों का उपयोग कर रहे हैं, जिसकी झलक विभिन्न पर्व व सामाजिक समारोह में प्रायः देखने को मिलती है।

इस क्षेत्र के आदिवासी लोगों के पारंपरिक वेशभूषा में कई बदलाव आया है। बैगाचक के कुछ बैगाओं के वेशाभूषा आंशिक रूप से या पूर्णतः बदल गया है। अमरकंटक क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा सामान्य रूप से उपयोग की जाने वाले टिकली और सिर तारा, मांग डोरी, बाल पिन का उपयोग करते हैं। कर्ण आभूषण (कानफूल), नाक की नथुनी या लौंग, हार, हवाल, सुतिया, मूंगा, बिरन माला

Scanned by CamScanner

आदि साज–सज्जा के लिए करते हैं। इनके अतिरिक्त गजरा, कड़ा–बटला, कंगन, बाजूबंद, बकुरा आदि कलाई एवं हाथों में पहनने वाले गहने, छल्ला, मुँदरी अन्य आभूषणों में– कनडोरी, करधनी, टोडरी, पैरी, झबिया, झांझर, जुटिया, बिछिया आदि पहनते हैं। इस विश्वविद्यालय के संग्रहालय में अधिकांश आभूषण प्रदर्शित किए गए हैं।

6. **वाद्ययंत्र :–** गीत–संगीत आदिवासियों को एक अलग पहचान देती है। दिनभर की कड़ी मेहनत के उपरांत संध्या काल में आस–पास के आदिवासी एक जागह एकत्रित होकर अपने पारंपरिक गीत–संगीत के माध्यम से मंत्र मुग्ध हो जाते हैं जिससे उनकी दिनभर की थकान न जाने कैसे निकल जाती है। ये विभिन्न उत्सवों पर कर्मा, दादरिया, रीना आदि के साथ पारंपरिक वाद्ययंत्र–मांदर, टिमकी, मृदंग, बांसुरी आदि का उपयोग करते हैं। वर्तमान में अपनी पारंपरिक संगीत उपकरण के साथ–साथ आधुनिक संगीत व वाद्ययंत्र का आंशिक उपयोग भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ के संग्रहालय में वाद्य यंत्र के रूप में माँदर, मृदंग, नगाड़ा, बांसुरी, टिमकी आदि है जो आस–पास के ही गाँव से संग्रह किया गया है। ये वाद्ययंत्र लकड़ी, मिट्टी और चमड़े आदि से बने हैं। ढोलक ज़्यादातर लकड़ी के बने होते हैं तथा चमड़े के रूप में बकरी या अन्य जानवरों के खाल का उपयोग होता है । मृदंग, माँदर आदि जैसे वाद्य यंत्रों में ढांचा मिट्टी से बना होता है अन्य सामग्री चमड़ा व रस्सी का होता है। आमतौर पर वादक नृत्य के समय वाद्ययंत्र अपने कंधे पर लटकाकर बजाते हैं।

इस संग्रहालय का मुख्य उद्देश्य जनजातीय संस्कृति को शिक्षा और अनुसंधान के माध्यम से विश्व स्तर पर पहुंचाना है। संग्रहालय में लगभग 200 वस्तु है। नवंबर 2016 में डॉ. एच. एम. शारदा (भोपाल) ने इस संग्रहालय को लगभग 500 ऐसी ही वस्तु का दान दिया है। जिसके द्वारा यह संग्रहालय विभिन्न देश व विदेश के जनजातीय संस्कृति को व्यवस्थित तरीके से प्रदर्शित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संदर्भ ग्रंथ :

1.Bhatnagar, Anupama (2000) Museum, Museology and New Museology, Sandeep Prakashan,New Delhi-
2. Mohanta, B-K- & Tripathy, B (2015) Ethnographic Museum, Aayu Publication, New Delhi
3. UNESCO, 2010 Community & Based Approaches to museum development in Asia and the pacific for culture and sustainable development, UNECO, Paris-
4. Robert Vane Russell, The Tribes and Castes of the Central Provinces of India:
5. Matthew Atmore Sherring, Hindu tribes and castes, Volume 2, page 180
6. Bhavanani, Enakshi : Folk and Tribal Designs of India
7. Kramrisch, Stella : Traditions of Indian Craftsmen
8. Sengupta, Sankar and Upadhyaya, D.K. (ed.): Studies in Indian Folk Culture, Folk Arts, and Folk Literatures
9. Mehta, Rustam J. : Handicrafts and Industrial Arts of India
10. Saraswati, B. : Tribal Thoughts and Cultures
11. Vidyarthi, L. P. : Tribal Culture of India
12. Shukla, H. L. : Tribal Heritage of M. P.
13. HOA-EL 1.5: Myths and Symbols in Indian Art
14. Inter-relationship of Culture, Myths and Symbols.

Scanned by CamScanner

21 लखबरिया की प्रागैतिहासिक गुफाएँ

अशोक सिंह कुशराम

लखबरिया जिला मुख्यालय शहडोल से अमरकंटक मार्ग पर शहडोल से 22 कि.मी. पूर्व में बुढ़ार व तहसील मुख्यालय से दक्षिण में ग्राम अरझुला लगभग 13 कि.मी. दूरी पर अवस्थित 1 कि.मी. की दूरी पर लखबरिया की प्राचीन गुहाएँ स्थित है। यह क्षेत्र मेकल की तराई में है। जहाँ लाल बलुआ प्रस्तर की विस्तृत चट्टान पूर्व–पश्चिम लगभग 300 मीटर व उत्तर–दक्षिण लगभग 200 मीटर क्षेत्र में प्राचीन गुहा वास्तु विद्यमान है जिसे आमजन लखबरिया की गुफाओं के नाम से जानते हैं। लखबरिया नाम संज्ञापित जनश्रुति यह है कि यहाँ पर प्राचीन काल में पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास की अवधि में यहाँ पर एक लाख गुफाओं का निर्माण किया था।[1] एक लाख गुफाओं की स्थिति के कारण इसे लखबरिया नाम दिया गया। तरूणकुमार गुप्ता[2] ने अपने शोध प्रबन्ध में यहाँ की गुफाओं का उल्लेख किया है।

पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण तथा प्राप्त शिलालेखों के आधार पर लखबरिया स्थित गुहा वास्तु का निर्माण काल 2–3 शती. ई. से 6वीं शती ई. के आस–पास माना गया है।[3] कठोर लाल बलुआ प्रस्तर की विशाल शिला में विनिर्मित गुहाएँ दृष्टव्य हैं। वर्तमान में कुछ गुहा द्वार बंद कर दिये गए हैं। शहडोल जिले के ग्राम वार सर्वेक्षण[4] में इन गुफाओं का उल्लेख है। लखबरिया की गुफाएँ धरातल पर उभरी चट्टानों में काटकर बनाई है जिनका विस्तार 13 फुट ऊँचा एवं 700X450 फुट के क्षेत्र में है। यहाँ की गुफाएँ सादी हैं तथा मूर्ति या अलंकरण नहीं है। यहाँ सबसे बड़ी गुफा में पाँच प्रकोष्ठ हैं। छतें सपाट हैं बड़ी गुफाएँ स्तम्भों पर आधारित है। एक बड़ी गुफा के पश्चिमी भाग में ग्रामीणों ने खुदाई की है। जिसमें एक शिव लिंग जो जलहरी में स्थापित है। यहाँ से मिट्टी के कुछ पात्र प्राप्त हुए हैं। यह लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित है। यहाँ एक दीवार पर ब्राह्मी लेख है जिस पर स्थानीय लोगों द्वारा प्लास्टर कर दिया गया है। यहाँ मुख्य रूप से 13 गुफाएँ दिखाई देती हैं। कई गुफाएँ जमीन में दबी हुई हैं। डॉ योगेन्द्र प्रताप सिंह[5] के अनुसार 18 गुफाएँ हैं। जो मिटटी में दबी हुई हैं। इन गुफाओं के निर्माण के विषय में अनभिज्ञता बनी हुई है। शहडोल गजेटियर[6] के अनुसार यहाँ पत्थरों को काटकर एक लाख गुफाओं का निर्माण किया गया था तथा बसंत पंचमी में यहाँ मेला लगता है जिसमें हजारों श्रृद्वालुओं की भीड़ उमड़ती है। गुफाओं की स्थिति निम्नानुसार है।

Scanned by CamScanner

गुफा क्र0 1 : इस गुफा के उत्तर दिशा की ओर से आधुनिक सीढ़ियों का निर्माण कर दिया गया है। यहाँ से इस गुफा में प्रवेश किया जाता है। वर्तमान में गुफा का दक्षिणी भाग ही शेष है। यह एक विशाल गुफा रही होगी। यह गुफा छः स्तम्भों पर आधारित है। दक्षिण दिशा में दो स्तम्भों पर ही छत बचा है। पूर्व दिशा में तीन कोठरियां निर्मित थी। जिनकी छत भी खण्डित हो चुकी है। तीन कोठरियों में प्रथम पूर्व के उत्तरी कोने में जिसकी माप 1.08X1.20 मीटर है। इसका द्वार 46 से.मी. तथा इसके दक्षिण में दूसरा कक्ष 1.13X1.23 मी. माप है। इसका द्वार 82 सें.मी. चौड़ा है। इसके दक्षिणी पूर्वी भाग में एक गोलाकार गड्ढा है जिसकी गहराई 32 सें.मी. तथा व्यास 55 सें.मी. है। इस गड्ढे के ऊपर में जलहरी से पानी गिरता है। इसके दक्षिणी ओर तीसरा प्रकोश्ठ है जो गर्भ गृह है। मध्य में 1.19X1.19 माप की जलहरी है। जिसमें शिव लिंग स्थापित किया गया है। शिव लिंग लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है। इसकी परिधि 1.05 मीटर है। इस कक्ष के द्वार की चौड़ाई 71 सें.मी. है। प्रकोश्ठ के भीतरी सतह से देहरी की ऊँचाई 19 से.मीटर है तथा बाहर दो सोपान निर्मित है। क्रमशः दोनों की 5 सें.मी. तथा 6 सें.मी. की ऊँचाई है। जलहरी की ऊँचाई 51 सें.मीटर है। शिव लिंग 39 सें.मी. ऊँचा है। सोपान एवं द्वार के किनारे अलंकरण है। स्तम्भ आधार चतुष्कोंणीय है जबकि स्तम्भयश्टि अष्टपहल है। यष्टि के मध्य चतुष्टकोणीय पट्टिका निर्मित है तथा स्तम्भशीर्ष में बन्धनीयुक्त है। इस शैलोत्कृत संरचना के दक्षिणी भाग पर ही छत शेष है। इस भाग के दो स्तम्भ पूर्णतः सुरक्षित है। इसकी गहराई 1.56 मीटर है, जबकि यह 5.65 मीटर चौड़ा और 1.92 सें.मी. ऊँचा है। इस शैलोत्कृत गुफा के अद्दि ाकार स्तम्भ खण्डित हो चुके हैं। सभी स्तम्भों को जोड़ते हुए धरातल पर 2 से 3 से.मी. ऊँची पट्टी निर्मित है। यह पट्टी 41 सें.मी. चौड़ी है। सभी स्तम्भ लगभग 41X 41 सें.मी. आकार के हैं। ये स्तम्भ धरातल से 42 सें.मी. ऊपर के पश्चात अष्टपहल के हैं। जिसकी परिधि 126 सें.मी. है तथा नीचे चौकोर है। प्रथम प्रकोष्ठ के सामने दीवार से लगा एक जात रखा है जिसका व्यास 60 सें.मी.तथा ऊँचाई 18 सें.मी. है।

गुफा क्र. 2 : यह गुफा उत्तर की ओर मुख लिया हुआ है जो आकार में छोटी है। इसमें चार कक्ष तथा एक मण्डप है। मण्डप 5.04 मीटर चौड़ा है। इसकी गहराई 3.90 मीटर है। बरामदे में प्रवेश से पहले गुफा के दायें अर्थात पूर्व दिशा में दो कक्ष निर्मित है। पहला कक्ष 1.33X 1.15 मीटर माप का है। इसका द्वार मुख प्रकोष्ठ चौड़ाई के बराबर है। इससे ठीक दक्षिण जुड़ा तथा 38 से.मी. मोटा है। देहली 28 सें. मी. ऊँची उठी हुई है। इस प्रकोष्ठ के दक्षिण में तीसरा प्रकोष्ठ है। जो 9.55 मीटर गहरा और 1.33 मीटर चौड़ा है। इस प्रकोष्ठ की ऊँचाई 1.33 मीटर है। प्रवेष द्वार 1.25 मीटर ऊँचा तथा 73 सें.मी. चौड़ा और 36 से.मीटर मोटा है। इसकी देहली 6 से.मी. उठी हुई है। द्वार के दोनों ओर आले निर्मित है। ये तीनो प्रकोष्ठ बरामदे के पूर्व दिषा की ओर बने हुए हैं। मण्डप के पृष्ठ भाग में चौथा कक्ष अथवा गर्भ गृह निर्मित है। द्वार के दायीं ओर 23 सें.मी.की दूरी पर कुड्य स्तम्भ निर्मित है। इस प्रकोष्ठ का द्वार 1.25 मीटर ऊँचा 83 सें.मी. चौड़ा तथा 38 से.मी. मोटा है तथा इसकी देहरी 32 से.मी. ऊँची है। यह प्रकोष्ठ 2.20X 2.18 मीटर का माप है और इसकी ऊँचाई 1.69 मीटर है। गुफा में निर्मित कुड्य स्तम्भ सादे प्रकार है। यह एक सामान्य गुफा है।

गुफा क्र. 3 : यह गुफा का द्वार उत्तर दिशा की ओर है। यह गुफा क्र. 2 से पश्चिम दिशा में स्थित तथा जुड़ी हुई है। यह साधारण एवं छोटी गुफा है जिसकी छत दो स्तम्भों पर आधारित है। प्रवेश के समय ही दो स्तम्भ निर्मित है। गुफा के दोनों किनारे पर कुड्य स्तम्भ निर्मित है। स्तम्भ के ऊपर छत का कुछ हिस्सा खण्डित है। वर्तमान में गुफा में पानी भरा हुआ है।

Scanned by CamScanner

गुफा क्र.4: यह गुफा पश्चिम की ओर खुला हुआ है। यह सामान्य गुफा है जो एक छोटे प्रकोष्ठ के रूप में है। इसकी गहराई 2 मीटर तथा चौड़ाई 2 मीटर और ऊँचाई 1.28 मीटर है। द्वार 1.20 मीटर ऊँचा तथा 62 सें.मीटर चौड़ा है।

गुफा क्र. 5: यह गुफा विशाल आकार का है। जिसका द्वार पश्चिम दिशा की ओर खुलता है। यह विशाल महामण्डप है जो एक सभा भवन जैसा प्रतीत होता है। इसकी छत छः स्तम्भों पर आधारित है। 10 कुड्य स्तम्भ निर्मित है। मध्य के चार स्तम्भ खण्डित हो चुके हैं। प्रारंभिक दो स्तम्भ प्रवेश द्वार पर ही निर्मित है जो पूर्णतः सुरक्षित है। इस गुफा की माप 6.55 मीटर चौड़ा तथा 6.59 मीटर गहरा है। इसकी ऊँचाई 1.82 मीटर है। विशाल महामण्डप के लगभग मध्य में एक छोटा कक्ष निर्मित है। जो 2.22X 2.20 मीटर माप है। इस प्रकोष्ठ की ऊँचाई 1.92 मीटर है। प्रकोष्ठ में प्रवेश से पूर्व द्वार पर दो चरणों में सोपान मार्ग निर्मित है। प्रथम चरण 10 सें.मी. तथा दूसरा चरण 6 से.मी. ऊँचा है। ये सीढ़ियाँ 29 सें.मी. चौड़ी है तथा देहरी के स्थान पर निर्मित है। द्वार 1.48 मीटर ऊँचा तथा 73 सें.मी. चौड़ा है। द्वार की मोटाई 86 सें.मी. है। द्वार के दोनो तरफ कुड्य स्तम्भ निर्मित है। ये सभी कुड्य स्तम्भ 45 से 50 सें.मी. चौड़े तथा दीवार से 22 से 25 सें.मी. बाहर की ओर निकले हुए हैं। गुफा में किसी प्रकार का अलंकरण नहीं है। गुफा में निर्मित स्तम्भों का क्षरण हो गया है। स्तम्भाधार व स्तम्भयश्टि चतुश्कोंणीय है जबकि स्तम्भशीर्ष बंधनी अलंकरण युक्त है।

गुफा क्र. 6 : इस गुफा का मुख पश्चिम की ओर खुला है इसकी गहराई 5.50 मीटर तथा ऊँचाई 1.60 मीटर है। गुफा का द्वार 1.32 मीटर ऊँचा है। द्वार के पश्चात गलियारा निर्मित किया गया है। जिसकी चौड़ाई प्रारम्भ में मात्र 85 सें.मी. है जबकि अन्दर की इसकी चौड़ाई 1.27 मीटर हो गई है। इसका गलियारा 3.43 मीटर लम्बा है। यह एक सामान्य गुफा है।

गुफा क्र. 7 : यह एक विशाल गुफा है। जो चार कक्ष एवं एक मण्डप युक्त है। पश्चिमाभिमुख इस गुफा में प्रवेश करते ही मण्डप है जो 9.31 मीटर चौड़ा है। मण्डप की पूर्व दिषा की ओर चार प्रकोष्ठ निर्मित है। जो एक सीध में नहीं है जिसके कारण मण्डप की गहराई भी सभी स्थानों पर अलग–अलग है। मण्डप चार स्तम्भों पर आधारित है। जिसमें एक के टूट जानें से तीन ही बचे हैं। चौथे के स्थान पर आधुनिक स्तम्भ का निर्माण किया गया है। उत्तर दिशा में स्थित स्तम्भ मण्डप में प्रवेश स्थान पर ही निर्मित है। स्तम्भ सादे प्रकार के हैं। उत्तरी दीवार में 90 सें.मी. दूरी पर दक्षिण दिशा में प्रथम स्तम्भ अवस्थित है। चारो कक्ष मण्डप में पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण है। प्रथम प्रकोष्ठ सबसे उत्तर में स्थित है। इस प्रकोष्ठ की माप 78 सें.मी.X 76 सें.मी. X 1.59 मीटर है। इसका द्वार 1.36 मीटर ऊँचा है। प्रथम एवं द्वितीय प्रकोष्ठ के मध्य बाहर की ओर कुड्य स्तम्भ निर्मित प्रथम प्रकोष्ठ से बाएँ दिषा की ओर द्वितीय प्रकोष्ठ है जो 1.83 X 1.84 X1.80 मीटर आकार का है। इसका द्वार 1.35 मीटर ऊँचा 68 से.मी. चौड़ा तथा 37 सेंमी. मोटा है। देहरी 28 सें.मी. ऊँची है। इस प्रकोष्ठ के ठीक सामनें एक आयताकार गड्ढा निर्मित है जो 1.04X1.11 मीटर की माप है तथा 13 सें.मीटर गहरा है। गड्ढे का प्रयोजन अनभिज्ञ है। इस गड्ढे के ठीक ऊपर छत पर (वितान) अलंकरण है। जिसमें एक खिले कमल की आकृति दृष्टव्य है।

गुफा क्र. 08 : यह गुफा अपूर्ण है। इसकी आकृति अर्द्धगोलाकार है। प्रवेश द्वार पर दो स्तम्भ निर्मित है। इन स्तम्भों से 1.49 मीटर अन्दर अन्य दो स्तम्भ निर्मित किए गए हैं। जो दीवार भाग से ही लगे हैं तथा अपूर्ण हैं। दीवारों का निर्माण पूर्ण रूपेण न होनें के कारण दीवारों को स्तम्भ से अलग नहीं किया

Scanned by CamScanner

गया है। जिसके कारण दीवार अर्द्वगोलाकार है। गुफा की गहराई 4.18 मीटर तथा चौड़ाई 3.88 मीटर और इसकी ऊँचाई 1.66 है।

गुफा क्रमांक 9 : यह गुफा सबसे छोटी है। जिसमें एक मण्डप तथा एक प्रकोष्ठ है। दोनों माप में लगभग बराबर है। बरामदे में दाएँ ओर शिलाशयनिका निर्मित है जो 87 से.मी. चौड़ा तथा 1.83 मीटर लम्बा है। यह चबूतरा 16 सें.मी.ऊँचा है। बरामदे की छत की ऊँचाई 1.72 मीटर। द्वार ऊँचाई में पूर्ण गुफा की ऊँचाई के बराबर है। प्रकोश्ठ 1.77 मीटर गहरा, 2.41 मीटर चौड़ा और 1.68 मीटर ऊँचा है। प्रकोष्ठ के बाएँ तरफ एक अन्य शिलाशयनिका निर्मित है जिसकी ऊँचाई 38 से.मी. तथा चौड़ाई 87 से.मी. है। चबूतरा लम्बाई में सम्पूर्ण प्रकोष्ठ की गहराई के बराबर है। यह गुफा भी सामान्य प्रकार का है।

गुफा क्रमांक 10 : यह गुफा भी उसी चट्टान पर निर्मित किया गया है जिस पर गुफा क्रमांक 09 निर्मित है। गुफा का मुख पश्चिम दिशा की ओर है। इसकी चौड़ाई मात्र 1 मीटर है। इसके अन्दर उत्तरी दीवार से लगा चबूतरा निर्मित है जो 39 सें.मी. चौड़ा है। यह गुफा के प्रवेश के स्थान से बायीं तरफ घूम गया है। गुफा की पूर्ण चौड़ाई में प्रवेश द्वार है। चबूतरे को छोड़कर गुफा की चौड़ाई 61 सें.मी. है तथा गहराई 1.39 मीटर है। गुफा की ऊँचाई 1.44 मीटर है। इसके दक्षिण पूर्व कोने में एक छोटा चौकोर गड्ढा है जिसमें मिट्टी भरी हुई है। प्रवेश से 56 सें.मी. दूरी से चबूतरे का निर्माण है। इस गुफा में भी अलंकरणों का अभाव है।

गुफा क्रमांक 11: यह गुफा गुफा क्रमांक 10 से दक्षिण की ओर निर्मित है। दोनों के मध्य की दीवार 25 सें.मी. मोटी है। दोनों के द्वार आपस में 1.18 मीटर की दूरी पर स्थित है। यह प्रकोष्ठ चौकोर है। जो 2.47X2.47 मीटर की माप में है। प्रकोष्ठ की ऊँचाई 1.94 मीटर है। इस प्रकोष्ठ के मध्य में एक 37X37 सें.मी. आकार का चौकोर गर्त है जो 27 सें.मी. गहरा है। प्रकोष्ठ में दाएँ तरफ एक अन्य गड्ढा है। यह मध्य गर्त के ठीक उत्तर दिशा में 47 से.मी. दूर दीवार से सटा हुआ है। जिसमें कीचड़ भरा हुआ है। यह 52X46X30 से.मी. आकार का है। इस प्रकोष्ठ में प्रवेश द्वार की ऊँचाई 1.45 मीटर तथा चौड़ाई 78 सें. मी.है। द्वार की मोटाई 56 सें.मी. तथा इसकी देहरी 18 से.मी. ऊँची है। द्वार का ऊपरी भाग में दोनों छोर पर गड्ढे निर्मित है गुफा में किसी प्रकार अलंकरण नहीं है। यह गुफा सादे प्रकार का हैं।

गुफा क्र0 12: इस गुफा में पांच कक्ष हैं। जिसमे चार कक्ष छोटे हैं तथा एक कक्ष बड़ा है। इसका मुख दक्षिण दिशा की ओर है। प्रवेश द्वार सामान्य गुफाओं के द्वारों की अपेक्षा चौड़ा है। द्वार की ऊँचाई 1.61 मीटर चौड़ाई 1.70 मीटर तथा मोटाई 57 सें.मी. है। द्वार में ही पश्चिम की ओर एक कोष्ठक रैक निर्मित है। द्वार से बड़े कक्ष में प्रवेश होता है। यह कक्ष 1.4 मीटर गहरा तथा 2.33 मीटर चौड़ा है तथा 1.67 मीटर ऊँचा है। इस बडे कक्ष के तीनों तरफ अन्य प्रकोष्ठ निर्मित हैं जिनमें पश्चिम में एक प्रकोष्ठ, एक उत्तर– पश्चिम कोनें पर, एक पृष्ठ भाग की दीवार पर तथा एक प्रकोष्ठ पूर्वी दिशा में निर्मित है। पश्चिम दिशा में निर्मित प्रकोष्ठ 2.10 मीटर गहरा तथा 2.18 मीटर चौड़ा है। इस प्रकोष्ठ का द्वार 1.46 मीटर ऊँचा तथा 62 सें.मी. चौड़ा है। द्वार की मोटाई 39 सें.मी. है। देहरी 12 सें.मी. ऊँची है। इस प्रकोष्ठ के उत्तर दिशा जो बड़े कक्ष के उत्तर – पश्चिम कोने पर निर्मित है। में छोटा प्रकोष्ठ स्थित है। इन दोनों के मध्य की दीवार में फर्श की सतह से लगा एक छिद्र है जो दोनों प्रकोष्ठ को आपस में जोड़ता है। यह कक्ष 98 सें.मी.X 82सें.मी. X1.54 मीटर है। जिसका द्वार 1.26 मीटर ऊँचा तथा 63 सें.मी. चौड़ा और 38 से.मी. मोटा है। बड़े कक्ष के पृष्ठभाग की दीवार में तीसरा प्रकोष्ठ उत्कीर्ण है। यह 2.65 मीटरX2.70

Scanned by CamScanner

x 1.86 मीटर की माप का है। प्रकोष्ठ के उत्तरी दीवार पर एक कोश्ठक बना है। इस प्रकोष्ठ का प्रवेश द्वार 1.38 मीटर ऊँचा, 71 सें.मी. चौड़ा, 37 सें.मी. मोटा तथा देहरी 10 सें.मी. ऊँची है। इसमें अलंकरण का अभाव है। यह अतिसामान्य प्रकार का गुफा है।

गुफा क्रमांक 13 : यह गुफा दक्षिण की ओर मुख किए हुए है। इसमें एक मण्डप तथा दो कक्ष निर्मित है। दोनों कक्षों में पानी भरा हुआ है। मण्डप 3.25 मीटर गहरा तथा 2.20 मीटर चौड़ा है। द्वार की ऊँचाई 1.24 मीटर, चौड़ाई 62 सें.मी. तथा मोटाई 31 सें.मी. है। उत्तरी दीवार में जो कक्ष निर्मित है उसके सम्मुख मण्डप में जल भरा हुआ है। यहाँ की कई गुफाओं में शिव लिंग स्थापित हैं। गुफाओं का छत सपाट है। बड़ा आकार होनें पर ये गुफाएँ पहाड़ी भाग पर न होकर समतल में उभरे चट्टानों में काटकर निर्मित किया गया है। इन गुफाओं से लगभग 300 मीटर की दूरी पर गाँव है तथा दूसरी ओर जंगल यह है क्षेत्र अभी भी आबादी विहीन है। इन गुफाओं के निर्माण के प्रयोजन के विशय में जानकारी का अभाव है। यह स्थल पुरातत्त्व की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है संरक्षण के अभाव में यह गुफाएं अपने अतीत के अस्तित्व को नष्ट करती जा रही हैं। पुरातत्त्व विभाग यदि इनके संरक्षण एवं प्रचार प्रसार का प्रयास करे तो ऐतिहासिक महत्व का यह स्थल पर्यटन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन सकता है।

सन्दर्भ :

1 मिश्रा, ओ. पी. धरोहर, संचालनालय पुरातत्त्व अभिलेखागार एवं संग्रहालय,भोपाल, पृ.–13

2 गुप्ता, तरूण कुमार, म.प्र. की शैलोत्कृत गुफाओं का अध्ययन, शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, पृ. 9

3 वही, पृ.– 187

4 जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, शहडोल, सर्वेक्षण रिपोर्ट – 2010, पृ.–68

5 सिंह, योगेन्द्र प्रताप, शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, पृ.–21

6 गजेटियर शहडोल, पृ.–325

Scanned by CamScanner

22 खरबईः एक पुरातात्विक धरोहर से सम्प्रेषण कला का विकास

अमृता सिंह

हमारी पृथ्वी का निर्माण एक खगोलीय घटना का परिणाम है, जब आकाश में विभिन्न ग्रहों के टकराव से इसकी उत्पत्ति हुई थी। असंख्य भू–गर्भीय हलचलों और रासायनिक कियाओं से जल और जीवन भी अस्तित्व में आये। अन्य विशालकाय जीवों के साथ साथ यहाँ मानव सभ्यता का भी उदय हुआ। सम्प्रेषण और संवेदनशीलता तो सभी जीवों में होती है पर समूचे जीव जगत में मानव ही एक ऐसा रचनाधर्मी प्राणी जो अपने सम्प्रेषण शीलता को अनेको माध्यमों से प्रेषित करने में निपुण है। मानव मन अपनें आस–पास के परिवेश से ज्ञान प्राप्त करता रहा और कुछ स्मृतियों को उसने रेंखांकन के माध्यम से उकेरने और सहेजने का कार्य किया जिसके लिये पर्वतों की विशाल शिलायें उसके कैनवास बनीं। आदि मानव द्वारा बनाइ गयी ऐसी ही हजारों शैलचित्रों के साथ–साथ मानव के भी विकास की गाथा कहते हैं, मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में पाये जाने वाले शैलाश्रय और उनमें उत्कीण आकृतियाँ।

पुरातत्ववेत्ता और रायसेन के इतिहासविद् श्री राजीव लोचन चौबे ने अपनी पुस्तक "युग युगीन रायसेन" में अपने शोध और प्राप्त किये गये साक्ष्यों से इस शहर को पुराणकाल के त्रेता युग का निरुपित किया है। श्री चौबे ने रायसेन को श्री राम ,सीता व लक्ष्मण के वन गमन के प्रसंग को लेकर यह भी सिद्ध करने का सार्थक प्रयास किया है कि जब प्रभु श्री राम अपने अनुज और पत्नि माता सीता के साथ वर्षा काल में चतुर्मास के लिये जिस स्थान पर आकर रुके वह स्थान रामसज्जा था , तथा भगवान श्री राम के शयन के कारण यह स्थान रामशयन कहलाया और कालांतर में शब्दों की ध्वनियों में घिसाव के कारण यह रायसेन हो गया।

रायसेन जिले और समीपवर्ती विदिशा जिले के विंध्य क्षेत्रों मे विशेषकर भीम बैठका के उत्खनन से प्राप्त अवशेषों के आधार पर श्री चौबे ने यह सिद्ध करने का भी भरसक प्रयास किया है कि, रायसेन का अस्तित्व आदिकाल से है, और यह भारतीय इतिहास के मुगल काल तक भारतीय राजनीति का एक अति महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। भीम बैठका के उत्खनन से प्राप्त अवशेषों से यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि हजारों वर्षों पूर्व विंध्यपर्वत माला का यह वनआच्छादित क्षेत्र आदिमानव के लिये अनुकूल रहा होगा। आदि मानव अपने जीवन की आवश्यकतओं की पूर्ति के लिये प्रकृति पर ही निर्भर था।

Scanned by CamScanner

नर्मदा,बेतवा,बीना व धसान आदि नदियों से जल और जंगल से उसे भोजन हेतु फल, कन्दमूल तथा वनीय जीव सहजता से मिल जाते थे। विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं के कारण उत्पन्न हुए शैल और गुफाओं ने आश्रय देकर आवास की समस्या भी हल कर दी। आज रायसेन और इसके आस–पास की विंध्यपर्वत श्रृखलाओं मे प्राप्त शैलाश्रय भारत ही नहीं समूचे विश्व की अनमोल धरोहर हैं। इन शैलाश्रयों को खोजने का श्रेय प्राख्यात पुरातत्वविद् डॉ.विष्णु वाकणकर को जाता है जिन्होनें भारत की आजादी के बाद सन् 1953–54 मे अपने छात्रों के सहयोग से इन्हें खोजा। रायसेन क्षेत्र प्रागैतिहासिक अवशेषों के लिये विश्व प्रसिद्ध है। यहॉ के ग्रामीण क्षेत्रों में भाशा युगीन सभ्यताओं के अवशेष आज भी मिलते आ रहे हैं। इन अवषेशों में पूर्वपुरा–पाषाण काल, मध्यपुरा–पाषाण काल, उत्तरपुरा–पाषाण काल और मध्यारम युग के पाषाण उपकरण प्राप्त होते हैं।

जल, उदर पोषण तथा प्राणरक्षा आदिमानव की तीन मूलभूत आवश्यकतायें थीं। सरिताओं का जल, उसके प्राणी और जंगल के जीव उसकी सभी जरुरतों को पूरा कर देते थे। पूर्व–पाषाण काल के समय इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वह वनों मे भटकता रहता था। आदिमानव जितना विशाल था उतने ही विशाल उस युग के पशु भी थे अतः उत्तर–पाषाण काल में इन महाकाय पशुओं के आखेट के लिय उसने समूह बनाकर रहना प्रारम्भ कर दिया । आखेट के लिये स्फटिक आदि पत्थरों से औज़ार भी बनाये। शस्त्रों मे सर्वप्रथम गोलाकार उपकरण निर्मित किये गये जिन्हें गोलाश्म कहा जाता है। समयान्तर में आदिमानव ने नुकीले और तीक्ष्ण धार वाले उपकरण बनाये जिन्हें लकडी या किसी जानवर से प्राप्त बडी अस्थि मे लगाकर शिकार आदि कार्यो हेतु प्रयुक्त किया जाता था।

नव पाषाण युग आते आते जीवन यापन और अधिक सरल और सहज हो गया। आदि मानव गिरि कन्दराओं से निकलकर समतल भूमि पर आश्रय हेतु झोपडी बना कर सामुहिक रुप से बसने लगा। वाचिक सम्प्रेषण का जब तक विकास नहीं हुआ था आदि मानव ने सांकेतिक भाषा विकसित कर ली थी। ऐसी स्थिति में मानव ने अपनी विकसित बुद्धि के आधार पर जिस सम्प्रेषण कला का निर्माण किया वह थी, चित्रकला। चित्रांकन मानव सभ्यता की सम्प्रेषण की पहली अमिट अभिव्यक्ति के रुप मे स्थापित है। जो देखा उसे चित्रों के माध्यम से उकेर दिया। ऐसे ही हज़ारों चित्रों की श्रृंखला रायसेन के आस–पास के जंगली क्षेत्रों में आज भी संरक्षित हैं। उस समय जो चित्रांकन के विषय थे वे जंगली जानवर, मनुष्य और उनके जीवनयापन की प्रथम आवश्यकता भोजन हेतु आखेट को बेडोल आकृतियों में प्रस्तुत होते है। कहीं –कहीं तो शिकार करने के बाद विजयउल्लास के सामुहिक नृत्य के चित्र भी मिलते हैं। इन शैलचित्रों में गेरु रंग से बना विशाल शूकर एवं मनुष्य (भीम बैठका) ,रायसेन के हाथी टोल और रामसज्जा में गेरुआ लाल रंग से चित्रित पशुओं के समूह, पेनगवां में मानव तथा विभिन्न पशुओं की आकृतियां हैं। पेनगवां मे ही एक्स–रे शैली मे बने हुए चित्र भी है जो मानव बुद्धि के विकास को दर्शाते हैं। इन शैलचित्रों के विकास की अगली कडी है दैनांदिनी जीवन के कार्य–व्यापार जैसे उर्देन में शिलाखण्ड पर उकेरे हुए गेरुऐ रंग से महिलाओं द्वाराकिये जाने वाले कार्यो का चित्रांकन तथा विशाल आकृति के हाथियों के चित्र भी बनाये गये हैं इन चित्रों में ज्यामितिक रेखाओं का उपयोग कर आलेखन का प्रयास भी किया गया है। कालांतर मे जब मानव शैलाश्रायों से निकल कर मैदानो मे सामूहिक रुप से बसने लगा तो जंगल, जमीन और जोरु के कारण उनके मध्य जो संघर्ष हुए इनमें बनाये गये पाषाण कालीन अस्त्रों का उपयोग किया गया। आखेट और युद्ध में प्रयुक्त हथियारों का चित्रांकन गया है । भीमबैठका के शैलाश्रय क्रमांक–2–बी–32

Scanned by CamScanner

मे हाथियों पर सवार योद्धाओं के युद्ध का सटीक चित्रण किया गया है। जू– शैलाश्रय मे भी कुषाण कालीन शैली मे लाल रंग के घुडसवार चित्रित हैं जो मानव बुद्धि के कमिक विकास की पुष्टि करते हैं। आदि मानव के विकास के चित्र पक्षी, वृषभ, हाथी,घोडे आदि भी उनके विकास के सहयोगी बन कर उभरे। बाद के काल में इन चित्रों सुडौलता, सुपरइम्पोजीशन और अलंकरण जैसे परिष्कार के रुप में सामने आयी है सतधारा के शैलाश्रय मे स्तूप एवं बुद्ध का अंकन इसके उदाहरण हैं। इन चित्रों की श्रृंखला रायसेन और आस –पास के क्षेत्रों देखने को मिलती है। रायसेन के क्षेत्रों में शैल चित्रों के बाद मौर्य और शुंग कालीन प्रस्तर प्रतिमाओ के भी दर्शन होते हैं।

भारत वर्ष में मंदिर स्थापत्य कला का आविर्भाव तीसरी शताब्दी ई.पूर्व से माना जाता है। रायसेन क्षेत्र के सर्व–प्रथम मंदिर के अवशेष विदिशा के निकट बेसनगर से पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। श्री विष्णु को समर्पित यह मंदिर लकडी और कच्ची ईंटों आदि से निर्मित किया गया था। उदयगिरी गुफा के मंदिर शैलकृत थे। मौर्य, शुंग, प्रतिहार और परमार काल में मंदिर निर्माण की शैली अपने उत्कर्ष पर थी। सॉची के स्तूप और मंदिर , आशापुरी व भोजपुर के शिव मंदिर इसके अनुपम उदाहरण हैं। सॉची के मुख्य स्तूप पर जातक कथाओं को शिलाओं के स्तम्भ पर शिल्पकारी और नक्काशी से से उत्कीर्ण कर चार तोरण द्वार बनाये गये हैं जो अवाचिक संप्रेषण के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। ऐसे ही असंख्य चित्रों और प्रस्तर प्रतिमाओं के दर्शन के लिये खोजकर्त्ता ने भोपाल के पास स्थित रायसेन क्षेत्र के शैलाश्रय का चयन किया है।

भोपाल से रायसेन सडक मार्ग पर प्रकृति की हसीन बादियों मे स्थित है ग्राम खरबई जो विगत 30 वर्शो से एक पिकनिक स्पॉट के रुप मे स्थापित हो चुका है।। वनो और पर्वत श्रृंखलाओं से आच्छादित इस मोहक ग्रम की दूरी भोपाल से लगभग 28 किलोमीटर है। मुख्य मार्ग के समीप ही प्राकृतिक झरने और ताल के पास एक दैत्याकार चट्टान है जिसे स्थानीय लोग चिडिया टोल कहते हैं । यहॉ सप्ताहांत मे रायसेन और भोपाल के युवा अपने मित्रों और परिवार के साथ प्रकृति के सानिध्य का आनन्द लेते है। यह स्थान पुरातत्व विषय मे अन्वेषण करने वालो के साथ–साथ पर्यटकों एवं आम दर्शकों के लिये आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।[1] बहुत कम लोगों को यहॉ के पुरातात्विक महत्व के बारे मे ज्ञान है।इस क्षेत्र मे एक विषाल शैलाश्रय समूह प्राप्त हुआ है जिसकी खोज डॉ. वाकणकर ने की थी। खरबई मे आदिमानव द्वारा बनाये सैकडो दुर्लभ शैल चित्र हैं। यहॉ के शैलचित्रों में श्वेत और लाल रंग के चित्र बहुतायत में हैं। इन शैलाश्रयों मे शंख लिपि में चित्रित लेख भी प्राप्त हुए हैं। सर्वेक्षण के अन्तर्गत पहाडी के ऊपरी भाग में दो पाषाण निर्मित स्तूप भी खोजे गये हैं। स्थापत्य शैली के आधार पर इनका समूह षुंग काल का माना गया हैं। इन शैलाश्रयों मे चित्रों का सुपरइम्पोजीशन सवत्र दृष्टिगोचर होता है, जिनमे मध्यमांष, ताम्राश्म एवं मध्यकालीन चित्र देखे जा सकते हैं। यहॉ की लकडियों की कडियों के सदृश्य मानवाकृतियॉ जिनके हाथों में धनुष है, ये उत्तम श्रेणी के शैल चित्र हैं।[2] इन चित्रों के अतिरिक्त यहॉ सांभार, चीतल, बैल,हिरण और भैंसे के चित्र सामान्यतः सभी शैलाश्रयों मे प्राप्त होते हैं।[3]

खरबई में रायसेन की हाथीटोल के समान शैल चित्र प्राप्त हुए हैं। एक शैलाश्रय मे परशु लिये घुडसवार की आकृति है तो वहीं भागते हुए पशु समूह, हाथी तथा तीन हिरणों के समक्ष नर्तन करती मानव छवियॉ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसी शैलाश्रय मे ही एक और मानवाकृति उत्कीर्ण है जिसके एक हाथ लम्बा धनुष और दूसरे हाथ में तीर भी है। इन चित्रों के अतिरिक्त एक भागते हुए जंगली सूअर का गेरुआ लाल

Scanned by CamScanner

रंग से चित्रित आकृति भी है जिसकी पीठ पर बाल भी बनाये गये है। एक अन्य चित्र मे हिरण का शिकार करते हुए दो शिकारियों का चित्रांकन किया गया है, इनमें से एक आखेटक के हाथ मे नुकीला भाला है और दूसरे के हाथ धनुष और बाण हैं। जो यह सम्प्रेषित करने मे सफल है कि मानव ने गोलाश्म और पाषाण हथियारो को भाले और धनुष–बाण मे विकसित कर अधिक मारक क्षमता के सुरक्षित औज़ारों का विकास कर लिया था। कालांतर में इन्ही हथियारों का ढाल के साथ उपयोग सामरिक महत्व के युद्धों मे भी किया जाने लगा और ये उपकरण बारुद की खोज होने के पूर्व तक अस्तित्व में रहे। यहीं के एक अन्य शैलाश्रय में मध्यकालीन श्वेत रंग से चित्रित उछलता हुआ वानर , एक देवी की आकृति तथा अन्य खड़ी हुई मानवाकृतियॉ हैं, । आदि मानव के विकास की इस प्रकार की गाथा कहने बाले शैलचित्र अन्यत्र नहीं देखे गये।

मानव आदि काल से ही चिन्तन और श्रृजनशील प्राणी रहा है, उसकी ये रचनात्मक प्रक्रिया भले ही जीविकोपार्जन से सम्बंध नहीं रखती पर उसके द्वारा किया गया रेखांकन , रंगों का प्रयोग और बनाई गयी आकृतियॉ वह सब अवाचिक रुप से कहने में सक्षम सिद्ध हुई जिनसे मानव का, उसकी बुद्धि का और तात्कालयीन परिवेश का ज्ञान तो मिलता ही है। संभवतः ये बचकाने से लगने वाले चित्रों ने ही आज के विशाल कला जगत का मार्ग प्रशस्त किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. गुप्ता, तरूण कुमार, म.प्र. की शैलोत्कृत गुफाओं का अध्ययन, शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, पृ. 9
2. चौबे राजीव लोचन, युग–युगीन रायसेन,भारतीय इतिहास संकलन समीति मध्य भारत, भोपाल,वर्ष, 2012 पृ. 186–187

23 शतपथ ब्राह्मण में स्वास्थ्य रक्षण एवं बाल–संगोपन

मुकेश कुमार शाह एवं रीतेश लोट

यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रंथ षतपथ ब्राह्मण से हमें वैदिकयुगीन चिकित्सकीय गतिविधियों का ज्ञान होता है। विभिन्न प्रकार के व्रत यज्ञादि का स्वास्थ्य पर प्रभाव तथा संतान प्राप्ति का विधान भी यज्ञों के माध्यम से बताया गया है। षतपथ ब्राह्मण में पौर्णमास यज्ञ का महत्त्व तथा व्रतोपायन विधि बताई गई है। व्रत धारण करने की इच्छावाला यजमान आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि के बीच पूर्व की ओर प्राङ्मुख खड़ा होकर जल का उपस्पर्शन अर्थात् आचमन करता है। व्रतधारण से मन में अनुकूलता उत्पन्न हो, इसलिए जल का उपस्पर्शन करता है, क्योंकि जल मेध्य है। आचमन के समय वह यह वचन दोहराता है कि जल मेध्य है अतः मैं भी मेध्य होकर व्रत धारण करुँ। जल पवित्र है, अतः मैं भी पवित्र पदार्थ से पवित्र होकर व्रत धारण करुँ। चूँकि जल शरीर को तो पवित्र करता ही है, साथ ही मन को पवित्र करने वाले सत्य का व्रत धारण करते समय जल को भी अंदर लेना एक विशेष सामंजस्य रखता है। किसी अंश तक जल का मन पर साक्षात् प्रभाव भी होता है। इसीलिए क्रोधाविष्ट मनुष्य को शीत जलपान का उपदेश दिया जाता है। जिस प्रकार जल शरीर में शांति उत्पन्न करने वाला तथा मल का क्षालन करने वाला है, इसी प्रकार सत्यरूप व्रत मेरे मन को षांत तथा निर्मल करेगा। इस आचमन क्रिया का यही उद्देश्य है।[1]

'अध्वर्यु यज्ञ का वर्णन करते हुए शतपथ ब्राह्मण में उल्लेखित है कि इससे घर की दिनचर्या ठीक रहती है। यह यजमान के परिजन को भी इस पृथ्वी में अर्थात् यजमान के उद्देश्य में दृढ़ करता है। जब इसका ध्यान रखा जाता है तो इससे यजमान के परिजन न तो स्वयं विक्षुब्ध एवं च्युत होते हैं और न ही यजमान को विक्षुब्ध एवं च्युत करते हैं। इसीलिए कहा है– दृं हन्तां दुर्य्याः – गृहजन दृढ़ हो।[2] संभवतः इस यज्ञ द्वारा दिनचर्या के साथ–साथ मानसिक शांति तथा गृहशांति का भी अभिधान होगा जो कि गृहक्लेश से भी मुक्ति दिलाता हो। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यज्ञ नाशकारी राक्षसों को मारता है। इसका तात्पर्य यह है कि अग्नि राक्षसों की नाशक है। इसीलिए सूर्य की धूप तथा अग्नि द्वारा घर तथा वस्त्रादि को तपाना चाहिए। व्यायाम, वृद्धसेवा, ब्रह्मचर्य आदि द्वारा शरीर को तपाना चाहिए। यहाँ पर राक्षसों तथा असुरों से तात्पर्य विभिन्न प्रकार की व्याधियों और बीमारियों से है, जिनका नाश अग्नि तथा सूर्य की धूप से होता है।[3]

Scanned by CamScanner

' ' अंतरिक्षं वा इत्यादि' इस मंत्र द्वारा अंतरिक्ष को नाशकारी जीवों से रहित, निर्भय तथा निष्कण्टक करना है। तात्पर्य यह है कि गृहस्थों के मकान 'उर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि' हो अर्थात् मकान खुले और हवादार होने चाहिए जिससे कि नाशकारी जीव उसमें न पल सके।[4] यह देखने में आता है कि जिन घरों में धूप तथा हवा के लिए उचित व्यवस्था नहीं होती है वह घर अनेक बीमारियों का कारक होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए शतपथ ब्राह्मण में उपर्युक्त व्यवस्था की है। 'शतपथ ब्राह्मण के तष्तीय अध्याय के प्रथम ब्राह्मण (1 से 11) की कण्डिकाओं में भी मन, शरीर, वस्त्र, घर की षुद्धि के साधन बताए हैं। ये दो साधन हैं– अग्नि और जल। इनका क्रम यह है – प्रथम अग्नि तदन्तर जल और फिर अग्नि। शरीर में पहले व्यायाम से पसीना दें, फिर स्नान अवश्य करें किंतु उसके बाद शरीर को गीला न छोड़े। वस्त्रों को भी पहले गर्म जल दें फिर धोए फिर धूप अवश्य दें। घर को भी जब धोए तो फिर धूप, अग्नि आदि द्वारा पूर्णतया शुष्क अवश्य कर दें। घर को भी जब धोए तो फिर धूप, अग्नि आदि द्वारा पूर्णतया शुष्क अवश्य कर दें। क्योंकि अभिष्यन्द (Damp) स्थान में सभी प्रकार के रोग बढ़ते हैं। प्राणायाम के माध्यम से भी शरीर को शुद्ध किया जाता है, क्योंकि प्राणायाम अनेक बीमारियों को दूर करता है। प्राणायाम से अशुद्ध वायु को बाहर करें, फिर शुद्ध वायु अन्दर लें फिर अशुद्ध वायु को बाहर निकाल दें।[5]

शतपथ ब्राह्मण में उत्तम संतान प्राप्त करने के लिए विष्णु यज्ञ, पुरोडाषपाक यज्ञ इत्यादि यज्ञों का महत्त्व बताया गया है, साथ ही तत्संबंधी षुचिताओं पर भी ध्यान आकृष्ट करवाया गया है। विष्णु यज्ञ के अंतर्गत कहा गया है कि प्रत्येक स्त्री जो उत्तम संतान प्रसव करती है, वह राष्ट्र का, यज्ञ का, विष्णु का कार्य करती है। इसीलिए उसकी रक्षा केवल परिवार के व्यक्तियो पर नहीं छोड़नी चाहिए। राष्ट्र का धर्म है कि वह अपने दो कर्मचारी नियत करे और वे दोनों ही स्त्री होनी चाहिए। एक का कार्य यह देखना हो कि भोजन, वस्त्र, जल, वायु आदि जो कुछ भी गर्भवती स्त्री के षरीर में प्रवेश करें अथवा वह जो ध ारण करें, वह सब स्वच्छ हो। दूसरी स्त्री का कार्य है कि वह देखे कि गर्भवती स्त्री के शरीर का मल ठीक से दूर होता है या नहीं और मलादि का जो विसर्जन होता है वह घर से ठीक समय पर बाहर निकाल दिया जाता है या नहीं।[6] इससे स्पष्ट है कि गर्भवति स्त्री को इस अवस्था में किसी भी प्रकार की संक्रामक बीमारी न हो जिससे उसके शिशु तथा स्वयं उस पर इन बीमारियों का कोई प्रभाव न हो। साथ ही गर्भवती स्त्री की शुचिता तथा भोजन, जल इत्यादि की स्वच्छता पर भी ध्यान दिया जाता था और यह कर्तव्य परिवार के साथ–साथ राश्ट्र का भी था। शुचिता को ध्यान में रखते हुए ही एक स्थान पर कहा गया है कि कोई लोग अपने बच्चों का प्रसव मातृकुल में अर्थात् पत्नी की माता के घर में कराते हैं, तो कुछ लोग अपने ही कुल (पति के घर में) कराते हैं। दोनों के अपने लाभ हैं। मातृकुल में गर्भवती अवस्था में ब्रह्मचर्य विद्यातजन्य दोश नहीं होता अर्थात् गर्भ स्थित शिशु को किसी भी प्रकार की शारीरिक हानि न हो तथा उसका विकास ठीक प्रकार से हो सके। तथा अपने कुल (पति के घर में) में प्रसव कराने से यह लाभ होता है कि गर्भवती की देख–रेख अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति तथा पिता संतान में जो संस्कार दृढ़ करना चाहता है उसकी संभावना अधिक रहती है। किन्तु याज्ञवल्क्य ने यह व्यवस्था दी है कि दोनों ही परिस्थितियों में माता के चारों ओर पात्र स्वच्छ हो और व यज्ञोग्नि अर्थात् लोक–कल्याणार्थ गृहित संकल्प से दूर न हो।[7] अर्थात् गर्भाधान के समय शुचिता का विशेष ध्यान दिया जाना तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना आवश्यक है, जिससे कि शिशु का शारीरिक और मानसिक विकास अच्छी तरह से हो सके और उसमें अच्छे संस्कारों का परिसंचरण हो सके।

Scanned by CamScanner

गर्भाधान के पश्चात् शिशु के मस्तिष्क का विकास उत्तम हो सके इसके लिए शतपथ ब्राह्मण में द्वादश कपाल पुरोडाष यज्ञ का योजन बताया गया है ताकि बच्चे में 12 कपोलों का पूर्ण विकास हो सके, अर्थात् उनका मस्तिष्क बिल्कुल ठीक बने। द्वादष पुरोडाष का एक और गंभीर रहस्य यह है कि मनुष्य का शरीर बारह धातुओं से मिलकर बना है। अतः गर्भाधान में उनके ठीक परिपाक के लिए पिता के यह बारह के बारह धातु ठीक अवस्था में होने चाहिए और पत्नी में जिनकी न्यूनता पाई जाए, वह उनको पहुँचाई जानी चाहिए। होमियोपेथी में बारह धातुएँ इस प्रकार है– 1. कल्केरिया लोर, 2. केल्केरिया फ्रास, 3. केल्केरिया सल्फ, 4. फेरम फ्रास, 5. काली मूर, 6. काली फ्रास, 7. काली सल्फ, 8. मेग्नेशिया फ्रास, 9. नेट्रम नूर, 10. नेट्रम फ्रास, 11. नेट्रम सल्फ, 12. सिलोसिया।[8]

इसी प्रकार एक स्थान पर कहा गया है कि जब इंद्र को भूख लगी तो सोम का गौ से सम्मिश्रण करके इंद्र को खाने के लिए दिया गया। इसका स्थूल लोक में अर्थ यह समझना चाहिए कि सोम नामक औषधि को अथवा तत्सदृश्य अन्य बलकारक औषधि को जब दही में (गौ अर्थात् गाय का दूध अथवा दूध से बना दही) मिलाकर खाया जाता है तो शरीर में संतानोत्पत्ति आदि द्वारा उत्पन्न क्षीणता दूर होकर नया वीर्य उत्पन्न हो जाता है।[9] चूँकि सोम सर्व रोग निवारक महौषधि है, अतः शरीर में जो भी क्षीणता आई हुई हो अथवा जो भी अन्य रोग हुए हो तो इसे दही के साथ मिलाकर खाने पर वह रोग और क्षीणता दूर ले जाती है।[10] शतपथ ब्राह्मण में अमावस्या यज्ञ का वर्णन मिलता है जिसका दूसरा नाम सान्नाय्य यज्ञ है इसका अर्थ है – मेल से पैदा होने वाला अर्थात् जिसमें दो चीजों का समन्वय दिया जाए। इस यज्ञ का मुख्य हवि दही है, दूध का दही बनाने के लिए उसमें दही का जामन लगाया जाता है। इस प्रकार दूध और जामन का समन्वय साथ में किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को कोई पुष्टिकारक औषधि खिलानी हो तो वह भी इसी में मिला देनी चाहिए।[11] '**याज्ञवल्क्य**' के अनुसार संतान उत्पत्ति कर्म में शरीर में जो क्षीणता आती है। उसको दूर करने का सर्वोत्तम उपाय भी यही है। किन्तु वह दही जिसमें से मलाई दूर न की गई हो तो उसमें बिना किसी पुष्टिकारक औषधि के मेल के स्वयं दही ही इस कार्य को करने में समर्थ है। अमावस्या यज्ञ में दही इसीलिए प्रयुक्त होता है क्योंकि यह षरीर को उसी प्रकार क्षति–पूर्ति करता है जैसे कि सोम का अंश तन्तु। दही ने भी इसी प्रकार क्षति–पूर्ति की है। और यह कष्टदायक रुधिर शोष नामक रोग को दूर करता है। यह रुधिर शोष नामक रोग को दूर करना ही अमावस्या यज्ञ को करने का कारण है। भाव यह है कि अमावस्या यज्ञ अथवा सान्नाय्य यज्ञ का मुख्य उद्द्देश्य उस घबराहट को दूर करना है जो कि शारीरिक हानि तथा बच्चों के पालन पोषणादि परिश्रम के नाम से लोगों को संतान उत्पन्न करने से दूर करती है। तथा वह उमंग भी उत्पन्न करना है जो उत्तम संतान उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करती है।[12]

शतपथ ब्राह्मण में सामिधेनियों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि – समिध्यमानों ऽ अध्वर (ऋ. 3/27/4) इति। अध्वरो वै यज्ञः समिध्यमानो यज्ञऽइत्ये वैतदाह "अग्निः पावक ईडय" (ऋ. 3/27/4) इति पावडो ह्येश "शोषिष्केशस्तमीमह" (ऋ. 3/27/4)

यह सामिधेनी इस प्रकार होगी कि समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईडय' शोचिष्केशस्त–मीमहे (ऋ. 3/27/4) इसकी व्याख्या इस प्रकार है कि – यह अध्वर नामक यज्ञ है। इसलिए यज्ञ में यह समिन्धान किया जाता है। आगे कहता है – अग्निः पावक ईडयः – क्योंकि यह विद्वान् पवित्र करने वाला है तथा स्तुति योग्य है। आगे कहता है – "शोचिष्केशस्तमीमहे" सो प्रदीप्त उत्तम विद्वान् के केश पवित्र और

Scanned by CamScanner

चमत्कार होते हैं। क्योंकि वीर्यरक्षा के सिर के बाल चिकने रहते हैं और उपस्थ के बाल वीर्यपात से अपवित्र नहीं होते। शुचधातु में पवित्रता और चमक यही दो भावनाएँ हैं। भाव यह है कि वीर्यरक्षा करना अर्थात् रुधिर की रक्षा करना है क्योंकि वीर्य के बनने में रुधिर की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वीर्यरक्षा करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है तथा उसका यौवन दीर्घ हो जाता है।[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल षतपथ ब्राह्मण अपितु संपूर्ण वैदिक साहित्य में स्वास्थ्य रक्षण के अनेक उपाय हमारे ऋशियों ने हमें विरासत में प्रदान किए हैं, जिनका नये सिरे से अनुसंधान करने पर संभवतः हम वैदिक साहित्य में छुपी हुई आयुर्विज्ञान की अनन्त राशि को मानव कल्याण हेतु प्रयोग में ला सकते हैं।

संदर्भ –

1. शतपथ ब्राह्मण – प्रथम काण्ड – स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, पौष – सं. 2030, प्रथमाध्याये प्रथम ब्राह्मणम्। (1)
2. वही, प्रथमाध्याये द्वितीय ब्राह्मणम्। (22)
3. वही, प्रथमाध्याये द्वितीय ब्राह्मणम्। (3)
4. वही, प्रथमाध्याये द्वितीय ब्राह्मणम्। (4)
5. वही, तष्तीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम्। (1–11)
6. वही, प्रथमाध्याये तृतीय ब्राह्मणम्। (1)
7. वही, प्रथमाध्याये द्वितीय ब्राह्मणम्। (23)
8. वही, शष्ठाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणम्। (4)
9. वही, शष्ठाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणम्। (6)
10. वही, शष्ठाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणम्। (6)
11. वही, शष्ठाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणम्। (9)
12. वही, पृष्ठ – 311
13. वही, चतुर्थाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम्। (40) ऋ. 3/27/4, पृष्ठ 211–212.

Scanned by CamScanner

24 सांस्कृतिक निधिः महादेव मन्दिर पाली

मनोज कुमार कुर्मी

भूगर्भीय संरचना की दृश्टि से छत्तीसगढ़ को पठारी तथा मैदानी प्रक्षेत्रों में विभाजित किया गया है। पठारी भाग मैदानी भाग को घेरे हुए है और यह आर्कियनयुगीन ग्रेनाइट और नीस चट्टानों से निर्मित है। छत्तीसगढ़ का मैदानी भाग कड़प्पायुगीन चूने के पत्थर की चट्टानों से निर्मित है। उत्तर में गोंडवाना चट्टानें जिन स्थलों पर अपरदित हो गयी हैं, वहां पर नदियां प्राचीन चट्टानों पर अध्यारोपित मिलती है। यहां हम पाते है कि हसदो नदी ने हसदो, रामपुरा तथा कोरबा बेसिन की गोंडवाना चट्टानों को काटकर अपनी घाटी का निर्माण कर लिया है और इसके बीच में अनावष्त चट्टानें हैं।

महादेव मन्दिर पाली (22° 222 23.283 उत्तरी अक्षांश 82° 192 24.493 पूर्वी देशान्तर) बिलासपुर–अम्बिकापुर राष्ट्रीय राजमार्ग पर बिलासपुर से लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह मन्दिर पाली के रिहायसी क्षेत्र के नैऋत्य कोण पर एक नैसर्गिक आयताकार सरोवर के किनारे निर्मित किया गया है। इस मन्दिर का निर्माण लगभग एक मीटर ऊंची जगती के ऊपर बलुए प्रस्तर से किया गया है।

मन्दिर के द्वारशाखा पर लिखित एक अभिलेख के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण सन् 870–900 ई. के दौरान बाण राजवंश के प्रतापी राजा विक्रमादित्य के द्वारा करवाया गया। विद्वानों का ऐसा मानना है कि सातवीं शताब्दी ई. में दक्षिण कोशल में सोमवंशियों का राज्य था। सन् 900 के लगभग त्रिपुरी नरेश कलचुरी वंशज मुग्धतुंग प्रसिद्ध बल ने कोशल नरेश से पाली क्षेत्र जीत लिया था। प्राप्त स्फुट तथ्यों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इस बीच बाणवंशिय राजा विक्रमादित्य जिसे जयमेरु भी कहते थे, ने कोशल पर अधिकार कर कुछ काल तक यहां राज्य किया और इसी दौरान उसने इस मन्दिर का निर्माण करवाया होगा। लगभग दो शताब्दी के उपरान्त रतनपुर के कलचुरी राजा जाजल्लदेव ने इसका जीर्णोद्धार करवाया, जिसकी जानकारी इसी मन्दिर के मण्डप में उत्कीर्ण अभिलेखों से मिलती है। (मन्दिर से प्राप्त प्रथम लेख– ***श्रीमः ज्जाजल्लदेवकीर्त्तीरीमः*** मिराशी के अनुसार सही पाठ–***श्रीमज्जाजल्लदेवकीर्त्तय इमाः*** द्वितीय लेख– ***श्रीमः जाजल्लदेव (की) – (1)*** तृतीय लेख– ***(श्री) मः ज्जाजल्लदेवकीर्त्तीरीमः (1)*** चतुर्थ लेख–***सिद्धि (1) (श्रीमज्जाजल्लद) वस्य कीर्त्तिरियम्*** खुदा

Scanned by CamScanner

पाया जाता है) प्रमाण यह है कि इस मन्दिर का सभामण्डप पहले चतुश्कोण था। लगभग दो सौ वर्षो के बाद इसमें कुछ निर्बलता जरुर आ गई होगी। फलतः ऐसे सुन्दर मन्दिर को नष्ट होने से बचाने के लिए ऊपर के गुम्बज को सहारा देने के लिए चार कोनों में चार आड़ी दीवारों का निर्माण कराया गया, जिससे अब यह अष्टकोण दृष्टिगत होने लगा। इनके अतिरिक्त गर्भगृह के सम्मुख दो नये स्तम्भ प्राप्त होते हैं जिन पर नक्काशी का काम पूर्व निर्मित स्तम्भों पर की गई नक्काशी से सर्वथा भिन्न है। ये स्तम्भ ऊपर छत की टूटी हुई मयाल को सहारा देने के लिए बनाए गए थे, यह स्पष्ट विदित होता है।

कनिघंम का ऐसा मानना है कि इस मन्दिर का निर्माण सेलयुक्त आधार पर किया गया है क्योंकि उनको कई जगहों से खाली स्थान जैसी आवाज सुनाई पड़ी। पूर्वाभिमुख भू–योजना वाले इस मन्दिर में गर्भगष्ह, लघु अन्तराल और महामण्डप शामिल हैं। शैलीगत विशेषताओं के आधार पर यह उत्तर भारतीय नागर शैली का सप्तरथ प्लान वाला मन्दिर है। गर्भगृह और महामण्डप के शिखर में स्वतन्त्रता के उपरान्त सन् 1956–57 में साधारणतः मिलते–जुलते प्रस्तरों से संरक्षण का कार्य किया गया है। गर्भगृह की बाहरी भित्ति पर विशेषतः भद्ररथ में द्वितलीय कुलिकाओं का समायोजन किया गया है, जिनमें विभिन्न देवी देवताओं की प्रतिमाएं उकेरी गई हैं साथ ही इन कुलिकाओं के दोनों पार्श्वो में भी देव प्रतिमाओं, दिक्पालों, व्यालों, अप्सराओं, आलस्य नायिकाओं, मिथुन एवं मैथुन दृश्यों का अंकन प्राप्त होता हैं।

मन्दिर के गर्भगृह का प्रवेश द्वार त्रिशाखा प्रकार का एवं बेल–बुटों से सुसज्जित हैं। द्वारशाखा के अधोभाग में एक ओर नदी देवी गंगा एवं दूसरी ओर नदी देवी यमुना के साथ–साथ शैव द्वारपालों का अंकन है। ललाटबिम्ब में शिव को अर्धपर्यकाशन में प्रदर्शित किया गया है। ललाटबिम्ब के ठीक ऊपर सिरदल में नवग्रहों का अंकन है। गर्भगृह महामण्डप की अपेक्षा नीचे है तथा गर्भगृह में तीन शिवलिंग योनिपीठ के साथ स्थापित है। मूल एवं मध्यवर्ती शिवलिंग काले ग्रेनाइट से निर्मित है जबकि अन्य दो शिवलिंग लाल बलुए प्रस्तर से निर्मित है। शिव पुराण में कहा गया है कि जो उपासक एक लिंग की स्थापना कारता है उसे मेरी समानता की प्राप्ति हो जाती है परन्तु अगर एक के बाद दूसरा शिवलिंग स्थापित करता है तो उपासक को फलरुप से मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष) की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तीनों शिवलिंग शास्त्रसम्मत प्रतीत होते है। गर्भगष्ह के बाहरी भित्ति में देव प्रतिमाएं उत्कीर्ण है जिनमें नटराज, चामुण्डा, गजलक्ष्मी, सूर्य, दुर्गा एवं सरस्वती प्रमुख हैं। इसके अलावा सजीव भाव–भंगिमाओं में उत्कीर्णित अप्सराओं एवं सुर–सुन्दरियों की प्रतिमाएं विशेष दर्शनीय हैं।

गर्भगृह के ठीक सामने अष्टकोणीय मण्डप है जो संभवतः बाद में इस रुप में विस्तारित किया गया है। अष्टकोणीय आकार के मण्डप का प्रचलन तत्कालीन दक्षिण कोशल परिक्षेत्र में दुर्लभ ही रहा है। संभवतः आठ दिशाओं और अश्ट दिक्पालों के सर्वत्र सामाजिक व्याप्ति और प्रसिद्धि के परवर्ती विस्तार के कारण इसका भी विस्तारण हुआ। मन्दिर के वर्तमान मण्डप के उत्तरी व दक्षिणी ओर वातायन है तथा उत्तर की ओर एक अतिरिक्त प्रवेश द्वार है। मण्डप की छत वर्तुलाकार स्तरों से निर्मित है जो कि अवरोही क्रम से लघु होती जाती हैं। परिणाम स्वरुप मण्डप की छत गुम्बजाकार दिखाई देती है। उक्त वर्तुलाकार स्तर विभिन्न मूर्तिशिल्प के अंकन से सुसज्जित हैं जिनमें विभिन्न भाव–भंगिमाओं में योद्धा, हंसावली, कमल पंक्ति, गन्धर्व एवं फूल–पत्तियों के चित्रण प्रमुख हैं। मण्डप की आन्तरिक भित्ति पर शैवाचार्यों एवं अन्य धर्मावलम्बियों को विभिन्न मुद्राओं और क्रिया–कलापों में व्यस्त दिखाया गया हैं।

Scanned by CamScanner

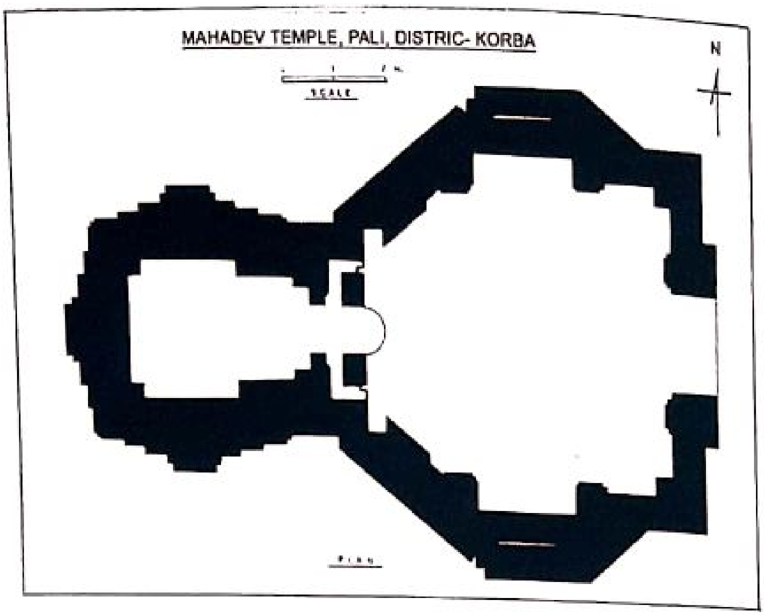

चूंकि यह मन्दिर सन् 1925 से भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा राष्ट्रीय महत्व का संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है जिसके कारण विभाग द्वारा समय–समय पर इसके संरक्षण, संवर्धन और परिरक्षण के प्रयास किये जाते रहे हैं। परम्परानुसार यह एक जीवंत शिव मन्दिर है जहां प्रतिदिन पूजा होती है तथा इसका अपना स्थानीय महत्व है।

मन्दिर का आन्तरिक एवं बाह्य भाग का रासायनिक उपचार का कार्य जनवरी 2015 में प्रारम्भ कर दिसम्बर 2015 में पूर्ण किया गया है। मन्दिर के आन्तरिक मण्डप भाग पर स्थित बलुए प्रस्तर से निर्मित मूर्तियां एवं अन्य कलाकृतियां संरक्षण के पूर्व भुरभुरी अवस्था में थी जिनका सुदृढीकरण इथाइल सिलिकेट युक्त रसायन *वेकर ओ. एच. 100* द्वारा किया गया। सूक्ष्म दरारों एवं गढ़ढ़ों को प्रस्तर पाउडर एवं इथाइल सिलिकेट यौगिक से निर्मित पेस्ट द्वारा भर कर *वेकर ओ. एच. 100* नामक प्रस्तर स्ट्रेन्थेनर से लेप कर सुदृढ़ीकरण किया गया, जबकि गर्भगृह में सीपेज के सफेद निशानों को रासायनिक सफाई द्वारा यथासम्भव हटाया गया। द्वाराशाखा की मूर्तियों का भी सुदृढ़ीकरण किया गया, यद्यपि इनमें भुरभुरापन नहीं था।

पाली के महादेव मन्दिर की बाहरी दीवारे वातावरणीय कारकों से प्रभावित होने के कारण एवं सूक्ष्म वनस्पतियों के जमाव के कारण बाहरी सतह पर एक काले रंग की परत का निर्माण हो गया था। राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित होने के कारण वाहनों द्वारा जनित प्रदूषकों का दुष्प्रभाव भी आसानी से मन्दिर की सुन्दरता एवं उसकी सेहत के लिए घातक था। बाहरी दीवारों के रासायनिक सफाई का कार्य तनु अमोनिया शल्यूशन एवं उदासीन डिटर्जेंट की सहायता से कर, बाहरी शिखर भाग पर स्थित मूर्तियों का चयन कर आवश्यकतानुसार उनका सुदृढ़ीकरण किया गया। तत्पश्चात बायोसाइडल उपचार कर बाहरी सतह पर सूक्ष्म वनस्पतियों को पुनः न जमाव हो इस हेतु ब्रशों के माध्यम से उपयुक्त विधि से लेप किया एवं अन्ततः सतह के पूर्णतः सूख जाने के पश्चात् बाहरी सतह पर जलप्रतिरोधण का कार्य किया गया इस हेतु वेकर बी. एस. 290 को मिनरल टरपेन्टाइन आयल के साथ 1:14 के अनुपात में 50 प्रतिशत तैयार कर पेन्ट ब्रशों के माध्यम से अर्धगीला रहते हुए दो कोट किया गया।

Scanned by CamScanner

जल प्रतिरोधण का कार्य सम्पन्न होने पर मन्दिर की बाहरी सतह पर स्प्रे बाटल से छिड़काव कर किए गए कार्य की efficacy का अध्ययन किया गया। स्प्रे बाटल से पानी का छिड़काव करने पर पानी की छोटी बूदों का निर्माण होना उपचारित सतह की जल प्रतिरोधण क्षमता को परिलक्षित करता है। इस प्रकार मन्दिर की आन्तरिक सतह की केवल रासायनिक सफाई एवं सुदृढ़ीकरण किया गया जबकि बाहरी सतह पर इसके अतिरिक्त बायोसाइडल उपचार एवं जल प्रतिरोधण का कार्य भी किया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

Beglar, J. D. & A. Cunningham; *Archaeological Survey of India Report*, vol.VII

Indian Archaeology-A Review-1956-57

Manwani, S. N.; *Evolution of Art and Architecture in Central India*, Agam Kala Prakashan, Delhi-1988

Mishra, R. N.; *Sculptures of Dahala and Dakshina Kosala and their Background*, Agam Kala Prakashan, Delhi-1987

Reprint, *Bilaspur District Gazetteer*, Directorate of Rajbhasha Evam Sanskriti, Government of Madhya Pradesh, Bhopal-1998

शुक्ल, हीरालाल, *छत्तीसगढ़ ज्ञानकोश*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल–2006

शर्मा, राजकुमार, (प्रधान सम्पा.) *कलचुरि राजवंश और उनका युग*, आर्यन बुक इन्टरनेशल, नई दिल्ली, खण्ड एक एवं दो–1998

मिश्रा, पी. एल., *दक्षिण कोसल का प्राचीन इतिहास*, श्रीमती सरला मिश्रा, 266 समता कालोनी, रायपुर–2003

महादेव मन्दिर पाली– वर्तमान महादेव मन्दिर पाली–पूर्व

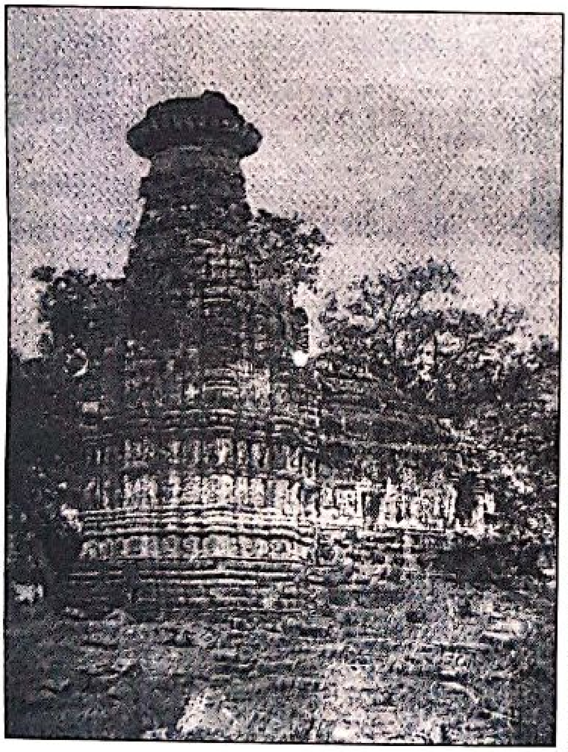

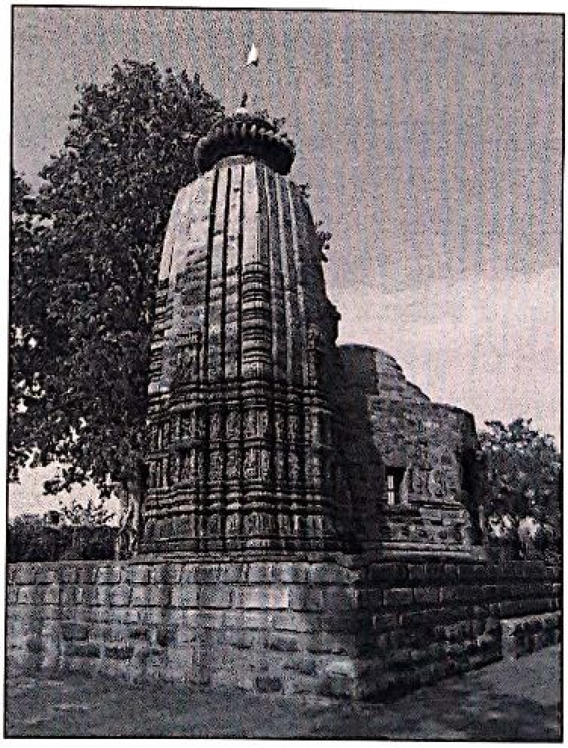

Scanned by CamScanner

25 प्राचीन भारतीय योग परम्परा और पंचकोष

संदीप ठाकरे

प्राचीन भारतीय योगविद्या में पंचकोश की संकल्पना का अनेक दृष्टियों में बड़ा महत्व रहा है। श्री आद्य शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थ ' विवके –चूड़ामणि में पंचकोशों का वर्णन किया गया है। तदनन्तर श्री विद्यारण्य स्वामी ने पंचकोशों का सुन्दर निरूपण अपने ग्रंथ 'पंचदशी' में किया है। लेकिन पंचकोश संकल्पना का मूल स्थान तैत्तिरीय उपनिषद् ही है। योग के अनुसार मनुष्य अपने अस्तित्व के उन पॉच आयामों का अनुभव करता है, जिन्हें पंचकोश कहा जाता है। इनका विस्तार स्थूल से सूक्ष्म तक होता है। इनकी जानकारी हमें वैदिक साहित्य, परवर्ती वैदिक साहित्य जैसे उपनिषद, वेदांग, पुराणों, समृतियों व पंतंजली के योगसूत्र में भी मिलता है। ये पंचकोश इस प्रकार है :–

1. अन्नमय कोश 2. प्राणमय कोश 3. मनोमय कोश 4. विज्ञानमय कोश 5. आनन्दमय कोश। व्यक्तित्व की प्रचलित पाश्चात्य सिद्धांत पद्धतियॉ मनुष्य को समग्र रूप में प्रस्तुत नहीं करती , जैसे :– फॉईड , के अनुसार बचपन में दबी हुई इच्छाएं तथा भय अति महत्वपूर्ण माने गये है। रोज्रर्स के अनुसार समाज में अपनी पहचान बनाना आदर्श व्यक्तित्व का संकेतक माना गया है, इत्यादि ऐसी अनेकानेक सिद्धान्त पद्धतियॉ प्रचलित है। परन्तु ये सिद्धान्त पद्धतियॉ मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में अक्षम सिद्ध होती है। भारतीय दृष्टिकोण में व्यक्तित्व को उसके समूचे और सर्वागपूर्ण दृष्टिकोण से लिया गया है। व्यक्ति के अस्तित्व के उपर्युक्त पंच कोश (स्तर) माने गये है। वैसे ये सभी कोश एक दूसरे से इतने संशिलष्ट है कि उन्हे अलग से संकल्पित करना असंभव है। 'पंचकोशो और प्राण का अत्यन्त गहरा संबंध है। सभी कोशो में प्राण व्याप्त होता है। प्राण के द्वारा ही उनका भरण–पोषण होता है तथा सबके बीच वह अपेक्षित सम्बन्ध बनाये रखता है। एक से दूसरे कोश में आवागमन भी प्राण की मदत से ही होता है। कोशों के बीच प्राण की कार्यविधि को गाड़ी में गियर परिवर्तन के उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। एक से दूसरे गियर में न्यूट्रल से होकर जाना ही जाना होता है। गाड़ी को रोकने या पीछे करने के लिए पहले न्यूट्रल का प्रयोग किया जाता है। न्यूट्रल गियर नही है। पहला , दूसरा , तीसरा , चौथा और रिवर्स गियर है। लेंकिन बीच के न्यूट्रल के स्थान पर गये बिना एक दूसरे गियर में नहीं जाया जा सकता है। यही सिद्धान्त कोशों पर भी लागु होता है। अन्नमय से मनोमय , मनोमय से विज्ञानमय , विज्ञानमय

Scanned by CamScanner

से आनन्दमय कोश में विचरण करने के लिए प्राणमय कोश , न्यूट्रल का कार्य करता है। व्यक्ति को एक से दूसरी अवस्था में जाने के लिए प्राण शक्ति की क्षमता का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार गियर बॉक्स में न्यूट्रल का जो स्थान होता है वही स्थान व्यक्ति के जीवन में ऊर्जा का आयाम है। प्राण के सक्रिय होने पर व्यक्ति की पहूँच भौतिक, मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक आयामों तक हो जाती है।'[1] योगसाधना में योग साधक का उद्देश्य एक–एक कोशों का भेदन करते हुए चेतना के उच्चतर स्तरों तक पहुंचना है। अतः पंचकोशों कों निम्नप्रकार से समझाने का प्रयास किया गया है।

1. अन्नमय कोष

यह स्थूल शरीर होता है। अन्न से उत्पन्न होने के कारण इसे अन्नमय कोश कहते है। विवके–चुड़ामणि ग्रन्थ में आद्य शंकराचार्य अन्नमय कोश का वर्णन करते हूए कहते है – "अन्न से उत्पन्न हुआ यह देह ही अन्नमय कोश है, जो अन्न से ही जीता है और उसके बिना नष्ट हो जाता है। यह त्वचा, चर्म, मांस, रूधिर, अस्थि और मल आदि का समूह स्वयं नित्यशुद्ध आत्मा नही हो सकता है।"[2] यह जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात भी नहीं रहता, क्षण में जन्म लेता है, क्षणिक गुणवान है और अस्थिर स्वभाव है, तथा अनेक तत्वों का संघात जड़ और घटके समान दृश्य है।[3]

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में अन्नमय कोश की महिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है – "अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है। जो कुछ प्रज्ञा पथ्वी को आश्रित करके स्थित है। जो कुछ प्रजा पथ्वी को अश्रित करके स्थित है वह सब अन्न से ही उत्पन्न होती है, फिर वह अन्न से ही जीवित रहती है और अन्त में उसी में लीन हो जाती है, क्योंकि अन्न ही प्राणियों का ज्येष्ठ है। इसी से वह सर्वोषध कहा जाता है। जो लोग "अन्न ही ब्रम्ह" इस प्रकार उपासना करते है वे निश्चय ही सम्पूर्ण अन्न प्राप्त करते है। अन्न ही प्रणियों में बड़ा है, इसलिए यह सर्वोषध कहलाता है। अन्न से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अन्न प्राणियों द्वारा खया जाता है। और वह भी उन्हीं को खाता है। इसी से वह "अन्न" कहा जाता है।[4]अन्नमय कोश के स्वास्थ्य के लिये योग साधना के रूप में साधक को शुद्ध और संतुलित भोजन, आसन, व्यायाम और शरीरश्रम संबंधित क्रियाओं का उपयोग किया जाता है। यह अस्तित्व का स्थूल स्तर है। इसको स्थूल शरीर के नाम से भी संबोधित किया जाता है। यह कोश अन्न के साथ–साथ प्राण पर भी निर्भर करता है। जहां भोजन के बिना छः सप्ताह जल के बिना छः दिन और वायु के बिना छः मिनट जीवित रहा जा सकता है। वहीं प्राण निकलते ही जीवन समाप्त हो जाता है।

2. प्राणमय कोष

"पांच केन्द्रियों से युक्त यह प्राण ही प्राणमय कोश कहलाता है। जिससे युक्त यह अन्नमय कोश अन्न से तष्प्त होकर समस्त कर्मो में प्रवष्त्त होता है।"[5] प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं है। क्योंकि यह वायु का विकार है, वायु के सामान ही बाहर–भीतर, आने–जानेवाला है और नित्य परतंत्र है। यह कभी अपना इष्ट–अनिष्ट अपना पराया भी कुछ नहीं जानता।[6] देवगण प्राण के अनुगायी होकर पाचन क्रिया करते हैं तथा जो मनुष्य और पशु आदि है वे भी पाचन क्रिया से चेष्टावान् होते है। प्राण ही प्राणियों को आयु(जीवन) है। इसीलिए वह "सर्वायुष" कहलाता है। जो प्राण कों ब्रम्ह रूप से उपासना करते हैं वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते है। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिये वह 'सर्वायुष'कहलाता है। यह अन्नमय कोश देह स्थित आत्मा है।[7] इस कोश के अन्तर्गत हमारी शारीरिक क्रियाएं जैसे श्वसन, पाचन, शरीर का हिलना

Scanned by CamScanner

डुलना इत्यादि का समावेश होता है। मुख्य रूप से प्राणायाम इस कोश सें स्वस्थ रखता है।[8] इस कोश को सूक्ष्म शरीर भी कहते है। श्वास–प्रश्वास के रूप में भीतर–बाहर जाने–आनेवाला प्राण, स्थान तथा कार्य के भेद से इस प्रकार का माना गया है। जैसे – प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान मुख्य प्राण है। तथा धनंजय नाग, कूर्म, कृकल और देवदत्त उपप्राण है। प्राण का मुख्य कार्य शरीरस्थ आहार का यथावत् परिपाक करना, शरीर में रसों को समाधान सें विभक्त करना तथा वितरित करते हुए ये इन्द्रियों का तर्पण करना होता है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से प्राणमय कोश की कार्य शक्ति बढ़यी जा सकती है।[9] प्राणामय कोश व्यक्ति का ऊर्जा क्षेत्र होता है। इसमें अनुभूति का स्वर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है। यह शरीर में व्याप्त होकर उसका सम्थरण करता है। इस कोश का पोषण इससे अधिक सूक्ष्म कोश करते है। भौतिक एंव प्राणिक शरीर मिलकर मानव शरीर की रचना करते है। जिसे आत्मपुरी, आत्मा की नगरी कहा जाता हैं। प्राणमय कोश प्राणायाम एवं प्राणविद्या के अभ्यासों का आधार है। इसका वर्णन भौतिक शरीर के प्राणिक सूक्ष्म एंव अतीन्द्रिय पक्ष के रूप में भी किया जाता है।[10]

3. मनोमय

ज्ञानेद्रियां और मन नही मैं मेरा आदि विकल्पों का हेतु मनोमय कोश है, जो नामादि भेद भाव कलनाओं से जाना जाता है और बड़ा बलवान है तथा पूर्ण–कोशों को व्याप्त करके स्थित है।[11] मन से अतिरिक्त अविद्या और कुछ नहीं है, मन ही भवबंधन की हेतुभूता अविद्या है। उसके नष्ट होने पर सब नष्ट हो जाता है और उसी के जागष्त होने पर सब कुछ प्रतीत होने लगता है।[12] 'मन' के गुणों की चर्चा करते हुए शंकराचार्य जी विवेक चूड़ामणि में कहते है– मेघ वायु के द्वारा अता है और फिर उसी के द्वारा चला जाता है। इसी प्रकार मन से ही बन्धन की कल्पना होती है और उसी से मोक्ष भी होता है।[13] यह मन ही देह आदि में सब विषयों में राग की कल्पना करके उसके द्वारा रस्सी से पशु की भांति पुरूष को बांधता है और फिर विषवत् विषयों में विरसता उत्पन्न करके इसके बन्धन से मुक्त करता है।[14] इसलिये इस जीव के बंधन और मोक्ष के विधान में मन ही कारण है। रजोगुण से मिलन हुआ यह बन्धन का हेतु होता है। तथा रज–तम से रहित शुद्ध सात्विक होने पर मोक्ष का कारण होता है।[15] अतः विवके–वैराग्यादि गुणों के उत्कर्ष से शुद्धता को प्राप्त हुआ मन मुक्ति को हेतु होता है। अतः पहले बुद्धिमान मुमझु के 'ज्ञान–वैराग्य' दोनों ही दृढ़ होने चाहिये।[16]

4. विज्ञानमय कोष

'ज्ञानेन्द्रियों के साथ वृत्तियुक्त बुद्धि ही कर्तावन के स्वभाववाला विज्ञानमय कोश है जो पुरूष (जन्म–मरणरूप) संसार का कारण है।[17] चित्त और इन्द्रियादि का अनुगमन करने वाली चेतन की प्रतिविम्ब शक्ति ही 'विज्ञान' नाम प्रकृति का विकार है। वह मैं ज्ञान और क्रियावान हूं। ऐसा देह–इंन्द्रियां आदि में निरन्तर अभिमान किया करता है।[18] यह अहंस्वभाव वाला विज्ञानमय कोश ही अनादिकालीन जीव और संसार और संसार के समस्त व्यवहारों का निर्वाह करने वाला है। यह अपनी पूर्व वासना से पुन्य–पापमय अनेकों कर्म करता और उनके फल भोगता है तथा विचित्र योनियों में भ्रमण करता हुआ कभी नीचे आता और कभी ऊपर जाता है। विज्ञानमय कोश में अभिमान वर्तमान है, कर्तव्य, भोक्तृत्व, सुखित्व आदि अभिमान ही इस विज्ञानमय कोश का गुण है। आचार्य शंकर के अनुसार – भ्रम की स्थिति पर्यन्त ही रज्जू में सर्प की प्रतीत होती है। भ्रम के नाश होने पर सर्प प्रतीत नही होती है। वैसे ही भ्रम है, तभी तक प्रमाद

Scanned by CamScanner

वश मिथ्या ज्ञान से प्रकट हुये इस (जीव–भाषा) की सत्ता है। भ्रम का नाश तभी संभव है जब ज्ञानोदय हो और ज्ञानोदय होने से ही अविद्या जानित जीव भाव का नाश हो जाता है। अतएव विज्ञानमय शब्द से कहा जाने वाला यह विज्ञानमय कोश भी विकारी, जड़ परिच्छिन्न तथा दृश्य और अभिचारी होने के कारण परमात्मा नहीं हो सकता क्योंकि यह अनित्य है और अनित्य वस्तु कभी नित्य नहीं हो सकती है। यह विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश में व्याप्त रहता है। लेकिन उससे सूक्ष्म है। विज्ञानमय कोश वैयक्तिक एंव सार्वभौमिक मन के बीच की कड़ी है। आंतरिक ज्ञान इसी तरह से चेतन मन में आता है। जब यह कोश जाग्रत होता है। तब व्यक्ति को जीवन के अनुभव अर्न्तज्ञान के रूप में होने लगते है। उसे दृश्य जगत के पीछे छिपे सत्य का बोध होने लगता है। इससे प्रज्ञा की जागृती होती है। आकलन क्षमता, निर्णय क्षमता इत्यादि बौद्धिक व्यापारों का समावेश विज्ञानमय कोश में होता है। इसके स्वास्थ्य के लिए मुख्य रूप से धारणा तथा ध्यान का अभ्यास उपयुक्त पाया जाता है।

5. आनन्दमय कोष

आनन्द स्वरूप आत्मा के प्रतिबिम्ब से चुम्बित तथा तमोगुण से प्रकट हुई वृत्ति आनन्दमय कोश है। वह प्रिय आदि (प्रिय,मोद और प्रमोद –इन तीन) गुणो से युक्त है और अपने अभीष्ट पदार्थ के प्राप्त होने पर प्रकट होती है। पुण्य –कर्म के परिपाक होने पर उसके फलस्वरूप सुख का अनुभव करते समय भाग्यवान पुरूषों को उस आनन्द मय कोश का स्वयं ही ज्ञान होता है। जिससे संपूर्ण देहधारी जीव बिना प्रयत्न के ही अति आनन्दित होते है।[19] आनन्दमय कोश व उत्कट (तीव्र) प्रतीत तो सुपुष्टि मे ही होती है। तथापि जागषति और स्वप्न में भी इष्टवस्तु के दर्शन आदि से उसका यत्किचित् भान होता है।[20] इस प्रकार जो आत्मा स्वयं प्रकाश, अन्नमयादि पांचों कोशों से पृथक तथा जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर सत्रूप निर्विकार, निर्भव और शुद्ध सत्य स्वरूप है। उसे ही विद्वान पुरूष को अपना वास्तविक आत्मा समझना चाहिये। [21]

आनन्दमय कोश, आनन्द का स्तर है। यह कारण या अतीन्द्रिय शरीर सूक्ष्मतय प्राण का निवास है। समाधि की अवस्था में ही इस कोश का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता कि पंचकोश, आत्मज्ञान के लिये अत्यावश्यक है। अतः पंचकोश की साधना द्वारा व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप से परिचित हो सकता है। पंचकोश के संदर्भ में हुई उपर्युक्त चर्चा को निम्न तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है।

शरीर	अवस्था	कोष
स्थूल शरीर	जागृत	अन्नमयकोष
सूक्ष्म शरीर	स्वप्न	प्राणमयकोष ,मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष
कारण शरीर	सुषुप्ति	आनन्दमयकोष

पंचकोष के द्वारा चेतना का आरोहण :– योग साधना में साधक का प्रमुख उद्देश्य एक–एक कोशों का भेदन करते हुए चेतना के उच्चतरी स्तरों तक पहुंचना होता है। चेनता के उच्चतर स्तरों तक पहुंचने के लिए पंच षटकर्म, आसन प्राणायाम, मुद्रा एवं बंधों अभ्यास उपयोगी बताया गया है। उदाहरण के लिए षटकर्म के अभ्यास शरीरगत नाड़ियों की शुद्धि होकर, अन्नमय कोश का शोधन होकर प्राण का प्रवाह सुगम होता है। फलस्वरूप चेतना को अग्रीम स्तर अयति प्राणमय कोश में प्रवेश करने के लिए मार्ग

Scanned by CamScanner

सुगम हो जाता है। इसी प्रकार आसनों का अभ्यास भी अन्नमय कोश के अवरोधों को दूर कर, प्राणमय कोश को प्रभावित करता है। साधक आसनों के अभ्यास में जैसे–जैसे प्रगति करते जाता है। उसका प्रभाव और अधिक सूक्ष्मस्तर होते जाता है। और प्राणमय कोश सीधे प्रभावित होने लगता है।

प्राणायाम का अभ्यास भी प्राणमय कोश को प्रत्यक्ष रूप से और मनोमय कोश को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इसी प्रकार प्रथम तीनों कोशों अचति अभमय, प्राणमय और मनोमय कोश के शुद्धिकरण के प्रश्चात चौथे कोश, विज्ञानमय कोश का द्वार खुल जाता है। जो कि अंतर्ज्ञान का कोश है। लेकिन आनन्द्रमय कोश का कैसे और कब वेदन होता है। यह एक रहस्य ही बना हुआ है। अजीन्द्रिय क्षेत्र में अभ्यासों के क्रय और उनके प्रभाव का सिद्धांत लागू नहीं होता है। फिर भी पांचों कोश परस्पर जुड़े हुए है और यदि एक में कुछ परिवर्तन होता है। तो उसका प्रभाव दूसरें कोशों पर पडता है। मनोमय कोश के शुद्धिकरण के फलस्वरूप विचारों में स्पष्टता आती है और भावनाओं एवं मध्य की अभिव्यक्ति हो जाती है। विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों को बेहतर ढंग से समझने की क्षमता विकसित होती है और बुद्धि एंव कर्म के क्षेत्र में अधिक सृजनात्मकता आ जाती है। जब अन्न्मयकोश और प्राणमय कोश शुद्ध हो जाते है। जब उनके तथा मनोमय कोश के बीच कोई बाधा नहीं रह जाती है। इस प्रकार शरीर मन और ऊर्जा के सामंजस्य से विज्ञान मय कोश के आवरण को भेदा जा सकता है। जब इस आत्मिक कोश में प्रवेश होता है। तब एकाग्रता तीव्र हो जाती है। और मन के गहन विचार सतह पर आ जाते है। आत्मिक अनुभूतियों भी होने लगती है। तथा जड़ जमाये हुए संस्कारों का परिष्करण हो जाता है। इस प्रकार विज्ञानमय कोश का शुद्धि करण होकर अंतर्ज्ञान में स्पष्टता आ जाती है। इा अवस्था में मन वास्तव में रिक्त होकर आनन्द्रमय कोश की अनुभूति के लिए तैयार हो जाता है।

पंचकोष चेतना :– प्रत्येक साधक विकास क्रम में अपनी स्थिति के आधार पर चेतना के पांचो स्तर शरीर, जीवन, मन, चित्त और आत्मा में से मुख्यतः किसी एक में स्थित होता है। यदि चेतना मुख्यतः अभमय कोश में है तो व्यक्ति की स्थिति निश्चित रूप से शरीर में ही होता हैं। यदि चेतना प्राणमय कोश में है तो व्यक्ति खिलाड़ियों की तरह शक्ति और ऊर्जा से संबंध जोड़ते है। चेतना यदि मनोमय कोश में है तो विश्लेषणात्मक मन के साथ व्यक्ति का तादाम्य होता है। जब चेतना का विकास विज्ञानमय कोश तक हो जाता है, तो मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियां कम हो जाती है। जब विवके बुद्धि के आधार पर ज्ञान में स्पष्टता आती है।

पंचकोष और चक्रों का संबंध :– चक्र शरीर के अन्दर ऊर्जा के सूक्ष्म किन्तु शक्तिशाली स्त्रोत होते है। प्राणिक शरीर को चक्रों से ऊर्जा प्राप्त होती है। चक्रों का अनुभव भौतिक रूप से नही बल्कि आत्मदर्शन के द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार से व्यक्ति अपने अस्तित्व के पांचो स्तर अर्थात पंचकोशों का भी अनुभव प्राप्त कर सकता है। अनमय कोश मूलाधार चक्र से संबंधित होता है। इसका संबंध पृथ्वी तत्व से होता है।

- प्राणमय कोश का संबंध स्वाधिष्ठान चक्र से होता है जो कि जल तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।
- प्राणयम कोश का सबंध मणिपुर चक्र से भी होता है जो कि अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।
- मनोमय कोश का संबंध अनाहत चक्र से होता है कि वायु तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।
- विज्ञानमय कोश का संबंध, विशुद्धि चक्र से होता है जो कि आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।
- आनन्दमय कोश का संबंध, सहस्त्रार चक्र से होता है जो कि सर्वोच्च चेतना का स्थान है।

Scanned by CamScanner

इस प्रकार पंचकोश और चक्रों का परस्पर संबंध जुड़ा है जो कि मानवीय चेतना का प्रतिनिधित्व करते है। अतः निरन्तर अभ्यास के द्वारा साधक चेतना के सर्वोच्च शिखर के अनुभूति को प्राप्त करता है। अतः प्राचीन भारतीय योग विद्या में उपस्थित पंचकोश का ज्ञान, साधना और सम्यक् ज्ञानोपलब्धिकी दर्षष्टि से सर्वोत्तम है। इनका उल्लेख परवर्ती वैदिक साहित्य में भी मलिता है।

संदर्भ–सूची

1. सरस्वती स्वामी निरंजनान्द (2012) प्राणएवं प्राणायाम , योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार पृष्ठ, 22
2. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –156 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 44
3. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –157 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 5
4. तैत्तिरीयोपनिषद, शिक्षावल्ली) – 1 गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ, 108
5. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –167 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 48
6. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –168 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 48
7. तैत्तिरीयोपनिषद, (ब्रम्हानन्दवल्ली) –1 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ–,114
8. भोगल रणजित सिंह (2012) योग एवं मानसिंक स्वास्थ्य, केवल्यधाम ,लोनावाला पृष्ठ,,83
9. स्वामी रामदेव (2009) प्राणायाम रहस्य, दिब्य प्रकाशन, पंतन्जलि योगपीठ, हरिद्वार पृष्ठ,13
10. सरस्वती स्वामी निरंजनानंद (2012) प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार पृष्ठ,3
11. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –169 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ,, 48
12. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –171 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ.,49
13. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –174 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ,, 50
14. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –175 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 50
15. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –176 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 50
16. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –177 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 51
17. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –186 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ,, 53
18. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –187 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 53
19. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –209 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ ,58
20. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –210 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ,, 59
21. आद्यशंकराचार्य , विवेक चूड़ामणि –213 गीताप्रेस,गोरखपुर पृष्ठ, 59

Scanned by CamScanner

26 ईसाई धर्म संस्कृति में योग परम्परा

श्याम सुन्दर पाल

'योग' शब्द का प्रमाणित अर्थ ईश्वर के साथ एकता प्राप्त करना ही नहीं है, जो इसका मूल अर्थ है, अपितु उसने उन साधनों का भी बोध होता है जो उक्त ध्येय की प्राप्ति में उपयोगी माने जाते है। सम्भवतः 'योग' शब्द का यह दूसरा एवं लाक्षणिक मार्ग पहले की अपेक्षा अधिक विचार की अपेक्षा रखता है। किन्तु पहले अर्थ के सम्बन्ध में हम जिस निर्णय पर पहुँचेंगे उसका अवश्य ही दूसरे अर्थ के सम्बन्ध में स्थिर किये हुए हमारे विचारों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा। परमात्मा के साथ एकता करने के कई अर्थ हो सकते है और विचारक के मन मे परमात्मा का जो स्वरूप होगा उसी के अनुसार उसकी एकता का स्वरूप भी होगा। कुछ लोगो के मत में 'एकता' का अर्थ लीन हो जाना है अर्थात वह अवस्था जिसमें अपना कोई भिन्नत्य रह ही नहीं जाता, वह उस परमात्मा का ही एक अंग बन जाता है जिसमें वह लीन हो जाता है—वह परमात्मा से अभिन्न ही नही हो जाता बल्कि उसके साथ ऐसा घुल–मिल जाता है कि फिर उसका पृथक अस्तित्व ढूँढ़ने पर भी ध्यान में नही आता। इसे हम एकता की पराकाष्ठा कह सकते है। इसके नीचे उतरकर लोगों ने एकात की कई श्रेणिया मानी है। परन्तु कदाचित् उन सभी श्रेणियों– में योग करने वाले की पृथक सत्ता किसी न किसी अंश में अवश्य रह जाती है– वहाँ एकता का स्वरूप अभिन्नता न होकर अविश्वास अथवा मेल ही होता है। एकता का अर्थ है परमात के साथ एकमन हो जाना–परमात्मा के संकल्प के साथ उपने संकल्प को मिला देना। साधक परमात्मा की प्रभुता और सुहृदतो को समझकर अपनी दृष्टि को बदलने की, अपने भाव को परिवर्तित करने की तथा अपनी निजी कल्पनाओं और जनसमाज की युक्तियों और योजनाओं को परित्याग कर जिनका साधारण जनता अनुगमन करती है परमात्मा के संकल्पों और अभिसन्धि का अनुसरण करने की चेष्टा करता है। हम परमात्मा के संकल्पों के अनुसार करने की बात हेतु पूर्वक कह रहे है न केवल किसी मत विशेष का उपन्यास कर रहे है न किसी ऐसे सिद्धान्त–वाक्यों को दोहरा रहे है जिसका अर्थ तो हम न जानते हो और केवल इसलिये ठीक समझतें हो कि वह भगवद्वाव्य हैं एकता का अर्थ है परमात्मा के प्रति इस प्रकार प्रेम–पूर्वक आत्मसमर्पण करना कि जिससे हमारा चित्त उनकी दिव्य ज्योति से जगमगा उठे हम हृदय से वही चाहे जो उन्हें प्रिय हो और प्रतिदिन नहीं नहीं हर घड़ी, अपना आचरण एवं व्यवहार ऐसा प्रषस्त एवं परिष्कृत बनाने की चेष्टा

Scanned by CamScanner

करें कि जिससे मनुष्य का साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये इसका ईश्वरीय आदर्श हमारे सामने मूर्तिमान होकर खड़ा हो जाय।

एक सच्चे ईसाई का अपने भगवान के साथ किस प्रकार का संम्बधन होना चाहिये इस विषय में ईसा मसीह के उपदेषों का स्थूल आशय स्पष्ट ही है। स्वयं उनका अपने परमपिता के साथ जो सम्बन्ध है उसमें कई बाते बिल्कुल निराली है जिनके कारण उस सम्बन्ध के स्वरूप और लक्षणों के निर्देश करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जहा हमारे प्रभु ने 'मैं और मेरे पिता एक ही है' ("I and my Father are one") इस प्रकार के वाक्य कहे है वहाँ तो वह कठिनाई और भी सुस्पश्ट हो जाती है, एक तरफ तो उनका सम्बन्ध हमें इतना घनिष्ठ प्रतीत होता है कि उसे समझाने के लिये हमें मानव–जगत में उदाहरण ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। किन्ही दो मनुष्य में मन और हृदय की कैसी ही एकता, अभिन्नता क्यों न हो, वह उसकी तुलना में नहीं ठहर सकती। दूसरी ओर हम उपयुक्त वाक्य का अद्वैतपरक अर्थ भी नहीं कर सकते क्योंकि उस हालत में 'मै और मेरे पिता' इस प्रकार का द्वैत नही रह सकता। यह एक ऐसा सम्बन्ध ा है जिसका निर्देश हो सकता है अर्थात अद्वैत नहीं है, दोनों में घनिश्ठ संयोग है, किन्तु सर्वथा अभेद नहीं। यदि हम इतनी ही बात पाठको को सामने उत्तर के रूप में रखे तो वह कदाचित अपूर्ण समझी जायेगी और उससे सबका समाधान न हो सकेगा। हमने तो केवल इस बात को समझने की कोशिश की है कि हमारे सामने एक ऐसी पहेली है जिसको बूझना हमारे लिये कठिन है, नही नही हमारी बुद्धि की सीमा के बाहर है, किन्तु फिर भी उसे हम एक महान तथ्य के रूप में अनुभव करते है। यह तथ्य हमारी बुद्धि के लिये अगम्य होने पर भी हमारे समस्त चैतन्यांश को इस निश्चय से आपूरित कर देता है कि वह रहस्य एक सत्य तत्व है, केवल हमारे मन की कल्पना नही है। अब रही परमात्मा के साथ हमारे सम्बन्ध की बात सो इस विशय में ईसा मसीह का सिद्धान्त सुतरां स्पष्ट है। बाइबिल में एक वाक्य भी ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें अस्पष्ट रूप से यह संकेत किया गया हो कि ईसाइयों का ध्येय परमात्मा में मिल जाना है। बाइबिल में एकता का जो वर्णन मिलता है उसका अर्थ है परमात्मा की इच्छा को जीवन का संचालक एवं पथप्रदर्शक मानता, अपने आपको ईष्वर के मन तथा अभिसन्धि में मिला देना और मन में इस बात का निष्चय रखना कि मनुश्य का परम ध्येय यही है, और उसी में आनन्दित होना। महात्मा पॉलके पत्रो में हमें इस प्रकार के वाक्य मिलते है जिनका भाव है– मैं जीता हूँ पर अब मैं नही, अन्दर ईसा मसीह जीते है। (I live and yet no longer I' but Christ liveth in me) परन्तु इस प्रकार के वाक्य का सम्भवतः कोई भी इससे अधिक अर्थ नहीं लगावेगा कि यह कहने वाला पुरूश ईसा मसीह को अपना गुरू मानकर उनकी 'सर्वतो भावेन वष्यता' स्वीकार करता है, अपने को ईसा मसीह के संचालन में रखकर उन्ही से षक्तिसज्जार, योगक्षेम एवं अनुग्रह की आषा रखता है। उसी के आगे ये षब्द मिलते है– और अब हो जीवन इस षरीर है वह उन्ही ईश पुत्र में विश्वास का जीवन है जिन्होंने मुझे प्यार किया और मेरे लिये अपने आपको दे दिया।"

रहस्यवादियों (mystics) में कुछ लोग अवश्य ऐसे मिलते है जो परमात्मा में लीन हो जाने को ही ईसाई जीवन का एकमात्र परमपुरूशार्थ मानते है। परन्तु यह सिद्धान्त अपवादस्वरूप ही है, बहुसंख्यक ईसाई स्त्री पुरूश के साधारण विचार इस प्रकार के नही हैं एक ईसाई के जीवन की चरितार्थता परमात्मा के साथ एक हो जाने में नही है, बल्कि उनके साथ पूर्ण साहचर्य में है। हमारे आलोच्य विशय का दूसरा अंष है वे साधन जिनके द्वारा ईश्वर का साहचर्य प्राप्त हो सके। इस सम्बन्ध में लोगो ने समय समय पर

Scanned by CamScanner

कई तरह के विचार प्रकट किये है, परन्तु इस विशय में कोई ऐसा सिद्धान्त सामने नही रखा जा सकता जो सर्वमान्य हो।

अधिक ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि बाइबिल में हमारे प्रभु का जो जीवनवष्तान्त तथा उपदेषो का संग्रह है उसमें ऐसी किसी बात का उद्देश्य बहुत ही कम है जिसका योग सम्बन्ध साधनाओं से निकट सम्बन्ध हो। उपदेश कार्य आरम्भ करते समय ईसा मसीह ने चालीस दिन का उपवास किया था,, ऐसा वर्णन मिलता है, किन्तु उन्होने इस तप को किसी साधन के रूप में किया हो ऐसा नहीं मालूम होता, बल्कि कुछ समय तक वह अकेले जंगल में रहे थे और वहा वह अपने भावी उपदेश कार्य को सोचने में इतने तल्लीन हुए कि उन्हें खाने पीने की सुध भी न रही। एकाध अगह अवश्य 'प्रार्थना और उपवास' का उल्लेख आता है, और ऐसा भी वर्णन मिलता है कि प्रभु कभी कभी एकान्त में बैठकर प्रार्थना तथा ध्यान के लिये समय निकाला करते थे, परन्तु साधारण तौर पर हमारे प्रभु के जीवन में तथा उनके उपदेशों में योग साध ाना की आवश्यकता के सम्बन्ध में एक भी प्रमाण नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सादा एवं साधारण मनुष्यों का सा जीवन व्यतीत करते थे तथा सामान्य कोटि के स्त्री पुरूषों से निसंकोच होकर मिलते थे, यहाँ तक कि उन्हें सामाजिक उत्सवों में भी सम्मिलित होने में किसी प्रकार का संकोच नही होता था। उनकी दृष्टि में ध्यान कोई बाह्म साधन नहीं है, अपितु मन की वृत्ति को अनवरत रूप से भगवान की ओर लगाने का नाम है जिससे कि जीवन में अव्यक्त जगत् के सनातन सत्य तत्वों की सन्निधिका अनुभव होने लगे। 'वसुन्धरा भगवान की है और भगवान की साग्डता है।' भगवान ने मनु,ष्य के ही उपयोग एवं भोग के लिये सारे मौलिक पदार्थो की रचना की है। इसलिये उनका परित्याग करने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है केवल इस बात को ध्यान में रखने की कि कही ये पदार्थ हमारे सिर पर सवार होकर हमें अपने अधीन एवं वशवर्ती न कर ले, हमें अपना गुलाम न बना लें। मनुष्य को चाहिये कि वह वस्तुओं का यथार्थ मूल्य ऑकना, उनके गुण दोशों का विवेचना करना सीखे, आध्यात्मिक एवं सनातन तत्वों का आधिभौतिक एवं जागतिक तत्वों द्वारा पराभव न होने दे। प्रार्थना, निर्भरता, (ईश्वर एवं मनुष्य मात्र के प्रति) प्रेम, ये ही योग साधनाएँ है जिन्हें ईसा मसीह ने परमात्मा के अधिकाधिक साहचर्य में सहायता बताया है।

प्रभु ईसा मसीह के काल से लेकर अब तक ईसाइयों ने जिन जिन योग साधनाओं का अभ्यास किया है उनकी कथा बहुत लम्बी–चौड़ी और वैचिन्यपूर्ण है। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियों में उपवासादी कठोर व्रतचर्याओं को कई लोग बहुत उपयोगी मानते थे और उसके बाद भी भिन्न–भिन्न युगो में कुछ सम्प्रदायों की ऐसी ही धारणा रही है। परन्तु इस प्रकार की धारणा अधिक संख्यक ईसाईयों में न तो सर्वमान्य ही रही है, न सामान्य ही। ईसाइयों को बराबर चेतावनी दी जाती रही है कि वे भोगविलास की ओर अग्रसर न हो, इन्द्रियों के दास न बने। उन्हें यह भी षिक्षा दी जाती रही है कि वे अपनी सम्पत्ति और अपनी सारी शक्तियों को परमात्मा की सौंपी हुई पवित्र धरोहर समझे, उनका विवेकपूर्ण उपयोग करें और उदारता पूर्वक उनका दूसरो को भी उपभोग एवं उपयोग करने दें। उनको इस सम्बन्ध में सतर्क रहने का उपदेश दिया जाता रहा है कि भौतिक सुख उनकी आध्यमिक दृष्टि को आवृत न कर दें, वे लोग इस जगत को सराय सा समझकर उसमें मुसाफिरों की तरह रहें, तथा इस बात को सदा स्मरण रखे कि हमारा वास्तविक और सनातन घर आगे है, किन्तु साथ ही साथ जो ईश्वर प्रदत्त वस्तुएँ हमें रास्तें में पडी हुई मिले उनका धर्माविरूद्ध उपभोग भी करते रहे। कदायित् योग का सर्वसुलभ रूप उपवास है। रोमन

Scanned by CamScanner

कैथलिक तथा प्रॉटेस्टण्ट दोनो मतों के अनेक अनुयायी उपवास को बहुत अधिक उपयोगी मानते है और खास–खास अवसरों पर अवश्य उपोषित रहते है। कुछ लोग ऐसे है जो नियमित रूप से उपवास तो नहीं रखते, किन्तु उसे आत्मोन्नतिका एक वास्तव में उपयोगी साधन अवश्य स्वीकार करते है। वे यह समझते है कि ऐसे सयम में जब भौतिक सुखों की आत्मा पर विजय होती दिखती है, उपवास में मनुष्य को बडा साहस एवं बल मिलता है। इस वर्ग के लोग उपवास को प्रायश्चित के रूप में न देखकर आत्मोन्नतिका एक, उपकारी साधन मानते है और यह समझते है कि उपवास जीवन में आत्मा के प्रभुत्व का द्योतक है और इस बात को भी सूचित करता है कि हम भौतिक जगत के आधिपत्य को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है।

इन पंक्तियों का लेखक इस बात को जानता है कि ईसाइयों में बहुत लोग ऐसे है जिनकी यह धारणा है कि ईसाई धर्म में योग का महत्व जितना वह समझता है उसकी अपेक्षा कही अधिक है। वे ऐसा मानते है तो मानें लेखक उनके इस भाव का आदर करता है और यदि इस प्रकार की साधनाओं का महत्व उनके अनुभव में आया है तो उनकी बात का वह खण्डन भी नहीं करता, बल्कि उनके अनुभव की सत्यता को स्वीकार करने में भी उसे कोई आपत्ति नहीं हे। ईसाई धर्म का क्षेत्र बहुत व्यापक है, उसके अन्दर ईसाई जीवन की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न स्वरूपों तथा भिन्न–भिन्न प्रकार के अनुभवों के लिये गुंजाइश है। सबसे मुख्य बात तो है ईश्वर के सम्बन्ध में क्रमशः अधिकाधिक जानना और उन्हें जानकर उनसे प्रीति करना, उन पर भरोसा करना और उनकी इच्छा के अनुकूल आचरण करना। ईश्वर को जानने का उपाय है ईसा मसीह की शरण में आना और उन्ही को एकमात्र गति मानना और प्रार्थना, निर्भरता और वश्यता के द्वारा जीवन को पूर्णता को प्राप्त करना।

Scanned by CamScanner

27 शिवलहरा: एक ऐतिहासिक धरोहर

हीरा सिंह गोंड

दारसागर व शिवलहरी, मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिला मुख्यालय से पूर्व दिशा में लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर अनूपपुर तहसील में 23° 9′ 1″ उत्तरी अक्षांश से 81°58′7″ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस पुरास्थल पर प्रतिवर्ष मेला लगता है। भालूमाडा से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर सोन नदी की सहायक नदी कैबई के तट पर कुछ गुफाओं का निर्माण किया गया हैं। इस स्थान को शिवलहरी है। इस क्षेत्र की जानकारी प्राचीन भारतीय साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्त्रोंतों मिलती है। श्रीराम का इस क्षेत्र में निवास महाभारत काल में पाण्डवों से संबंध, अशोक की धम्म विजय, समुद्रगुप्त की दिग्विजय यात्रा, कलचुरियों का आधिपत्य[5] चन्देलों का पराभव तथा गौड़ों, बघेलों के प्रभुत्व सन्देशों की कहानी आज भी इस प्रदेश के कण–कण में व्याप्त है।

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद श्री बैगलर ने सन् 1873 में शहडोल जिले का पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण किया था। उनके प्रतिवेदन में इस क्षेत्र में शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म एवं सोहागपुर के निकटवर्ती क्षेत्रों में जैन मंदिरों के अवशेष, तीर्थंकर मूर्तियाँ एवं शासन देवी–देवताओं की अनेकों प्रतिमाओं की जानकारी मिलती है। श्री बैगलर के अनुसार सोहागपुर क्षेत्र में 10–11 वीं शती ई. में जैन धर्मावलम्बियों का विषाल केन्द्र रहा होगा। इस क्षेत्र से डी. डेरा और पीटरसन ने सर्वेक्षण कार्य कर अनेक प्रागैतिहासिक पुरावशेष खोजे थे। संसार की प्राचीन सभ्यताएं प्रमुख नदियों के किनारे बसी है। कैबई नदी घाटी में मानव इतिहास का प्रारम्भ प्रागैतिहासिक काल से होता है। इसे पाषाण काल के नाम से भी जाना जाता है। इस काल में मानव पाषाण उपकरणों का प्रयोग करता था। इस काल में मानव जगलों में विचरण कर कंद मूल फल तथा पशुओं का आखेट करके अपना जीवन यापन करता था। खाद्य संग्रह करने एवं आखेट करने में मानव के सहायक रुप में सर्वप्रथम बटिकाश्म पत्थरों के उपकरणों को बनाया गया। इस काल को पुरातत्ववेत्ताओं नें पुरापाषाण काल कहा है। इस काल का प्रारम्भिक समय लगभग 300000 लाख वर्ष पूर्व माना जाता है। पाषाण उपकरणों की तकनीक के आधार पर प्रागैतिहासिक काल को तीन भागों में विभाजित किया गया है। जिनकों पुरापाषाण काल, मध्यपाषाण काल, नवपाषाणकाल के रुप में विभाजित किया गया है।

Scanned by CamScanner

दारसागर, गंम्भीरवाटोला से जो शिवलहरा से दो किलोमीटर की दूरी पर है। यह पुरास्थल सोन नदी की सहायक नदी कैबई नदी के किनारे स्थित है। इसकी खोज व उत्खनन इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. आलोक श्रोत्रिय तथा डॉ मोहन लाल चढार ने की इसके पश्चात 2015 ईस्वी में अमरकटंक विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग द्वारा यहॉ उत्खनन किया गया था। इस उत्खनन में मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक के पुरावशेष मिले है। शिवलहरा की गुफाओं का निर्माण सम्भवतः मौर्य काल में किया गया था। इसका प्रमाण गुफाओं की दीवारों पर लिखे गये मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि के अभिलेखों के माध्यम से मिलता है। यहां पर कुल 5 गुफाओं का निमार्ण कार्य किया गया है, जिनमे से तीन गुफाओं में मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि के अभिलेख प्राप्त हुए है। एक गुफा में शंख लिपि एवं गुप्तकालीन लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख प्राप्त हुए है। यहॉ पर गुफाओं की दीवारों पर गणेश, हनुमान, हाथी पर बैठे योद्धा एवं अन्य प्रतिमाओं को बनाया गया है। इन अभिलेखों की खोज अभी हाल में इंदिरा गाधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के सर्वेक्षण के दौरान की गई। इन गुफाओं में अनेक प्रतिमाओं को भी निर्मित किया गया है। इन गुफाओं में बौद्व विहारों व जैन साधुओं के निवास जैसे आवास के तीन कमरे बने हुए हैं। एक गुफा में यहां पर चैत्य गवाक्ष जैसी आकृति बनी है। सम्भवतः मौर्यकाल में इन गुफाओं का निर्माण बौद्व भिक्षुओं या जैन साधुओं को तपस्या करने हेतु बनाया गया

अनुपपुर जिले के शिवलहरा सर्वेक्षण में प्राप्त मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि व गुप्तकालीन शंख लिपि

शिवलहरा से पॉच उत्कीर्ण गुहा पत्थरो को काटकर बनाया गया है इनके अलावा भी कई जगहो पर काट छाट कर किया गया है। इन गुफाओ मे मौर्यकालीन गुप्त कालीन ब्रह्मी लिपि एवं शंख लिपि प्राप्त हुई है।

गुफा क्रमांक प्रथम :– नदी के बाये तट पर नदी से लगभग 30 फिट ऊँचाई पर बनी है इस गुफा मे जाने के लिए सीढी बनी रही होगी जो अब नष्ट हो गयी है। सीढी के दायी ओर नौ शिवलिंग बने थे जो पानी के बहाव से नष्ट हो गये है अभी जलहरी बनी है इसके दायी ओर गुफा बनी है द्वार दक्षिण दिशा मे 90 सेमी चौडा एवं 170 सेमी ऊँचाई की है गुफा के अन्दर 230×300×170 सेमी है गुफा की अन्दर पूर्व मे देवी देवताओ को प्रतिस्थापित करने के लिए आले बने है जिसका माप 60×100 सेमी है

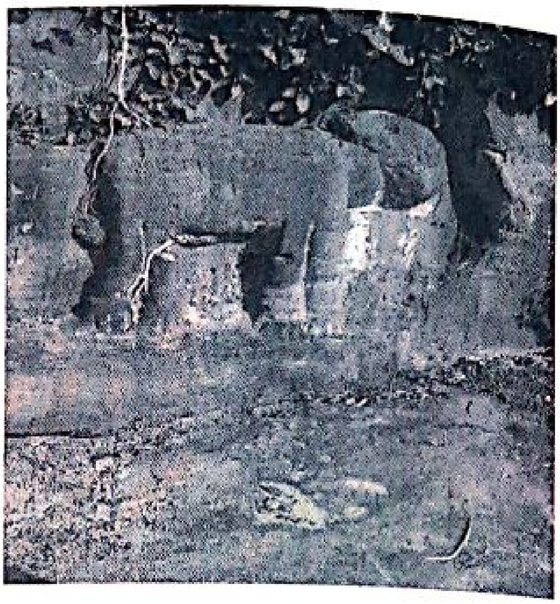

और दायी ओर चन्द्रमा की आकृति बनी थी इस गुॅा में स्थानीय लोगों द्वारा सीमेन्ट लगा दिया गया है पश्चिम की ओर पलंग बना है।सम्भवत बौद्ध या जैन भिक्षुओ के आराम करने के लिए इन्हें बनाया गया होगा जो 100×230×60 सेमी की है यहॉ से तीन गुप्ता ब्राम्ही के अभिलेख मिले है, जो अस्पष्ट है पहला गुफा द्वार पर दूसरा और तीसरा गुफा के अन्दर है देख रेख न होने के कारण असुरक्षित अवस्था मे है। गुफा के बाहर पूर्व दिशा मे चट्टान को काट छाट कर समतल दीवार सा 5×2 मी बनाया गया है जिससे गुफा के सामने का भाग ऑगन सा प्रतीत होता है। दायी ओर 7 मूर्तियॉ उकेरी गयी है सम्भवत सप्त मातृिकाएँ होगी दायी ओर हनुमान की मूर्ति उकेरी गई है जो दाये हाथ मे गदा व पूछ ऊपर सिर की तरफ मुडी हुई है ये मूर्तियॉ पानी के बहाव से नष्ट हो रहे है। इस गुफा से नीचे बायी ओर पूर्वी चट्टान पर 275 सेमी लम्बाई तथा 2 मी ऊचाई हाथी उत्तर दिशा की ओर मुख तथा दो मनुष्यों की आकृतिया उत्कीर्ण है।

गुफा क्रमांक द्वितीय :– गुफा एक से नीचे नदी की ओर सीढी उतर कर जाने पर प्राकृतिक गुफा या बाढ के बहाव से कटा है इसके पहले चट्टान को आयताकार 120×90 सेमी काटकर बनाया गया है। गुफा के सामने दीवार पर हनुमान की मूर्ति उकेरी गई है। आधुनिक शिवलिंग स्थापित किया गया है। गुफा के बाहर दूध पीते गाय व बछडे तथा योगी पुरुष बाये हाथ मे कमण्डल लिए एवं लम्बे पैर वाले पक्षी के चित्र को उकेरा गया है। यह बाढ के कारण क्षतिग्रस्थ स्थिति मे है।

गुफा क्रमांक तृतीयः– गुफा 2 से नदी के ऊपर के तरफ गुफा 3 समूहो मे एक साथ आयताकार चट्टान को काट कर बनाया गया है। मध्य गुफा के अन्दर भी 200×90×110 सेमी गुफा है। ये गुफाओ के सामने अर्द्धवष्त्ताकार गुफा 170×50 सेमी गुफा बनाने की की कोशिश की गई है। इस समूह की पहली गुफा 90×60×100 सेमी की है जो बाढ की बजह से कट गयी है। दूसरी आयताकार गुफा 100×80×100 सेमी बना है इस गुफा के अन्दर बाये 200×90 ×110 गुफा बनी है। सम्भवत भिक्षुओं के विश्राम के उद्देश्य से इसे बनाया गया है। गुफा मै कोई चित्रकारी नही की गयी है। समूह का तीसरा गुफा आयताकार 200×90×120 सेमी माप की है। सम्भवत इसको भी बौद्ध साधुओं के आराम के लिए बनायी गई है। इसके अन्दर और गुफा बनाने की योजना रही होगी। इस गुफा में कोई चित्रकारी नही की गई है ।

Scanned by CamScanner

गुफा क्रमांक चतुर्थः— गुफा तीन से बाये नदी तल से लगभग 15 फिट की ऊँचाई पर चट्टान को काटकर बनाया गया है यह सबसे बडी गुफा है 11×90 6×2×95 मी जिसमे सोलह स्तम्भों को छत को मजबूती प्रदान करने के लिए बनाया गया है। गुफा की छत बीच मे 2×95 मी तथा किनारे की स्तम्भ एवं छत की उचाई 20×20 मी की है। गुफा का दरवाजा नदी की ओर पश्चिम दिशा मे है। पहले स्तम्भ के दोनो ओर गुफा मे प्रवेश करने का रास्ता बना है। इस गुफा मे कुल 16 स्तम्भ थे किनारे 6 स्तम्भ व मध्य मे 2 स्तम्भ कुछ स्तम्भ नष्ट हो चुके है। जिन्हे सीमेन्ट से संरक्षित किया गया है। मध्य स्तम्भो की ऊचाई 290 सेमी ऊपर गोलाकार एवं नीचे चौकोर 70 सेमी मध्य रेंलिग क्षतिग्रस्थ अवस्था मे चूने द्वारा पुताई कर दिया गया है। और किनारो पर स्तम्भो की ऊचाई 920 सेमी चौडाई 70 सेमी उपर गोलाकार लगभग मोटाई 60 सेमी की है। गुफा की बाये तरफ सीमेन्ट से स्तम्भ बना दिया गया है छत छतिग्रस्थ अवस्था मे है नदी की बाढ के वजह से गुफा की स्थिति खराब हो चुकी है बाढ से बचाने के लिए कुछ भाग ईट से जोडाई कर दिया गया है। तथा गुफा के मध्य मे जो स्तम्भ पूरी तरह नष्ट हो गये है सिर्फ अवशेष दिखई देते है नीचे पास मे हवनकुण्ड रहा होगा जिसको श्रद्धालुओं द्वारा सीमेन्ट से छपाई कर दिया गया है। पश्चिम दिशा मे दो दो स्तम्भ के बीच आले बने है गुफा तल से 70 सेमी उचाई पर 150 सेमी लम्बाई चौडाई बनी है। एक दूसरे स्तम्भ की दूरी 70 सेमी दोनो आले या गुफा के मध्य सम्भवत द्वार रहा होगा 80 सेमी चौडाई एवं 2 मीटर ऊचाई यह द्वार नदी की तरफ नदी तल से लगभग 5 फिट की ऊचाई पर गुफा का तहघर है। नदी द्वार से बाये स्तम्भ पर सम्भवत कुछ समान रखने के लिए आला 20×20 सेमी की है। तथा किनारे मे 14 सेमी की उचाई से बीच मे 25 सेमी तक है। गुफा के अन्दर दीवार एवं स्तम्भों पर मूर्तिया उत्कीर्ण की गई है एव पहला स्तम्भ पर ब्राम्ही अभिलेख खुदा है। गुफा की सामने दीवार पर योगी पुरुष सम्भवत जैन तीर्थकर की मूर्ति 235×90 सेमी इसके बाये 20×20×26 सेमी के आले बनी है। सम्भवत पूजा की समान व दीपक जलाने के लिए बनाया गया होगा योगी पुरुष को जल स्नान कराते रहे होगे जल निकासी के लिए नली बनी है जिससे प्रतीत होती है। गुफा की अन्दर सामने दीवार पर तल से 60 सेमी ऊँचाई मे 150 सेमी उचाई एवं एक मी चौडाई आयताकार द्वार एव 80×160 सेमी आला या गुफा बनी है। मध्य शिवलिंग स्थापित है।दीवार की की दोनो किनारो पर उतर दक्षिण योगी पुरुष खडे है। सीधे दीवार पूर्व हनुमान उत्कीर्ण दाये हाथ मे गदा कन्धे द्वारा तथा बाये हाथ मे पर्वत उठाए हुए है। और पूँछ बाये से सिर की तरफ मुडा है। हनुमान के उपर सामान्य पुरुष तथा नीचे दो योगी पुरुष दाये चावर लिए एवं ऊपर हाथी मे सवार खडे पुरुष कुछ इशारा करते हुए बाये मयूर बीच मे छोटे छोटे पक्षी या चूजे प्रदर्शित है। गुफा क्रमॉक 4 के सामने दीवार मे छोटी आले या गुफा से 40 सेमी की दूरी पर तल से 120 सेमी ऊँचाई मे हाथी पर सवार पुरुष दिखया गया है। इसके दाये 160 सेमी दूरी पर पंजे की छाप बनी है जिसमे छः अगुलियॉं बनी है। दोनो पंजो के ऊपर देवी का सिर बनी है। आयताकार 120×90 सेमी कुछ मूर्ति बनाने की कोशिश की गई है। इसी दीवार पर छोटी आयताकार गुफा मे देवनागरी लिपि मे मौर्यकालीन ब्राम्ही में लेख लिख गया है। यह लेख क्षतिग्रस्थ अवस्था मे है इनके ऊपर चूने की पुताई स्थानीय लोगो के द्वारा कर दी गई है। सर्वप्रथम गुफा मे प्रवेश करते ही पहले स्तम्भ के ऊपर 5 लाइन में ब्राम्ही लिपि का लेख उत्कीर्ण है और दो स्तम्भो मे हनुमान की मूर्ति को उकेरा गया है।

Scanned by CamScanner

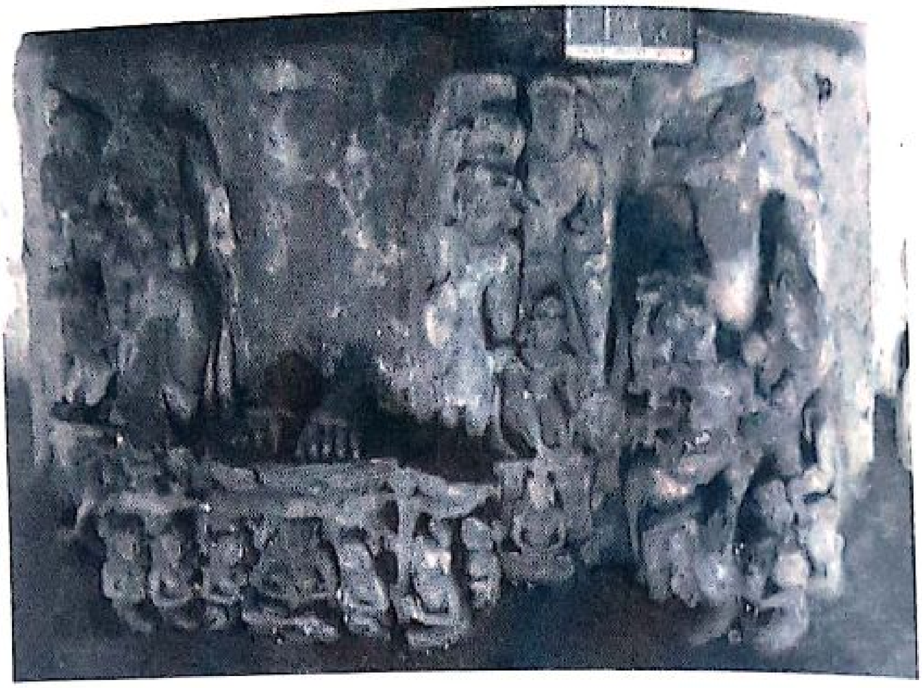

गुफा क्रमांक चतुर्थ (अ) :– गुफा क्रमॉक 4 के अन्दर दक्षिण भाग व दायॉ कोने मे बडी गुफा के तल से दो सीढी ऊपर जिसका द्वार 90 सेमी चौड़ा एवं 2 मी ऊँचा है। सम्भवत दरवाजा लगा रहा होगा गुफा पूर्व पश्चिम की दिशा मे 230×330×200 सेमी की लम्बाई चौडाई में बनी है दोनो तरफ पूर्व मे पत्थर का पलंग 90×50×50 एवं पश्चिम दिशा में पलंग 90×50×50 बना है।

गुफा क्रमांक पंचम:– गुफा क्रमॉक 4 से 100 मी उतर नदी तल से 340 सेमी उपर है। इस गुफा मे जाने के लिए चट्टान के ऊपर से 20 सीढी नीचे उतरने पर पहुचती है। नदी तल से 7 8 सीढी द्वारा गुफा मे प्रवेश किया जा सकता है परन्तु नदी मे गहरी पानी भराव बना रहता है। नदी की दूसरी तरफ से पानी मे तैर कर पहुचॉ जा सकता है। इस गुफा मे पॉच स्तम्भ बने है। इस गुफा के उत्तर मे चौडाई 290 सेमी दक्षिण मे 780 सेमी एवं लम्बाई उत्तर–दक्षिण मे 11 मीटर ऊँचाई की गुफा बनी है। गुफा के अन्दर किनारे बैठने के लिए 60 सेमी की चौकी बनी है। गुफा का उत्तरी भाग क्षतिग्रस्त हो चुका है। जिसकी ईटों से जोडाई की गई है। इस गुफा में नदी तल से प्रवेश करने के लिए सात सीढी बनी है। जिसको ईटों से बन्द कर दिया गया है। गुफा मे कुल पॉच स्तम्भ चौकोर एवं ऊपर की ओर अष्ठकोणीय बनी है। एक दूसरे स्तम्भ की दूरी 230 सेमी स्तम्भ की मोटाई लगभग 90 सेमी चौकोर भाग की ऊचाई 115 सेमी ऊपर अष्टकोणीय भाग की लम्बाई 110 सेमी एवं एक स्तम्भ क्षतिग्रस्त हो गया है। दो स्तम्भ पर शंख लिपि के लेख लिखे है। गुफा की पूर्वी दीवार पर 370 सेमी में मौर्य ब्राम्ही का अभिलेख उत्कीर्ण है। गुफा के उत्तर मे 140× 45×15 सेमी आकार का एक शिलाखण्ड रखा हुआ है जिसमे ऊपर एवं नीचे की ओर चार चक्र की आकृति बनी है।

गुफा क्रमांक पंचम (अ):– गुफा की दक्षिणी दिशा के भाग मे गुफा फर्स एवं तल से तीन सीढी चढने के बाद 170 उचाई 90 चौडाई सेमी तथा दीवार की मोटाई 30 सेमी गुफा के माप अन्दर 40×150×133 सेमी की है। फर्स मे चारो ओर बैठकी 40 सेमी चौडी एवं 25 सेमी ऊचाई पर बनी है। द्वार के पास 230×63×120 शिला को काट कर पलंग जैसा बना है। जिसको सीमेन्ट से संरक्षित कर दिया गया है। यहॉ पर अनेक मूर्तिखण्ड स्थापित है जिसमे सप्त मात्रिकाऍ बीच मे हाथ जोडकर बैठी

Scanned by CamScanner

है। ऊपर दाये भाग में मालाधारी विष्णु, शिव व पार्वती को स्थानक मुद्रा मे बनाया गया है। तीन जलहरी के अवशेष रखे हुए है। गुफा द्वार पर जल निकासी की जगह बनी है। गुफा की साफ सफाई एवं देवी देवताओ की प्रतिमा को स्नान कराने के उद्देश्य से उत्तम जलनिकास व्यवस्था को बनाया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि यह पुरास्थल सम्भवतः मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक विभिन्न संस्कृतियों का पोषक रहा है। यहां से मौर्यकालीन लिपि के अभिलेख, गुप्तकालीन लिपि व शंख लिपि के प्रमाण प्राप्त हुए है। दारसागर से कुषाणकालीन माप की ईटे प्राप्त हुई है। यहां पर बौद्ध धर्म प्रचलन के अवशेष भी प्रथम दृष्टया दिखाई देते है। यहां से शिवलिंग व देवी प्रतिमाओं के अवशेष भी प्राप्त हुए है, अर्थात समाज में शाक्त व शिव धर्म भी प्रचलित था। परवर्ती मौर्य काल में सम्भवतः यहां पर शिव नामक शासक शासन कर रहा था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. शर्मा, उमाशंकरः– अभिलेख निकर, नई दिल्ली
2. चढार, मोहनलालः– *अमरकंटक क्षेत्र की प्राचीनता,* प्राग समीक्षा, पत्रिका, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, अंक, 01 फरवरी 2014, पृ. 41–54
3. *ए. कनिंघम :– आर्क्योलीजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, प० 239–246*
4. मालपानी, जे.एन.:–अनूपपुर जिले का ग्रामवार पुरातत्व सर्वे रिपोर्ट, मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग, भोपाल, 2009
5. शुक्ल हीरालाल, लंका की खोज, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, 1977,पृ. 21–16
6. आर. के शर्मा, मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ,1974, म.प्र हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.19,
7. आर. के शर्मा, मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ,1974, म.प्र हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.24 एवं 26
8. वाजपेयी, के.डी., ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख,जयपुर,1992 पृ.181
9. शर्मा, राजकुमारः मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1974 पृ. 53
10. कुरैशी, अनीसा, : बघेलखण्ड का सामाजिक व सांस्कृतिक इतिहास, अप्रकाषित शोध प्रबन्ध, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.),1988, पृ.1
11. अग्रवाल, कन्हैया लाल : बिन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1989, प०1
12. शर्मा,राजकुमार,सुल्लेरे,सुशील कुमार,गुप्त,चन्द्रशेखर (संम्पादक):कलचुरि राजवंश और उनका युग, भाग 2 नई दिल्ली, 1998 पृ. 226
13. अन्नन्त, आर,एसः– आर्ट एण्ड आर्केटेक्चर ऑफ द कलचुरी ऑफ त्रिपुरी, शोध प्रबन्ध, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 1965
14. शर्मा,राजकुमार :–म.प्र. के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1974
15. चढार, मोहन लाल चढारः– अमरकटंक क्षेत्र का पुरावैभव, एसएसडीएन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 67

Scanned by CamScanner

28 कलचुरी मंदिर वास्तु में वृष व्याल

(छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ में)

आशुतोष चौर

भारतीय वास्तुकला के सर्वाधिक अलंकरण अभिकल्प व्यालो का अंकन सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। देवालय के वास्तु अलंकरन में इसका प्रमुख स्थान है। भारतीय मंदिर वास्तु में देवस्थानो को अलंकृत किया गया क्योकिं उनका विष्वास था कि यदि उन्हे रिक्त रखा जाये तो उन रिक्त स्थानो पर अमंगल सूचक षक्तियो का वास हो जायेगा अतः मध्यकाल में सामान्यतः मंदिरो की जंघा भित्तियो के संधि स्थलो में व्यालो का अंकन सुन्दर अप्सराओ के साथ किया गया ये सभी भित्ति अलंकरण देवमंडल की कल्पना के अन्तर्गत था। ये व्याल अपने आप मे एक गूढ़ रहस्य छिपाये हुये है। आरम्भ से ही यहाँ के कलाकारों ने अपनी कृतियों को भाँति–भाँति के अलंकरणों से सुसज्जित करने में रूचि दिखाई। ईहामृग या कल्पना प्रसूत पशु–पक्षियों की आकृतियाँ को मूल रूप से प्राकषतिक जगत से लिया, किन्तु कलाकारों ने अपनी कल्पना के बल पर उन्हें अनेक रूपों में विकसित किया है।[1] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ऋग्वेद[2] में उल्लिखित शब्द 'यातु' व्याल के लिए ही सम्बोधित है। इस सम्बन्ध में उन्होंने छः प्रकार के यातुओं का विवरण दिया है। ये उलूक, (उल्लू) शुशुलुका (उल्लू का बच्चा), श्व (श्वान), कोक (कोयल), सुपर्ण (चील) एवं गृद्ध (गिद्ध) यातु है। ये ही काम, क्रोध आदि के छः विकार है जो मनुष्यों में मुखविकृति उत्पन्न करते है। वेद में इन्हें इन्द्र के वंशवर्ती कहा है। जैसे पुराणों में गण रूद्र के वश में है। पक्षी महिष और सुपर्ण महिष का विवरण अथर्ववेद[3] में प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण में विवरण मिलता है कि रावण के भवन के मध्यभाग में खड़े हुए बुद्धिमान पवनकुमार कविवर हनुमान ने मणि तथा रत्नों से जटित एवं तपे हुए सुवर्णमय गवाक्षों की रचना से युक्त उस विशाल विमान को पुनः देखा। वह सब प्रकार के रत्नों से विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोक में विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी के लिये बनाया था। कुबेर ने बड़ी भारी तपस्या करके उसे ब्रह्माजी से प्राप्त किया और फिर कुबेर को बलपूर्वक परास्त करके राक्षसराज रावण ने उसे अपने हाथ में कर लिया उसमें भेड़ियों की मूर्तियों से युक्त सोने–चांदी के सुन्दर खम्भे बनाये गये थे, जिनके कारण यह भवन अद्भुत

Scanned by CamScanner

कांति से उद्दीप्त सा हो रहा था।[4] पुराण–साहित्य[5] में भी इसका उल्लेख है जैसे गजानन, हयानन, सिंहानन, व्याघ्रानन, मृगेन्द्रवदन, खरमुख, मकरानन, ईहामृगमुख, हंसवन्त्र, गृद्धमुख आदि। इसे 'विकट' के नाम से भी जाना जाता है। सबसे बड़ा व्याल चार सींगों का था जिसका वर्णन ऋग्वेद[6] में भी किया गया है।

भारतीय कला में व्यालों का अंकन षुंगकाल से अपने प्रारम्भिक रूप में परिलक्षित होने लगता है।[7] कुशाण काल की कला ईहामृग या विकटाकृति पशुओं से भरी हुई है क्योंकि इस प्रकार के ऐंठे–गैंठे शरीर वाले पशुओं में शकों की स्वयं बहुत रूचि थी।[8] सी. शिवराममूर्ति ने भारतीय कला में पक्षी एवं पशुओं के अंकन के भारतीय साहित्य एवं कला में उनके अंकन के महत्व का प्रतिपादन किया है और इस ओर संकेत किया है कि शिल्पियों ने उनका अंकन कर उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है और उनको सीखाने नहीं अपितु उनके गुणों से सीखा जा सकता है।[9] प्रारभिक काल से ही मंदिर स्थापत्य कला में काल्पनिक जीव–जन्तुओं के अंकन की परम्परा रही है जिसके शरीर का निचला भाग जिसमें उसके अग्र एवं पश्चपाद, उदर, पूँछ सिंह के समान रहती है, जबकि सिर किसी अन्य पशु का। इसी आधार पर इनका नामकरण होता है जैसे– गजव्याल, नरव्याल, अश्वव्याल, सिंहव्याल आदि। सामान्यतः व्याल की पीठ पर एक मानव सवार दिखाया जाता है, जो व्याल पर प्रहार करता हुआ उसे वश में करने का प्रयास करता दिखाई देता है। पशु के पैरों के नीचे मानव या गज की आकृति को पददलित करते प्रदर्शित किया जाता है। यह सर्वाधिक विशिष्ट एवं लोकप्रिय अभिप्राय है, जो अपने में एक गूढ़ रहस्य को छिपाये है। मानक हिन्दी शब्दकोश[10] में व्याल के अर्थ साँप, चीता, शेर, हिंसक जन्तु, दुष्ट हाथी बताये गये है। मूर्तिकला में गजव्याल को मध्यकालीन प्रासाद–वास्तु के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। इनका अंकन खजुराहो, कोसल तथा उड़ीसा में बहुतायत से पाया जाता है। मूर्तिकला में इस अभिकल्प का अवतरण मूलतः उड़ीसा की देन है, जिसका उल्लेख ओ.सी. गांगुली ने किया है।[11] प्रोफेसर निर्मलकुमार बोस के अनुसार उड़ीसा में प्रचलित 'विडाल' संस्कृत शब्द व्याल का ही अपभ्रंश है।[12] पूर्व मध्यकालीन शिल्पग्रन्थों यथा समरांगण सूत्रधार, अपराजितपृच्छा एवं सिंहली ग्रन्थ रूपमाला में व्यालों के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इस सभी ग्रन्थों में सोलह प्रकार के व्यालों का विवरण है, किन्तु उनके प्रकारों में भिन्नता है। 11वीं शती ई. के शिल्प ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार में सोलह प्रकार के व्यालों का विवरण है। वे है– हिरण, गिद्ध, शुक, कुक्कुट, सिह, व्याघ्र, वृक, अज, गण्डकी, गज, वाराह, अश्व, महिष, श्वान, वानर, एवं खर।[13]

बारहवी शती ई. के एक अन्य शिल्पग्रन्थ अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत) में भी सोलह प्रकार के व्यालों का उल्लेख है। ये है– सिंह, हाथी, मानव, वृष, भेड़, शुक, वराह, महिष, मूषक, कीट, वानर, हंस, कुक्कुट, और सर्प।[14] सिंहली ग्रंथ रूपमाला भी सोलह प्रकार के ही व्यालों का विवरण देता है। विवेचित जन्तु उपरोक्त तालिका में से ही है।[15] अपराजितपृच्छा से प्राप्त उल्लेख के अनुसार सोहह प्रकार के व्यालों को अपनी सोलह प्रकार की मुद्राओं में अंकित किया जाता था। अतः इनके रूपों की कुल संख्या दो सौ छप्पन तक जा पहुँचती है। व्यालों को सामान्यतः पिछले दो पैरों पर या हाथी या किसी योद्धा के ऊपर खड़े प्रदर्शित किया जाता है। मूर्तिकारों ने इस प्रकार के अंकन में व्याल के शौर्य प्रदर्शन की अवधारणा को निरूपित किया है। खजुराहो उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ में मंदिरों में व्याल कभी–कभी योद्धाओं को अपनी पीठ पर बैठाये हुये दिखाये गये है। व्यालों का अंकन चौतरफा गोलाई में अथवा उदभृत दोनों रूपों में मिलता है।

Scanned by CamScanner

नीरज जैन[16] ने पशु की विभिन्न मुखाकृति के सन्दर्भ में अपनी व्याख्या देते हुए कहा है कि जब हम क्रोध में चूर होते है तब सिंह या व्याघ्र की आकृति हमारी विकारी मनोवृत्ति की परिचायक है। शक्ति के मद में मतवाले व्यक्ति की भावना हाथी की आकृति से उजागर होती है, कामवासना को व्यक्त करने के लिये अज या मेढ़ा के रूप में पर्याप्त है ओर मन की चपलता तथा वेग अश्व के द्वारा समझा जा सकता है। मायाचारी के मधुर वार्तालाप में लुभाकर जब अपनी स्वार्थ साधना की जाती है तब तोते की आकृति उसका अच्छा प्रतीक कही जा सकती है। जहाँ अपनी वासना पूर्ति के लिए साधु का ही वेष धारण कर लिया जाये वहाँ मानव मुखाकृति पशु का अंकन छद्म रूप प्रकट करता है। इस प्रकार व्यालों की विभिन्न मुखाकृतियों का रहस्य सहज ही उजागर हो जाता है।

वृषभ व्याल

अपराजितपृच्छा[17] में वृष व्याल का उल्लेख प्राप्त होता है। छत्तीसगढ़ की कलचुरिकालीन कला में कई स्थानों पर वृष व्याल का अंकन किया गया है। शिव मंदिर पाली में वृष व्याल का सुन्दर अंकन प्राप्त होता है।

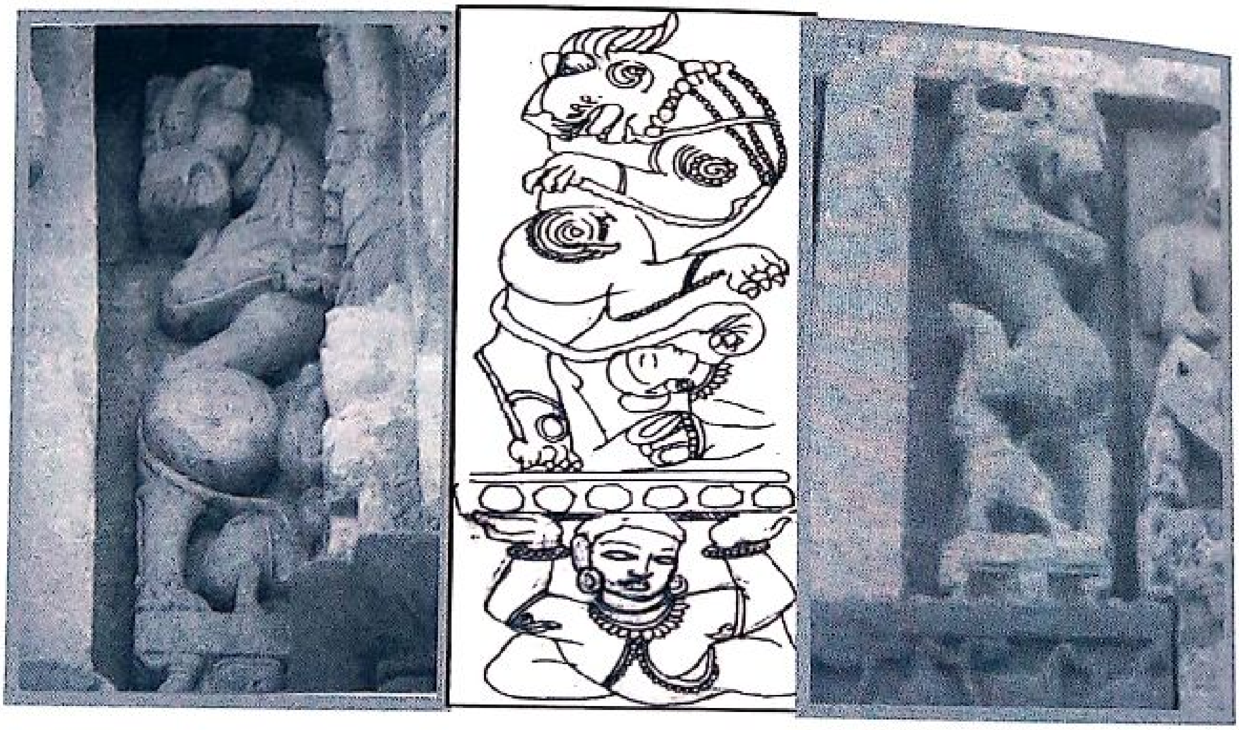

शिव मंदिर, पाली

1. वृष व्याल – वृष व्याल फलक के बायीं ओर गतिशील होकर निचले दाहिने पैर से योद्धा को पददलित कर रहा है। साथ वह पीछे की ओर देख रहा है जो उसकी सतर्कता एवं चपलता को प्रदर्शित कर रहा है। उसके नेत्र बड़े तथा बाहर निकले हुए है। नेत्रों के ऊपर मोटे तथा बड़े सींग पीछे की ओर प्रसारित है वह किनारे पर घुमावदार है जो उसमें वृषभ के लक्षण को प्रकट कर रहा है। उसके मुख पर मूँछों का अंकन है। कान के स्थान पर गोलाकार अभिकल्प उत्कीर्ण है गले में बालों के स्थान पर अलंकरण है। व्याल के कंधे तथा पृष्ठ भाग पर भी गोलाकार अलंकरण है। उसके मुख से पीछे की ओर लगाम का

Scanned by CamScanner

भी अंकन है। उसकी पूँछ दोनों पैरों के मध्य से आगे को चली गई है जिसे पकड़कर योद्धा व्याल के निचले दाहिने पैर पर कटार से आक्रमण कर रहा है। पादपीठ पुष्प तथा हीरक अभिकल्प से सुसज्जित है उसे उड्डियान भारवाहक ने दोनों हाथों से उठा रखा है। भारवाहक का केश विन्यास सुन्दर है तथा वह कुण्डल, हार, केयूर, वलय आदि से विभूशित है। उसके चेहरे पर शान्त भाव है। मूर्तिफलक का माप 69–22–11से.मी. है।

विष्णु मंदिर जाँजगीर

2. **वृष व्याल** – विश्णु मंदिर जाँजगीर में गर्भगृह की पश्चिम भित्ति में वृष व्याल का सुन्दर अंकन किया गया है। वृश व्याल फलक के बायीं ओर गतिशील है तथा पीछे पलटकर दाहिनी ओर देख रहा है। वह पिछले दो पैरों पर खड़े होकर पिछले दाहिने पैर से नीचे खड़े गज को पददलित कर रहा है। उसका मुख भयंकर दिखाई पड़ रहा है उसकी आँखे बड़ी तथा गोल है। उसके ऊपर श्रृष पीछे की ओर प्रसारित है। कान छोटे परन्तु खड़े है। मुँह पर मूँछों क अंकन है। गले में मनकों की माला है। गले में बालों का सुन्दर अभिकल्प है। दोनों अग्र पाद ऊपर को उठे हुए है। पूँछ पीछे से दो पैरों के मध्य से होकर आगें की ओर चली गयी है। व्याल एक सादा पादपीठ पर स्थित है जिसे उड्डियान भारवाहक उठाये हुए है।

रतनपुर किला, रतनपुर

3. **वृष व्याल** – रतनपुर किला की दीवार पर एक वृष व्याल का अंकन है। वृष व्याल मूर्तिफलक के दाहिनी ओर गतिशील होकर बायीं ओर देख रहा है। वह प्रत्यालीढ़ मुद्रा में पिछले बायें पैर से नीचे खड़े गज को पददलित कर रहा है। गज ऊपर सूण्ड उठाये प्रतिकार कर रहा है साथ ही वह चिंघाड़कर सहायता के लिए पुकार रहा है। सिर पर छोटे श्रृंग दृष्टव्य है। कान सीप के समान छोटे है किन्तु खड़े है जो उसकी चपलता को दर्शाते है। मुँह खुला है एवं जिह्वा बाहर निकली हुई है। नासापुट फूले हुए है साथ ही मूँछों का भी अंकन है। गले में मनकों की माला है। व्याल की पूँछ पीछे से दोनों पैरों के मध्‍ य से आगे को प्रसारित है। ये उसकी सतर्कता की ओर इंगित करता है। व्याल का आंगिक अनुपात ठीक है।

धूमनाथ मंदिर, सरगाँव

4. **वृष व्याल** – धूमनाथ मंदिर सरगाँव की दक्षिण भित्ति पर वृष व्याल का अंकन मिलता है। वृष व्याल का माप 45–14–8 से.मी. है। वृष व्याल फलक के बायीं ओर गतिशील होकर दाहिनी ओर देखता प्रदर्शित है वह आलीढ़ मुद्रा में पिछला दाहिना पैर उठाये हुए है। इसके मेष के समान छोटे श्रृग, खुले नेत्र एवं मुँह, वाराह के समान छोटे कर्ण एवं गले में हार पहने है। अगले दोनों पैर ऊपर उठे हुए उत्कीर्ण है। पूँछ दोनों पैरों के मध्य से होकर आगे की ओर प्रसारित होती हुई उत्कीर्ण है। भारतीय कला में वृष व्याल का अंकन छत्तीसगढ़ में प्राप्त होता है। यथा शिव मंदिर पाली, विष्णु मंदिर जाँजगीर एवं धूमनाथ मंदिर सरगाँव आदि। ये कभी दायें कभी बायें ओर देखते हुए प्रदर्शित है। सबसे सुन्दर अंकन पाली में हुआ है।

Scanned by CamScanner

संदर्भ सूची

1. वासुदेव शरण अग्रवाल – भारतीय कला 1977, पृष्ठ 78
2. उलेकयातुं शूशलूकंयातुं जहि श्वायातुमुत कोकेयातुम्।
   सुपर्णयातुमुत गष्हयातुं दृशदेव प्रमृग रक्ष इन्द्र ।। 22 ।।
   (ऋग्वेद 7/104/22)
3. चित्रश्चिकिटवान महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसो अन्तरिक्षम् ।
   अहोरात्रे परिसूर्य वक्षाने प्रास्य विश्वातिरतो वीर्यार्णि ।। 32 ।।
   (अर्थववेद 13/2/32–33)
4. ईहामृग समायुक्तैः कार्तस्वरहिण्ययैः।
   सुकश्तैरचितं स्तभैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ।। 13 ।।
   (वाल्मीकि रामायण 9–13)
5. मत्स्यपुराण (154.4.45), हरिवंश (2/124), वायुपुराण (10/260–64)
6. ऋग्वेद (4/52/2)
7. एम.ए. ढाकी– द व्याल फिगर्स ऑन मीडिवल टेम्पल्स ऑफ इण्डिया 1965, पृष्ठ 30 पाद टिप्पणी नं. 6
8. वासुदेव शरण अग्रवाल – भारतीय कला 1977, पृश्ठ 5
9. सी. शिवराममूर्ति – बर्ड्स एंड एनीमल्स इन इण्डियन आर्ट स्कल्पचर्स, भमिका राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली 1974
10. मानक हिन्दी शब्द कोश – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1966 पृष्ठ 13
11. ओ.सी. गांगुली – लायन आन एलिफेन्ट मोटिफ इन ओरिसन आर्ट जिल्द 4 क्रम 1 एवं 2
12. ओ.सी. गांगुली – लायन आन एलिफेन्ट मेटिफ इन ओरिसन आर्ट पृष्ठ 2
13. व्यालः शोडशाः निदृष्टा हरिनो गृध्रकाः शुकः
    कुकुटाः सिंह शार्दूल वृक–अज गण्डकी गजः 27
    क्रोड अश्व महिष श्वानो मर्कट खर इत्यादि 28
    समरांगणसूत्रधार अध्याय 75
14. सिंह व्यालम् गज व्यालम अश्वव्यालम नरादिकम
    वृषव्यालम् मेशव्यालम् शुकव्यालम् च सौकरम् 4
    महिषम् मूषक व्यालम् कीटव्यालम् च वानरम्
    हंस कुक्कुट मयूरम, त्रिपल्ली सर्पव्यालकम् 5
    इति शोडष व्यालानि उक्तानि मुखभेदतः
    शरीरम् अहि वद रूपम् हस्तपाद पूँछ आदिकम् 6
    व्यालान अन्तर तो रूपम अनेक आकारः स्मृतितम् 7
    अपराजित पृच्छा अध्याय 233
15. केसरी हरिनी व्याघ्रि वाराहि शिशुमारनी मातंगी च शिखि भोगी गरुड़ा विजय भूललूका मार्जार तुंग शाखामृग विराटिका सिंह आदि वर्ग इति आदि भाग शोडशम् एवं चओ.सी. गांगुली लायन एण्ड एलीफेंट मोटिफ इन ओरसन आर्ट, ओ.एच. आर. जे खण्ड 4, जून–सित. 1955 पृ 2
16. नीरज जैन–खुजराहो के जैन मंदिर, पृष्ठ 27
17. अपराजित पृच्छा अध्याय 233–4

Scanned by CamScanner

29 चन्देरी क्षेत्र का इतिहास

यादव राकेश पारस नाथ

चंदेरी क्षेत्र के इतिहास से सम्बन्धित पुरासमग्री बूढ़ी चन्देरी, रक्तेरा, थूवोन, तूमैन (तुम्ववन), महुआ (मधुमती), तेरही (तेरम्बि), कदवाह (कदगुहा), ईंदार, रन्नौद (रणप्रादि), सुखाया (सरस्वती पत्तम) बेहटी, देवगढ, चाँदपुर, दुधरई, सेरोन (शियोदाणि) तथा नरवर (जलापुर) आदि से मिलती है। उक्त पुरास्थल बेतवा (वेत्रवती), और (उर्वशी) एवं सिन्ध नदियों के के तट पर स्थित है । 6वीं शती ईसा पूर्व में चन्देरी क्षेत्र अवंति, दशार्ण एवं चेदि जनपदों से घिरा था। यह भू–भा पर क्रमशः नन्द, मौर्य और शुग काल में मगध साम्राज के अन्तर्गत आता था। शुंग वंश के बाद मध्य भारत के इस क्षेत्र पर नागवंश का अधिकार हुआ। इस समय नागों के प्रमुख केन्द्र विदिशा, पवाया (पहमावती) कोतवाल (कांतिपुरी) धार, नरवर और ग्वालियर थे। 4 सदी ई0 में गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त से गणपति नाग की पराजय के बाद नाग सम्राज्य गुप्त सम्राज्य में मिला लिया गया । तूमैन लेख (गु0 स0 116/435ई0) में समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त एवं घटोत्कच्च का उल्लेख है। औलिकर राजवंश यशोधर्मन, विष्णु वर्धन उसके बाद थानेसर के पुष्पभूति, कन्नौज के मौखरि और मालवा के उत्तर गुप्त प्रभुत्वशाली हुए। पुष्यभूति वंश और मौखरियों के बीच विवाह सम्बन्ध थे एवं मालवा के देवगुप्त व बंगाल के शासंक की मैंत्री थी। इसके संघर्ष से मौखरि तथा उत्तर गुप्त नष्ट हुए फिर 7वीं सदी ई0 में पुष्पभुति वंशी हर्षवर्धन ने कन्नौज से उत्तर भारत के विशाल सम्राज्य में शासन किया। हर्ष के भाई ने मालवा को रौंद डाला महुआ से प्राप्त कान्यकुब्ज के ईशानभट्ट (ईसागढ) द्वारा विरचित 7वीं सदी के लेख में व्याघ्रनंदि नागवर्धन वर्धन के वंशज एवं उदित के पुत्र वत्सराज द्वारा शिवमन्दिर निर्माण का उल्लेख है। हर्ष के बाद यशोवर्मन व आमराज ने (723–752 |व) शासन किया था। आमराज का दरबार ग्वालियर में तक था। इस स्रोत्र पर 8वीं सदी में प्रतिहार वंश का आधिपत्य था। इस वंश में नागभट्ट व ककुस्य, देवराज वत्सराज (770–80 ई0) नागभट्ट–प्प (805–33ई) रामभद्र (833– 36) भोज – प्रथम (836–85) महेद्रपाल–प (885–110ई) भोज–महिपाल महेन्द्रपाल–देवपाल विजयपाल राज्यपाल आदि राजा हुए वत्सराज का राज्य क्षेत्र उज्जैन से लेकर गोपाद्रि दुर्ग तक था। भोज–के अभिलेख ग्वालियर एवं देवगढ से मिले हैं। देवगढ में उसका राजपाल महासामत विष्णुराम था। महेन्द्र पाल–दान देने का उल्लेख सेरोन अभिलेख में मिलता है। इस समय प्रतिहार सम्राज्य उत्तरी बांगाल से सौराष्ट्र तक फैला

Scanned by CamScanner

था रखतेरा शिलालेख (वि.सि. 1000) महिनायक पाल देव द्वारा 750000000 (धन) व्यय कट सिंचाई के प्रबन्ध का उल्लेख है। इस राज्य की पहचान प्रतिहार नरेश महिपाल से की है शिलालेख में और नदी का नाम (उर्वशी) है एवं गोपागिरीद्र उल्लिखित है प्रशस्ति का श्री कृष्ण के पुत्र भेलहामन थे महेद्रपाल–प्र के अभिलेखों में कन्नौज (महोदय) उज्जयिनी माण्डू (मंडपिका) थार (थारापद्रक) एवं मंदसौर (हशपुर) का उल्लेख है जो हम क्षेत्रों में उनकी सती का प्रमाण है सेरोन अभिलेख में देवपाल के दान का उल्लेख मिलता है। प्रतिहार सम्राज्य पर दक्षिण से राष्ट्रकूटो के अनेक आक्रमण हुए तेरही के एक अभिलेख में कर्णाटो से युद्ध करते हुए एक योद्धा के मारे जाने का उल्लेख है यही कि अन्य लेखों अनुसार मधुवेणी तट पर दो महासामन्ता धिपजियो गुणराज्य एवं उदभट्ट में युद्ध हुआ जिसके गुणराज के पक्ष से किलेदार (कोतवाल) चाडियाण हत हुआ सेरोन अभिलेख में उद्‌मह को महेन्द्रपाल का अनुयायी कहा गया है। राष्ट्रकूट राजाओं में इन्द्र–का आक्रमण किया एवं उसने कन्नौज पर कब्जा कर लिया। जेजाकभुक्ति के चंदेल सामन्त हर्ष ने राष्ट्रकूटों को कन्नौज से बेदखल कर प्रतिहार महिपाल के राज्य पर कब्जा कर लिया था।

10वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रतिहार साम्राज्य का पतन होने लगा था। इस समय सामन्त राजा शक्तिशाली हो गये थे । इस प्रकार जेजामभुक्ति में चन्देल, डाहल मे (त्रिपुरी जबलपुर) के कलचुरी मालवा में परमार एवं ग्वालियर, नरवर तथा दूबकुण्ड में कच्छपघात राजवंश प्रतिष्ठित हो गये। 760 ई के आसपास चंदेलों के संरक्षण में कच्छपघात राजाओं ने ग्वालियर गढ जीत लिया । इस समय चंदेल राजा धंग का चंदेल राज्य कालन्जर से बेतवा किनारे विदिशा तक तथा यमुना किनारे सें (कलचुरि राज्य) की सीमा तक एवं था। धंग के उत्तराधिकारी विद्याधर ने परमार एवं कलचुरी राजाओं को पराजित कर दिया और इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था।

11वीं शदी में ई0 में प्रतिहार सत्ता का अन्त हो गया एवं वहाँ काशी का गहरवार वंश का राज्य स्थापित हो गया किन्तु इस समय चन्देरी के क्षेत्र में प्रतिहारों की एक शाखा राज कर रही थी। इस शाखा का परिचय देने वाले अभिलेख चन्देरी, बूढ़ी, चन्देरी, रन्नौद कहवाहा एवं थुवौन से मिले है। जैत्रवर्मन के चन्देरी लेख के अनुसार इस वंश में नीलकण्ड, हरिराज (1042 ई) भीमदेव, रणपाल (1043ई), वत्सराज स्वर्णपाल, गीतिदरा, राजराज, वीराज एवं जैत्रवर्मन नाम का राजा हुआ अभयपाल के चन्देरी अभिलेख में चन्द्रपुर के प्रतिहार वशीय राजाओं में महाराज हरि राज से अभयपाल तक नाम है और कीर्ति पाल द्वारा कीर्ति दुर्ग कीर्ति सागर एवं कीर्ति नारायण मन्दिर निर्माण का उल्लेख है जैत्रवर्मन के चन्देरी लेख में कीर्तिपाल के उपरोक्त निर्माण की बात कही गयी है। कदवाहा के एक लेख में प्रतिहार रणपाल वत्सराज स्वर्णपाल कीर्ति राज एवं उसके भाई उत्तम का उल्लेख है यह अभिलेख कीर्ति पाल के समय का है। जिसमें उसे कीर्ति राज कहा गया गया है इन अभिलेखों में वर्णित चन्द्रकार वर्तमान नाम चन्देरी में तट पर स्थित बूढ़ी चन्देरी ही है जो इस मूल प्रतिहार शासक का सामरिक दुर्ग था।

बूढ़ी चन्देरी बड़ी संख्या में शिव, विष्णु, जैन व शक्त धर्म के मंदिरों तथा किलों के अवशेष मिलते है। और नदी ने यहाँ उपजाऊ घाटी सजाई है यह वहीं इलाका है जहाँ प्रतिहार सम्राट महिपाल (विजय पाल) ने 743 ई (वि.स. 1000) रकतेरा के निकट ओर नदी तथा घोड़ा पच्छार के संगम पर सिंचाई प्रबन्ध किया था बूढ़ी चन्देरी के निकट ही पूर्व दिशा में और तथा छिवलीन ढियों के संगम पर हसारी नामक गाँव समतल एवं उपजाऊ जमीन पर स्थित है। हसारी नगर दुर्ग चन्द्रपुर के प्रतिहार राजाओं का एक अन्य प्रमुख केन्द्र

Scanned by CamScanner

था। इसी शाखा के राजा कीर्ति पाल द्वारा निर्मित कीर्ति दुर्ग एवं कीर्ति सागर के अवशेष वर्तमान चन्देरी के सर्वोच्च पहाड़ पर उपलब्ध है किन्तु कीर्ति नारायण मन्दिर समाप्त हो चुका है। चंदेरी क्षेत्र में चन्देल राजा कीर्तिवर्मन (1078 ई0) ने कीर्ति दुर्ग चन्देरी 35 किमी0 द0पू0 बेतवा के उस पार देवगढ़ मे कीर्तिगिरि दुर्ग की स्थापना की थी।

चन्देरी नगर का गौरवमयी इतिहास है जो प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होकर वर्तमान काल तक एक लम्बा सफर तय करता है। चन्देरी व इसके आस–पास के स्थलों पर मौजूद शैलचित्र उन क्षेत्रों से प्राप्त पत्थर औजार इस बात को घातक कि यह स्थल प्रागैतिहासिक मानव की सरण स्थली है। प्रसिद्ध महाकाव्य माहभारत मे शिशुपाल का नाम येहि राज्य (चन्देरी) के शासक के रुप में वर्णित है जो महाराजा यैद का पौत्र तथा भगवान श्री कृष्ण का फुफेरा भाई था पुराणों में भी चन्देरी राज्य का विवरण मिलता 600 इेस पूर्व के बौद्ध साहित्य में वर्णित सोलह महाजनपद में भी इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है इसे चेदि राज्य के नाम से जाना जाता था। यहाँ बिखरे मन्दिरों शिलालेखों एवं मूर्तियों के अवशेषों से यह स्पष्ट होता है कि यह स्थल प्राचीन काल में निश्चित रुप से कोई एतिहासिक नगर रहा होगा जो कालान्तर में बने जंगल में विलीन हो गया। 13वीं शताब्दि तक चन्देरी का महत्व धीरे–धीरे समाप्त हो गया। चन्देरी नगर को 10—11 वीं शताब्दि में प्रतिहार वंशी राजा कीर्ति पाल ने बसाया एवं इसे अपनी राजाधामी बनाया था। ग्वालियर के गूजरी महल में रखे चन्देरी कल्याण मंदिर से प्राप्त शिलालेख में प्रतिहार राजा कीर्तिपाल सहित 12 राजाओं का उल्लेख मिलता है जिसमें कीर्तिपाल सातवा राजा था।

महमूद गजनवी के साथ अपने इतिहासकार अलबरुनी ने अपने ग्रंथ तहकीक–ए–हिन्द में चन्देरी की समृद्धि का वर्णन किया है। फरिस्ता के विवरणानुसार 1251 ई0 में दिल्ली के सुल्तान मासिर उद्दीन ने चन्देरी पर अधिकार कर इस नगर पर अपना एक गर्वनर नियुक्त किया था। कनिधम के अनुसार सम्भवतः यह विवरण बूढ़ी चन्देरी के सन्दर्भ में है अल्लाउद्दीन खिलजी 1296 ई0 में देव गिरी जाते हुए चन्देरी में लूट–पात किया था। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के समय में चन्देरी एक बड़ी मुस्लिम छावनी के रुप में विकसित हुई। 1342 ई0 में इब्नोबतुता चन्देरी आया। अपने वर्णन में उसने लिखा है कि चन्देरी एक बड़ा शहर है जहाँ भीड़ भरी बाजार में फिरोज तुगलक ने हिलावर खाँ गौरी को चन्देरी का हाकिम नियुक्त किया 1401 ई0 में उसने अपने को स्वतंत्र कर मालवा राज्य का तथा मध्य भारत का एक प्रमुख नगर बन गया। मालवा में राजा महमूद शाह खिलजी तथा उसके पुत्र गया सुद्दीन खिलजी के काल को चन्देरी का स्वर्ण युग कहा जा सकता है इस काल के अनेक स्मारक झीलें तलाब बावदिया एवं शिलालेख आज भी विद्वयमान हैं। 1524 ई0 में राजपूत राजा राज्य सांगा के सहयोग से मालवा का राजपूत सरदार मेदिनी राय चन्देरी का स्वतंत्र शासक बना। 1528 ई0 में मुगल सम्राट बाबर ने राणा सांगा व मेदिनी की सेनाओं को परास्त कर चन्देरी पर अधिकार किया ओरछा के बुन्देली राजा मधुकर शाह के पुत्र रामसिंह ने 186 ई0 में चन्देरी पर अधिकार किया तथा 1811 ई0 तक यहाँ चन्देरी ब्रिटिश नियंत्रण में चला गया 1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय यहाँ पर राजा मर्दन सिंह का आधिपत्य था 1858 ई0 में चन्देरी पर ब्रिटिश सर ह्यूज रोज ने कब्जा कर लिया तथा 1861 ई0 में एक सन्धि के अन्तर्गत चन्देरी ग्वालियर राज्य को दे दिया गया। परस्पर सन् 1947 ई0 तक सिन्धिमा राजवंश का शासक रहा। चन्देरी स्थित प्रमुख स्मारकों में चन्देरी दुर्ग, जामा मस्जिद, निजामुद्दीन का मकबारा, शहजादी का रोजा, करीब घाटी कौशक महल, बत्तीसी बावड़ी, बड़ा मदरसा एवं बादल महल उल्लेखनीय है। जो आज वर्तमान समय में केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक बनाये गये है।

Scanned by CamScanner

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. द्विवेदी, डॉ. एस. के., डॉ. मधुबाला कुलश्रेष्ठ : ग्वालियर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011,
2. विकीपीडिया चदेरी
3. जिला, गजेटियर म. प्र. शासन भोपाल
4. द्विवेदी, हरिहरनिवास, भारत का सुदेश, ग्वालियर दर्शन, ग्वालियर शोध संस्थान एवं जीवाजी विश्वविद्यालय,
5. गुप्ते आर. एस. आइकोनोग्राफी ऑफ हिन्दु बौद्धीश्ठ एण्ड जैना मुम्बई, 1972,
6. अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहों की देव प्रतिमाएं, प्रथम खण्ड़, आगरा, 1967
7. वाजपेयी के.डी. बुंदेलखंड की मूर्तिकला सम्पदा, मामुलिया (छतरपुर),
8. वाजपेयी के.डी. उत्तरप्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास, आगरा, 1962, (शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं.
9. शर्मा, आर.के म.प्र के पुरातत्त्व का संदर्भ ग्रंथ , हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 1976,
10. त्रिवेदी,एस.डी. बुंदेलखंड का पुरातत्त्व ,राज्य पुरातत्त्व संग्रहालय, झाँसी, 1984 (प्र.सं.):, स्कलप्चर्स इन द झाँसी म्यूज़ियम, राज.संग्र. झाँसी, 1983
11. निगम,एम.एल कल्चरल हिस्ट्री आफ बुंदेलखंड ,दिल्ली 1983
12. गुप्त, नर्मदा प्रसाद म.प्र. के बुंदेलखंड क्षेत्र में नवोपलब्ध चित्रित शैलाश्रय, मामुलिया बुंदेलखंड साहित्य अकादमी, छतरपुर, सम्वत् 2038, अंक–2
13. बबेले, बिहारीलाल ललितपुर जनपद का प्राचीन इतिहास, मामुलिया,छतरपुर, संवत् 2038 , अंक 2, 83–90 तक
गुप्त, नर्मदा प्रसाद बुंदेलखंड की लोक–संस्कृति, मामुलिया छतरपुर, (मध्यप्रदेश लोक–संस्कृति विशेषांक, वर्ष 4, अंक –15–16
14. त्रिपाठी, कृष्ण कुमार बुन्देलखण्ड तथा दशार्ण क्षेत्र का पुरातत्त्व, स्मारिका 'झाँसी महोत्सव, 1995
15. दुबे, नागेशः एरण की कला, सुप्रिया पब्लिकेशन्स, सागर, 1997
16. चढ़ार, मोहनलाल, एरण : एक सांस्कृतिक धरोहर, आयु पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2016
17. चढ़ार, मोहनलाल, आर्क्योलॉजी ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया, एस.के. बुक एजेन्सी, नई दिल्ली, 2017
18. चढ़ार, मोहनलाल, आर्ट, आर्केटेक्चर एण्ड आर्केलॉजी ऑफ इण्डिया, एवन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017

Scanned by CamScanner

30 जतारा से प्राप्त जैन प्रतिमाएँ

जिनेन्द्र जैन

जतारा, टीकमगढ़ जिला मुख्यालय से सड़क मार्ग पर 40 कि.मी. की दूरी पर है। यह बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत टीकमगढ़ जिले का एक तहसील मुख्यालय है। भोगोलिक दृष्टि से 25° 5′ उत्तरी अक्षांश एवं 78° 5′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जतारा बेतवा–धसान नदी सभ्यता के अन्तर्गत आता है। जतारा, चन्देल शासक मदनवर्मन (1129–67 ई.) द्वारा निर्मित मदनसागर तालाब के नजदीक स्थित है। यह अपनी जलवायु के कारण बुन्देलखण्ड़ का काश्मीर कहा जाता है। यह क्षेत्र पाषाणकाल से ही मानव समाज की गतिविधियों का केन्द्र रहा है। यहाँ से पुरापाषाण एवं मध्यपाषाणयुगीन औजार प्राप्त हुए हैं।[1] ऐतिहासिक काल के ईसा पूर्व छठी शती में यह भू–भाग चेदि महाजनपद के अंतर्गत था। चेदी उत्तर भारत के सोलह महाजनपदों[4] में से एक था। कालान्तर में शिशुपाल, नन्द, मौर्य, षुंग, सातवाहन, गुप्त, कलचुरी, प्रतीहार तथा चंदेलों ने इस क्षेत्र में शासन किया। प्रारम्भिक चंदेल शासक गुर्जर–प्रतीहारों के सामन्त थे। चंदेल वंश की स्थापना 831 ई. के लगभग नन्नुक ने की थी।[5] नन्नुक के बाद वाक्पति, जयशक्ति, विजयशक्ति तथा राहिल ने शासन किया। राहिल का पुत्र हर्श ने प्रतीहारों की दासता की जुआ उतार फेंका। खजुराहो लेख[6] में उसे 'परमभट्टारक' की उपाधि दी गई है। हर्ष के बाद यशोवर्मन, धंग, गंड[7], विद्याधर, कीर्तिवर्मन, सल्लक्षणवर्मन, जयवर्मन, पृथ्वीवर्मन, मदनवर्मन षासक हुए। चंदेलवंश का अंतिम महान शासक परमर्दिदेव हुआ जिसने 1203 ई. तक शासन किया। परमर्दीदेव के बाद त्रिलोक्यवर्मन, वीरवर्मन, भोजवर्मन, एवं हम्मीरदेव ने शासन किया। चंदेलों के समय सभी धर्मों का विकास हुआ एवं बहुसंख्य मंदिरों एवं प्रतिमाओं का निर्माण व स्थापना हुई। जैन धर्म के अनुयायी व्यापारियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी कि वह अपने आराध्‌ य की प्रतिष्ठा कर सकें। टीकमगढ जिले के अहार में 200 से अधिक अभिलेख सहित चंदेल कालीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें परमर्दीदेव एवं मदनवर्मन के नाम का भी उल्लेख है।[8] पपोरा में चंदेलकालीन मंदिर के स्थापत्य खण्ड एवं लगभग 20 प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। एक प्रतिमा पर वि.सं. 1201 का अभिलेख भी है।[9] टीकमगढ़ जिले के कुण्डेष्वर, बँधा, आदि स्थानों से भी अभिलेखयुक्त प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। जतारा में लेखक द्वारा 6 मार्च 2016 को अपने सर्वेक्षण में वि.सं. 1418 (1361 ई.) के एक अभिलेख के साथ 12 से अधिक प्रतिमाओं का अभिलेखीकरण किया गया। जो चंदेल एवं कुछे बुन्देलों के समय की हैं। इनका विवरण इस प्रकार है:–

Scanned by CamScanner

तीर्थकर ऋषभनाथः—यह प्रतिमा प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ की है जो 62 सेमी. ऊँची है। प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में दो सिंहों पर आधारित सिंहासन पर ध्यानमग्न अवस्था में विराजमान है। सिंहासन के दोनों ओर यक्ष–यक्षी सेवा में हैं। सिर के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर छत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन वृषभ उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन कला षैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

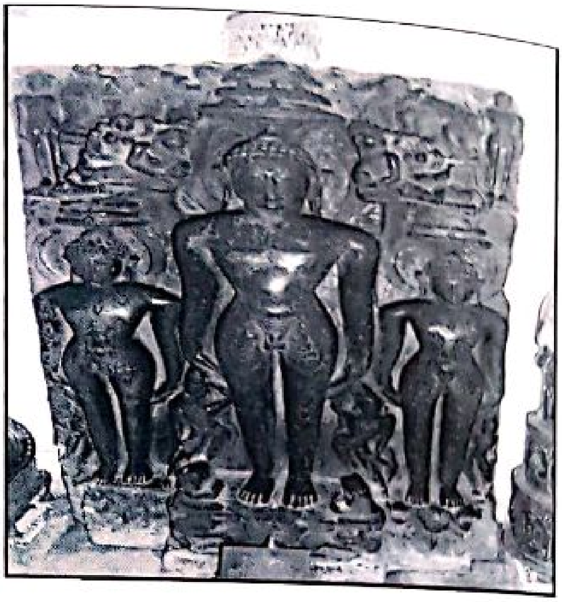

तीर्थकर शॉति–कुन्थु–अरहनाथः

यह प्रतिमा तीर्थकर शॉति–कुन्थु–अरहनाथ की संयुक्त प्रतिमा है, जो 68 सेमी. ऊँची है। प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हैं। मध्य में 16 वें तीर्थकर षॉतिनाथ, उनके दॉयें 17वें तीर्थकर कुन्थनाथ एवं वॉये 18 वें तीर्थकर अरहनाथ की प्रतिमा प्रतिश्ठित हैं। सिर के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। प्रतिमाओं के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। प्रतिमाओं के सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। परिकर में ऊपर दोनों ओर जिन प्रतिमाएँ हैं एवं गज अभिषेक कर रहे हैं। पार्श्व में चामरधारी है। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन वृषभ उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन कला शैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

तीर्थकर विमलनाथः— यह प्रतिमा 13वें तीर्थंकर विमलनाथ की है जो 66 सेमी. ऊँची है। प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में दो सिंहों पर आधारित सिंहासन पर ध्यानमग्न अवस्था में विराजमान है। सिर के पीछे अलंकष्त प्रभामण्डल है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंध र्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। परिकर में ऊपर दोनों ओर जिन प्रतिमाएँ हैं एवं गज अभिषेक कर रहे हैं। पार्श्व में चामरधारी है। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन वाराह उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन कला शैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी षती ईसवी की प्रतीत होती है।

Scanned by CamScanner

तीर्थंकर चन्द्रप्रभः—यह प्रतिमा 8वें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की है जो 68 सेमी. ऊँची है। प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में गज एवं सिंह पर आधारित सिंहासन पर ध्यानमग्न अवस्था में विराजमान है। सिंहासन के दोनों ओर यक्ष–यक्षी सेवा में हैं। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर जिन प्रतिमाएँ हैं एवं गज अभिषेक कर रहे हैं। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन अर्द्धचन्द्र उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन कला सैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

तीर्थंकरः— यह प्रतिमा कॉच के अन्दर सुरक्षित अवस्था में है जिससे अवलोकन बेहतर न हो सका। प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में गज सिंहों पर आधारित सिंहासन पर ध्यानमग्न अवस्था में विराजमान है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर जिन प्रतिमाएँ हैं एवं गज अभिषेक कर रहे हैं। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन अर्द्धचन्द्र उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख स्पष्ट नहीं है लेकिन कला शैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी शती ईसवी की है।

जिन षिलापट्टः— यह शिलापट्ट नवीन मंदिर के भोयरा में दीवार पर संलग्न है। इस शिलापट्ट पर केन्द्र में जिन प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में ध्यान अवस्था में विराजमान हैं। मुख्य प्रतिमा के चारों ओर 119 जिन प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। इस तरह का शिलापट्ट अद्वितीय है। शैली के आधार पर यह उसी प्रतिमा की तरह है जिसमें वि.सं. 1418 तिथि का है।

Scanned by CamScanner

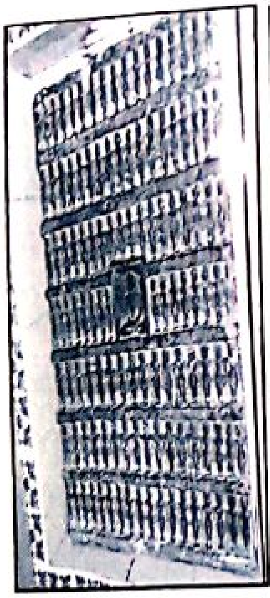

तीर्थकरः– यह प्रतिमा जैन तीर्थकर की है जो कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा 38 सेमी. ऊँची है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केष व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर गज अभिषेक कर रहे हैं। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन कला शैली के आधार पर यह प्रतिमा चंदेलकालीन एवं 11वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

तीर्थकरः– यह शिलापट्ट नवीन मंदिर के भोयरा में दीवार पर संलग्न है। इस पर ऊपर जिन प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में ध्यान अवस्था में विराजमान हैं एवं नीचे दूसरी कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। शीर्ष पर चक्र है। नीचे अभिलेख है जो पूर्णतः पठनीय नहीं है, इसका पाठ इस प्रकार हैः– संवत 1418 वर्षे चैत्र वदी 14 श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे बाल ब्रह्मचारी महाराज श्रीरत्न कीर्तिदेवस्य पटवादी भट्टारक श्री प्रभास्य उपदेशातस्य------------------विक्रमाजीत------------------

यह लेख दिगम्बर जैन कुन्द–कुन्द परम्परा का उल्लेख करता है। लेख 1361 ईसवी का है जिससे स्पष्ट होता है कि चंदेल वंश के शासन काल के बाद भी जैन धर्म की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा होती रही अर्थात व्यापारीगण प्रतिष्ठाऍं अपने सामर्थ्य से करते रहे शासन किसी का भी रहा हो।

तीर्थकर कुन्थुनाथः– यह प्रतिमा 17 वें तीर्थकर कुन्थुनाथ की है। प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में ध यानमग्न अवस्था में है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर गज अभिषेक कर रहे हैं। तीर्थकर की पादपीठ पर उनका लॉछन छाग उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन प्रतिमाओं की निर्माण शैली के आधार पर यह प्रतिमा बुंदेलाकालीन एवं 14वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

तीर्थकर अरहनाथः– यह प्रतिमा 18 वें तीर्थकर अरहनाथ की है। प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में ध यानमग्न अवस्था में है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केष व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर गज अभिषेक कर रहे हैं। तीर्थकर की पादपीठ पर उनका लॉछन मत्स्य उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख

Scanned by CamScanner

उत्कीर्ण नहीं है लेकिन प्रतिमाओं की निर्माण शैली के आधार पर यह प्रतिमा बुंदेलाकालीन एवं 14वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

तीर्थंकर शॉतिनाथः– यह प्रतिमा 16 वें तीर्थंकर शॉतिनाथ की है। प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानमग्न अवस्था में है। प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स, कुँचित केश व दृष्टि नासाग्र है। सिर के ऊँपर गंधर्व पुष्प वर्षा कर रहे हैं। सिर के ऊँपर त्रिछत्र हैं। पार्श्व में चामरधारी है। परिकर में ऊपर दोनों ओर गज अभिषेक कर रहे हैं। तीर्थंकर की पादपीठ पर उनका लॉछन हिरन उत्कीर्ण है। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है लेकिन प्रतिमाओं की निर्माण शैली के आधार पर यह प्रतिमा बुंदेलाकालीन एवं 14वी शती ईसवी की प्रतीत होती है।

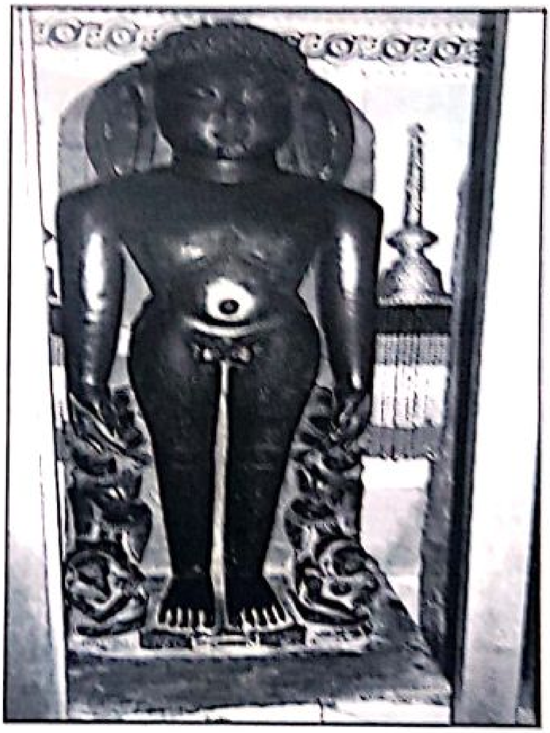

सन्दर्भः

1. मध्यप्रदेश जिला गजेटियर, टीकमगढ़, 1994, पृ. 1
2. आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, अंक 10, पृ. 32
3. सचाऊ द्वारा अनुदित, भाग–1, पृ. 127
4. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय, झाँसी, 1984, पृ. 13
5. रतिभानु सिंह नाहर, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कर्षतिक इतिहास, 1990, पृ. 577
6. कृष्णचंद्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ. 625
7. हरिदत्त विद्यालंकार, प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कर्षतिक इतिहास, आत्माराम एण्ड सन्स, लखनऊ, 1972, पृ. 524
8. कस्तूरचन्द सुमन, अहार के अभिलेख, टीकमगढ़. आर. के. शर्मा, म.प्र. का पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, इलाहाबाद, 1976 पृ. 191
9. आर. के. शर्मा, म.प्र. का पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, इलाहाबाद, 1976 पृ. 193

31 मानव जीवन मे संस्कारों का महत्व

मोहन लाल चढ़ार

प्राचीन काल से मनुष्य के जीवन में अनेक संस्कारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में संस्कारों का प्रथम स्थान माना जाता हैं। मानव जीवन की प्रगति पथ में संस्कार सोपान के समान है। हमारे पूर्वजों ने सामाजिक जीवन को सफल बनाने के लिए वर्ण और आश्रम के साथ संस्कारों की भी व्यवस्था की गई है। ये व्यक्ति को संगठित व अनुशासित करने के विभिन्न उपाय थे, ताकि वह समाज में रहकर सुखमय जीवन व्यातीत कर सके। इनसे व्यक्ति और समाज दोनों का हित संपादित होता था। संस्कार विधिवत रुप से जन्म से मृत्यु तक किये जाते थे। संस्कारों का उद्देश्य मानव की भौतिक और सांस्कृतिक उन्नति ही नही, उसकी शुद्धी करना भी था। संस्कारों का उदय वैदिक काल में हो चुका था, किन्तु वेदों में इनका उल्लेख नही मिलता है। अनेक धर्मशास्त्रों में परवर्ती वैदिक साहित्य, उपनिषदों, स्मृतियों, गृहसूत्रों, जैन ग्रन्थों, बौद्ध ग्रन्थों, पुराणों, महाभारत व रामायण के अलावा मुहुर्त चिन्तामणि, पुरूषार्थ चिन्तामणि, सन्तान सुख सर्वांग चिन्तन, बृहत संहिता, ज्योतिष और संतान योग, सार्थ : शोडष संस्कारादर्श : सुलभ ज्योतिष शास्त्र, तत्व कौमुदी, आदि ग्रंथो में संस्कारो का विस्तार से विवरण दिया गया है। वैसे तो शास्त्रो में 48 संस्कार बताएँ गये है। जिनमें से प्राचीन काल से आज तक प्रमुख 16 संस्कार प्रचलित रहे है। इन सोलह संस्कारों से संस्कारवान मनुष्य सुख समृद्धी और आरोग्य की कामना करता है। सोलह संस्कारो में प्रत्येक संस्कार का एक अनोखा महत्व है। जैसे गर्भाधान संस्कार, नामकरण संस्कार, कर्ण वेध संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चुडा कर्म संस्कार, विद्यारंभ संस्कार उपनयन संस्कार, वेदारम्भ संस्कार ,आदि षोडश संस्कारो से संस्कारित व्यक्ति को समाज मे 'मानव रत्न' व सुस्कारवान मानव की की उपाधी से पुकारा जाता रहा है। इस प्रकार मनुष्य के अभिवृध्दी में संस्कारो का योगदान बहुत ही महत्वपुर्ण माना गया है। व अत्यंत लाभकारी होता है। भारतीय संस्कृति की अतुलनिय विशेषताओं में संस्कारों का किया जाना एक अत्यंन्त ही उल्लेखनीय है। प्रत्येक संस्कार अपने मे बहुत ही निगुढ, वैज्ञानिकपूर्ण एवं नितान्त प्रभावोत्पादक है। संस्कारो का उददेश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण और विकास भी था। संस्कारों की व्यवस्था इस तरह से की गई थी कि वे आरम्भ से ही व्यक्ति के जीवन पर ठीक प्रभाव डाल सके। वे पथ प्रदर्शक का कार्य करते थे। और आयु बढने के साथ व्यक्ति

Scanned by CamScanner

के जीवन को एक निश्चित दिशा प्रदान करते थे। व्यक्ति की शक्ति एक सुनियोजित व ठीक दिशा में प्रवाहमान रहती है। श्रुति और स्मृतियों में कथित जिन कर्मो से मानव को संस्कृत किया जाता हैं वे संस्कार शब्द से कहे जाते हैं अपनी अपनी जातियों मे सामान्य और विशेष विहित वैदिक स्मार्त कर्मो के अनुष्ठानों व्दारा अदृष्ट विशेष प्रतिपादक कर्म का नाम संस्कार कहा जाता है। मानव जाति के लिये अपनी अपनी जातियों के अनुसार संस्कार आवश्यक होते है। सुवर्ण , रजत आदिक खनिजों में विशेष वैज्ञानिक संस्कारों से जैसे सुवर्णादिक रत्न स्वच्छ , सुन्दर दर्शनीय और विभिन्न प्रयोगो व लोक व्यवहारों में आभूषण रूप धारण करते हैं। प्राचीन काल से इन संस्कारों के साथ योग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन अनके ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि योगी संन्त महात्माओं की सन्ताने पराकमी बुद्धीमान, शक्तीशाली स्वस्थवान एवं संस्कारवान रही है। संस्कारों की परम्परा हमारे योगी महात्रऋषियों ने प्रारम्भ की थी। सभी 16 संस्कारों को हमें सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है के मानव के सोलह संस्कार योग, चिकित्सा, स्वस्थ, मनोभाव, प्रकृति में पंचतत्वों के साथ साथ मानवीय चिन्तन व विचारों से जुडे है। प्राचीन काल से इन संस्कारों के साथ योग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन अनके ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि योगी संन्त महात्माओं की सन्ताने पराक्रमी बुद्धीमान, शक्तीशाली स्वस्थवान एवं संस्कारवान रही है। संस्कारों की परम्परा हमारे योगी महात्रऋषियों ने प्रारम्भ की थी। सभी 16 संस्कारों को हमें सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है के मानव के सोलह संस्कार योग, चिकित्सा, स्वस्थ, मनोभाव, प्रकृति में पंचतत्वों के साथ साथ मानवीय चिन्तन व विचारों से जुडे है। उक्त सभी तथ्य योग परम्परा से घनिष्ठता से जुडे हुए है। इनका विस्तार से विवरण इस प्रकार है। उक्त सभी तथ्य योग परम्परा से घनिष्ठता से जुडे हुए है। इनका विस्तार से विवरण इस प्रकार है।

गर्भाधान संस्कार – जिस कर्म द्वारा पुरुष अपना शुक्र स्त्री को धारण करता है वह गर्भाधान कहलाता है। इस संस्कार में किसी व्यक्ति का आगमन किस तरह होना चाहिये? उसका स्वभाव , स्वास्थ्य, व बौध्दिक क्षमता किस प्रकार स्वस्थ एवं सदृढ हो ? इसके सम्बन्ध में हमारे वैदिक ऋषियों महर्षियों के द्वारा जो चिन्तन किया गया , उसी का रूप हमें देखने को मिलता हैं। संस्कारी माता पिता के विशुद्ध वीर्य एवं रज से सुसंस्कारवान, सन्तान का जन्म होना है। इस तथ्य को हमारे पूर्वज भली भांति अनुभव कर चुके थे। अतः संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान से ही होता हैं। पुरूष स्त्री के रजो के वीर्य के मिथुन भाव से गर्भाधारण होता है। पुरूष के वीर्य और के स्त्री के रज में अनादि रूप जीव पूर्व से ही विद्यमान रहता हैं, किन्तु अनेक प्राकृतिक एवं आगन्तुक दोषों के कारण उनकी शुद्धावस्था में विकार उपन्न हो जाता है। इन विकारो के परिमार्जन के लिये गर्भाधान संस्कार का विधान कहा गया हैं। आम तौंर पर यही मान्यता हैं कि मृत्यु जीवन को निगल जाती है। जीव का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक कि मुत्यु उसके पास नहीं आ जाती है,, किन्तु गर्भधान एक ऐसी परंम्परा है। जो मुत्यु से जीवन पराजित होकर भी विजयी बना रहा है। अनुश्रुति के अनुसार हमारे पूर्वज जाने पहचाने लोग ही वीर्य और रज के माध्यम से गर्भ में प्रवेश कर तथा कथित नवीन स्वरूप को धारण करते है। शास्त्राकारों ने रज को क्षेत्र और शुक्र को बीज माना है। मनुस्मृति में पुत्र लिये युग्म और पुत्री के लिये अयुग्म रात्रि की व्यवस्था दी गई है। इस तरह स्मृतियों एवं ज्योतिष के संस्कार रत्नमाला इत्यादि ग्रंथो में गर्भाधान के मूहुर्तादि पर काफी सुक्ष्म विवेचन किया गया है। जो कि मनगढन्त नही अपितु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्मत है। गर्भाधान के विषय में हमारे विद्वानों ने एक समय निर्धारित किया है। स्वर विज्ञान का भी इसमें अत्याधिक महत्व है। गर्भा

Scanned by CamScanner

ान के समय काल में शुद्ध भव से बना भोजन व सात्विक खान पान अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव हमें होने वाली सन्तानों पर दिखाई देता है। इस संस्कार में कहा गया है कि विवाह की चौथी रात्रि को यह संस्कार करना चाहिए। उसमें भी समय निर्धारित किया गया कि रात्रि का समय ही इसके लिए डपयुक्त है। उसमें भी अर्धरात्रि और उसके बाद का समय अधिक उपयुक्त है। यह भी कहा गया है कि जो दिन में यह संस्कार करता है वह दुर्गुणी संन्तान का प्रजनन करता है। इसके अलावा एक मास की आठवी, चौदहवी, पन्द्रहवी और तीसवी तिथी गर्भ धारण के लिए उपयुक्त नही है। सभी पर्वो की रात्रि भी अनुपयुक्त मानी गई है। यह संस्कार पत्नि के ऋतु स्नान की चौथी रात्रि से सोलहवी रात्रि तक का समय गर्भधारण के लिए उपयुक्त माना गय है।

पुसंवन संस्कार :– गर्भधारण का निश्चय हो जाने के पश्चात पुसवन संस्कार होता था। पुसवन का मतलब उस कर्म था। जिसके करने से पुरुष सन्तति का जन्म हो। यह सस्कार जब किया जाता था तब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में हो। गर्भाधान के तीसरे महीने में यह संस्कार किया जाता है। इस समय शिशु के शरीर की रचना प्रांरम्भ हो जाती है। सीमन्त संस्कार में कहे गए तिथि–वार नक्षत्र और लग्नों मे पुसंवन संस्कार करना चाहिए। कुछ आचार्यों विद्वानों के मतानुसार चतुर्थ मास में करना चाहिए। भ्रूण के पोषण और बल के लिए मन्त्रोच्चारण के साथ वट, कुष तथा दुर्वा आदि का रस गर्भिणी के दाहिने नासा–रन्धक द्वारा प्रवेश कराया जाता है। नासिक के छिद्रो का शरीर के अन्दर की नसों के साथ सबंध है। जिनमें रक्त प्रवाहित होता है। दाहिने छिद्र से निकलती हुई वायु में उष्णता तथा वाह्यरन्ध्र वाली वायु में शैल्य की प्रधानता मानी गयी है। उष्मा पुरूषत्व प्रधान है। अतः यह विधान पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। गर्भस्थ बच्चे के जीवन में उष्माजन्य उत्साह भरा रहें इस संस्कार में दिखाई देते है। इस संस्कार में विनियोग किये जाते है। विद्ववानो की मान्यता है की गर्भस्थ शिशु माता के द्वारा गृहित जल–भोजन एवंम वायु कें द्वारा ही संसेशित होता है। इस तरह की स्थिति में यदि कोई स्त्री किसी कुप्रभावकारी वस्तु को ग्रहण कर लेती है तो गर्भस्थ शिशु के लिए यह जान लेवा भी साबित हो सकती है। इस संस्कार द्वारा पुरुष स्त्री को अलाभकारी कियाकलापों के प्रति उसें सर्तक भी करता है। जिससें की शिशु की रक्षा एवं विकास स्वाभाविक रूप सें हो सके। मनोविज्ञान कें अनुसार गर्भकालीन अवस्था में ग्रर्भिणीं की मानसिक दशा बच्चों के मन –मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है। महाभारत के अनुसार अभिमन्यु ने गर्भवस्था में ही चक्रव्यूह भेदन रचना का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार साहित्य के अनुसार गर्भिणीं स्त्री के आचरण के बारें में जो सदा प्रसन्न रहना ,शुभ कर्म करना, भलाई की बात सोचना महत्वपूर्ण बाते कही गई है। इस संस्कार में अग्निदेव की परिकमा की जाती थी। इस ससकर के अवसर पर माता के शरी को फुलो की मालाओ से अलकृत कर उसकी सभी इच्छाएँ पूरी करके उसे प्रसन्न किया जाता था।

सीमन्तोन्नयन संस्कार : – इस संस्कार का उद्देश्य गर्भपात रोकना है। यह संस्कार चौथे छठें या आठवें माह में किया जाता है। शरीर शास्त्र की दृष्टी सें तीनों मास ही गर्भ अवस्था के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। इस संस्कार मे पती अपनी पत्नी के केशों को ऊपर की ओर उठाता था। इस संस्कार के द्वारा गर्भस्थ शिशु के सवस्थ्य की मंगल कामना की जाती है। सीमोन्तोन्मय संस्कारों के अंन्तरर्गत औदुम्बर नामक वृक्ष की एक शाखा को गर्भिणी के गले में बांधा जाता है। जो की आयुर्वेदिक शास्त्रीय चिकित्सा के ओर संकेत करता है। वास्तव में शरीर के गले का भाग अत्यत संवेदनशील होता है। शरीर में पहुँचने के लिए प्रत्येक प्रदार्थ कों उसी से गुजरना पड़ता है। औदुम्बर में भी कुछ इस तरह रसायन की उत्पति

Scanned by CamScanner

होती है। जो कि गर्भिणी माता एवं शिशु कों लाभदायक होता है। यह एक अत्यन्त शोध का विषय हैं। गर्भ के दिनों में आयुर्वेद के अनुसार पॉचवे महिने मे मन का निर्माण होने लगता है। शक्ती गर्भिणी स्त्री की इच्छाओं की पूर्ति करना ही इस संस्कार के साथ जुड़ा हुआ है। शिशु की मानसिक शक्ती के उन्नयन के किए यह संस्कार अपेक्षित है। इस संस्कार से गर्भिणी के मन पर सुखद प्रभाव पडता है। माता के सुखी मन होने शिशु के मानसिक मन पर भी अच्छा प्रभाव पडना स्वाभाविक है। इस संस्कार मे पति के द्वारा पत्नी को चावल की राशी तिल तथा घी की ओर दिखाना है। चावल सें सन्तुष्टी एवं तृप्ती , तिल सें स्नेह तथा घी से शक्ति प्राप्ति के लिए प्रयास करना प्रतीत होता है। मनुष्य स्वभाव सें ही संवेदनशील प्राणी है। मनुष्य जो भी देखता है वही सोचता है। गर्भिणी महिला अपनें शारीरिक दुर्बलहीन भार को झेलती हुई बिल्कुल शांन्त एवं एकान्त दशा में नियम , निष्ठा एवं सावधनीपूर्व अपना जीवन व्यतीत करती हुई असहय वेदनाओं को सहन करती है। लोगों का विश्वास था कि गर्भावस्था में अमंगलकारी शक्तियों के आकमण का भय रहता है। इनको रोकने के लिए यह संस्कार किया जाता था। इसका धार्मिक उद्देश्य माता को ऐश्वर्य तथा शिशु के लिए दीर्घ आयु प्राप्ति था। इस संस्कार के बाद गर्भवती स्त्री के लिए शारीरिक श्रम वर्जित था। इस संस्कार के समय घर में मधुर संगीत गाये जाते थे।

जातकर्म संस्कार :– यह संस्कार शिशु कें जन्म कें बाद संपन्न किया जाता है। इसे कार्य में जातक के पिता एवं माता कें द्वारा श्रुती एवं स्मृति सम्मत विधियों का निष्पादन किया जाता है। बालक जब पैदा होता है, तब उसे सर्व प्रथम हवा की आवश्यकता है, फिर पानी की आवश्यकता होती है फिर रोटी की आवश्यकता प्रतीत होती है। बृहदारण्य उपनिषद में जातकर्म संस्कार के लिए निम्न क्रियाएँ प्रस्तावित की जाती है। (अ) घी का मंत्रो द्वारा होम करने से हव्य कुड कें गर्भ सें जो धुआ उठता वह घर के आस पास के पर्यावरण कें लिए अत्यंत ही लाभदायक होता है। (ब) बालक के दाहिने कान में वाक शब्द को तीन बार कहना वाक वाणी का पर्याय है। जिसे कर्ण पथ में तीन बार तत्काल पहुँचाने वाली वाणी से शिशु की उत्तम वाणी की कल्पना है। ब्राम्हाण ग्रथों मे वाक शब्द सरस्वती कें लिए प्रयुक्त हुआ है। अंतः बालक को सारस्वत बनानें का यह प्रयास है। (क) इस संस्कार में सोने के चमच से बालक कों दही, मधु चटाना (इस क्रिया कें द्वारा दही एवं मधु में निश्चय ही प्रभावकारी संस्कार कें द्वारा बच्चे कें शरीर एवं स्वभाव कों सुसंस्कृत किया जाता है। मधु, धृत एवं सुवर्ण इन तीनों का योंग औषधीय गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। जो आधुनिक विज्ञान के निकट है। (ड) इस संस्कार में बच्चे का गुप्त नाम देने के पीछे बच्चे की सुरक्षा हेतु एक अहम कदम उठाना है। इस संस्कार में पिता अपनी चौथी उगली से और सोने की शलाका से शिशु को मधु और घृत चटाता था। इस संस्कार में पिता बालक की सुदीर्घ आयु की कामना करता था।

नामकरण संस्कार : – प्राचीन काल से ही लोगों ने व्यक्तिगत नामों के महत्व को समझा और नामकरण की प्रथा को धार्मिक संस्कार के रुप में स्वीकार कर लिया था। यह एक ऐंसा संस्कार है। जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के जीवनावस्था सें ही नही अपितु मरणोपरांत की अवस्था सें भी है। एक बार नामकरण कर लिया गया वही नाम उस व्यक्ति का अमिट हिस्सा बन जाता है। जिसें पुरूषार्थ के बल पर अलग नही किया जा सकता है। आचार्यो के द्वारा प्रतिपादित नियममानुसार उक्त संस्कार में शिशु के चार नाम रखें जाते है। (क) नक्षत्र नाम (ख) गुप्त नाम (ग) सर्वसाधारण नाम (घ) यज्ञप्रयुक्त नाम संस्कार प्रकाश में चार नामों का उल्लेख मिलता है। 1) देवता नाम 2) मास नाम 3) व्यवहारिक नाम 4) नक्षत्र नाम भगवान मनु कें द्वारा भी नाम के सम्बन्ध में कुछ इसी तरह के बातो का उल्लेख किया गया है। (अ) सभी

Scanned by CamScanner

वर्णो के व्यक्तियों का नाम शुभ सूचक, शक्तिवेधक तथा शांतिवेदक होना चाहिए। (ब) नाम के साथ एक अपवार भी होना चाहिए जिससें प्रसन्नता रक्षा तथा पुष्टी का संकेत मिल रहा है। जन्म के ग्यारहवे या बारहवके दिन पुत्र का नाम रखने के किए कहा गया हैं । इसका कारण यह है। की नवजात शिशु कें आरंभिक दस दिन अन्यंत नाजुक ओर आशंका से भरे हुए दिन होते है। इस अतंराल में यदि शिशु का नामकरण कर दिया जाए और उसकी उसकी मुत्यु हो जाए तो बहुत ही हानि होती हैं। प्राचीन काल से शिशु का नाम धर्म, नदियों, फूलों, शुभ सूचक, देवता सन्त महात्मा के आधार पर रखा जाता था।

कर्णवेध संस्कार : – इस संस्कार अलंकरण के साथ साथ धर्मिक स्वरुप में माना गया है। इस संस्कार कें अर्तगत शिशु के कोमल कानों में स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोह इत्यादि की सुई के द्वारा कानों में छिद्र किया जाता है। इसके द्वारा आम जनता अपने शिशु की सुरक्षा एवंम आभूषण पहनाने का स्थान का निर्माण होना मानती हैं। यह संस्कार जितना व्यवहारिक है उतना ही दार्शनिक एवं वैज्ञानिक भी है। सर्वप्रथम व्यवहारिक दृष्टी से कर्ण बेध संस्कार का महत्व अत्यत ही महत्वपूर्ण है। गरीबों के परिवारों से लेकर अमीरों के परिवारों तक इन संस्कारों का महत्व समान ही देखा जाता है। इस संस्कार का सम्बन्ध ा केवल सौदर्य सें नही है, बल्कि कर्ण में छेद करने से हायड्रोसिल, अण्डकोष वृद्धि व आत्रवृद्धि नाम के रोगों से रक्षा करना भी था।

निष्क्रमण संस्कार :– निष्क्रमण का अर्थ होता हैं बर्हिगमन, जिसका तात्पर्य दुनिया की सैर कराने से नही बल्की बच्चों को घर सें बाहर ले जाने सें है। यह संस्कार बालक के जीवन में एक उन्नतशील जीवन का महत्वपूर्ण कदम था। इसे बडे उल्लास के साथ मनाया जाता था। इस संस्कार को जन्म के चौथे माह में किया जाता था। (क) इस संस्कार में बच्चों को घर सें बाहर निकाला जाना । (ख) उसे सर्वप्रथम सूर्य का दर्शन करवाना । (ग) वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया जाना । (घ) ब्राह्मणों के भोजन का आयोजन किया जाना। उपरोक्त सभी बातें निष्क्रमण संस्कार कें लिए अनिवार्य मान गई है। इस स्संस्कार में अपनी सन्तान को पिता घर के आगन में सूर्य के दर्शन कराता था।

अन्नप्राशन संस्कार :– छठवें महिने में इस संस्कार को किया जाता था। इससें पहलें नवजात शिशु का केंवल जल एवं दूध का पान करने सें जीवन रक्षण होता है। तब जाकर एक शुभ मुहर्त में चन्द्रबल एवं ताराबल को ध्यान में रखते हुए शिशु के पिता कें द्वारा यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। अन्नप्राशन संस्कार के द्वारा बच्चों को जिन्दगी का मूलमंत्र पढाया जाता है। अन्न के बिना यह जीवन चल नही सकता है। इस संस्कार में ठोस भेजन बालक को सर्वप्रथम खिलाया जाता है। इसके पूर्व तक बालक माता के दूध पर अश्रित रहता है। इस संस्कार को भी धार्मिक स्वरुप प्रदान किया गया है। आज वर्तमान समय में भी माना जाता है कि बालक को छह मास तक सिर्फ मॉ का स्न्तपान करवाना चाहिए। इस स ।सकार में बालक को दूध, इही, भॉत, घी व मधु खने को दिया जाता था।

चूडाकर्म संस्कार :– यह संस्कार धर्म के अनुसार तीसरे वर्ष में सपन्न होता है। जिसे प्रकारान्त मे मुन्डन कर्म भी कहा जा सकता है। इसके अंर्तगत माता बच्चों को अपनी गोद में लेकर बैठती है। उसकें बगल में उसके पिता एवं पुरोहित बैठते हैं इसी समय नाई द्वारा शिशु का पहली बार केष कर्तन होते हैं। जिसमें की केषो को कुछ अंश सुनिश्चित स्थान पर छोडा जाता है। जिसका संम्बध मस्तिक मे विद्यमान ज्ञान स्थल शिखर के नीचे का भाग होता है। उसी संवेदना की सुरक्षा के वास्ते शिखा का छोडा जाना हमारे पूर्वजों के द्वारा मान्य है। इससे दीर्घ आयु सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति होती है। यह संस्कार

Scanned by CamScanner

जन्म के प्रथम वर्ष के अन्त में या तृतीय वर्ष की समाप्ति पर यह संस्कार किया जाता था। प्रारम्भ में यह घर पर होता था कलान्तर में यह देवालयों में किया जाने लगाा था।

विधारंभ संस्कार : यह संस्कार व्यक्ति के जीवन का काफी महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। सृष्टी के समस्त प्राणियों से मानव जाति का स्थान सर्वोपरी है, जिसका कारण है विद्या, ज्ञान व बुद्धी । यदि विद्या मनुष्य के पास न होती तो अन्य जीव ही उनसे अधिक सम्मान के भागीदार होते। इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति के पदार्पण के बाद विद्यारूपी परम लक्ष्य के प्राप्ति हेतु श्रीगणेश किया जाता है। इस अवधि ा मे उसकी चपलता, अज्ञानता एवं चित्त की अस्थिरता पराकष्ठा पर होती है। अतः इस समय को अध्ययन हेतु उपयुक्त माना जाता है। सामान्यता 5 वषों के बाद बच्चों की बुद्धी परीपक्व होने लगती हैं उसमें बाहय शक्ति का अर्विभाव होने लगता है। इस संस्कार में अक्षरारंभ से पूर्व देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। इस संस्कार को बालक के पॉच वर्ष पूर्ण करने के पश्चात किया जाता था। ऊँ अक्षर को सर्वप्रथम स्लेट पर बनवाया जाता था।

उपनयन संस्कार :– विधारम्भ संस्कार सें बच्चों की जीवन यात्रा ज्ञान कें क्षेत्र प्रारम्भ हो जाती है। इस संस्कार की क्रियाओं के प्रति आचार्या ने अनेक व्याख्याऍ की हैं उपनयन में दो शब्द कि है। पहला शब्द "उप" जो की एक उपसर्ग है और अपने साथ आये शब्द को विशिष्ठ करता है। दूसरा शब्द है 'नयन' जिसके दो अर्थ है। "नीयते अनेन इति नयनम" अर्थात जिस संस्कार करने से सुसंस्कृत व्यक्तियों को लिया जा सकता है। दूसरा शब्द 'नयन' अर्थ में दृढ है। जिस दृष्टी सें भी उपनयन शब्द की व्याख्या की जा सकती है। इस में उपनयन पद में ज्ञान चक्षु कों ढूढने का प्रयास किया जाता है। यह एक वास्तविक सत्य है। किशोर अवस्था के समय यह उपनयन या दीक्षा संस्कार किया जाता था। सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इस समय गुरु के यहॉ रहकर बालक अनुशासनमय जीवन व्यातीत करता था। कला, संस्कृति व साहित्य की शिक्षा प्राप्त करता था। रूक्ति को इस संस्कार के माध्यम से योग्य नागरिक बनााने के प्रति कटिबद्ध किया जाता था। हिन्दुओं में माना जाता है कि बिना उपनयन के प्रति व्यक्ति शूद्र होता है। इस संस्कार के समय अन्तिम बार माता और पुत्र भोजन करते थे। इस संस्कार में बालक को स्ननान करवा कर गुरु उसेउपवीत धारण करवाता था। उसे इस संस्कार के बाद सन्यासी का जीवन व्यतीत करना पढता था। इस संस्कार में आचाय्र सूर्य के दर्शन करवाता था। विद्यार्थी अपने कर्त्तव्य तथा अनुशासन पालन की शिक्षा सूर्य से ग्रहण करता था। इस संस्कार में गुरु व शिष्य एक दूसरे का हृदय स्पर्श करते थे। इसका अर्थ होता था कि गुरु और शिष्य के बीच हार्दिक सम्बन्ध हो गये। बिना इसके शिक्षा सम्भव नही है। आचार्य इस संस्कार में शिष्य से कहता था कि तू ब्रह्मचारी है, बल ग्रहण कर, दिन में शयन न कर, वाक्सयम कर, वेदो का अध्ययन कर इत्यादि उपदेश गुरु देता था। पवित्र गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाता था। अग्नि में प्रथम बार आहूति डाली जाती थी। अग्नि जीवन तथा प्रकाश की प्रतीक थी। जिनकी प्राप्ति के लिए विद्यार्थी भिक्षा मागता था। जिसका उद्देश्य उसको विनम्र बनाना था।

वेदारम्भ संस्कार :– धर्म शास्त्रों के व्दारा प्रतिपादित उपनयन संस्कार मे बालक अपने माता पिता परिवार एवं समाज कों कुछ दिनों के लिए छोड कर गुरू आश्रम मे प्रवेश करता था। गुरु आश्रम में वेद कों पढना प्रारंभ करता था। इस पढने कें कम सें गुरुकुल के नियमानुसार आचरण करना पडता था। वह एक सुनिश्चित दिनचर्या के कार्यो को करता था। संम्पूर्ण धरती पर भारतीय संस्कृति इस प्रकार की है, जिसमें पलने वाला बच्चा अपने शैशवकाल में ही विद्या की प्राप्ति के लिए अपने माता पिता का त्याग कुछ

Scanned by CamScanner

समय के लिए करता था। वह गुरु के बतायें हुये रास्ते पर चलता था, क्योकि ज्ञान की प्राप्ति प्यार की दुनिया मे नही हो सकती है। विद्या शांन्त एवं स्वस्थ वातावरण मे ही वह मिल पाती है। ऐसी शिक्षा गुरु के आश्रम मे ही मिल सकती है। ज्ञान ही एक ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति की दूसरे जीवों से अलग पहचान प्रदान करता है। वैदिक अध्ययन को बनाये रखने के लिए वेदारम्भ संस्कार किया जाता था। पहले यह उपनयन का अंग माना जाता था।

केशान्त संस्कार :– यह संस्कार सोलह आयु वर्ष में किया जाता था। इस संस्कार में दाढी–मुंछ का कर्तन किया जाता था। बाल और नाखुन का जल मे समर्पण किया जाता था। गुरू को शिष्य कें द्वारा गोदान दिया जाता था। संस्कारान्त में एक वर्ष तक कठोर अनुशासित जीवन व्यतीत करना होता था। यह संस्कार यौवन का पदार्पण था। संस्कार के माध्यम से उसे रूौवन के प्रति सर्तक किया जाता था। उसे एक बार पुनः ब्रह्मचर्य के व्रतों का स्मरण करवाया जाता था। इसे गैदान संस्कार भी कहा जाता था।

समावर्तन संस्कार :– यह संस्कार ब्रह्मचर्य के समाप्त होने पर किया जाता था। यह विद्यार्थी जीवन का अन्तिम संस्कार था। समावर्तन का अर्थ है वेदाध्ययन के बाद गुरुकुल से अपने धर की ओर प्रत्यावर्तन था। इस समय व्यक्ति दो मार्गो का चयन करता था। एक गृहस्थाश्रम का और दूसरा अजीवन ज्ञान प्राप्ति के लिए वह गुरुकुल में रुक जाता था। भारतीय परंपरा के अनुसार मनुष्य की चारो अवस्थाओं के लिए आश्रमों की परिकल्पना की गयी है। 1) ब्रह्मचर्याश्रम 2) गृहस्थाश्रम 3) वानप्रस्थाश्रम 4) संन्यास आश्रम। भारतीय संस्कृति मे आत्मा का सच्चा स्वरूप दिग्दर्शित होता है। बाल्याअवस्था में ब्रह्मचर्य को अपनाकर ब्रह्मचर्य का पालन करतें हुए व्यक्ति विद्याभ्यास करता था। उसके बाद वह अपने गृह स्थान मे प्रवेश कर मानवीय जीवन के स्वाभाविक व्यवहारों का अनुपालन करता है। पुनः जीवन के योग क्षेत्र का निर्वाह न करते हुये वानप्रस्थ की ओर प्रवृत्त होता है। अंत मे वह बिल्कुल संन्यासी बन कर माया , मोह, नम्रता एवं जगत के भौतिक नातों को त्याग कर ब्रम्हांड के परम सत्य को स्वीकार कर लेता है। ये चारो आश्रम मानव मात्र की चारो अवस्थाओं की स्वाभाविक परिणिती है। तीन प्रकार के स्नातक होते थे। विद्या स्नातक, व्रत स्नातक और उभय स्नातक विद्या और व्रत दोनो स्नाते गुरु से विदा लेते समय अपने समर्थ्य के अनुसार गुरु को गुरु दक्षिणा देते थे।

विवाह संस्कार :– विवाह का हिन्दू संस्कारों में विशेष महत्व है। अधिकांश गुहसूत्रों का आरम्भ विवाह संस्कार से होता है। यह समस्त गृह यज्ञों एवं संस्कारों का उद्‌भव व केन्द्र है। साधारणतः समाज प्रत्येक व्यक्ति से विवाह कर गृहस्थाश्रम का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा करता है। वर और वधु का चुनाव करते समय वर्ण, कुल, योग्यता का ध्यान रखा जाता था। पाणि ग्रहण संस्कार का विशेष नाम विवाह है। विवाह आठ प्रकार कें होते थे। ब्रह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, आसुर विवाह, गंधर्व विवाह, राक्षस विवाह एवं पैशाच विवाह। पाणि ग्रहण संस्कार में दो आत्माओं का मधुर मिलन है। भावनात्मक एकता प्रायः प्रत्येक व्यक्ति पति–पत्नी के मध्य स्वीकार करते है, परन्तु भारतीय संस्कृति की भावनाओं के धरातल सें बहुत उपर उठ कर उसे आत्माओं का एकीकरण समझती है। व्यवहारिक मान्यताओं को भी स्वीकार करती है। विवाह में बारह विधियॉ होती है। उनमें वाग्दान, वरवरण, कन्यादान, विवाह होम, पाणिग्रहण, ह्रदयस्पर्श, अश्मारोहण, सप्तपदी, सूर्यावलोकन, ध्रुव दर्शन त्रिरात व्रत और चतुर्थी कर्म प्रमुख थे। वग्दान में कन्यादा की मौखिक स्वीकृति प्रदान की जाती थी। वरवरण पिता अपनी कन्या के लिए उचित वर खोजता है। कन्यादान अग्नि के सम्मुख उसका पिता या संरक्षक कन्यादान करता था।

Scanned by CamScanner

पाणिग्रहण के समय वर वधू का दाहिना हाथ ग्रहण करता है। यह कन्या का दायित्व व भार सम्भालने का प्रतीक है। हृदयस्पर्श किया में वर वधु एक दूसरे हृदय को स्पर्श करते है। इसका उद्देश्य एक दूसरे में भावानात्मक एकता पैदा करना है। अश्मारोहण, में वर बधूका दाहिना पैर पत्थर पर रखवाता है, जो दृढता का प्रतीक है। इसके बाद सप्तपदी की जाती है। सप्तपदी का एक अपना अलग ही महत्व है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक सप्त पदी का व्यवहार प्रचिलत है । इसमे पती–पत्नी को सात कदम उत्तर दिशा की ओर चलाया जाता है। जिस मे प्रत्येक पद का अपना महत्व है। ऐश्वर्य के लिए प्रथम पद। ऊर्जा के लिए द्वितीय पद। भूमि के लिए तष्तीय पद। सुख के लिए चौथापद। पशुओं के लिए पॉचवा पद । ऋूतुओं के लिए छटा पद होना है। मित्रता के लिए सॉतवा पद होता है। सप्तपदी के बाद वैधानिक रुप से विवाह सम्पन्न माना जाता है। यह वर्तमान समय में भी मान्य है। वर वधु को विवाह मण्डप में सूर्य का दर्शन करवाया जाता है। इसका तात्पर्य है कि ग्रहस्थ जीवन में सूर्य को साक्षी मानकर प्रत्येक कर्म किया जाये। वर वधु को ध्रुव दर्शन कराया जाता था। इसका मतलब था कि आप अपने जीवन में ऐसे कार्य करे जिससे कि ध्रुव तारे की तरह मुत्युपरान्त भी चमकते रहे, अर्थात वर वधु के आचरणो का अनुगमन दूसरे वर वधु करे। वैवाहिक विधानों के बाद त्रिरात्र व्रत का कम आता है।वर वधु को तीन रात तक सहवास से दूर रहना पडता था। इसका उद्देश्य वर वधु को यौनजीवन में संयत मार्ग का पाठ पढाना था। उनका प्रेम कामुतापूर्ण न होकर आत्मसंयम पर आधरित हो। चतुर्थी किया विवाह के चार दिन बाद सम्पन्न की जाती थी। इसमें गर्भाधन संस्कार के लिए उपयुक्त समय चयन किया जाता था। भौतिक एवं चार लौकिक दृष्टी से किए गये उपयुक्त निरूपण विवाह संस्कार के ही परिणाम है। यह संस्कार बच्चों का घरोंदा नही कि बनाए और टूट जाए अतः इसमें चिरस्थानत्व, सफलता एवं आकर्षण लाने कें लिए इस संस्कार के माध्यम सें किया जाना अत्यंत ही प्रभावकारी सुंदर तथा विज्ञान सुसंगत है।

अंत्येष्टि संस्कार :– मानव जीवन अंन्त्येष्टि संस्कार के के साथ समाप्त हो जाता है। मनुष्य का यह अन्तिम समय होता है। इस संस्कार के साथ वह जल कर राख बन जाता है अथवा मिट्टी के स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है। शरीर को जला दिया जाता है, तो उस का स्वरूप राख या मिट्टी हो जाता है। यह भारतीय सस्कृति सें संम्बन्धित है। यदि मिट्टी खोद कर ईस्लाम धर्म के अनुकूल शरीर को गाड दिया जाए तों वह मिट्टी बन जाता है। यदि संम्बधियों अथवा साधनों का अभाव है। तो मृत शरीर को जल या स्थल भाग मे छोड़ दिया जाता है। यह तीन परीणाम हमें विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में देखने को मिलते है। जिसमे भारतीय संस्कृति शव को जलाने की सहमति देती है, क्योकि प्रिय व्यक्ति को ज्यादा समय मृत शरीरिक अवस्था में देख दुःख का कारण न बने इसलिए उसे तुरन्त पंचतत्व से रचित शरीर कों पंचतत्व को ही अग्नि के माध्यम से समर्पित कर दिया जाता है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति मे सोलह संस्कारो का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल के संस्कार बड़े उपयोगी माने जाते है। उनमें व्यक्ति के विकास में बड़ी सहायता मिली। मानव जीवन को संस्कारों ने परिष्कृत और शुद्ध किया तथा उसकी भौतिक तथा अध्यातिमक आंकांक्षाओं को पूर्ण किया। अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान भी इन संस्कारों द्वारा हुआ। प्राक्– जन्म संस्कार, यौनविज्ञान और प्रजनन शास्त्र का कार्य करते है। इसी प्रकार विद्या के संस्कार शिक्षा की दृष्टि से काफी महत्व के है। गर्भाधान संस्कार से संस्कारो का प्रारम्भ होता है। विधिवत गर्भाधान से सुसंस्कृत व निरोगी शिशु की कामना करते हुए पुसंवन संस्कार करके गर्भस्थ सन्तान की रक्षा की सुकामना की जाती है। सीमन्त संस्कार

Scanned by CamScanner

करके गर्भपात रोकने का प्रयास किया जाता है। तथा शिशु के जन्म के बाद जात कर्म संस्कार करके पापो का नाश हो कर आयु में वृद्धि की कामना की जाती है। उसके पश्चात नामकरण विधि से बालक को समाज के व परिवार के लोगों के द्वारा पुकारा जाता है। कर्णवेध संस्कार मे बालक की सुरक्षा एव श्रृगांर आभूषण को संस्कार के रुप में किया जाता है। निष्क्रमन, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, विद्यारंभ, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, केशान्त आदि संस्कार बिालक की रक्षा, विद्या और प्रगति हेतु किए जाते है। विवाह संस्कार करके व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपने पूर्वजों के ऋण को चुकाने का प्रंयास सन्तान उत्पति कर करता है और पितृ ऋण से मुक्त होता है। अंत मे जीवन का अन्तिम सत्य अंत्येष्टि संस्कार जिसमे व्यक्ति इहलोक को छोड कर परलोक की यात्रा करता है और इस शरीर से मुक्ति पाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य की अभिवृद्धि में संस्कारों का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है।

संदर्भ ग्रंथः–

1. जैन, के. सी : प्राचीन भारतीय समाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2000 मध्यप्रदेश पृ. 48–56
2. वेबर, ए. : शतपथ ब्राह्मण, लन्दन, 1885, 11/122
3. आप्टे, हरिनारायण, तैत्रिरीय आरण्यक, पूना, 1/34
4. बुहदारण्यक उपनिषद, निर्णय सागर संस्करण बंबई, 1930
5. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, 18/67
6. आश्वलायन श्रौतसूत्र, 9/98
7. विटरनित्ज, एमः आपस्तम्ब गृहसूत्र, वियना, 1887
8. स्टेज्लर, ए,एफ. :आश्वलायन गृहसूत्र, लिपजिग, 1864
9. वैखानस गृहसूत्र, 23/123
10. वाल्मीकि रामायण, 1/148
11. महाभारत 1/196
12. पुसालकर, द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल, विद्याभवन बंबई
13. काणे, पी. बी. : हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, धर्मशास्त्र का इतिहास, लखनऊ
14. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, वाराणसी,1957
15. पण्डरीनाथ, प्रभूः हिन्दु सोसल आर्गनाइजेशन, बम्बई, 1958.
16. वेदांलकार, हिन्दू परिवार मीमांसा, इलाहाबाद,1963

Scanned by CamScanner

32 प्राचीन काश्मीर में आर्थिक जीवन (राजतरंगिणी के विशेष सन्दर्भ में)

आलोक श्रोत्रिय

मनुष्य अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं वैभव के साधन जुटाने के उद्देश्य से अर्थोपार्जन में संलग्न रहता है। अर्थ का संबंध धन–सम्पत्ति के साथ ही भौतिक सुख एवं ऐश्वर्य से भी है। इसलिए मनुष्य का समस्त जीवन प्रायः अर्थ प्राप्ति के नानाविध उपाय करते हुए व्यतीत होता है। अर्थ की महत्ता को दृष्टिगत रखकर भारतीय चिन्तकों ने इसे चार पुरूषार्थों में सम्मिलित किया था। अर्थ भौतिक जीवन की उन्नति का प्रबल साधन है। वस्तुतः अर्थ का अभिप्राय उन सभी साधनों से है जो व्यक्ति को समस्त सांसारिक सुख उपलब्ध कराते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों मे अर्थ का अत्यन्त महत्व है क्योंकि अर्थ प्राप्ति के द्वारा ही व्यक्ति धर्म एवं काम की प्राप्ति कर मोक्ष की ओर अग्रसर हो सकता है। एक प्रसिद्ध सुभाषित है कि–

"विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रताद्धनाप्नोति, धनात्धर्मः ततः सुखम्।।" –हितोपदेश, श्लोक 6

अर्थात् विद्या विनय प्रदान करती है, विनय से पात्रता आती है। पात्रता से धन उपलब्ध होता है एवं धन से सुख की प्राप्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि धन (अर्थ) की प्राप्ति से ही धर्म एवं भौतिक सुख प्राप्त होते हैं। इसलिए अर्थ को कतिपय विद्वानों ने सर्वोपरि मूल्य स्वीकार किया है। महाभारत में कहा गया है कि अर्थ उच्चतम धर्म है। प्रत्येक वस्तु उस पर निर्भर रहती है। धन, काम और धर्म का आधार है तथा इससे स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है।[1] बृहस्पति ने भी अर्थ की महत्ता ज्ञापित की है। अर्थ सम्पन्न व्यक्ति के पास मित्र, धर्म, विद्या, गुण क्या नहीं होता? दूसरी ओर अर्थहीन व्यक्ति मस्तक अथवा चाण्डाल के समान है। इस प्रकार धन (अर्थ) ही जगत् का मूल आधार है।[2] अर्थ का इतना अधिक महत्व होने पर भी प्राचीन भारत में धन–संग्रह धर्म–सम्मत होने पर बल दिया जाता रहा है। धर्म विरूद्ध कृत्यों से धन का उपार्जन एवं व्यय दोनों ही निन्दनीय माने गये हैं। वैदिक काल से ही परिश्रमपूर्वक धनार्जन करने की प्रेरणा मिलती है,

यथा – न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। ऋग्वेद 4.33 अर्थात् परिश्रमी के अतिरिक्त देवता किसी की सहायता नहीं करते। शशतहस्तः समाहरः। अथर्ववेद 3.24.5अर्थात् सौ हाथों से धनार्जन करो। कल्हण ने

Scanned by CamScanner

भी धन के महत्व को स्वीकार किया है।[3] किन्तु अनीति से अर्थोपार्जन की उसने कठोर शब्दों में आलोचना की है।[4] कल्हण ने धन के अनावश्यक संग्रह की अपेक्षा धन के दान पर अधिक बल दिया है। उसने लिखा है – "निरन्तर दीर्घ समय तक समुद्र के जल में रहने पर भी लक्ष्मी सदा मलीन ही रहती है, किन्तु यदि उसे दारिद्रयरूपी अग्नि से भरे पात्र में डाल दिया जाए अर्थात् वह गरीबों को दे दी जाए तो अग्नि शौचहरिणी के समान पवित्र हो जाती है। जैसे मृगचर्म को आग दिखा देने पर उसके रोयें शुद्ध हो जाते हैं"।[4] कल्हण ने लोभी मनुष्य पर व्यंग्य करते हुए लिखा है – लोभी मनुष्य वायु पीकर जीता है, अन्धकाराच्छन्न बिल में सोता है और नग्न होने पर लाज बचाने के लिए वह औरों से वस्त्र मांगकर पहनना चाहता है। इस प्रकार अपनी कृपणता का विस्तार करके वह दूसरों के लिए धन का संग्रह करता है। प्राचीन समय से कृषि, पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य, शिल्प एवं उद्योग धंधे, अर्थोपार्जन के प्रमुख साधन रहे हैं। इन व्यवसायों के अतिरिक्त ऐसे लोगों की संख्या भी कभी कम नहीं रही जो अस्त्र–शस्त्र बनाते थे अथवा समुद्र ओर पृथ्वी के गर्भ से अनेक प्रकार के रत्न और धातुओं को निकालते थे।[6] प्राचीन भारत में आयुधजीवी जातियाँ भी होती थी जो युद्धों में अपना कौशल दिखाकर अर्थोपार्जन करती थी। कल्हण की राजतरंगिणी से प्राचीन कश्मीर की आर्थिक अवस्था का भी ज्ञान प्राप्त होता है, इसके साथ ही क्षेमेन्द्र (11वीं शती ई.) की नर्ममाला, देशोपदेश एवं समय मातृका से भी तद्युगीन काश्मीर की अर्थव्यवस्था के विवरणों की पुष्टि की जा सकती है। इन विवरणों के समर्थन के लिए ह्वेनसांग (7वीं शती ई.), ओउ–कांग (8 वीं शती ई.) एवं अलबरूनी (11वीं शती ई.) के वृतांत भी उपयोगी हैं।[7]

कृषि – प्राचीनकाल से ही काश्मीर भूमि अपनी उर्वर मृदा एवं सिंचाई के समुचित साधनों के कारण कृषि के लिए उत्तम रही है।[8] भूमि की उत्कृष्टता एवं जलवायु की अनुकूलता से यहाँ अल्पश्रम करने पर भी प्रायः पर्याप्त उपज प्राप्त की जा सकती है। काश्मीर में निवास करने वाले ग्रामीणजन जीविकोपार्जन के लिए प्रधानतः कृषि पर निर्भर थे।[9]राजतरंगिणी[10] एवं नीलमतपुराण[11] में काश्मीर की भूमि को पार्वती का स्वरूप एवं वहाँ के राजा को हर (शिव) का अंश कहा गया है। इस प्राचीन परम्परा से स्पष्ट होता है कि काश्मीर भूमि का अधिपति वहां का राजा स्वयं होता था । यह उल्लेख भूमि पर राजा के स्वामित्व को सिद्ध करता है। राजतंत्र के उत्कर्ष के कारण साम्राज्य का विस्तार हुआ और उसके साथ–साथ विजित भू–भाग पर राजा का अधिकार स्थापित होता गया। राजतरंगिणी में राजाओं द्वारा भूमि, गाँव आदि ब्राह्मणों, श्रमणों, मंदिरों एवं विहारों को प्रदान करने के प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते हैं। स्मृतियों में कृषि–कर्म वैश्यों का धर्म बताया गया है।[12] अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि भू–स्वामित्व में उनका भी अधिकार रहा होगा, परन्तु राजतरंगिणी में ब्राह्मणों को अग्रहार के रूप में भूमिदान के सर्वाधिक उल्लेख हैं।[13] इससे ब्राह्मणों की भूमि से सम्बद्धता ज्ञात होती है। कल्हण ने तीन प्रकार के अग्रहारों का वर्णन किया है, राजकीय अग्रहार[14], द्विज–परिषद् अग्रहार[15] तथा व्यक्तिगत पुण्यकार्य के लिए दिए गये अग्रहार। गन्धार–देशीय एवं काश्मीरी ब्राम्हणों को अग्रहार प्राप्त होने के उल्लेख मिलते हैं।[16] मिहिरकुल के समान क्रूर राजा ने गंधार देश के ब्राह्मणों को एक सहस्त्र अग्रहार दान में दिये थे।[17]

चूंकि ब्राह्मणों के पास अनेक भूखंड थे, अतः वे उन सभी पर खेती नहीं कर सकते थे। यद्यपि स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण कृषि कर्म अपना सकते थे। स्मृतियों से यह तथ्य भी प्रतिबिंबित होता है कि भूमि–स्वामी स्वयं कृषि–कर्म न कर उसे जोतने–बोने के लिए अन्य व्यक्तियों को दे सकता था। जोतने एवं बोने वाले व्यक्ति को श्रम के प्रतिदान स्वरूप 35 से 50 प्रतिशत उत्पादन प्राप्त होता था।[18] कल्हण

Scanned by CamScanner

के अनुसार धनाढ्य व्यक्ति अपनी भूमि को जोतने के लिए लोगों को हल चलाने की नौकरी पर रखते थे।[19] संभव है कि कुछ पुरोहित स्वयं भूमि को जोतते हों, किंतु इतना तो तय है कि मंदिर और मठ दूसरों से खेती कराते थे। फाह्यान के अनुसार मठों या विहारों को खेतों और बगीचों के साथ–साथ उन पर कर्षण करने के लिए किसान और बैल मवेशी भी दिए जाते थे।[20]धार्मिक अनुदान प्राप्त पुरोहित और मंदिर अपने अस्थायी या स्थायी काश्तकारों से लगान वसूल कर सकते थे किन्तु उस सम्पूर्ण राशि को अपने भरण–पोषण के लिए रखते थे उसका कोई भी भाग राजस्व के रूप में राजकोश में जमा नहीं कराते थे। जबकि मठ विहार के बाहर की भूमि के स्वामियों को उपज का छठवाँ भाग राजस्व के रूप में देना होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे स्वतंत्र और स्थायी कृषक भू–स्वामियों की संख्या घटती जा रही थी जो स्वयं कृषि करते हों और राजस्व सीधे राजकोश में जमा करवाते हों। इस प्रकार ऐसे किसान अस्तित्व में आए जो राज्य को राजस्व प्रदान न कर, उसे मध्यवर्तियों को प्रदान करते थे। याज्ञवल्क्य ने यह व्यवस्था दी है कि भूमि क्षेत्रस्वामी द्वारा कृषक को दी जाना चाहिए। भूमि अर्थव्यवस्था के गठन में याज्ञवल्क्य तीन चरणों का समावेश करते हैं, महीपति (राजा), क्षेत्रस्वामी (जमींदार) और कष्शक (किसान)। ये स्वामी या जमींदार अस्थायी किसानों को भूमि पट्टे पर देते थे और किसान यदि खेती में अनियमितता अथवा प्रमाद करें तो उन्हें दण्डित किया जा सकता था।[21] इस प्रकार क्षेत्र स्वामी काश्तकारों से प्राप्त किए गये लगान से जीवन–यापन करते थे।[22] ब्राम्हणों, ग्रामों, मठों अथवा विहारों को अनुदान देने वाले दाताओं का मंतव्य जो भी रहा हो, किन्तु ऐसे अनुदानों का परिणाम यही हुआ कि देष में प्रचुर आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न एक प्रभावशाली मध्यवर्ती वर्ग उत्पन्न हो गया। जैसे–जैसे भूमिधर ब्राम्हणों की संख्या बढ़ती गई, उनमें से कुछ लोग धीरे–धीरे पुरोहिताई का काम छोड़कर अपना ध्यान मुख्यतः अपनी भू–संपत्ति की व्यवस्था पर केंद्रित करने लगे। ऐसे ब्राम्हणों के लिए सांसारिक कामकाज धार्मिक कर्तव्यों से महत्वपूर्ण हो गये।[23] पुरोहित पर अपनी शक्ति का प्रभाव जमा देने के कारण क्षेत्र स्वामी का पद पुरोहित के हाथों से खिसककर योद्धा वर्ग के हाथों में स्थानांतरित हो गया। इसी प्रक्रिया के तहत काश्मीर में डामर नामक सामन्तों का मध्यवर्ती वर्ग राजा एवं किसान के मध्य उभरा। यह डामर ग्रामीणों की भूमि पर निर्वाह करने वाला कुलीन वर्ग था। उनका स्तर राजपूतों के समकक्ष ज्ञात नहीं होता परन्तु उनका विवाह सम्बन्ध क्षत्रियों तथा राजवंषों में होता था। कोई भी सफल कृषक डामर वर्ग में सम्मिलित हो सकता था।[24] डामरों की बढ़ती हुई शक्ति राजाओं के लिए चिंता का विषय होती थी। इसी चिंता वश ललितादित्य अपने मंत्रियों को निर्देश देते हुए कहता है कि "किसानों के पास केवल सालभर भोजन करने के लिए अन्न तथा खेती के लिए जितने आवश्यक हों, उतने ही बैल रहने चाहिए। इससे अधिक होने पर वे एक ही वर्ष में प्रबल डामर बन जायेंगे और राजाज्ञा की अवहेलना करने लगेंगे"।[25]

लहर प्रान्त के धन्व नामक डामर ने राजा अवन्तिवर्मा के समय बहुत अधिक शक्ति अर्जित कर ली थी। भगवान भूतेश्वर के मंदिर को प्राप्त अग्रहारों पर उसका अधिपत्य था। वह शस्त्रधारी सैनिकों को अपने अधीन रखता था।[26] राजा चक्रवर्मा को तंत्रियों द्वारा राज्यच्युत कर दिए जाने पर मडव राज्य के संग्राम डामर ने सषस्त्र संघर्श में तंत्रियों को परास्त कर उसे पुनः राजा पद पर प्रतिष्ठित किया था। राजा उन्मत्तावन्ति तथा रानी दिद्दा के समय डामरों के दमन के लिए सैनिक अभियान भेजने पड़े थे।[28]लोहर वंर्ष के शासनकाल में डामरों की शक्ति में अतुलित वृद्धि हो गई थी। वे सत्ता परिवर्तन तथा शासनकार्यों में हस्तक्षेप करने में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे।[29] इस प्रकार भूमि से सम्बद्ध यह वर्ग

Scanned by CamScanner

किसानों पर अत्याचार कर अधिक मात्रा में कर वसूलता था तथा स्वयं समृद्ध होकर राज्य की राजनीति में प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करने लगा था। इस विवरण से स्पष्ट है कि कृषि–कार्य राज्य में जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन था और बहुत बड़ा समूह कृषि एवं उससे सम्बधित कार्यों में संलग्न था। काश्मीर में उत्पादित की जानी वाली प्रमुख फसल धान (चावल) थी। नीलमत पुराण में भी धान्य के प्रमुख खाद्य के रूप में प्रयोग किए जाने एवं देवपूजन के समय चढ़ाए जाने के उल्लेख विद्यमान है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि दुर्भिक्ष के समय धान्य की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती थी। 13वीं शताब्दी में वेनिस से भारत आए यात्री मार्कोपोलो ने लिखा है कि चावल काश्मीरियों का प्रमुख खाद्य पदार्थ था।[30] चावल की बोवनी प्रायः चैत्र मास में की जाती थी।[31] कृषि कार्य में हल चलाने के लिए बैलों का प्रयोग होता था।[32] भाद्रपद माह में खेद शरद ऋतु की परिपक्व धान की फसल से आच्छादित हो जाते थे।[33] आगामी मास (आश्विन) में फसल की कटाई के बाद नवान्न–उत्सव आयोजित किया जाता था।[34] धान से छिलका पृथक करने के लिए पहले उसे धूप में सुखा लिया जाता था।[35] राजतरंगिणी से चावल को हाथ की चक्की में पीसने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कल्हण ने चावल के आटे (शालिचूर्ण) का उल्लेख किया है।[35] चावल के अतिरिक्त जौ एवं दालें भी उत्पादित की जाती थी। नीलमत पुराण के अनुसार ये फसलें ज्येष्ठ (जून) माह में पक कर तैयार हो जाती थी।[36] कल्हण ने उड़द की फलियों का उल्लेख किया है।[37]

प्राचीन समय से ही काश्मीर में फलों का उत्पादन किया जाता था। कल्हण के अनुसार अंगूर जो स्वर्ग में भी दुर्लभ था, काश्मीर में सुगमता से उपलब्ध हो जाता था।[38] ललितादित्य द्वारा बसाया गया मार्तण्ड नगर बड़े–बड़े प्रस्तर खण्डों से निर्मित प्रकार के द्वारा अविष्टत एवं अंगूर की लताओं से शोभित था।[39] बिल्हण ने काश्मीर भूमि की प्रशंसा करते हुए यहाँ की घाटी में अंगूर के प्रचुर उत्पादन की ओर संकेत किया है।[40] काश्मीर में सेव (पालेवत) फल भी उत्पादित होता था।[41] 7वीं शताब्दी ई. में काश्मीर की यात्रा पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि यह देश कृषि की दृष्टि से उन्नत था एवं यहाँ प्रचुरता में फलों एवं फूलों का उत्पादन होता था। उत्पादित फलों में नाशपाती (ली), वन्यबेर (नई), आडू (त्यू), खूबानी (हन्ग या मुई) एवं अंगूर (पो.टाड) प्रमुख थे।[42]भिक्षु एवं मुनिगण फलों से उदरपूर्ति करते थे।[43] भारत में केशर, कुंकुम के उत्पादन में काश्मीर की एकच्छत्र प्रसिद्धि रही है। केसर किश्तवार तथा काश्मीर के अन्य स्थानों में होती है। काश्मीर में पामपुर अथवा पद्मपुर केसर की खेती के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है।[44] कल्हण ने कुंकुम को उन वस्तुओं में परिगणित किया है जो स्वर्ग में भी दुर्लभ है किन्तु काश्मीर में सुलभ है।[45]

नीलमत पुराण में कुंकुम (केसर) का उल्लेख देवताओं की पूजा में प्रयुक्त सामग्री के रूप में हुआ है।[46]बिल्हण ने कुंकुंम को काश्मीर के नैसर्गिक उत्पाद के रूप में उल्लिखित किया है।।[47]टी. वाटर्स ने ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित काश्मीर के उत्पाद युह–चिन–हसिंग की पहचार केसार के रूप में की है।[48] देवताओं की पूजा में प्रयुक्त होने वाले धूप को मंदिरों में विक्रय किए जाने के विभिन्न उल्लेख कल्हण ने किए हैं।[49] धूप एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ है जो काश्मीर का वन्य उत्पाद है।[50]

सिंचाई के साधन – कल्हण के द्वारा उल्लिखित प्राचीन संदर्भों के अनुसार सिंचाई के लिए नदियों से निकाली गई नहरें अत्यन्त उपयोगी थी। सुवर्ण नामक राजा द्वारा बनाई गई सुवर्णमणि कुल्या[51] (आधुनिक सुन्नमन्न कुल) सम्प्रति काश्मीर में जनपुरी अधित्यका के पूर्वी अंचल में निल्लू, परगम, कुजरू आदि गाँवों में बीस मील बहती हुई आदविन गाँव से कुछ दूरी पर विशोका अर्थात् विसाबू नदी में मिल

Scanned by CamScanner

जाती है।[52] यह कुल्या आज भी सिंचाई के लिए प्रयुक्त हो रही है। दामोदर नामक राजा ने दामोदर सूद (एक शुष्क अधियका) में गुद्द नामक सेतू के माध्यम से जल लाने की योजना बनाई थी।[53] ललितादित्य मुक्तपीड को चक्रधर (वर्तमान तस्कदर) में वितस्ता (झेलम) का पानी अरघट्टों (रहट) के द्वारा पहुँचाने का श्रेय जाता है।[54] राजा अवन्तिवर्मा के राज्य में सुरूय नामक व्यक्ति ने अपनी बुद्धिमत्ता से वितस्ता नदी को स्वच्छ कराकर उसके एक ओर बाँध का निर्माण कराया।[55] वितस्ता के जल को नियंत्रित कर उससे नहरें निकालकर गाँव गाँव तक जय पहुँचाया। गाँवों से प्राप्त भिट्टियों की जल अवशोषण क्षमता को परीक्षित कर नहर के माध्यम से उन गाँवों में जल पहुँचाने का के समय का निर्धारण किया गया। इस प्रकार सुय्य ने अन्न के पकने का ठीक समय जान लेने के बाद कश्मीर देश को हरे–भरे खेतों से परिपूर्ण कर दिया।[56] सुय्य की वैज्ञानिक पद्धति के परिणामस्वरूप जिस काष्मीर मण्डल में सृष्टि के प्रारंभ से उत्तम पैदावर होने पर भी एक खारी[57] धान्य प्राप्ति के लिए 200 दीनार व्यय होते थे, उसी काश्मीर मण्डल में एक खारी छत्तीस दीनारों में मिलने लगा।[58] परन्तु सुय्य या उसके बाद अन्य लोगों द्वारा अपनाई गई सिंचाई की पद्धतियाँ अधिक समय तक सफल नहीं रहीं। प्रायः जब पर्वतों की बर्फ पिघलने लगती थी तब वितस्ता अपने किनारों को पार करती हुई कृषि योग्य भूमि को अपनी डूब में ले लेती थी। बहुधा अतिवृष्टि भी गहन बाढ़ का कारण बनकर फसलों को चौपट कर देती थी। काश्मीर में प्राचीन समय में बाढ़ एवं दुर्भिक्ष क्रमिक रूप से आने वाली प्राकृतिक आपदायें थीं। महापद्मसार (आधुनिक ऊलर झील)एवं अन्य नदियों से कई भागों में में विभक्त होने से काश्मीर में अन्न का उत्पादन कम रहता था।[59] कार्कोटक वंष के दुर्बल शासकों के समय आई बाढ़ से एक खारी अन्न का दाम 1050 दीनार हो गया था।[60] 917 ई. में जब शरद–ऋतु की संपूर्ण धान की फसल बाढ़ से विनष्ट हो गई तब एक खारी धान 1000 दीनार में बिकने लगा था।[61] 1079 ई. में राजा हर्ष के शासन काल में राज्य में इतनी भयानक बाढ़ आई कि काश्मीर मण्डल के सभी गाँव जलमग्न हो गए ओर सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं का अकाल पड़ गया। उस समय महंगाई इतनी बढ़ी कि पाँच सौ दीनार में एक खारी चावल और एक दीनार में दो तोले द्राक्षारस बिकने लगा। छह दीनार का एक पल उन मिलता था। नमक–मिर्च तथा हींग दुर्लभ वस्तुएं थीं। जन संख्या में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन के साधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा था। उच्च पठारी भागों में कृषि नहीं की जा रही थी। अतः कृषि योग्य भूमि घटती जा रही थी। फलतः उस भूमि से प्राप्त उपज भी घट रही थी। सामान्य परिस्थितियों में तो प्राप्त कृषि उपज जनता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त होती थी, किन्तु किसी प्राकृतिक या मानवीय विपदा के परिणामस्वरूप जनता अपने भाग का अन्न नहीं प्राप्त कर पाती थी ओर दुर्भिक्ष की स्थिति निर्मित हो जाती थी।[63] राजा सुस्सल के षासनकाल में उत्पन्न दुर्भिक्ष की स्थिति वस्तुतः मनुष्यों के द्वारा निर्मित की गई थी। भिक्षाचार के नेतृत्व डामरों द्वारा श्रीनगर को घेरकर जला देने से समस्त काश्मीर मण्डल का अन्न भण्डार जल गया, जिससे सहसा दुःसह एवं भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। डामरों द्वारा कीए गए महाविप्लव के कारण उत्पादन के सभी साधन समाप्त हो गये, आवागमन अवरूद्ध हो गया और घर जल गये। राजा के धनहीन हो जाने पर सामन्तों को भी अनाज प्राप्त नहीं हुआ। उस भयंकर अग्निकांड से अवशिष्ट घरों को भूख से तड़पते हुए नागरिकों ने अपने हाथों से जला डाला।[64]इस प्रकार प्राकृतिक अथवा मानवीय विपदाओं से जनसामान्य को दुःसह दुर्भिक्ष की स्थिति का भी सामना करना होता था।

उद्योग – प्राचीन काश्मीर के निवासी मुख्य रूप से जहाँ कृषि पर निर्भर थे, वहीं जनसंख्या का एक

Scanned by CamScanner

बड़ा भाग अन्य उद्योगों द्वारा भी जीविकोपार्जन में लगा था। इन उद्योगों में वस्त्र निर्माण (प्रमुखतः ऊनी वस्त्र), आभूषण निर्माता, धातु का कार्य, चर्म–उद्योग, काष्ठकर्म एवं मृदभाण्ड उद्योग प्रमुख थे। काश्मीर घाटी एक दीर्घ अवधि से उत्कृष्ट वस्त्र निर्माण के लिए प्रसिद्ध रही है। हरवान से प्राप्त एक पाषाण खण्ड पर एक महिला पतला पारदर्शी परिधान पहने प्रदर्शित है।[65] अति उत्कृष्ट एवं महीन वस्त्र निर्माण काश्मीरियों की विशेषता थी। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ वस्त्रों के प्रमुख तीन प्रकार थे जिनमें से प्रथम किओ–षे–ये (क्रोषेय) के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के रेशम व मलमल के वस्त्र सम्मिलित थे। चु–मो (क्षौम) नामक द्वितीय प्रकार सन एवं तृतीय प्रकार हन–पो–लो (कम्बल से समीकृत) भेड़ आदि जानवरों की ऊन से बना होता था। विभिन्न प्रकार के ऊनी कम्बल एवं वस्त्रों के उल्लेख जैसे लोहित कम्बल, स्थूल कम्बल, कुथा एवं प्रावार विवरण के क्षेमेन्द्र की नर्ममाला ओर समयमातृका में तथा कल्हण की राजतरंगिणी में प्राप्त होते हैं। फ्तन (आधुनिक पटन जिसे शंकरवर्मन ने स्थापित किया था) वस्त्र बुनने क उद्योग के लिए प्रसिद्ध था।[66] वस्त्र बुनने के लिए ऊन की प्राप्ति पषुओं के केशों से प्रायः की जाती थी। अतः ऊनी वस्त्रोद्योग के समीप रहने वाले बहुत से लोग पषुओं को पालकर अपना जीविकोपार्जन करते थे। राजतरंगिणी से यह उल्लेख भी मिलता है कि फ्तन जो कि वस्त्र बुनने के कार्य का प्रसिद्ध केंद्र था वहीं पशु के क्रय–विक्रय का हाट भी लगा करता था।[67]

धातुकर्म उद्योग एक अन्य महत्वपूर्ण उद्योग था। कृषक समुदाय को हल जोतने, भूमि खोदने तथा फसल काटने के लिए धातु के उपकरण अपरिहार्य थे। लुहार इन कृषि–उपकरणों के निर्माण में व्यस्त रहा करते थे। युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अनेक शस्त्र जैसे तलवार, बाणाग्र, चाकू, कटार एवं गदा का निर्माण भी लुहारों द्वारा किया जाता था। लोहे के अतिरिक्त ताँबे एवं कांसे का काम भी होता था। भोजन निर्माण एवं परोसने में उपयोग होने वाले विभिन्न घरेलू बर्तन ताँबे एवं पीतल से निर्मित होते थे।[68] घाटी से प्राप्त कतिपय कांस्य प्रतिमाओं से कलाकारों की कांसय को पिघलाने एवं ढालने की क्षमता का अनुमान किया जा सकता है। धातु के कार्यों में आभूषण–निर्माण भी जीविका का महत्वपूर्ण साधन था। काश्मीर के स्त्री एवं पुरूष श्रंगार के लिए सोने, चांदी एवं कीमती पत्थरों से बने विभिन्न आभूषणों का प्रयोग करते थे। आभूषणों का चलन समय के अनुसार बदलता रहता था।[69] इसलिए स्वर्णकार इनके निर्माण में सदैव व्यस्त रहा करते थे। कल्हण एवं क्षेमेन्द्र के वर्णनों से ज्ञात होता है कि राजाओं व धनिकों द्वारा भोजनपान में प्रयुक्त किये जाने वाली थालियाँ एवं कटोरे स्वर्ण एवं रजत से निर्मित होते थे।[70]

मष्दभाण्ड का निर्माण भी एक प्रमुख उद्योग था। नवपाषाणकालीन एवं आरंभिक ऐतिहासिककालीन मृद्भाण्ड खण्डों के नमूने बुर्जहोम एवं अन्य समीपवर्ती स्थलों से प्राप्त हुए हैं। तसले, घड़े, सुराहियाँ, हांडियां, कटोर, दीपक इत्यादि अवन्तिपुर से भी प्राप्त हुए हैं।[71] इन स्थानों से प्राप्त मृण्मूतियाँ कुम्हार की कलात्मकता का बोध कराती हैं। क्षेमेन्द्र ने निर्धन–वर्ग की महिलाओं द्वारा मष्दा के बने कर्णाभूषन पहनने का उल्लेख किया है।[72] कल्हण की राजतरंगिणी से कुम्हारिन के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मृदभाण्ड निर्माण उद्योग घाटी में बहु प्रचलित था।[73] कांच के कार्य भी काश्मीर मण्डल में प्रचलित थे। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि मालव देश के महाराज भोजन ने पापसूदन तीर्थ के पवित्र जल से मुखार्जन एवं स्नान की प्रतिज्ञा कर रखी थी। उस की प्रतिज्ञा को निभाने के लिए पद्मराज तमोली काँच के कलशों में उस तीर्थ का जल भरकर नित्य उनके पास भेजता था।[74] कोठार नामक ग्राम से पापसूदन–कपटेश्वर की ओर जाने वाली सड़क के समीप से कांच के बने प्राचीन पात्र खंड प्राप्त हुए हैं।[75]

Scanned by CamScanner

इससे सूचित होता है कि इस क्षेत्र में कांच उद्योग प्राचीन समय में अत्यंत विकसित था।

इन उद्योगों के अतिरिक्त चर्मकारी, काष्ठकर्म एवं पाषाणकला भी अस्तित्व में थी। चीनी साक्ष्यों के अनुसार 7 वीं शताब्दी में काश्मीर के निवासी चमड़े के परिधान भी पहना करते थे।[76] कल्हण ने चर्मकारी को एक व्यवसाय के रूप में उल्लिखित किया है।[77] क्षेमेंद्र ने एक कायस्थ अधिकारी की महत्वपूर्ण समग्रियों में चमड़े के जल–पात्र (मशक) का उल्लेख किया है।[78] उपानह के निर्माण में चमड़े का उपयोग अनिवार्यतः होता था।[79] इस संदर्भ में एक रोचक घटना राजतरंगिणी से ज्ञात होती है। एक धूर्त वैश्य ने एक धनिक का अपने पास रखा धन खर्च हो जाने पर उससे कहा कि आपके जूते फट जाने पर सौ दीनार मोची को सिलाई के लिए दिये थे।[80] काष्ठ का प्रयोग संभवतः संरचानात्मक निर्माण कार्य में किया जाता था परन्तु काष्ठ के वास्तुकर्म से सम्बद्ध नमूने प्राप्त न होने से इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है। काष्ठकर्मी नौका, परिवहन–वाहन, पालकी एवं अन्य आवागमन के साधनों एवं घरेलू साज–सज्जा का सामान बनाया करते थे।[81] काश्मीर घाटी से प्राप्त पाषाण मूर्तियों से मूर्तिकार के कौषल एवं उसके व्यवसाय के प्रसार का परिज्ञान होता है।[82]

इन प्रमुख उद्योगों के अतिरिक्त भी काश्मीर घाटी में अनेक कलाएँ एवं व्यवसाय विद्यमान थे। मछुआरे, माली, मालाकार, केश–कर्तक, पशुपालक, रहट चलाने वाले, अनाज–पीसने वाले एवं विभिन्न शिल्पकार इस संदर्भ में उल्लिखित किए जा सकते हैं। कल्हण ने राजा जयापीड़ द्वारा ताँबे के पर्वत से सौ करोड़ से अधिक सिक्के ढलवाने का उल्लेख किया है।[83] संभवतः प्राचीन काश्मीर में ताम्र का कोई बड़ा स्त्रोत उपलब्ध रहा होगा।

व्यापार – भौगोलिक दृष्टि से काश्मीर की सीमा अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन एवं मध्य ऐशिया से सम्बद्ध होने के कारण यह व्यापार व वाणिज्य का महत्वपूर्ण केंद्र रहा। काश्मीर का अपने नगरों एवं उपमहाद्वीप के अन्य स्थलों के साथ आंतरिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। कल्हण ने प्रवरपुर में नियमित रूप से लगने वाले व्यवस्थित बाजारों (हाट) के विशय में उल्लेख किया है।[84] राजपरिवारों द्वारा समय–समय पर विभिन्न नगरों में बाजार स्थापित किए जाते थे। राजा नर ने दिग्विजय द्वारा उपार्जित धन से वितस्ता के तट पर नरपुर नामक नगर बसाया था। वहाँ आने वाले राजपथों द्वारा नगर में सामान पहुंचता था।[85] प्राचीन काश्मीर में दैनिक उपभोग की वस्तुएँ जैसे विविध प्रकार के ऊनी वस्त्र, अनाज, अंगूर की मदिरा, केशर, धातु के उपकरण, कांसे एवं तांबे के बर्तन, मसाले आदि एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाए जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि काश्मीर घाटी के अनेक गाँव एवं नगर जैसे, पुराणाधिष्ठान, हुष्कपुर, प्रवरपुर, परिहासपुर, जयपुर, शंकरपतन, अवंतिपुर, शूरपुर आदि प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे। राजतरंगिणी से सूचित होता है कि शंकरपतन वस्त्र बुनने के उद्योग एवं पषुओं के क्रय–विक्रय के केंद्र के रूप में प्रख्यात था।[86] परिहासपुर में वस्त्र बुनकरी एवं पशुओं के क्रय–विक्रय का एक बड़ा केंद्र था। जब राजा शंकरवर्मा ने अपने नगर शंकरपतन की स्थापना की तब अपने नगर को समृद्ध एवं वैभवपूर्ण बनाने के लिए उसने अपने पतन[87] में भी इन कार्यों को प्रारंभ कर दिया। पतन नामक नगर आज भी काश्मीर में ऊनी वस्त्रों एवं पशुओं आदि का बड़ा बाजार है। रघुनाथसिंह ने इस स्थल को शंकरवर्मा द्वारा स्थापित नगर से समीकृत किया है।[88] श्रीनगर एवं प्रवरपुर के नगर अपनी व्यापारिक गतिविधियों के लिए प्रसिद्ध थे। लाला ललितादित्य की रानी कमलावती ने परिहासपुर में कमलाहट्‌ट नामक बाजार की स्थापना की थी।[89] दक्षिण से राजपुरी की ओर जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर शूरपुर एकमहत्वपूर्ण

Scanned by CamScanner

व्यापारिक केंद्र था। आंतरिक व्यापारिक स्थल एवं जल दोनों ही मार्गों से संचालित होता था। चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों में में भी व्यापारिक स्थल मार्ग का संकेत है। यह बौद्ध तीर्थयात्री काश्मीर घाटी में पश्चिम की ओर से वाराहमूल दर्रे से प्रविश्ट हुआ। वाराहमूल से हुष्कपुर पहुँचा। तदनन्तर वह राजधानी (प्रवरपुर या श्रीनगर) तक पहुंच गया। राजधानी से दक्षिणपूर्व की ओर पहाड़ी क्षेत्र को पार करते हुए वह पन–न्यू–त्सो पहुँचा। पन–न्यु–त्सों की पहचान आधुनिक पुंछ के रूप में की जाती है।[90] पुंछ से दक्षिण पश्चिम की ओर चलकर वह हो–लो–षे–पु–लो (राजपुरी, आधुनिक राजौरी) पहुंचा।[91] 7वीं शताब्दी मे व्यापारिक यात्राओं के लिए भी इस मार्ग का प्रयोग होता रहा होगा। प्राचीन समय से ही काश्मीर में नौकाऐं आवागमन का साधन थी। राजा नर द्वारा बसाए गये नगर नरपुर के समीप वितस्ता नदी में नौकाएँ चलती थीं। अतः बहुत संभव है कि जलमार्ग द्वारा भी वस्तुएँ बाजार में क्रय–विक्रय के लिए पहुँचाई जाती होंगी। रायबहादुर साहनी का मत है कि मंदिरों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले वृहत पाषाणखण्ड नौकाओं पर रखकर लाए जाते थे।[92] वितस्ता नदी व्यापारिक गतिविधियों के लिए बहुत सहायक थी, यही कारण है कि उसके तट पर अनेक बड़े नगरों का निर्माण किया गया।[93] सम्राट अशोक एवं कनिष्क के शासनकाल में काश्मीर एक वृहत् साम्राज्य का भाग बन गया तथा एशिया में अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ भारत तथा मध्य एशिया के व्यापारियों के काफिले (कारवाँ, सार्थवाह) परस्पर संपर्क कर अपने व्यापार में अभिवृद्धि करने लगे। कल्हण के अनुसार काश्मीर के लोह (लेह, लद्दाख) के साथ राजनीति एवं सांस्कृतिक संबंध थे।[94] संभव है कि दोनों देशों के मध्य व्यवसायिक सम्बन्ध भी रहे हों। काश्मीर से पड़ौसी देशों को जाने वाले व्यापारिक मार्गों की जानकारी विदेशी यात्रियों के वृतांतों तथा स्थानीय साहित्यिक विवरणों से प्राप्त की जा सकती है। पश्चिम की ओर जाने वाला मुख्य स्थल वाराहमूल से गांधार तक था। चीनी यात्री ह्वेनसांग 7वीं शताब्दी में इसी मार्ग से काश्मीर आया था। 8वीं शताब्दी में ओउ–कोंग नामक चीनी यात्री गांधर से चलकर इसी मार्ग द्वारा काश्मीर पहुंचा था। उसने लिखा है कि यह सड़क मार्ग पश्चिमी द्वार से प्रारंभ होकर किएन–टो–लो (गान्धार) तक जाता है।[95] राजा शंकरवर्मा (883–902 ई.) उत्तरापथ के विजय अभियान के बाद उरशा होते हुए इसी मार्ग से लौटा था।[96] अलबरूनी ने तहकीक़ ए हिन्द (किताबुल हिन्द) में इसे काश्मीर का सर्वज्ञात प्रवेश मार्ग बताया है।[97] निस्संदेह पश्चिमी मार्ग प्राचीनभारत के मुख्य व्यापारिक मार्गों से सम्बद्ध था तथा मध्य एशिया व चीन तक जाता था। 6वीं षताब्दी ई. के बौद्ध तीर्थयात्री जिनगुप्त की चीनी भाशा में लिखी गई आत्मकथा से भी इस मार्ग के प्रमुख स्थलों का परिज्ञान होता है। मध्य ऐषिया में खोतान तक जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर कपिषा का व्यापारिक केंद्र नगरहार, बामियान, बदक्षां का कुछ भाग, वसन, ताष, कुरघन आदि प्रमुख स्थल थे। एक अन्य बौद्ध तीर्थयात्री धर्मगुपत (6ठी शती ई.) ने भी इसी मार्ग से यात्रा की थी परन्तु ताश कुरधन से खेतान जाने के स्थान पर वह हिममय रास्तों से होता हुआ सीधा काशगर चला गया था।[98] भारतीय एवं चीनी यात्रियों द्वारा लिखे गये यात्रा–वृतांतों से ज्ञात होता है कि कारागर से दो विभिन्न मार्ग चीनी सीमांत प्रदेश में पहुंचते थे इनमें से एक दक्षिण की ओर जो तीरम नदी के तटवर्ती प्रदेश से एवं अन्य उत्तर की ओर जाता था। दक्षिण मार्ग पर यारकन्द, खोतान, निया, उलिक तथा मिरन के समीपवर्ती प्रदेश स्थित थे। उत्तरी मार्ग पर भरूक, कुची, कारशर एवं तूरफान स्थित थे। मध्यएशिया से होकर जाने वाला यह मार्ग भारत के मध्य एशिया एवं चीन के साथ व्यापार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी था। काश्मीर व्यापारी कुषाण काल एवं उसके पश्चात् निश्चित तौर पर इस मार्ग का उपयोग करते होंगे।[99] वुलर झील

Scanned by CamScanner

के उत्तरी तट से उत्तर की ओर जाने वाला मार्ग आधुनिक अतावत एवं विज्जमर्ग होते हुए सिंधु नदी की सहायक नदियों अस्तोर एवं बाहती से जाकर मिलता था। चीनी यात्री फाह्यान (399 ई.) चे–मोंग(400 ई.), फा–योंग (420 ई.) चीनी राजदूत सुंग–युन (518 ई.) एवं चीनी यात्री ओउ–कांग (7वीं शती ई.) ने इसी मार्ग का अनुसरण किया था। प्राचीन समय में यह मार्ग मध्य एशिया एवं चीन तक पहुँचने की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग था। काश्मीर के पूर्व से लद्दाख एवं तिब्बत होते हुए चीन तक पहुँचने का अन्य एक मार्ग विद्यमान था। ओउ–कांग ने इसे पूर्वी द्वार से तू–फन (तिब्बत) तक पहुंचने वाली सड़क के रूप में उल्लिखित किया है।[100] कल्हण ने शीत ऋतु में हिमवर्षा के कारण दरद देश से उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग के अवरूद्ध हो जाने पर जिस भुटटराष्ट्र के मार्ग का उल्लेख किया है[101] यह संभवतः यही मार्ग रहा होगा। भिक्षाचर ने चिनाव नदी की घाटी से होकर काश्मीर में प्रविष्ट होने क लिए जिस मार्ग से प्रयास किया[102] वह मार्ग पूर्वी पंजाब के पर्वतीय प्रदेशों को बाणशल (बानहाल) दर्रे के द्वारा कश्मीर से जोड़ता था। बाणशाल से पश्चिम की ओर चलने पर सिद्धपथ नामक दर्रा आता है, जो श्रीनगर को सीधे स्यालकोट (प्राचीन शाकल) से जोड़ता है। राजा सुस्सल के शासनकाल में सहस्त्रमंगलके पुत्र प्रास ने सुस्सल के विरूद्ध विद्रोह कर सिद्धपथ के मार्ग से होकर काश्मीर में प्रवेश किया था।[103] सिद्धपथ दर्रे से पश्चिम की ओर चलकर पीर–पंचाल क्षेत्र में पहुँचा जा सकता है। प्राचीन काल में काश्मीर एवं मध्य पंजाब के बीच व्यापार के लिए यह अत्यधिक प्रचलित मार्ग था। यह मार्ग राजा अवन्तिवर्मा के मंत्री शूर द्वारा स्थापित शूरपुर नामक नगर से प्रारम्भ होता था।[104] तदनन्तर यह मार्ग कर्मावर्त[105] हस्तिविंज, पांचालधारा[106] पुष्याणना[107] होते हुए राजपुरी क्षेत्र में पहुँचता था। क्षेमेन्द्र ने इस मार्ग को लवणासरनी के रूप में पंजाब से काश्मीर तक नमक ले जाने वाला मार्ग बताया है।[108] पीर–पंजाल क्षेत्र से होकर जाने वाला अन्य महत्वपूर्ण मार्ग तौश–मैदान दर्रे से था। यह श्रीनगर एवं लोहर से होते हुए पुंछ तक जाता था। कल्हण के अनुसार हरिराज की मृत्यु के पश्चात् जब उसका अल्पवयस्क पुत्र अनन्तदेव सिंहासनासीन हुआ था तब विग्रहराज राज्य पर चढ़ाई करके इसी मार्ग से ढाई दिनों में लोहर से श्रीनगर पहुंचा था।[109] राजतरंगिणी के अन्य उल्लेखों से प्राप्त होता है कि प्रथम व द्वितीय लोहरवंश के शासनकाल के दौरान तोश मैदान दर्रा लोहर व काश्मीर के मध्य प्रमुख संपर्क मार्ग था।[110] उत्तरी, पूर्वी एवं पश्चिमी मार्ग ही नहीं अपितु पीर–पंजाल क्षेत्र से दक्षिण की ओर के दर्रों से भी प्राचीन समय में काष्मीर एवं इसके पड़ौसी राज्यों के मध्य उत्तम व्यापारिक संबंध थे। पीर–पंजाल क्षेत्र से गुजरने वाले जिन व्यापारिक मार्गों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे पूर्वी एवं मध्य पंजाब को काश्मीर से जोड़ने के साथ ही भारत के सुदूरवर्ती क्षेत्रों से सम्बद्ध मार्गों से जुड़े हुए थे। 7वीं शताब्दी में काश्मीर का भारत के मध्य एवं पूर्वी प्रदेशों के साथ व्यापार उन्हीं मार्गों से होकर हुआ जिनसे ह्वेनसांग ने यात्रा की थीं दामोदरगुप्त के कुट्टनीमत के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि काश्मीर एवं वाराणसी के मध्य संचार की उत्तम व्यवस्था थी। सोमदेव के कथासरित्सागर से एक भिक्षुक के काश्मीर से पाटलीपुत्र तथा एक विद्यार्थी के पाटलीपुत्र से काश्मीर जाने के उल्लेख मिलते हैं।[111] क्षेमेन्द्र गौड़ देश के विद्यार्थियों को काश्मीर में अध्ययन करते हुए उल्लिखित करता है।[112] विद्यार्थियों के पूर्वी भाग से काश्मीर तक पहुंचने के मार्ग प्राचीनकाल से ही व्यापारिक मार्ग के रूप में प्रयुक्त होते रहे होंगे। बिल्हण की काश्मीर से दक्षिण भारत की यात्रा वृतांत से स्पष्ट होता है कि काश्मीर भारत के प्रमुख नगरों से स्थल–मार्ग द्वारा जुड़ा था। बिल्हण ने लिखा है कि अपने जन्म स्थान (काश्मीर) को छोड़ने के पश्चात् वह यमुना के तटवर्ती किनारों के साथ

Scanned by CamScanner

लगी बड़ी सड़क द्वारा पवित्र तीर्थ मथुरा आ गया। इसके पश्चात् वह उत्तर की ओर चलता हुआ गंगा को पारकर कन्नौज पहुंच गया। गंगा के समीपवर्ती समीपवर्ती मार्ग पर चलते हुए उसने प्रयोग पहुंच कर गंगा यमुना संगम देखा। तदनन्तर वह बनारस पहुंचा। (यह नगर उसके विवरण का पूर्वी सीमांत नगर है) ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस में ही अथवा बनारस से पश्चिम की ओर चलने के बाद उसकी भेंट डाहल के राजकुमार कर्ण से हुई। कर्ण से भेंट के पश्चात् बिल्हण ने पष्चिमी भारत की यात्रा की। यात्रा उसने धार एवं अन्हिलवाड़ की राजसभाओं की कीर्ति एवं सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर की पवित्रता से आकृष्ट होकर की। भगवान सोमनाथ की पूजा–अर्चना के पश्चात् बिल्हण समीपवर्ती बंदरगाह (वेरावल) से दक्षिण भारत के लिए जहाज द्वारा रवाना हुआ। अपनी यात्रा को निरन्तर जारी रखते हुए वह दक्षिण भारत में अधिक समय तक रहा एवं रामेश्वरम् तक पहुंच गया। रामेश्वरम् से उत्तर की ओर चलकर अन्ततः कल्याणी पहुंच गया, जहां राजा विक्रम (विक्रमादित्य) ने उसे विद्यापति के पद से विभूषित किया।[113] कल्हण ने भी बिल्हण के विषय में लिखा है कि राजा कलश के राज्यकाल में बिल्हण कवि काश्मीर छोड़कर कर्णाट देश के राजा पर्माडि के यहां चला गया था। उस राजा ने बिल्हण को विद्यापति पद पर नियुक्त करके उसका बहुत सम्मान किया था। इसके अतिरिक्त देश के पर्वतीय स्थानों पर यात्रा के समय मात्र उसी को हस्त्यारूढ़ होकर राजा के सम्मुख छत्र धारण करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। तथापि बिल्हण ने राजा हर्शदेव की प्रषंसा सुनकर कर्णाट के समस्त वैभवों को तुच्छ समझ लिया।[114] बिल्हण के द्वारा अपनाये गये यात्रा मार्ग पर व्यापारी निश्चित ही अपने पण्य–द्रव्य आदि के साथ भ्रमण करते होंगे। कल्हण ने राजा जलौक, मिहिरकुल, मेघवाहन, प्रवरसेन, ललितादित्य आदि की दिग्विजय के वर्णन में विभिन्न मार्गों का उल्लेख किया है। जलौक के नेतृत्व में काश्मीरी सेना कान्यकुब्ज तक पहुंच गई थी।[115] मिहिरकुल की सेना दक्षिणी समुद्र तट पर स्थित सिंहल (लंका) तक पहुंची तथा लौटते हुए उसने चोल, कर्णाट, लाट आदि देषों का अतिक्रमण किया था।[116] मेघवाहन भी अपने दिग्विजय अभियान में लंका तक पहुंच गया था।[117] राजा प्रवरसेन दिग्विजय अभियान में गंगा एवं यमुना के तटवर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त करता हुआ, पूर्वी समुद्र तक पहुंच गया था। तदनन्तर उसके सैनिकों के द्वारा पश्चिम समुद्रतटवर्ती सौराष्ट्र देश पर आक्रमण करके उस राज्य को समूल नष्ट कर देने के उल्लेख हैं।[118] उसके पूर्वजों का जो सिंहासन विक्रमादित्य ले गया था, उसे वह उज्जयिनी से पुनः काश्मीर ले आया।[119] राजा ललितादित्य ने अपने दिग्विजय अभियान के अंतर्गत वाक्पतिराज एवं भवभूति से सेवित यशोवर्मा को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। यमुना नदी के उत्तरी तट से लेकर कालिका नदी तक का भूखण्ड ललितादित्य के लिए घर के आंगन के समान सुगम्य हो गया था। कान्यकुब्ज से ललितादित्य की सेना पूर्वी समुद्री तट पर कलिंग तक जा पहुंची थी। इसक पष्चात् ललितादित्य ने दक्षिण दिषा की ओर प्रयाण कर कर्णाट देष पर विजय प्राप्त कर ली थी। समुद्रतटवर्ती अनेक द्वीपों तक पहुंचकर ललितादित्य पुनः उत्तर की ओर लौटा। कोंकण द्वारिका एवं अवन्ति पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने उत्तरापथ में प्रवेश किया था। उत्तरापथ की विजयों में काम्बोज, तुखार, उत्तर कुरू, जालन्धर, लोहर आदि मार्गों का जो भौगोलिक वर्णन कल्हण ने प्रस्तुत किया है वह क्रमबद्ध है।[120] उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट रूपेण प्रकट होता है कि काश्मीर का भारत के अन्य क्षेत्रों के साथ संचार एवं आवागमन के स्तर पर सम्पर्क बना हुआ था। इन सभी मार्गों का उपयोग व्यापारियों द्वारा अपनी गतिविधियों के संचालन में किया जाता होगा। उत्पादन एवं क्रय–विक्रय के उल्लेखों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ऊन, ऊन से बने वस्त्र, पशुओं

Scanned by CamScanner

की खाल, चमड़े से बनी वस्तुएं, सेव, नाशपाती, खूबानी, आडू, अंगूर आदि फल निर्यात किये जाते होंगे। कल्हण के अनुसार दूरस्थ देशों में अन्न तथा अन्यान्न पाण्य बेचना अत्यधिक समृद्धिदायक था।[121] केशर की काश्मीर के बाहर स्थित बाजारों में बहुत मांग थी। काश्मीरी केशर की भारतीय बाजारों में लोकप्रियता हर्ष की रत्नावली के इस उद्धरण से सिद्ध होती है कि लोगों के द्वारा पारसिक एवं बाह्लिक देशो में उत्पन्न केशर के स्थान पर कश्मीरी केशर की मांग की जाती थी। आयात किए जाने वाली सामग्रियों में नमक प्रमुख था। काश्मीर में नमक का उत्पादन न होने के कारण इस महत्वपूर्ण वस्तु के लिए वह अपने पड़ौसी देशों पर निर्भर था। पीर–पंजाल के मार्ग से होकर नमक पंजाब से काश्मीर घाटी में आता था। क्षेमेन्द्र के द्वारा उल्लिखित लवणासारिणी नामक प्राचीन नमक मार्ग का स्मरण कराता है। क्षेमेन्द्र के अनुसार नमक काश्मीर में वैभव की वस्तु के समान था। वह सामान्य जनों की पहुंच से बाहर थ।[122] राजा हर्ष के शासनकाल में आई बाढ़ से राज्य में हींग और नमक मिर्च का दर्शन ही दुर्लभ हो गया था।[123] हींग एवं अन्य मसाले संभवतः अफगानिस्तान से आयात किए जाते थे। उत्कृष्ट कोटि के चीनी वस्त्र (चीनाम्बर) एवं सिंदूर चीन से मंगाए जाते थे।[124] 13वीं शताब्दी में भारत आए वेनिस के यात्री मार्कोपोलो का कथन है कि मूंगा (प्रवाल), जो पश्चिमी देशों से मंगाया जाता था, की खपत काश्मीर में किसी भी अन्य देश की अपेक्षा अधिक थी।[125] घाटी के जिन दर्रों से व्यापार होता था उनकी कड़ी सुरक्षा के प्रबंध किए जाते थे। प्रत्येक मार्ग के अंत में एक निरीक्षण चौकी होती थी। इन चौकियों में सैनिकों व सीमा–शुल्क अधि ाकारियों की नियुक्ती की जाती थी। क्षेमेंद्र ने पीर–पंजाल मार्ग के अंत में शुल्कस्थान एवं उसमें नियुक्त शौल्किक नामक अधिकारी का उल्लेख किया है।[126] राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि निरीक्षण चौकियों से गुजरने वाले सामान को लेखबद्ध किया जाता था तथा उन पर मुहर अंकित की जाती थी। इन चौकियों पर नियुक्त अधिकारी आयातित एवं निर्यातित वस्तुओं पर चुंगी वसूल करते थे।[127]राजकीय सेवा, कृषि, उद्योग, व्यापार के अतिरिक्त भी काश्मीर के लोग अन्य व्यवसायों द्वारा जीविकोपार्जन में संलग्न थे। कसाई[128] बोझा ढोने वाले[119] फेरे लगाने वाले (अट्सूद)[130] सेवक[131] एवं श्रमिक[132] अपनी–अपनी वर्षत्ति द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। प्राचीनकाल में सुगम भारवाहन के साधनों को अभाव था। इसलिए भारवाहन का कार्य मानव ही करते थे। राजा अपने ग्रामों में निर्माण कार्य व सामान के स्थानांतरण के लिए लोगों से बेगार के रूप में भारवहन करवाते थे। कल्हण के अनुसार राजा शंकरवर्मा (833–902 ई.) के काल मे एक ग्राम के लोगों द्वारा राजकीय भारवहन नहीं करने पर राजा ने उस ग्राम के लोगों पर दण्ड आरोपित कर दिया।[133]

राजा हर्ष (1089–1101 ई) ने भीमकेशव के मंदिर से सम्पत्ति प्राप्त करके मन्दिर के संरक्षकों को बोझा ढोने की प्रथा से मुक्त कर दिया था।[135] वणिकजन व्यापार, सम्पत्ति के क्रय–विक्रय एवं लोगों का सामान अपने पास गिरवी रखकर भी धनोपार्जन करते थे।[136] ज्योतिश एवं चिकित्सा शास्त्र के ज्ञाता अपनी विद्या के द्वारा जीविकोपार्जन करते थे।[137] इनके अतिरिक्त शिक्षक[138], वैद्य[139], पुरोहित्[140], नापित[141], मूर्तिकार, गाड़ीवान[142], रहट चलाने वाले, अनाज पीसने वाले[143], श्रमिक[144], मछुआर[145], पशुपालक[146], सैनिक आदि अन्यानेक वर्ग समाज को अपनी सेवाएं प्रदान कर प्रतिग्रह स्वरूप धन प्राप्त करते थे।

Scanned by CamScanner

संदर्भ

1. महाभारत, उद्योगपर्व, 72.23–4
2. बष्हस्पति सूत्र, 6.7–12
3. राजतरंगिणी(अ.अ.,स्टीन एम ए, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली,1961), 8.3000
4. वही, 5.15
5. वही
6. रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, देवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1966, पृ. 682–83
7. सुनीलचन्द्र रे, अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ काश्मीर,मुंशीराम मनोहरलाल, 1962 पृ.119
8. पृथ्वीनाथ कौल बमजाई, ए हिस्ट्री ऑफ कष्मीर, मेट्रोपोलिटन बुक कम्पनी लिमिटेड,नई दिल्ली, 1973, पृ. 222
9. राजतरंगिणी, 6.9
10. कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो शिवांशजः। राजतरंगिणी, 1.7221
11. कष्मीरायां तथा राजा त्वया ज्ञेयो हरांशजः – नीलमतपुराण, 234–314
12. विष्णुस्मृति 5.6, मनु. स्मृति, 8.410, पाराशर स्मृति, 1.68
13. राजतरंगिणी, 1.87, 88, 90, 96, 98, 100, 121, 174, 175, 307, 311, 340, 341, 343, 2, 55, 3.8, 376, 481, 4.9, 639, 673, 5.23, 24, 170, 397, 403, 442, 6.89, 336, 7.182, 184,185, 608, 898, 899, 908, 8. 898, 2408, 2419, 2420, 3355
14. राजतरंगिणी, 3.100
15. वही, 3.187
16. रघुनाथसिंह, कल्हणकृत राजतरंगिणी, खण्ड प्रथम, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, , पृ. 16
17. राजतरंगिणी, 1.314
18. मनु स्मषति, 8.415, विष्णुस्मृति, 18.44, नारद स्मृति, 5.25–44, वशिष्ठ स्मृति, 2.39
19. राजतरंगिणी, 4.266
20. जेम्स लेगे, ए रिकार्ड ऑफ बद्धिस्टिक किंगडम,आक्सफोर्ड, 1886, पृ.43
21. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.157–58, बृहस्पति 19–53.55
22. शर्मा, रामशरण : प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली,1993,पृ.169
23. शर्मा, रामशरण : भारतीय सामंतवाद,नई दिल्ली,1993, पृ. 14.
24. रघुनाथसिंह, कल्हणकृत राजतरंगिणी I, परिशिष्ट घ, पृ.11
25. राजतरंगिणी, 4.347.48
26. वही, 5.48
27. वही, 5.405
28. वही, 5.44, 6.354
29. वही, 7.154, 1227, 8.15, 415, 588, 651, 801
30. यूले,हेनरी, ट्रेवल्स ऑफ मार्कोपोलो, खण्ड, 1, पृ. 166
31. नीलमत पुराण, 529–541
32. राजतरंगिणी, 4.347
33. राजतरंगिणी, 2.18, 5.270, 8.770, 795
34. नीलमतपुराण, 784–754
35. राजतरंगिणी, 1.246
36. नीलमत पुराण, 696–697

Scanned by CamScanner

37. राजतरंगिणी, 1.42
38. वही, 4.192
39. विक्रमांकदेवचरित,1
40. राजतरंगिणी, 6.356
41. राजतरंगिणी, 4.102
42. बील, सी–यू–की, खण्ड–1, पृ. 88
43. राजतरंगिणी, 2.171
44. रघुनाथसिंह, कल्हणकृत राजतरंगिणी, खण्ड–1, पृ. 90
45. राजतरंगिणी, 1.42
46. सुनीलचन्द्र रे, पूर्वोक्त, पृ.121
47. विक्रमांकदेव चरित,1
48. वाटर्स, आन युवान च्वांग ट्रेवल्स, खंड–1, पृ.262
51. राजतरंगिणी, 197
52. रघुनाथ सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 131
53. राजतरंगिणी, 1.156–57
54. वही, 1.191
55. वही, 5.91
56. वही, 5.111–112
57. खारी एक प्रकार का तौल है जो अफगानिस्तान और ईरान में प्रचलित था। काबुल में यह 559 कि.ग्रा. तथा ईरान में 294 कि.ग्रा. का होता था (रघुनाथसिंह पूर्वोक्त, पृ.352)अबुल फजल के अनुसार 29 दाम की खारी होती थी। (आइने अकबरी, 2.161)
58. राजतरंगिणी, 5.116–117
59. वही, 5.68
60. वही, 5.71
61. राजतरंगिणी, 5.271
62. वही, 7.1219–21
63. सुनीलचन्द्र रे, पूर्वोक्त, पृ.124
64. राजतरंगिणी, 8.205–1209
65. आर.सी.काक. एंश्येण्ट मानुमेण्ट्स ऑफ काश्मीर, लन्दन, 1933, प्लेट, 24.क्र.5
66. राजतरंगिणी, 5.162
67. वही
68. नर्ममाला, 1.108–109
69. राजतरंगिणी, 7.928–931
70. वही, 8.265
71. सुनीलचन्द्र रे, पूर्वोक्त, पृ.126
72. नर्ममाला, 1.75
73. राजतरंगिणी, 8.138
74. वही, 7.190–193
75. सुनीलचन्द्र रे, पूर्वोक्त, पृ. 127
49. राजतरंगिणी, 2.122, 8.143

Scanned by CamScanner

50. पृथ्वीनाथ कौल बमजाई, ए हिस्टरी ऑफ काश्मीर, पृ.224 आर.सी.काक, पूर्वोक्त, पृ. 139
76. सि–यू–की (अनु.बील) खंड–1, पृ.148
77. राजतरंगिणी, 4.55
78. नर्ममाला, 1.109
79. वही, 124
80. राजतरंगिणी, 9.137
81. नर्ममाला, 1.124
82. सुनील चन्द्र रे, पूर्वोक्त, पृ.127
83. राजतरंगिणी, 4, 616–617
84. राजतरंगिणी, 3.358
85. वही, 4.208
86. वही, 1.201–201
87. वही, 5 162, 213
88. रघुनाथसिंह कल्हणकष्त राजतरंगिणी खंड 2, पृ.394
89. राजतरंगिणी, 4.208
90. सुनील चन्द्र रे, पूर्वोक, पृ.129
91. वाटर्स, ऑन युवान च्वांग ट्रेवल्स खंड–1, पृ. 258–285
92. वार्शिक रिपोर्ट,आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1915–16, पृ. 56
93. राजतरंगिणी, 4.208, 5.99
94. वही, 3.10
95. एल इटिनेरैरी डी ओड कांग, जर्नल एसियाटिक 1895, पृ. 356
96. राजतरंगिणी, 5.215–225
97. सचाउ, अलबीरूनिज इण्डिया, खंड–1, पृ. 206
98. सुनीलचंद्र रे, पूर्वोक्त, पृ.130
99. पी.सी.बागची, इण्डिया एण्ड एण्ड चाइना, पृ.13–14
    एन.पी. चक्रवर्ती, इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया, पृ.13
100. एल इटिनरैरी डी ओडकांग, पूर्वोक्त, पृ.356
101. राजतरंगिणी, 8.2887
102. ही, 8.1661–70
103. राजतरंगिणी 8.557
104. राजतरंगिणी, 7.1520, 8.1051, 1134, 1266, 1577
105. वही, 3, 227
106. क्षेमेन्द्र, समयामातृका, 2.92
107. राजतरंगिणी, 8.959
108. समयमातृका, 2.90
109. राजतरंगिणी, 7.140
110. वही, 7.969–70, 1298, 8.192–201
111. ट्वानी, ओशन ऑफ स्टोरिज, पृ.178–179
112. देशेपदेश, 6
113. बिल्हण, विक्रमांकदेवचरित (सं. ब्यूलर) परिचय, पृ. 18–19, एवं XVIII 84–103

Scanned by CamScanner

114. राजतरंगिणी, 7.935–37
115. वही, 1.117
116. वही, 1.296–300
117. वही, 3.27–79
118. वही, 3.324–328
119. वही, 3.331
120. वही, 4.133–180
121. वही, 7.495
122. नर्ममाला, 1.127
123. राजतरंगिणी, 7.1221
124. कुट्टनीमत काव्य, 343
125. यूले, ट्रेवल्य ऑफ मार्कोपोलो खंड–1, प॰167
126. समय मातृका, 2.102
127. राजतरंगिणी, 8.2010
128. राजतरंगिणी, 3.7
129. वही, 5.205
130. वही, 8.216–21
131. वही, 3.198, 214, 245, 21–24, 5.35
132. वही, 4.272
133. वही, 5.172–174
134. वही, 7, 1088
135. वही, 3.335, 4.270, 7.1460
136. वही, 4.11, 6.16, 8.124
137. वही, 6.13
138. वही, 5.469, 6.13, 7.706–10
139. वही, 4.216, 6.13
140. वही, 2.132, 5.465–66, 7.13, 8.901–939
141. वही, 7.203
142. वही, 8.727
143. वही, 7.1232
144. वही, 5.1441
145. वही, 7.405–406, 8.2132
146. वही, 6.318–20

Scanned by CamScanner

लेखक परिचय

प्रो. चन्द्रशेखर गुप्ता
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, राष्ट्संत तुकोजी महाराज विश्वविद्यालय, नागपुर, महाराष्ट्र, वर्तमान पता—अन्नद भवन दरवाजा मार्ग, नागपुर, महाराष्ट्र

प्रो. नागेश दुबे
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सांगर मध्यप्रदेश

डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी
पूर्व विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

प्रो. काशीनाथ तिवारी
अध्यक्ष, प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं फील्ड आउटरीच विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

डॉ. कन्हैयालाल अग्रवाल
सेवानिवृत्त व्याख्याता
प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
वाणिज्य महाविद्यालय सतना, मध्यप्रदेश

डॉ. नरेश कुमार पाठक
सेवानिवृत्त पुरातत्ववेत्ता,
मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग,
भोपाल

डॉ. ओम प्रकाश मिश्र
सेवानिवृत्त पुरातत्ववेत्ता,
मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग,
भोपाल

Scanned by CamScanner

डॉ. मोहन लाल चढ़ार
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक

डॉ. राखी कुमारी
व्याख्याता, कंकड बाग, पटना, बिहार

जयप्रभा शर्मा
दाऊचौरा,खैरागढ़ (छ.ग.)

डॉ. महेशचन्द्र राय प्रजापति
व्याख्याता
चडीगढ़

हरित कुमार मीना
इतिहास विभाग,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

रमेश चन्द्र यादव
प्रकाशन अधिकारी
पुरातत्व अभिलेखागार एवं संग्रहालय, म. प्र. शासन, भोपाल,

प्रसन्न सहारे
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,खैरागढ़

लल्लेश कुमार श्वेता सिंह
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर।

लल्लेश कुमार
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

कृष्ण कुमार त्रिपाठी
पूर्व विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

हेमलता मिंज
शोधार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक

मुकेशकुमार शाह
श्री कावेरी शोध संस्थान,
उज्जैन, मध्यप्रदेश

रीतेश लोट
श्री कावेरी शोध संस्थान,
उज्जैन, मध्यप्रदेश

डॉ. गौरी शंकर महापात्र
सहायक प्रोफेसर, जनजातीय अध्ययन विभाग, ,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

डॉ. सौरभ कुमार
लुप्त प्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

Scanned by CamScanner

अशोक सिंह कुशराम
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, रानीदुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

अमृता सिह
सहायक प्राध्यापक
गांधी पी. आर. महाविद्यालय,
भोपाल

डॉ. मनोज कुमार कुर्मी
प्रभारी,
अधीक्षण पुराविद
भारतीय पुरातव सर्वेक्षण, रायपुर मण्डल,

डॉ. संदीप ठाकरे
योग विभाग,
इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

डॉ. श्याम सुन्दर पाल
योग विभाग,
इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

हीरा सिंह गोंड
शोधार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग,, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक

डॉ. आशुतोष चौरे
संग्रहालयाध्यक्ष
विश्वविद्यालय संग्रहालय इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़
(छत्तीसगढ़)

यादव राकेश पारस नाथ
शोधार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग,, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

डॉ. जिनेन्द्र जैन
सहायक प्रोफेसर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

डॉ. मोहन लाल चढ़ार
सहायक प्रोफेसर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकटंक

प्रों. आलोक श्रोत्रिय
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक, मध्यप्रदेश, 484887

Scanned by CamScanner

यह ग्रन्थ "भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयाम" शीर्षक से निकाला जा रहा है। कला एवं संस्कृति की दृष्टि से भारत भूमि काफी समृद्धशाली है। यहाँ पर कला, संस्कृति के विविध सोपान देखने को मिलते है। सम्पूर्ण विश्व की प्राचीनतम कला संस्कृति के प्रमाण यहाँ से मिलते है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रागैतिहासिक एवं आद्यऐतिहासिक कला संस्कृति के विविध पुरावशेषें के माध्यम से हमें प्राचीनतम् संस्कृति की जानकारी मिलती है। यहाँ से मौर्यकालीन, शुंगकालीन, सातवाहनकालीन, कुषाणकालीन, शक–क्षत्रपकालीन, गुप्तकालीन, पूर्वमध्यकालीन एवं उत्तर मध्यकालीन कला संस्कृति से सम्बन्धित अनेक कलावशेष प्राप्त हो चुके हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विश्वस्तर पर प्राचीन रीति रिवाजों, परम्पराओं एवं मानवीय विकासक्रम को समझने के लिए भारत की कला संस्कृति ने एक नवीन दृष्टि प्रदान की है। इस ग्रन्थ में भारतीय कला संस्कृति के नवीन आयामों से संबंधित विभिन्न शोध पत्रों को संग्रहीत किया गया है।

प्रो. आलोक श्रोत्रिय विगत 20 वर्षो से प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्त्व की विभिन्न विद्याओं में अनुसंधान तथा शिक्षण कार्य में संलग्न है। आपके अनेक ग्रन्थ एवं शोधपत्र राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हो चुके हैं। आपने अनेक राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्रों का वाचन किया हैं। आपको भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के द्वारा चीन के बौद्ध स्थापत्य के अध्ययन हेतु दो वर्षो के लिए चीन भेजा गया वहाँ पर आपने अपना पोस्ट डाक्टोराल कार्य भारत और चीन के बौद्ध स्थापत्य के तुलनात्मक अध्ययन पर कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया। आपने अनेक पीएच.डी. एवं एम. फिल के विद्याथियों का कुशल निर्देशन किया हैं। आपने घोडामाडा (जिला डिण्डौरी) तथा गंभीरवाटोला (जिला अनुपपुर) मध्यप्रदेश के पुरातात्विक उत्खनन एवं विभिन्न पुरास्थलों के सर्वेक्षणों द्वारा नवीन तथ्यों को उद्घाटित किया हैं। वर्तमान में प्रो. श्रोत्रिय प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक, मध्यप्रदेश में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अकादमिक निदेशक तथा संकायाध्यक्ष, समाजविज्ञान संकाय के पद पर कार्यरत है।

डॉ. मोहन लाल चढ़ार विगत 14 वर्षो से प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्त्व के अनुसंधान तथा शिक्षण कार्य में संलग्न हैं। इन्होंने डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर मध्यप्रदेश से स्नातक तथा स्नातकोत्तर की उपाधि प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्त्व विषय में उत्तीर्ण कर स्वर्णपदक प्राप्त किया तथा इन्हें विश्वविद्यालय द्वारा गौर सम्मान से सम्मानित किया गया। इन्होंने इतिहास, भारतीय संस्कृति तथा पुरातत्त्व विषय में नेट/जे. आर.एफ. परीक्षा उत्तीर्ण कर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से 'एरण की ताम्रपाषण संस्कृति : एक अध्ययन' विषय पर डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की। शोध कार्य के दौरान इन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से जूनियर रिसर्च फैलोशिप एवं सीनियर रिसर्च फैलोशिप प्राप्त की। इनकी 10 पुस्तकें व 60 शोधपत्र प्रकाशित हैं। इन्होंने अनेक राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्रों का वाचन किया। वर्तमान में डॉ. चढ़ार प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक, मध्यप्रदेश में सहायक प्रोफेसर एवं कार्यवाहक विभागाध्यक्ष, योग विभाग व समन्वयक, राष्ट्रीय सेवा योजना के पद पर कार्यरत हैं।

SK BOOK AGENCY

S.K. Book Agency

5A/12, Ansari Road, Daryaganj,
New Delhi-110002 Ph.:011-65842996
Email: skbook9@gmail.com

₹ 2800.00

ISBN : 978-93-8315-889-8

Scanned by CamScanner